आराधना ब्रदर्स
प्रकाशक एवं वितरक
124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09935007102, 07985242564, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका वर्ष : 11 अंक : 22 जुलाई-दिसम्बर 2018 कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0974-0002

वर्ष : 11 अंक : 22

कृतिका

जुलाई-दिसम्बर 2018

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 22 जुलाई–दिसम्बर 2018

प्रधान सम्पादक

मनोज कुमार

पूर्व सदस्य, उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद (उ. प्र.)

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 09415924888, 07607782917

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside : www.kritika.org.in

सह–सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ – 226 017

प्रबन्धन

अरविन्द शुक्ल

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com * Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 22 जुलाई–दिसम्बर 2018

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

- ☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 22 जुलाई–दिसम्बर 2018

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com
www.kritika.org.in

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

अरविन्द शुक्ल
आराधना ब्रदर्स
(प्रकाशक एवं वितरक)
124 / 152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर,
कानपुर–208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

प्रो. हितेन्द्र मिश्र
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय,
शिलांग, मेघालय–793 022
दूरभाष – 09436594338
Email : hiten.hindi@gmail.com

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह
म.नं. नन्दन सदन ।। फ्लोर, शेरशाह रोड
शकरी गली, पो.आ. गुलजार बाग
पटना–822101 (बिहार)
सम्पर्क–09279211509, 09334626350
Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी,
विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क–09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निर्देशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भली–भाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

— संपादक कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 22 जुलाई–दिसम्बर 2018

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय......			i-iii
	ज्वलंत प्रश्न		
1.	मूलाधिकार एवं बालश्रम की समस्याएँ व समाधान	डॉ. बलराम सिंह	01
2.	भारत की विकास यात्रा और चीन (एनएसजी से एमटीसीआर तक)	डॉ. गीता यादव	05
3.	मानव संसाधन की कार्यक्षमता बढ़ाने में अभिप्रेरण की भूमिका	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	10
4.	भूमण्डलीकरण के दौर में खोता बचपन : बाल श्रम पर एक अध्ययन	श्रीमती प्रीति द्विवेदी	13
5.	भारतीय लोकतन्त्र : मुद्दे, विकल्प और चुनौतियाँ	मनोज कुमार यादव	18
6.	संक्रमण काल में भारतीय लोकतंत्र	डॉ. बिपिन चंद्र कौशिक	24
7.	कन्या भ्रूण हत्या : एक अभिशाप	शालिनी सिंह	30
8.	कुछ भी असंभव नहीं है दिव्यागों के लिए	नन्हकू प्रसाद यादव	37
9.	भारतीय में आतंकवाद के विविध परिदृश्य	डॉ. आनन्द कुमार खरे	44
10.	श्रवण बाधितों हेतु सम्प्रेषण के विकल्प एवं भाषा क्षमता पर उनका प्रभाव	डॉ. अर्जुन प्रसाद	50
11.	समावेशी भारत की प्रमुख समस्याएँ–गरीबी, बेरोजगारी एवं असमानताएँ (विशेष संदर्भ)	ममता यादव	55
12.	दिव्यांगजन सशक्तिकरण एवं पुनर्वास : वैधानिक अधिकार	श्रीमती नीलम सिंह	60
13.	ग्रामीण विकास और मीडिया	रश्मि पूजा निकुंज	65
14.	समावेशी भारत का परिदृश्य	प्रशान्त सिंह	69

आधी दुनिया का स्याह यथार्थ

15.	भारत में महिलायें और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण	डॉ. अभिलाष सिंह यादव	73
16.	बुन्देलखण्ड की आदिवासी महिलाओं की आर्थिक क्रियाशीलता का अध्ययन	रामेन्द्र कुमार, डॉ. स्वामी प्रसाद	77
17.	भारतीय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी	डॉ. कविता यादव	79
18.	ग्रामीण महिलाओं में समावेशी शिक्षा के बदलते प्रतिमान	धर्मेन्द्र सिंह यादव	82
19.	नवजागरण काल एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक दशा में परिवर्तन	डॉ. शिवानी शुक्ला	89

राष्ट्र निर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान

20.	भारतीय एकता के सूत्रधार : लौह पुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	94
21.	समाजोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती	डॉ. निर्मल कौशिक	98
22.	गाँधी की प्रिय हिन्दी आज भी बंदी	डॉ. सुरंगमा यादव	100
23.	भारतीय समाज की संरचना के सृजन में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका	राकेश कुमार दुबे	104

साहित्य का समकालीन परिदृश्य : दशा एवं दिशा

24.	संचार प्रौद्योगिकी में हिन्दी	डॉ. हेमलता सुमन	110
25.	स्त्री आत्मकथाओं में नारी पराधीनता के विद्रोही स्वर	डॉ. निशा भदौरिया	115
26.	परमानन्द दास और अष्टछाप	डॉ. जय सिंह	118
27.	स्वामी रामानन्द की भक्ति विषयक अवधारणा	मनोज तिवारी	123
28.	मुक्तिबोध : एक साहित्यिक की डायरी में यथार्थ का निरूपण	डॉ. सविता मसीह	131
29.	ममता कालिया के उपन्यासों में वर्ग चित्रण (विशेष सन्दर्भ–मध्यम वर्ग)	डॉ. नीतू सिंह	136
30.	'आदिम राग सुहाग का' : उजियारे का पर्व	डॉ. सविता मिश्र	139
31.	इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : भाषा और साहित्य	डॉ. सुरेश कॉनडे	143
32.	आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य में वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, 1976	डॉ0 रत्ना सिंह	146
33.	शिव का विश्वरूपत्व, निष्फलत्व एवं ब्रह्मस्वरूपता एवं ईश्वरीय ज्ञान	डॉ. पूजा दीक्षित	148
34.	हिंदी मीडिया और भाषा : एक अवलोकन	रूद्र प्रताप सिंह	151
35.	'यशोधरा' : प्रवृत्तिमार्ग की स्वस्थ विचारणा का प्रतीक	डॉ0 सुजाता चतुर्वेदी	155
36.	भारतीय संस्कृति के बदलाव व विकास में विष्णु प्रभाकर का अवदान	डॉ. दमयन्ती देवी	159
37.	श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में धर्म की संकल्पना	डॉ0 प्रीति राठौर	162
38.	शेखर जोशी के साहित्य में पर्वतीय ग्रामीण जीवन	प्रज्ञा परम	167
39.	शिवानी के उपन्यासों में आधुनिक बोध : संदर्भ (चौदह फेरे)	डॉ. सुषमा पुरवार	170
40.	दिनकर के काव्य में भारतीय मूल्यबोध	डॉ. अलका मिश्रा, प्रतीक्षा	173

41.	दिनकर के काव्य में लोकतंत्र की अभिव्यक्ति	डॉ. अलका द्विवेदी, पूजा	177
42.	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पारम्परिक मूल्यों के प्रति विद्रोह	डॉ0 (श्रीमती) बीना मथेला हिमांशी बिष्ट	181
	हाशिए का विमर्श		
43.	हिन्दी साहित्य में दलित जनजीवन का यथार्थ चित्रण	डॉ. बुशरा रिज़वान जाफरी	188
44.	दलित साहित्य की कविताओं में प्रतिरोधी मूल्य	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	203
	वर्तमान का भारत : चिन्तन–चिन्ता के विविध आयाम		
45.	युवा एवं शिक्षा	डॉ. विजय कुमार वर्मा	209
46.	संगीत शिक्षा परम्परा में घरानों की उपयोगिता	डॉ. रेनू वर्मा	211
47.	परिवार नियोजन में पुरुषों की जागरूकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	लक्ष्मी सिंह	214
48.	भारत विश्व विजेता बने	डॉ. किशन यादव, रश्मि जोशी	220
49.	मूक बधिर, अपंग, मंद बुद्धि बच्चों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (ग्वालियर जिले के विशेष संदर्भ में)	ज्योति चन्देरिया	224
50.	रजोधर्म और समाज	डॉ. उत्तरा यादव	229
51.	भारत में समावेशी शिक्षा–समावेशी विकास : चिन्तन के विविध आयाम	शिवप्रताप यादव	233
52.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, 1857 (औपनिवेशिक भारत के प्रति ब्रिटिश नीतियों के विकास क्रम में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक मोड़)	डॉ. संजू	235
	शिक्षा के समकालीन सरोकार		
53.	समावेशित शिक्षा में दृष्टि बाधित (दिव्यांग) के लिए तकनीकी भूमिका	डॉ. सुधा राव	239
54.	समावेशी भारत–समावेशी शिक्षा	परिचय दास	243
55.	समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समकालीन परिदृश्य	डॉ. सरोज यादव, नवीन कुमार यादव	247
56.	बौद्धिक अक्षम बच्चों का वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम (आई0ई0पी0) (समावेशन की ओर एक कदम)	श्रीमती विभा तिवारी	254
57.	समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016	बृजेश कुमार राय	260
58.	समावेशी शिक्षा : चुनौतियाँ एवं रणनीतियाँ	ज्योति	264
59.	समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विविध आयाम	कैलाश नाथ यादव	268
60.	समावेशी शिक्षा एवं सामाजिक विकास के बदलते प्रतिमान	शिखा यादव	273
61.	वर्तमान भारतीय राजनीति में डॉ० राममनोहर लोहिया के समाजवादी आन्दोलन की प्रासंगिकता	डॉ० अरविन्द सिंह यादव	279

सम्पादकीय.....

प्राचीन भारतीय काल से लेकर आधुनिक भारतीय काल तक अर्थात् वैदिक काल से वर्तमान तक के लगभग समस्त ग्रन्थ इसी तथ्य की ओर इंगित कर रहे हैं कि मानव में अपार शक्ति, अटूट साहस, उच्चतम विवेक विद्यमान हैं। ऐसे होने पर भी आज वैश्विक परिदृश्य में वह उदासीन क्यों है? शिक्षक, विद्यार्थी, समाज व शासक वर्ग क्यों अपने प्राचीन जीवन मूल्यों एवं वैदिक परम्पराओं को भूल बैठा है ? जिसके कारण आज परम्परागत पूर्व परम्परायें टूटती जा रही हैं और मानव निष्क्रिय बनकर हाथ पर हाथ रखे हुए उन्हें देख रहा है। आखिर कब तक वह किंकर्तव्यविमूढ़ बना देखता रहेगा ? जहाँ एक ओर भारत के सामने वर्तमान सदी में शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार, आन्तरिक सुरक्षा, कुपोषण,कृषि, खाद्य संकट, महँगाई, परिवहन तथा सड़क जैसी आधारभूत समस्यायें हैं, वहीं दूसरी ओर आतंकवाद, नक्सलवाद, साइबर क्राइम जैसी चुनौतियों से निपटने के लिए सुरक्षा सम्बन्धी समस्यायें भी नासूर की तरह बढ़ती जा रही हैं। इसके साथ–साथ ''कश्मीर में आतंकवाद की समस्या'' तथा चीन द्वारा कथित अरुणाचल प्रदेश समस्या, ग्लोबल वार्मिंग के लिए उत्तरदायी कार्बन प्रोडक्शन या कार्बन ट्रेडिंग भी महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दे हैं। इन सभी समस्याओं का हल वर्तमान सरकार ने कहाँ तक तथा किस प्रकार किया है। अर्थात वर्तमान सदी की ये प्रमुख चुनौतियाँ वर्तमान का राजनीतिक परिदृश्य हल करने में कहाँ तक सफल रहा है यह वास्तव में विचारणीय प्रश्न हैं।

यह सच है कि भौतिक प्रगति के क्षेत्र में भारत निरन्तर आगे बढ़ रहा, पर सोचना यह है कि जिस अनुपात में तकनीक बढ़ी है क्या उसी अनुपात में आर्यभट्ट, वराहामिहिर, भास्कराचार्य, जगदीश चन्द्र बोस, भाभा आदि जैसे महान् वैज्ञानिक भी बढ़ रहे हैं? साहित्य हो या विज्ञान, कला हो या भाषा, किसी भी क्षेत्र में भारत क्या अपने पैरों पर खड़े होने का सच्चा प्रयास कर रहा है? यदि यह सच नहीं है, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान सदी का भारत शायद तकनीकी क्षेत्र में तो आगे बढ़ता रहेगा, किन्तु उसकी रीढ़ अर्थात उसकी आध्यात्मिक एवं नैतिक शक्ति क्षीण होती जायेगी और एक दिन उसका पूर्णतः अपने पैरों पर खड़े रहना ही असम्भव हो जायेगा। अतः वर्तमान सदी के भारत को सच्चे अर्थों में यदि शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है, प्रगति के सशक्त सोपान पर आगे बढ़ाना है, ऊँचा उठाना है तो भारत की आध्यात्मिक ऊर्जा का सहारा लेकर उत्तरोत्तर पथ पर आगे बढ़ना होगा। वही भारत की सच्ची तस्वीर होगी, सच्चा रूप होगा।

भले ही आज का मानव समाज दिन–प्रतिदिन विकास के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है, चाहे वह ज्ञान की कोई शाखा हो या सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था, लेकिन समय के साथ कुछ ऐसी समस्यायें उसके समक्ष आ जाती हैं, जिन्हें चुनौती के रुप में स्वीकार करना पड़ता है। वर्तमान राजनीति का स्वरुप विकृति सा हो गया है, तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था संयत लोकतंत्र के रुप को छिन–भिन्न करती हुई धनिकतंत्र या लूटतंत्र की ओर बढती प्रतीत हो रही है। दुनिया में असमानता की खाई जिस प्रकार बढ़ रही है, तकनीकों पर कुछ देशों का जिस प्रकार का एकाधिकार कायम है, प्राकृतिक संसाधनों के भी मौजूदा आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे में उपयोग करने की क्षमता आज भी कुछ देशों के हाथों तक सीमित है। लेकिन किसी भी समस्या का हल वास्तव में राजनीतिक व्यवस्था पर या संविधान पर कम और शासन का संचालन

करने वाले राजनेताओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों और मशीनरी पर ज्यादा निर्भर करती है। यदि उचित राजनीतिक विचारधारा और इच्छाशक्ति के साथ कुशल प्रशासनिक प्रक्रिया को अपनाया जाये, तभी बेहतर विश्वव्यवस्था का अविर्भाव हो सकता है।

अब वह समय आ गया है कि जब मानव को अपनी अन्तरात्मा का परीक्षण करना होगा। वह जहाँ भी हो, चाहे वह डाक्टर हो, इन्जीनियर हो, राजनीतिज्ञ हो, वकील हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, पूँजीपति हो, व्यापारी हो, नौकर हो, किसान हो अथवा मजदूर हो उसे इस टूटती हुई भारतीय संस्कृति की परम्पराओं को पुनः सुस्थिर करना ही होगा क्योंकि देश का भविष्य इन्हीं सभी के कन्धों से कन्धा मिलाने एवं एक जुट होने पर ही उज्जवल हो पायेगा। शिक्षा जगत में व्याप्त अव्यवस्था, भ्रष्टाचार एवं भेद–भाव को मिटाना होगा। छात्र–छात्राओं को नैतिक मूल्यों से अवगत कराना होगा। यद्यपि इस कार्य में सर्वाधिक भूमिका संस्था प्रधान एवं शिक्षकों की ही रहेगी तथापि समाज एवं सरकार को भी अपना कर्तव्य एवं धर्म का पालन करना ही होगा।

वस्तुतः मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा प्रणाली ही है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती हैं, जिनके प्रस्फुटन से ही व्यक्तित्व का विकास होता है। विकास के आधुनिक युग में राष्ट्र की बौद्धिक सम्पदा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें कोई शक नहीं कि हमें आने वाली चुनौतियों का सामना सभी भारतीयों को अपने ही संसाधनों से तथा स्वदेशी तकनीकी साधनों द्वारा करना पड़ेगा। इस पृष्ठभूमि में भारतीय शिक्षा की परम्परागत एवं विकृति पृष्ठभूमि बदलना पड़े तो बदल दें। विद्यालय के वाह्य एवं आंतरिक वातावरण एवं परिस्थितियों को भी इस प्रकार बनाना होगा कि वह एक छात्र की आवश्यकता पूर्ति के साथ–2 उसके लिए जीवनोपयोगी बन सके। इस महत्वपूर्ण प्रयास में कक्षा शिक्षण, प्रशिक्षण का स्वरूप विद्यार्थी अध्यापक सम्बन्ध शिक्षा में सहयोग आदि चुनौतियों का निराकरण सुनियोजित तरीके से करना नितांत आवश्यक होगा। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का अधिकतम विकास करके उसके ज्ञान बोध व कौशल में वृद्धि की जाती है। शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक भी बनाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि उसकी दृष्टि में सोने का नाम कलयुग है, जागने का नाम द्वापर युग, खडे होने का नाम त्रेतायुग, और चलने का नाम कृत अर्थात् सतयुग है। अतः भारतीय संस्कृति एवं भारतीय चिंतन–पद्धति में जिस ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का समन्वय है। उसे ही वैश्विक स्तर पर आज बिखेरने की आवश्यकता है। इस पुनीत कार्य में श्रद्धा एवं विश्वास के साथ चलना एवं लगना होगा।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस–पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता/सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधन किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये, तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा।

विषय–विशेषज्ञों तथा गोपनीय समिति द्वारा निर्धारित 'कृतिका' की अपनी कुछ सीमाएँ हैं और इन्हीं सीमाओं को दृष्टि में रखते हुये अनेक आलेख/शोध–पत्र तथा पुस्तक समीक्षाएँ हम चाहते हुये भी इस अंक

में प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं और न ही अगले अंक में प्रकाशन की सूचना हम दे रहे हैं। हमारी इस व्यवस्था से यदि आप सन्तुष्ट हैं तो इसके लिये कृतिका परिवार क्षमाप्रार्थी है। जैसा कि कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। भूमण्डलीकरण के इस युग में मानव की प्रगति के अवसरों के साथ–साथ उसकी आकांक्षाएं भी बड़ी हैं। यह बात व्यक्ति और समाज दोनों के लिये सच है। आज हम एक नवजागरण के द्वार पर खड़े हैं जहाँ पर प्रत्येक कदम पर प्रतिस्पर्धा एवं चुनौती का वातावरण विद्यमान है। वस्तुतः मूल्य आधारित जीवन शैली अपनाकर ही हम कठिन से कठिन परिस्थिति का बहादुरी से सामना करते हुये राष्ट्र को प्रगति के पथ पर आगे ले जा सकते हैं। इन्हीं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये प्रथम कड़ी के रूप में कृतिका का मुस्लिम विमर्श पर केन्द्रित अंक नई सदी का भारतीय हिन्दी सिनेमा–2019 में प्रकाशित करने की योजना है। इस विषय पर विस्तृत सूचना अंदर के पृष्ठों एवं अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

– सम्पादक मण्डल

1

मूलाधिकार एवं बालश्रम की समस्यायें व समाधान

डॉ0 बलराम सिंह
असि0 प्रो0 राजनीति विज्ञान विभाग
स्व0 दिलीप कुमार स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोड़ा जहानाबाद, फतेहपुर (उ.प्र.)

भारतीय संविधान में मूलाधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत ऐसे प्राविधान किये गये हैं जो बाल श्रम की समस्या के समधान में सहायक हैं। मूलाधिकारों में अनु. 12, 14, 19, 21, 23, व 24 प्रमुख हैं। अनु. 21 प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण करती है।

अनुच्छेद–23 में मानव दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिरोधः मानव का दुर्व्यवहार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिबंधित किया गया है तथा

अनुच्छेद–24 कारखानों में बालकों के नियोजन का प्रतिबन्ध–चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिये नियोजित नही किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित अधिनियम भी महत्वपूर्ण हैं–

1. कारखाना अधिनियम, 1922, 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बच्चे माना गया, काम करने की अवधि (आधे घण्टे के विश्राम मध्यान्तर सहित) 6 घण्टे नियत की गयी है।
2. कारखाना अधिनियम 1948–14 वर्ष की उम्र होने पर ही किसी व्यक्ति को काम पर रखा जा सकता है। काम के घण्टे 41/2 मध्यान्तर सहित 5 घण्टे कर दिये गये।
3. खान अधिनियम 1952, इस अधिनियम के अधीन 15 वर्ष से कम आय के बच्चो को खान मे किसी भी भाग में चाहे वह भूमिगत हो या खुले में खुदाई का कार्य हो, काम पर रखना मना किया है। बगान श्रमिक, एक्ट, 1951–के अन्तर्गत रोजगार के लिये न्यूनतम आयु 22 वर्ष रखी गयी है।

बालश्रम एक ऐसी समस्या है जिसका सामना सम्पूर्ण विश्व कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ऑकड़ो के अनुसार विश्व में 10 करोड़ बच्चों को अपनी आजीविका के लिये मजदूरी करनी पड़ रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग के अध्यक्ष होमर फॉक्स ने बालश्रम को परिभाषित करते हुये कहा हैः बच्चों द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य जिससे उनके पूर्ण शारीरिक विकास और न्यूनतम वांछित स्तर की शिक्षा के अवसरों या उनके लिये आवश्यक मनोरंजन में बाधा उत्पन्न होती है।

वह देश, जिसके बच्चे अपने सुन्दर जीवन की कल्पना भी नही कर सकते, ऐसा कोई सपना नही देख पाते जहॉ उन्हें किसी भी प्रकार का सुख मिल रहा हो, उन्नति की बातें कैसे कर सकता है। दुर्भाग्य से भारत में ऐसी ही स्थिति है। यूरोप की संसद में कहा गया कि भारत, नेपाल और पाकिस्तान ऐसे देश हैं जहॉ से निर्यात होने वाला सामान प्रयोग में नही लेना चाहिए क्योंकि वह सामान लाखों की संख्या में छोटे–छोटे बच्चों द्वारा बनाया गया है। विशेषतः गलीचा एवं कालीन उद्योग के लिये वहॉ पर यह बात कही गयी थी कि कि छोटे बच्चे कारखानो में काम करते हैं यह तो बुरा है ही, साथ ही यह और भी बुरा है कि उनसे गुलामों की तरह काम लिया जाता है। परिणामतः युरोपीय देश उन कालीनों को खरीदना पसंद नही करते। यूरोपीय देश मानवता से प्रेरित नही, क्योंकि वे भी अपने मजदूरों के घोर शोषण को रोक नही सकते, वे तो केवल सस्ते श्रम की प्रतिद्वंद्विता से भय खाकर नैतिकता का प्रदर्शन कर रहे हैं। अनुमान है कि कम से कम 15 करोड़ बच्चे देश में मजदूरी करते हैं और 11 राज्यों में तो यह संख्या 90 प्रतिशत के लगभग है।

यह अत्यन्त विडम्बना है कि बच्चों से उनका बचपन छीनकर उन्हें एक प्रकार से भट्टी में झोंक दिया जाता है न उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त होती है न खेलने को मिलता है, न ही वे जीवन का कोई आनन्द उठा पाते है। बड़े होते हुये यह बच्चे इतने व्यसनी हो जाते हैं कि उनमें से अधिकांश अपराध की ओर मुड़ जाते हैं।

बाल श्रम में संलग्न बच्चों से बारह–चौदह घण्टे काम लिया जाता है, बदले में वेतन बहुत कम दिया जाता है न ही अन्य किसी प्रकार की कोई सुविधा दी जाती है। यहाँ तक कि इनके स्वास्थ्य का भी ध्यान नही रखा जाता। इतना ही नही, यदि वे बीमार पड़ जाये तब भी इन्हें छुट्टी नही दी जाती अपितु काम करते रहना पड़ता है। यदि छुट्टी कर लेते हैं तो उस दिन का वेतन काट लिया जाता है। कई मालिक तो छुट्टी करने पर दुगुना वेतन काट लेते हैं। ढाबों चाय घरो आदि में या फिर हलवाईयों की दुकान पर काम कर रहे बच्चों की दशा तो और भी अधिक दयनीय होती है। कई बार तो उन्हें बचा खुचा जूठन ही खाने पीने को बाध्य होना पड़ता है। बेचारे यहीं बेंचो पर या भट्टियों की बुझती आग के पास चौबीस घण्टों में दो–चार घण्टे सोकर गर्मी–सर्दी काट लेते हैं। बात–बात पर गालियाँ तो सुननी ही पड़ा करती हैं, मालिकों के लात, घूसे भी सहने पड़ते हैं। यदि किसी से काँच का गिलास या कप–प्लेट टूट जाता है तो उस समय मार–पीट और गाली–गलौज के साथ जुर्माना तक सहन करना पड़ता है। यदि मालिक अपनी गलती से कोई वस्तु इधर–उधर रख देता है। तो न मिलने पर इन बाल मजदूरों पर चोरी करने का आरोप लगा दिया जाता है। इस प्रकार बाल मजदूरों का जीवन बड़ा ही दयनीय एवं यातनापूर्ण होता है।

इन दिनों बाल मजदूरों का एक अन्य वर्ग और पनपा है। कंधे पर झोला लादे इस वर्ग के मजदूर सड़क पर फेंके गंदे फटे कागज, पॉलिथीन के लिफाफे या प्लास्टिक के टुकड़े आदि बीनते दिखाई दे जाते हैं। कई बालकों गंदगी के ढेरो को कुरेदकर उसमें से लोहे, टिन प्लास्टिक आदि वस्तुएँ चुनते, राख से कोयला बीनते हुये भी देखा जा सकता है। ये सब उपर्युक्त वस्तुएँ चुनकर कबाड़ खानो में जाकर बेचने पर इन्हें बहुत कम दाम मिल पाता है जबकि ऐसे कबाड़ खरीदने वाले लखपति करोड़पति बन जाते है।

बाल मजदूर उत्पन्न कहाँ से होते हैं! इसका सीधा–सा एक ही उत्तर है–गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले घर–परिवारो से। फिर चाहे ऐसे घर परिवार ग्रामीण हो अथवा नगरीय झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाले। दूसरे अपने घर–परिवार से गुमराह होकर आये बालक। पहले वर्ग की विवशता तो समझ में आती है कि वे लोग मजदूरी करके अपने घर–परिवार के अभावों की खाई पाटना चाहते हैं। यद्यपि उन्हें पढ़ने–लिखने के अवसर एवं सुविधाएँ नही मिल पातीं किन्तु गुमराह होकर बाल मजदूरी करने वाले वर्ग के साथ कई प्रकार की कहानियाँ एवं समस्याएँ जुड़ी रहा करती हैं, जैसे पढ़ाई में मन न लगने या फेल हो जाने पर मार के भय से घर से दूर भाग आना, सौतेली मां या पिता के कठोर व्यवहार से पीड़ित होकर घर त्याग देना, बुरी आदतों तथा बुरे लोगों की संगति के कारण घरों में न रह पाना या फिर कामचोरी आदि कारणों से घर से भाग कर मजदूरी करने के लिये विवश हो जाना पड़ता है। किन्तु बच्चों को किसी भी कारण मजदूरी करनी पड़े इसे मानवीय नही कहा जा सकता।

एक तो घरो में बालकों के रह सकने योग्य सुविधाएँ परिस्थितियाँ पैदा करना आवश्यक है। इसके अलावा स्वयं राज्य को आगे बढ़कर बालकों के पालन की व्यवस्था का प्रबन्ध करना चाहिए, तभी समस्या का समाधान संभव हो सकता है।

बाल मजदूर से तात्पर्य समाज में व्याप्त उस गलत व्यवस्था से है जिसमें कम आयु के छोटे बच्चे अपनी इच्छा के विपरीत अथवा विवशता के कारण छोटी उम्र में ही मजदूरी करने के लिये मजबूर होते हैं। एक सर्वे के अनुसार कोई भी बालक अपनी इच्छा से इस उम्र में श्रम नही करना चाहता, किन्तु हमारे समाज में फैली असमान आर्थिक व्यवस्था व बिगड़ते सामाजिक ढाँचे के कारण ही इस बुराई का जन्म हुआ है और बाल मजदूरी जैसे अनैतिक कार्य को बढ़ावा मिला है।

बाल श्रम भारत की एक भयावह ज्वलंत समस्या है। भारतीय संविधान की धारा 24 के द्वारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम करने पर लगाने से रोक, 20 नवम्बर, 1989 को संयुक्त राष्ट्र महासभा, द्वारा बाल अधिकार घोषणा, 10 दिसम्बर, 1996 को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बाल मजदूरी को गैर–कानूनी घोषित करने के बावजूद अधिकांश बालकों को सामाजिक परिस्थितियों एवं आर्थिक विपत्रता के कारण शिक्षा प्राप्त करने के बजाय श्रमिक बनना पड़ता है। शर्मा 1995 के मतानुसार, किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक व शारीरिक श्रम करने वाले बच्चे बाल–श्रमिक कहलाते हैं।

बाल श्रम के दो प्रकार हैं– प्रथम प्रकार के श्रम में बच्चे अपने अभिभावकों के साथ उनके कार्यों में हाथ बंटाते हैं तथा काम सीखतें हैं। द्वितीय प्रकार के श्रम का उद्‌देश्य परिवार की आय को बढ़ाना होता है जहॉ बच्चो का शारीरिक एवं निम्न प्रकार से मुख्य रूप से उत्तरदायी है।

1. बाल मजदूरी को रोकने के उपाय – बाल मजदूरी ऐसी गंभीर समस्या को रोकने के लिये कानून द्वारा अनेक नियम प्रतिबन्ध व दण्ड आदि की व्यवस्था की गई है। वर्ष 1986 के एक्ट के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों से श्रम कराने पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। जिसमें दोशी व्यक्ति के पकड़े जाने पर 8 वर्ष की सजा तथा 5000 रूपये जुर्माना रखा गया है। इसके अलावा बाल मजदूरी को रोकने के लिये निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिऐ।

2. गरीबी में जीवनयापन करने वाले परिवारो के बच्चों के पालन–पोषण व शिक्षा के लिये सरकारी तथा नीति स्तर से प्रयास करने चाहिये। उन्हे मुफ्त में भोजन, पहनने के लिये वस्त्र तथा मुफ्त में प्रारम्भिक शिक्षा तथा छात्रवृत्ति आदि देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ऐसे व्यवसायियों व अन्य लोगों को दण्ड देना चाहिए जो बच्चो से मजदूरी कराते हैं तथा बाल मजदूरी को प्रोत्साहन देकर बच्चों का शोषण करते हैं।

समय–समय पर ऐसी दुकानों, कारखानों व संस्थानों पर छापे डाले जाऍ, जहॉ बच्चों से मजदूर के रूप मे कार्य लिया जाता है।

बाल मजदूरी के लिये जिम्मेदार लोगों को कड़े कानून द्वारा सजा व दण्ड देने से लोगों में भय बढ़ेगा, जिससे बाल मजदूरी पर काफी हद तक नियन्त्रण किया जा सकता है।

जन–जन तक विशेषतः ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में बाल मजदूरी के विरूद्ध प्रचार व लोगों में बाल मजदूरी से होने वाले दुष्परिणाम के प्रति जागरूकता पैदा करके भी इस पर काफी हद तक रोक लगाई जा सकती है।

बाल मजदूरी की आड़ में बच्चों को खरीदा व बेचा भी जाने लगा है। मासूम बच्चों को खाड़ी देशो में मनोरंजन के लिये ऊँट दौड़ जैसे खतरनाक व वीभत्स खेलो में लगाया जा सकता है। जिससे उनकी दर्दनाक मौत तक हो जाती है। होटलों, दुकानो व घरो में कार्य करने वाले बच्चों को धोखे से उनके शारीरिक अंग निकालकर मार दिया जाता है। ऐसे अपराध जो बाल मजदूरी की आड़ मे किया जाते हैं, उन्हें रोकने के लिये सभी देशो को आपसी सहयोग से कड़े कानून बनाने चाहिए।

सरकार के स्तर पर निम्न प्रयास होने चाहिये –

- सरकार को समाज में बाल श्रम के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिये सभी प्रकार के संचार माध्यमों को प्रयोग में लाना चाहिये।
- बच्चों के अभिभावकों को शिक्षा की आवश्यकता अनुभव कराने हेतु साक्षरता अभियान एवं प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रमों को कठोरता से क्रियान्वयन किया जाना चाहिये।
- स्कूल जाने वाले बच्चों के लिये चलाई जा रही 'मध्यान्ह भोजन योजना' का ईमानदारी से क्रियान्वयन कराया जाना चाहिये। इनके अतिरिक्त बाल पोषाहार योजना एवं ऑगनबाड़ी के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न आहार

योजनाओं को अनियवार्यतापूर्वक क्रियान्वित करना चाहिये। इससे गरीब परिवारों की आजीविका की समस्या हल हो सकेगी।

- बाल श्रमिक जिन उद्योगों में कार्यरत हैं, उनमें इन बच्चों की जगह उनके परिवार के वयस्क व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया जाये, परन्तु इसके साथ बच्चों के अभिभावकों को निर्देशित किया जाये कि वह बच्चों को विद्यालय में प्रवेश दिलायें।
- जिन उद्योगों में बाल श्रमिक कार्यरत हों उनसे इस उद्योग से सम्बंधित प्रशिक्षण विद्यालय खोलने को कहा जाये। इन्हीं विद्यालयों में श्रमिकों के पठन–पाठन की व्यवस्था करायी जानी चाहिये।
- बंधुआ मजदूरी अथवा 'दुअरहा' के रूप में बच्चों को रखने वाले व्यक्तियों से निर्धारित मुआवजा लिया जाये एवं इसका प्रयोग पुर्नवास ग्रहों के निर्माण में किया जाये।
- अधिक से अधिक अशासकीय संगठनों को बाल श्रम दूर करने के प्रयास में सम्मिलित होने हेतु आकर्षित किया जाये।

उत्तर प्रदेश में भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक बल श्रमिक हैं, परन्तु इस स्थिति से हताश न होकर राज्य सरकार इसके समाधान हेतु सक्रिय है। आवश्यकता है कि राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य एवं स्थानीय मानकों को ध्यान में रखकर सभी क्षेत्रों में कार्यरत बाल श्रमिकों की संख्या का पता लगाकर उनकी आजीविका एवं शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाये। इसके लिये राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित किये जा रहे पोषाहार एवं शिक्षा प्रसार के विभिन्न कार्यक्रमों का ईमानदारीपूर्वक एवं कठोरता से पालन कराया जाये। दोषियों को तत्काल दण्डित करने का प्रावधान कर उसे सख्ती से लागू किया जाये परन्तु इसके लिये राजनीतिक इच्छाशक्ति, अशासकीय संगठनों की सक्रिय भागीदारी एवं समाज के प्रत्येक शिक्षित नागरिक की सहभागिता की परम आवश्यकता है तभी संविधान में निहित अनुच्छेद 23, 24 एवं अनु0 45 में सौंपे गये दायित्वों का निर्वाह हो पायेगा।

बालश्रम एक विश्वव्यापी समस्या है, जिसका विकृत रूप तथा दुष्परिणाम इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के दौरान सामने आया। 18 वीं शताब्दी के अन्त में लंकाशायर और यार्कशायर में स्थापित सूती मिलों में अधिकांश काम बच्चों के जिम्मे था। मिल में बच्चों की स्थिति दयनीय थी। कमजोर आर्थिक स्थिति एवं प्रतिकूल सामाजिक परिस्थिति बच्चों को मजदूरी करने के लिये विवश करती है। वर्ग और जाति पर आधारित हमारा सामाजिक ढांचा इस प्रकार का है कि निम्न जाति और वर्गों के परिवारों में जन्म लेने वाले बच्चों को बचपन से ही श्रम करना पड़ता है। अधिकांश काम करने वाले गरीब बच्चे परिवार से आते हैं। अपर्याप्त आमदनी, अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण गरीब लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने के बजाय काम पर लगा देते हैं। इसके अतिरिक्त कम उम्र में शादी, पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियॉ भी बाल श्रमिक प्रथा के लिये उत्तरदायी हैं। बालश्रमिक का सम्पूर्ण जीवन समस्याओं से व्याप्त होता है। गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, शारीरिक एवं मानसिक शोषण तथा कुपोषण इनकी प्रमुख समस्याएँ हैं।

सन्दर्भ

1. शेण्डे हरिदास रामजी : बालश्रम, अपराध एवं समाधान
2. दैनिक हिन्दुस्तान : मई 1997
3. चाइल्ड लेबर : इण्डियन एक्सप्रेस, न्यू डेल्ही, मई 12, 1988
4. मुखर्जी डीपी : चाइल्ड लेबर इन इण्डिया, कैपिटल वो. 197, 1981
5. नवभारत टाइम्स 11 दिसम्बर 1996
6. यूनीसेफ द्वारा प्रसारित दुनिया के बच्चों की स्थिति, 1997

❑❑

2

भारत की विकास यात्रा और चीन (एनएसजी से एमटीसीआर तक)

डॉ० गीता यादव
अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विभाग
टी०डी०पी०जी० कालेज, जौनपुर

अमेरिका लम्बे समय से परमाणु आपूर्ति समूह (एन0 एस0 जी0) में भारत की सदस्यता का समर्थन करता रहा है,खासकर तबसे जब राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपनी पहली भारत यात्रा के दौरान भारतीय संसद में इसकी घोषणा की थी। और चीन उसी समय से इस पर असहज महसूस कर रहा था। आखिर चीन का ऐसा रवैया क्यों है, वह क्या चाहता है?

वास्तव में चीन परमाणु क्षमता वाला एक मात्र एशियाई देश होने का दावा करता रहा था। जिसे वर्ष 1998 में उसने तब खो दिया, जब भारत ने सिलसिलेवार तीन दिन में लगातार पांच भूमिगत परमाणु परीक्षण कर खुद को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश घोषित कर दिया। लगभग तीस वर्षों तक यह रुतबा चीन ने हासिल किया हुआ था। किन्तु पहले भारत बाद में पाकिस्तान ने परमाणु क्षमता हासिल कर एशियाई संगठन की तस्वीर बदल दी।

चीन को उम्मीद थी कि अमेरिका और परमाणु अप्रसार के हिमायती अन्य देश मौजूदा परमाणु अप्रसार व्यवस्था का उल्लंघन करने के आरोप में भारत को अलग–थलग कर देंगें। पर अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए भारत अमेरिका व अन्य देशो को यह समझाने में सफल रहा कि पड़ोसी देश से परमाणु खतरे को देखते हुए भारत को अपने राष्ट्रहित के लिए परमाणु परीक्षण करने पड़े। अमेरिका के साथ असैन्य परमाणु सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर भारत की कूटनीतिक समझ थी। शीघ्र ही भारत के परमाणु हथियार विकास कार्यक्रम को परोक्ष रूप से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा की चिन्ता दूर करने के लिए वैध कदम के रूप में मान्यता दे दी गई। इसके अतिरिक्त भारत अन्य देशो के साथ परमाणु व्यापार करने में सक्षम हो गया। भारत के परमाणु हथियारो और परमाणु कार्यक्रमो पर मौन स्वीकृति को चीन ने अपने लिए उभरती चुनौती के रूप माना। चीन इस तथ्य को पचा नहीं पा रहा है कि भारत एक वैश्विक खिलाड़ी के रूप में उभर कर सामने आये। उसका सहयोगी रहा पाकिस्तान जिसकी अर्थव्यवस्था खराब है उसकी आन्तरिक सुरक्षा को आतंकी संगठनों से चुनौती मिल रही है और अपने परमाणु हथियार भंडार को लगातार बढ़ाने की उसकी कोशिश पूरे विश्व में चिन्ता का विषय बनी हुई है। धीर–धीरे ही सही चीन की अर्थव्यवस्था भी लड़खड़ा रही है, जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था सबसे तेज गति से आगे बढ़ रही है। प्रमुख ऐशियाई शक्ति बनने की बीजिग की महत्वाकांक्षा को आगे झटका लग सकता है पर वैश्विक मंदी ने पहले ही चीन के आर्थिक विकास को नुकसान पहुँचाया है। चीन में जैसे ही अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए निवेश व निर्यात की रणनीति में संशोधन की शुरूआत की विश्व अर्थव्यवस्था पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जो देश चीन को अपना सामान बेचते थे, उन देशों पर चीन की मांग घटने का प्रभाव पड़ा और यूरोपीय संघ आर्थिक संकट से जूझते अन्य देश चीनी वस्तुएं खरीदने में विफल रहे।

इसी बीच भारतीय अर्थव्यवस्था ने दुनिया का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया है। विश्व की कई कम्पनियाँ बढ़ते श्रम खर्च के कारण चीन में निवेश करने से कतराने लगी और अगले बेहतर निवेश के लिए भारत की तरफ देखने लगी। स्वाभाविक है कि चीन भारत को वैश्विक मामलो में प्रभुता हासिल न हो यह प्रयास निरन्तर करेगा और भारत की विकास यात्रा को रोकने की कोशिश करेगा। भारत–अमरीका सम्बन्धों से भी चीन की चिन्ता बढ़ी

है। चीन और अमेरिका के बीच तनाव की स्थिती है, चाहे वह पूर्वी चीन सागर और दक्षिण चीन सागर के पानी का मसला हो, या चीन की आर्थिक नीति और साइबर सुरक्षा कार्यक्रम को लेकर वाशिंगटन की बढ़ती चिन्ता हो। चीन ने यह जाहिर कर दिया है कि वह दक्षिण चीन सागर के बारे में संयुक्त राष्ट्र ट्रिब्यूनल का फैसला नहीं मानेगा ट्रब्यूनल ने घोषणा की है कि 12 जुलाई को वह अपना फैसला सुनायेगा। यह लगभग तय है कि फैसला चीन के पक्ष में नही आयेगा। दक्षिण चीन सागर एक छोटा समुद्री क्षेत्र है, जो चीन की दक्षिण पूर्वी सीमा से जुड़ा है यह समुद्र इंडोनेशिया फिलीपींस, कम्बोडिया, सिंगापुर, वियतनाम आदि कई देशो से जुड़ा है। जिनके साथ चीन का सीमा विवाद चल रहा है, पिछले दिनो चीन व आसियान देशो के विदेश मन्त्रियों की वार्ता भी बेनतीजा साबित हुई। चीन यह भी मानता है कि एशियाई मंच पर उसके प्रभुत्व को चुनौती देने वाला भारत ही है। भारत ने चीन–पाकिस्तान आर्थिक गालियारे के चीनी प्रस्ताव की आलोचना की है। प्रशान्त क्षेत्र में एक नया सुरक्षा तंत्र बनाने के लिए अमेरिका के साथ भारत के गठजोड़ से भी चीन चिन्तित है। भारत को चीन द्वारा इक्कसवीं सदी के समुद्री सिल्क रोड के अह्वान की भी आशंका है। चीन भारत–जापान–अमेरिका के मालाबार श्रृंखला के नौ सैनिक अभ्यास को लेकर भी चिन्तित है, तो अपने चारो तरफ चीन द्वारा बन्दरगाह बनाए जाने से भारत परेशान है। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि अमेरिका भारत के विशिष्ट असैन्य परमाणु क्लब में प्रवेश को आगे बढ़कर समर्थन कर रहा है और चीन एनएसजी में भारत की सदस्यता के खिलाफ खलनायक की भूमिका में है।

ऐसे में समाधान क्या है? भारत वास्तव में चीन के साथ अपने सम्बन्धों में सुधार करना चाहता है। भारत न तो चीन को नियंत्रित करना चाहता है, और न ही चीन के प्रतिद्वंदी के रूप में खुद को खड़ा करना चहता है। राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने चीनी नेतृत्व को समझाने के लिए बीजिंग की यात्रा की। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी समय–समय पर चीनी राष्ट्रपति से बात करते रहे विदेश सचिव भी चीन के सम्पर्क मे रहे। भारत ने बार–बार संकेत दिया है कि नई शक्ति के रूप में उभरने के लिए भारत और चीन दोनो के पास पर्याप्त गुंजाइश है और वे दोनो वैश्विक मामलो मे रचनात्मक भूमिका निभा सकते है। हालांकि भारत की इन कोशिशों का कोई फायदा नही हुआ फिर भी उम्मीद कायम है।

एनएसजी के बहुत से देश जहाँ भारत की सदस्यता का समर्थन कर रहे है, वही बहुत से देश पाकिस्तान की सदस्यता का विरोध भी करते है। जनसंहार हथियारो के प्रसार में पाकिस्तान का रिकार्ड जग जाहिर है और परमाणु अप्रसार में भारत का रिकार्ड सबकों मालूम है यह देखने वाली बात है कि कैसे चीन और पाकिस्तान (संदिग्ध अप्रसार साख वाले देश) भारत को एनएसजी की सदस्यता से रोकते है। चीन के कड़े विरोध के बावजूद अमेरिका ने परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह से इस विशिष्ठ समूह में भारत की सदस्यता के लिए समर्थन करने की ताजा अपील की है। अमेरिकी विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता जॉन किबीं ने कहा कि अमेरिका ने परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी) के सहयोगी देशो से यह अपील की कि जब भी एनएसजी की समग्र चर्चा हो तब इसके सहयोगी देश भारत के आवेदन का समर्थन करे। अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा ने 48 सदस्यीय समूल के लिए भारत के आवेदन का स्वागत किया भारत के दावे को मजबूती से समर्थन किया है। अमेरिका ने तो बाकायदा एनएसजी के सभी सदस्य देशो को पत्र लिखकर सियोल में 24 जून को होने वाले महत्वपूर्ण अधिवेशन बैठक में भारत को समर्थन देने का अनुरोध किया है। भारत को ब्रिटेन का भी साथ मिल गया है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड कैमरन ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को यूके की ओर से पूरा समर्थन देने का आश्वासन दिया है।

वैसे तो ज्यादातर देश भारत का समर्थन कर रहे हैं। पर चीन के अलावा न्यूजीलैंड, आयरलैंड, तुर्की, दक्षिण–अफ्रिका और आस्ट्रिया अब भी भारत की एंट्री के विरोध में है। इसी बीच प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 23 जून 2016 दिन गुरूवार को ताशकंद में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से मुलाकात कर एनएसजी में सदस्यता के लिए चीन का समर्थन माँगा। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने बताया कि प्रधानमंत्री ने चीनी राष्ट्रपति से अपील की कि

चीन भारत की दावेदारी का ईमानदारी और निष्पक्ष तरीके से मूल्यांकन करें।

हालांकि भारत के मसले को जापान और कुछ अन्य देशो ने उठाया। इस पर विशेष बैठक में भी चर्चा हुई। लेकिन भारत की तमाम कोशिशों को तगड़ा झटका लगा। चीन के नेतृत्व में 10 देशों के विरोध के कारण 24 जून 2016 शुक्रवार को सियोल में समाप्त हुई एनएसजी के 48 सदस्य देशों की दो दिवसीय बैठक में भारत की एंट्री का कड़ा विरोध हुआ जबकि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस समेत ज्यादातर देश भारत को इस प्रतिष्ठित समूह में शामिल करने के पक्ष में थे। 48 देशो में 38 देशो ने भारत के प्रवेश का समर्थन किया। चीन ने भारत का इस आधार पर विरोध किया कि उसने परमाणु अप्रसार सन्धि (एनपीटी) पर हस्ताक्षर नही किया है। इसके अलावा ब्राजील, स्वीटजरलैंड, तुर्की, आस्ट्रिया, आयरलैड, न्यूजीलैंड दक्षिण–अफ्रिका आदि। एनएसजी की बैठक में जिन देशो ने भारत की सदस्यता का विरोध किया, उनका बस एक ही तर्क था कि भारत ने परमाणु अप्रसार संन्धि (एनपीटी) पर हस्ताक्षर नही किया है। इस सन्धि के तहत परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र उन्हें ही माना गया है, जिसने एक जनवरी 1967 से पहले परमाणु हथियार का निर्माण और परीक्षण कर लिया हो। इसके धारा छः में कहा गया है कि सिर्फ पाँच देश– अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और चीन ही परमाणु हथियार रख सकते है। अब जब तक इस प्रावधान में सुधार नही होगा, तब तक भारत इस सन्धि पर हस्ताक्षर कैसे कर सकता है? क्योंकि भारत ने तो असैन्य कार्यो के लिए बाद में परमाणु परीक्षण किया है। यह हमारे राजनायिक तंत्र एवं समर्थक देशो की कमी रही कि उसने इस मुद्दे को नही उठाया कि पहले एनपीटी के प्रावधानो में संशोधन हो, फिर भारत इस पर हस्ताक्षर करेगा। कहा गया कि परमाणु अप्रसार सन्धि (एनपीटी) अन्तर्राष्ट्रीय अप्रसार व्यवस्था की धुरी है । वह इसके पूर्ण व प्रभावी क्रियान्वयन का समर्थन करता है। चीन ने अपना बचाव करते हुए कहा कि उसका रूख 48 देशो के समूह के नियमो के अनुसार है, जो किसी विशेष देश के खिलाफ नही है।

तमाम कूटनीतिक प्रयासों के बावजूद परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी) में भारत को फिलहाल प्रवेश नहीं मिल सका। कुछ लोगो को उम्मीद थी कि वर्ष 2008 में चीन के सहयोग से भारत को एनएसजी से वेवर (निर्यात के लिए विशेष छूट) मिला था, इसलिए इस बार भी एनएसजी में अन्ततः चीन हमारे पक्ष में सहयोग करेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ तो इसकी वजह उस समय तक चीन और अमेरिका के बेहतर रिश्ते थे। 2008 में भी चीन पहले भारत का विरोध किया था, लेकिन तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने चीनी नेतृत्व से बातचीत करके भारत को वेवर देने के लिए राजी कर लिया था। मगर अब चीन और अमेरिका के रिश्ते दक्षिण चीन सागर को लेकर खराब है और उस मामले में भी भारत अमेरिका के पक्ष में है इसलिए इस बार चीन लगातार एनएसजी में भारत का विरोध करता रहा। इस समय की अपेक्षा तब चीन तुलनात्मक रूप से कमजोर था। लेकिन आज यह मजबूत स्थिति में है, इसलिए अमेरिकी दबाव में नही आया।

चूंकि 2008 मे भारत को वेवर मिल चुका है, इसलिए एनएसजी की सदस्यता नही मिलने से भारत को बहुत ज्यादा नुकसान नही है। अगर एनएसजी में सदस्यता मिल जाती, तो भारत परमाणु टेक्नोलाजी अन्य देशों से खरीद सकता था। इसके अलावा अगर भविष्य में कभी परमाणु निर्यात से सम्बन्धित एनएसजी के प्रावधानो में बदलाव होता है, तो इससे भारत की मुश्किले बढ़ सकती है। भारत चाहता था कि एनएसजी की सदस्यता लेकर वह इसके नियमों को निर्धारित करने में भी अपना योगदान करे।

भारत को अगर एनएसजी की सदस्यता मिल जाती तो इस आधार पर भी वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के लिए अपनी दावेदारी मजबूत करता। लेकिन चीन नही चाहता कि वैश्विक मंचो पर भारत उसकी बराबरी कर सके। इसलिए चीन संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भी भारत की सदस्यता का विरोध करता रहा है। और भारत के मुकाबले बार–बार पाकिस्तान को खड़ा करके क्षेत्रिय ताकत के तौर पर भारत को संतुलित करना चाहता है, और भारत की प्रगति की राह में बाधा उत्पन्न करना चाहता है। एक अंग्रेजी चैनल पर प्रधानमंत्री मोदी ने कहा

कि– पाकिस्तान के साथ रिश्तों की लक्ष्मण रेखा वहाँ की हर सरकार के साथ बदलती रहेगी। इसलिए भारत को हरपल सतर्क रहना होगा चीन के साथ कई समस्याएं है, उन्हें धीरे–धीरे हल करने की कोशिश चल रही है। पीएम ने कहा कि चीन के साथ भारत के कई सैद्धान्तिक मुद्दे रहे है, लेकिन अब हम आंख से आंख मिलाकर भारत के हित की बात करते है। चीन का मानना है कि भारत के साथ सीमा विवाद और उभर कर आए कुछ मुद्दो की वजह से द्विपक्षीय रिश्तो को आगे बढ़ाना बड़ी चुनौती बन गई है। भारत–चीन सभी द्विपक्षीय मुद्दों को बैठकर बातचीत के जरिये समाधान निकालने के पक्ष में है, चीन का मानना है कि भारत के साथ कुछ जटिल मुद्दे उभर कर आये है, पर स्पष्ट नहीं कि वे मुद्दे क्या है ? ऐसे में अब भारत को क्या करना चाहिए ? अभी हाल ही में भारत एम टी सी आर (मिसाइल टेक्नालॉजी कंट्रोल रिजीम) में शामिल हुआ है। भारत 27 जून 2016 को एमटीसीआर का पूर्ण सदस्य बन गया है। यह वैश्विक अप्रसार शर्तो को बढ़ाने के लिए परस्पर फायदेमंद होगा। इस समूह के 35वें पूर्ण सदस्य के रूप में पहली बार भारत का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय अप्रसार के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में लाभकारी होगा। चीन इसका सदस्य नही है, लेकिन वह भी इसका सदस्य बनना चाहता है। भारत की कोशिश यह रहनी चाहिए कि वह चीन की सदस्यता का विरोध करे, उस पर दबाव बनाये। इसके अलावा भारत के पास ब्रह्ममोस जैसी मिसाइल टेक्नोलॉजी है, जो चीन के विरोधी देश (कोरिया और वियतनाम) हासिल करना चाहते है। भारत उन्हें निर्यात करके चीन को परेशान कर सकता है, या भय दिखाकर उससे सौदेबाजी कर सकता है साथ ही चीन की बहुत सी कम्पनियाँ हमारे देश में कारोबार कर रही है, जिनके कठोर कानून बनाकर भी हमारी सरकार चीन पर दबाव बना सकती है।

भारत के एमटीसीआर में शामिल होने और एनएसजी की सदस्यता न मिलना दोनों घटनाएँ वैश्विक परमाणु अप्रसार ऐजेंडे से जुड़ी हुई है। परमाणु अप्रसार की उत्पत्ति परमाणु हथियार अप्रसार सन्धि में निहित है, जिसे आमतौर पर परमाणु अप्रसार सन्धि (एनपीटी) कहा जाता है। यह एक अन्तर्राश्ट्रीय सन्धि है, जिसका उद्देश्य परमाणु हथियार एवं हथियार प्रौद्योगिकी के प्रसार को रोकना, परमाणु उर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देना और आगे परमाणु निःशस्त्रीकरण के लक्ष्य को पूरी तरह हासिल करना है। यह सन्धि 1970 में लागू हुई 1985 में अनन्तकारन के लिए इसका विस्तार किया गया। कुल 191 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किये उत्तर कोरिया 1985 में इसे स्वीकार किया, किन्तु 2003 में फिर अलग हो गया। संयुक्त राष्ट्र के चार सदस्य भारत, इस्राइल, पाकिस्तान दक्षिण सुडान ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए है। एनपीटी का वर्तमान स्वरूप भारत को स्वीकार्य नहीं हैं।

इन प्रयासों के साथ ही परमाणु अप्रसार व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कुछ समानान्तर गतिविधियाँ लागू की गई जैसे–1987 में जी– 7 के औद्योगिक देशों (कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, ब्रिटेन और अमेरिका) द्वारा अनौपचारिक राजनीतिक समझ के तहत एमटीसीआर का गठन किया गया। इसका उद्देश्य मिसाइल और मिसाइल प्रौद्योगिकी के प्रसार को सीमित करना है। ताकि 500 किलोग्राम भार को 300 किलोमीटर तक ले जाने मे सक्षम प्रणाली पर रोक लगे एक वर्ष 1992 में एमटीसीआर के दायरे में सभी जनसंहारक हथियारों के लिए मानवरहित विमानों के अप्रसार को भी शामिल किया गया। वर्ष 2002 में एमटीसीआर को वैलेस्टिक मिसाइल प्रसार के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय आचार संहिता से जोड़ दिया गया, जिसे हेग आचार संहिता भी कहा जाता है। जो सामूहिक विनाश के हथियारों की आपूर्ति में सक्षम वैलेस्टिक मिसाइलों के प्रसार में संयम एवं देखभाल की बात करता है।

चार निर्यात नियंत्रण निकायों (एमटीसीआर के अलावा एनएसजी, वासेनार एरेंजमेंट और आस्ट्रेलिया ग्रुप भी शामिल है) में से एमटीसीआर में प्रवेश भारत का पहला कदम है। इन चारो समूहों में भारत के प्रवेश से अमेरिका द्वारा दशको से प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण को लेकर इन्कार खत्म हो जायेगा और अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए भारत उच्च प्रौद्योगिकी का आयात कर सकता है और चीन के मुकाबले खड़ा हो सकता है। एनएससी में प्रवेश न मिलने के अगले ही दिन भारत एमटीसीआर का पूर्ण सदस्य बना, जबकि चीन को इसकी सदस्यता नही मिली है।

एमटीसीआर की सदस्यता से अमेरिका जैसे देशो का भारत पर भरोसा बढ़ेगा, जो अब प्रौद्योगिकी की साझा करने में तहत सदस्य देश एवं गैर–सदस्य देश के बीच मतभेद किया जाता था, जबकि कई अन्य देशो में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि किन वस्तुओं का निर्यात किया जाता है और उनका क्या उपयोग होगा भारत ने अपनी ओर से पिछले दस वर्षो में निर्यात नियंत्रण व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए अपने घरेलू कानून में काफी बदलाव किये है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के अनुसार अपने दायित्वो को पूरा करते हुए जून 2005 में जनसंहारक हथियारो और उनके वितरण प्रणाली (गैर कानूनी गतिविधि निषेध) से सम्बन्धित अधिनियम लाया गया, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशो को सामूहिक विनाश के हथियार और प्रौद्योगिकी के बेहतर प्रबंधन के लिएस अपने घरेलू कानून में लागू करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त परमाणु परीक्षण के अट्ठारह वर्षो बाद भारत परमाणु अप्रसार के शानदार रिकार्ड और बढ़ते सामरिक महत्व के कारण चार महत्वपूर्ण निर्यात समूहों में से एक का सदस्य बन गया है। अब भारत निगरानी ड्रोन खरीदने की इच्छा भी पूरी कर सकता है। जो भारत के सामरिक जरूरत और सुरक्षा, दोनों जरूरतों को पूरा करेगा। अलग बात है कि तमाम प्रयासाों के बावजूद भारत को परमाणु आपूर्ति करता समूह की सदस्यता नहीं मिल सकी। किन्तु इसके जरा सा भी निराश होने की जरूरत नहीं है। एमटीसीआर में सदस्यता एक अभूतपूर्व सफलता है और निकट भविष्य में शेष सफलताएं भी भारत अवश्य प्राप्त कर लेगा।

सन्दर्भ

1. अमर उजाला, वाराणसी, शनिवार 18 जून 2016, पृष्ठ–16।
2. अमर उजाला, वाराणसी, शुक्रवार 24 जून 2016, पृष्ठ–10।
3. अमर उजाला, वाराणसी, शनिवार 25 जून 2016, पृष्ठ–01।
4. अमर उजाला, वाराणसी, वृहस्पतिवार 30 जून, पृष्ठ–08।
5. हिस्तुस्तान, वाराणसी, शुक्रवार 1 जुलाई, पृष्ठ–12।

❑❑

3

मानव संसाधन की कार्यक्षमता बढ़ाने में अभिप्रेरण की भूमिका

डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह
सहायक प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ

आधुनिक युग प्रतिस्पर्धा एवं मशीनरी का युग है। स्वचलित मशीनों तथा यन्त्रो का विकास बहुतायक में हो रहा है। किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास मात्र उसके भौतिक संसाधनों पर ही निर्भर नहीं है बल्कि उसके मानवीय संसाधनों पर भी आधारित है। बिना मानवीय संसाधन के कोई भी कार्य सम्पन्न नही हो सकता।

उत्पादन के साधनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. भौतिक संसाधन

2. मनवीय संसाधन

भौतिक संसाधन के अन्तर्गत भूमि, कच्चा माल, मशीने, उपकरण एवं पूंजी को सम्मिलित किया जाता है तथा मानवीय संसाधन के अन्तर्गत श्रम–शक्ति, साहस, कुशलता एवं प्रबन्ध को शामिल किया जाता है। उपरोक्त समस्त संसाधन अपने–अपने स्थान पर बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं। परन्तु मानवीय संसाधन एक ऐसा संसाधन है जो उत्पादन के समस्त संसाधनों को एकत्रित कर उनमें समन्वय स्थापित करता है। मानवीय संसाधन के अभाव मे अन्य समस्त संसाधन मृतप्राय हो जाते हैं। मानवीय संसाधन ही भौतिक संसाधनों में सक्रियता का संचार करता है।

मनवीय संसाधन की सबसे बड़ी विशेशता यह है कि यदि ठीक से इसका उपयोग किया जाय तो इनमे और अधिक निखार आता है। इनका विकास होता है तथा इनमे कार्य क्षमता बढ़ती है जबकि भौतिक संसाधन का उपयोग करने से उनमे ह्रास होता है।

इसलिए किसी संगठन में उसके प्रभाव तथा उत्पादकता मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि मानवीय संसाधनों का सर्वोत्तम प्रबन्ध किया जाय। मानवीय संसाधन में कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए अभिप्रेरण एक महत्वपूर्ण घटक है। अभिप्रेरण के माध्यम से संगठन की एक कमजोर कड़ी भी मजबूत हो जाती है।

संगठनों द्वारा कर्मचारियों की प्राप्ति एवं उपयुक्त स्थानों पर उनकी नियुक्ति कर लेने उन्हें प्रशिक्षित कर लेने तथा उनके लिए पारिश्रमिक का निर्धारण करने के पश्चात् उन्हें बेहतर निष्पादन हेतु अभिप्रेरण एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है जिसके माध्यम से कोई भी प्रबन्धक कर्मचारियों को अपेक्षित कार्य करने हेतु प्रेरित एवं प्रोत्साहित करता है।

अभिप्रेरण मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता होती है, परन्तु कार्य करने की क्षमता तथा कार्य करने की इच्छा दो अलग–अलग तत्व हैं। कोई भी व्यक्ति कितना ही योग्य, अनुभवी एवं क्षमतावान क्यों न हो परन्तु यदि उसमें कार्य करने की इच्छा एवं तत्परता नहीं है तो इन सभी तत्वों का कोई भी महत्व नहीं रह जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की होती है कि उस व्यक्ति की क्षमता के अनुसार उसमें कार्य करने की इच्छा एवं तत्परता को जाग्रत किया जाय। इस प्रकार किसी व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा एवं तत्परता को जाग्रत करने हेतु उसे प्रेरित करना पड़ता है, जिसे अभिप्रेरण कहा जाता है।

अतः अभिप्रेरण एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्तियों में प्रयासों को जाग्रत करती है तथा निश्चित लक्ष्यों की ओर उन प्रयासों को संचालित करती है।

अभिप्रेरण के उद्देश्य –

कोई भी मानव अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति एवं योग्यताओं का सम्पूर्ण भाग उपयोग नहीं करता है अर्थात अधिकांश व्यक्ति अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का कुछ भाग ही उपयोग करते हैं। लोगो की उपयोग न की जाने वाली योग्यताओं एवं क्षमताओ को उपयोग में लाने हेतु उन्हें अभिप्रेरित किया जाता है इस प्रकार, अभिप्रेरण का मुख्य उद्देश्य किसी संगठन में ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना है जिससे कि कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा एवं तत्परता बनी रहे, उनकी संगठन के प्रति उत्तरदायित्व, निष्ठा, अनुशासन एवं गर्व की भावनाओ में बढ़ोत्तरी तथा उन्हे व्यक्तिगत एवं सामूहिक संतुष्टि प्राप्त हो, जिससे कि संगठन के निर्धारित उद्देश्यों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्त किया जाना सम्भव हो सके। इसके कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नवत् हैं–

1. कर्मचारियों को अधिक से अधिक कार्य करने हेतु प्रेरित करना।
2. कर्मचारियों का संगठन के कार्यों में स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना।
3. कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करना।
4. कर्मचारियों की कार्यकुशलता में बढ़ोत्तरी करना।
5. संगठन की उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु प्रयासरत रहना।
6. संगठन में नियोक्ता, प्रबन्धक एवं कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध स्थापित करना।

अभिप्रेरण के प्रकार –

विभिन्न संगठनों में कर्मचारियों में उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि करने हेतु सामान्यतः जो अभिप्रेरण प्रयोग में लाये जाते उन्हें निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरण
2. वित्तीय एवं अवित्तीय अभिप्रेरण
3. आन्तरिक एवं बाह्य अभिप्रेरण
4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिप्रेरण

धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरण–

धनात्मक अभिप्रेरण वह होता है जिसमें कर्मचारियों को किसी पुरस्कार अथवा लाभ के माध्यम से कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रशंसा एवं सम्मान, अधिक मजदूरी अथवा वेतन, प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता, पदोन्नति, अच्छी कार्य दशाओं, अधिकारों का प्रत्यायोजन तथा कार्य की सुरक्षा आदि को सम्मिलित किया जाता है।

इसके विपरीत ऋणात्मक अभिप्रेरण में कर्मचारियों को भय, प्रताड़ना तथा दण्ड आदि के माध्यम से कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाता है।

वित्तीय एवं अवित्तीय अभिप्रेरण–

वित्तीय अभिप्रेरण वह होता है जिसमें कर्मचारियों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मौद्रिक लाभ देकर अभिप्रेरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः मजदूरी अथवा वेतन, बोनस, लाभ भागिता, सवेतन अवकाश, सेवानिवृत्ति योजनाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत अवित्तीय अभिप्रेरण के अन्तर्गत कर्मचारियों के कार्य की प्रशंसा, स्वीकृति, सद्भावना पर्यवेक्षण, निर्णयन में भागीदारी, व्यवसाय में सहभागिता, अधिकार प्रत्यायोजन तथा आत्म–विकास के अवसरों आदि को सम्मिलित किया जाता है। अवित्तीय अभिप्रेरण को मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरण भी कहा जाता है।

3. आन्तरिक एवं वाह्य अभिप्रेरण–

आन्तरिक अभिप्रेरण से आशय उन अभिप्रेरणों से है जो कि कर्मचारियों के कार्य–निष्पादन के समय उत्पन्न होते हैं। इनमें उपलब्धि, मान्यता, उत्तरदायित्व तथा सहभागिता आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत वाह्य अभिप्रेरण वह है जो कार्य के अतिरिक्त स्रोतों से प्राप्त होता है। यह अभिप्रेरण कार्य के समय उत्पन्न नही होते हैं। बल्कि कार्य के पश्चात होते हैं। इनमें सेवानिवृत्ति योजनाओं, स्वास्थ्य बीमा, सवेतन अवकाश तथा आनुषंगिक लाभ आदि को सम्मिलित किया जाता है।

4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिप्रेरण–

व्यक्तिगत अभिप्रेरण से आशय उन अभिप्रेरण से है जिसमें किसी कर्मचारी को कार्य के प्रति अधिक प्रोत्साहित करने के लिए व्यक्तिगतरूप से प्रेरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रशंसा पत्र, प्रमाण पत्र, रोजगार की सुरक्षा, माला पहनाकर सम्मान करना तथा विकास के अवसरों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

इसके विपरीत सामूहिक अभिप्रेरण, संगठन के किसी कार्य समूह से सम्बन्धित होता है, अर्थात किसी एक कर्मचारी को अभिप्रेरित न करके सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत लाभ भागिता, अधिलाभांश, विभागीय पारितोषण, सुझाव व्यवस्था तथा समितियों का गठन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि किसी संगठन में कर्मचारियों अर्थात मानवीय संसाधन की कार्य क्षमता को बढ़ाने हेतु किसी भी अभिप्रेरण का सहारा लिया जा सकता है जिसके माध्यम से वे प्रेरित होकर संस्था के लक्ष्यों को पूरा करने में अपनी सहभागिता प्रदर्शित कर सकें। अभिप्रेरण के अभाव में कर्मचारियों के अन्दर कार्य के प्रति नीरसता आ जाती है जिससे कार्यक्षमता घटने लगती है तथा संस्था अपने लक्ष्यों से भटक जाती है। अतः एक संगठन को कम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना हो तो मानवीय संसाधनों को अभिप्रेरित कर उनका समुचित उपयोग करके उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करते हुए अपनी लाभ दायिकता को बढ़ा सकते हैं।

❑❑

4

भूमण्डलीकरण के दौर में खोता बचपन : बालश्रम पर एक अध्ययन

श्रीमती प्रीति द्विवेदी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

विकास की रेस में अग्रसर भारत वर्तमान में प्रमुख विकासशील देशों में अपनी छवि प्रस्तुत कर रहा है। एक भारतीय होने के लिहाज़ से यह अत्यन्त गौरवशाली तथ्य है कि आज समृद्धि व लाभ की किरण पूंजे भारत के उन भागों को गुंजायमान कर रही है जहाँ दस वर्ष पूर्व विकास व प्रगति का कोई अस्तित्व ही नहीं था। किन्तु यह तथ्य विडम्बनापूर्वक ही है कि विकास की ओर अग्रसर भारत में जिनका योगदान है उनमें भारत के बाल श्रमिक या बाल मजदूर भी है। बाल श्रम का तात्पर्य एक निर्धारित आयु सीमा से कम आयु के बच्चों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दिये जाने वाले श्रम योगदान से है। मोयी[1] के अनुसार जब बच्चों से ऐसा कार्य कराया जाये जो उनके स्वास्थ्य पर नकरात्मक प्रभाव डाले और उनकी शिक्षा दीक्षा को बाधित करे तो यह बाल मजदूरी है। भारतीय श्रम संगठन[2] के अनुसार 18 वर्ष की आयु के अन्तर्गत आने वाले बच्चों से विभिन्न क्षेत्रों में लिया जाने वाला कार्य जो उनकी शिक्षा दीक्षा के साथ उनके शारीरिक व मानसिक विकास को अवरूद्ध कर दे। वह बाल मजदूरी है। बाल मजदूर के रूप में बच्चों के शोषण का एक और वीभत्स रूप उनसे बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य कराना है। यह विषय बहुत ही विडम्बनापूर्वक है कि भारत जैसे विस्तृत लोकतांन्त्रिक देश में 2011 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार 33 करोड़ बच्चे 5 से 18 वर्ष के आयु के मध्य विभिन्न क्षेत्रो में बाल मजदूरी करने को मजबूर थे। रिपोर्ट के अनुसार इनके काम के घंटे बेहद चौकाने वाले थे जो कि 9 से 13 घन्टे के मध्य या इससे भी अधिक थे। भारत के लगभग हर भागों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी जुटाने में बाल श्रमिक के रूप में काम करते देखे जा सकते है लेकिन सेव द चिल्ड्रेन (Save the Chidren) नामक गैर सरकारी संस्था की रिपोर्ट के अनुसार भारत के चार राज्य क्रमशः बिहार, उ0प्र0, राजस्थान, म0प्र0 व महाराष्ट्र में बच्चों द्वारा बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने के आंकड़े सर्वाधिक है।

बाल श्रम से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की 2015 की रिपोर्ट तथा जगणना रिपोर्ट 2011 के आंकड़ों का विश्लेषण CRY (Children Right and You) संस्था द्वारा किया गया। जो महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये हैं, वे निम्नलिखित है :–

- भारत में प्रत्येक 11 बच्चों में से एक बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत है।
- CRY द्वारा जनगणना 2001 व 2011 के आंकड़ों का विश्लेषण करके पाया गया कि 10 वर्षो के दौरान बालश्रम में मामूली गिरावट (2.2%) दर्ज की गयी है।
- यह तथ्य भी पाया गया कि 15 से 17 वर्ष की आयु के मध्य 62.8 फीसदी किशोर जिन क्षेत्रों में बाल श्रमिक हैं वे उनके स्वास्थ्य व जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं।
- आधे से अधिक (56 फीसदी) बाल श्रमिक अपनी शिक्षा दीक्षा को जारी नहीं रख पाते है।
- लड़कियों की तुलना में (8.8 करोड़), लड़के (38.7 करोड़) जोखिम भरे क्षेत्रो में अधिक कार्यरत् हैं।
- भारत में ऐसे किशोरों की संख्या सर्वाधिक है (2.4 करोड़) जो कि विभिन्न क्षेत्रों में बाल श्रमिक के रूप में

कार्यरत है और जो उनके स्वास्थ्य व जीवन दोनों के लिए जोखिम से भरा है।

कहा जाता है कि आज का युवा ही कल का भविष्य है। देश का भविष्य तभी दैदीप्यमान होगा जब युवा शिक्षित होगा। शिक्षा सम्बन्धी आंकड़ों का अवलोकन किया जाये तो भारत में शिक्षा के स्तर में काफी इजाफा होने के तथ्य सामने आ रहे है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय[3] की 2001 की रिपोर्ट के अनुसार 1951 में जहाँ 24.95 फीसदी पुरूष व 7.93 फीसदी महिलाएँ साक्षर थे वहीं 2001 की जनगणना के अनुसार पुरूष साक्षरता 75.85 फीसदी व महिला साक्षरता 54.16 फीसदी पायी गयी है।

विगत वर्षो में भारत में स्त्री पुरूष साक्षरता के स्तर में इज़ाफा होने के बावजूद जन सहयोग व बाल विकास की राष्ट्रीय संस्था (National Institute of Public Cooperation and Child Development, NIPCCD)[4] द्वारा 1991 में बाल श्रमिकों के शैक्षणिक स्तर से सम्बन्धित एकत्रित आंकड़ों के आधार पर प्राप्त तथ्य काफी विचलित करने वाले है। NIPCCD के आंकड़ों के अनुसार 1991 में 70.37 फीसदी बालक व 81.59 फीसदी बालिका विभिन्न क्षेत्रों में बाल मजदूरी कर रहे थे, वे निरक्षर थे (तालिका–1)।

तालिका–1

बाल श्रमिकों का शैक्षणिक स्तर (1991)

साक्षरता स्तर	पुरुष	महिला
निरक्षर	70.37	81.59
साक्षर	11.86	8.3
प्राथमिक	13.61	8.19
मिडल	3.79	1.8
हाई स्कूल / सेकेण्ड्री	0.31	0.1
हायर सेकेण्ड्री	0.06	0.02

Source : Statistics on children in India. Hand Book 1998, the National Institute of Public Cooperation and Child Development (NIPCCD)

कारणों की समीक्षा–

किसी समस्या के कारणों को जानकर ही निवारण के उपाय निकाले जा सकते है। अतः बाल मजदूरी के कारणों की समीक्षा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बच्चों द्वारा बाल मजदूर के रूप के कार्य करने के कारणों से सम्बन्धित अनेक समाज वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन हुये है। भट्ट व रदर[5] ने अपने अध्ययन में बाल मजदूरी का सबसे प्रमुख कारण गरीबी को बताया है। भारत जैसे समाज में बच्चों से सम्बन्धित निर्णय उनके माता–पिता द्वारा लिये जाते है। चाहे बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजना हो या उनसे बाल मजदूरी करवाकर परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु आर्थिक उपार्जन करवाना हो।

कई मामले ऐसे हैं जिनमें निर्धनता के कारण अक्सर माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने के बजाय किसी काम धन्धे में लगाने का निर्णय ले लेते है जिससे उनके परिवार की आय में इजाफा हो सके[6]। गरीबी के कारण अफ्रीका व एशिया महाद्वीप के तमाम देशों में जैसे भारत, चीन, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि में बाल मजदूरी की दर बहुत अधिक है। चूँकि गरीबी / निर्धनता का बाल मजदूरी से सीधा सम्बन्ध हैं इसलिए गरीबी पर नियंत्रण के बिना बाल मजदूरी को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है[7]। गरीबी के साथ परिवार में सदस्यों की संख्या भी एक बच्चे के बाल श्रमिक बनने को प्रभावित कर सकती है। कासमेन्ट[8] ने बाल मजदूरी पर किये गये शोध के दौरान ऐसा ही तथ्य प्राप्त किया जिसमें ऐसे बच्चे अधिक बाल श्रमिक थे जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक

थी। जीवन की कुछ विपरीत परिस्थिति भी बच्चों को बाल श्रमिक बनने के लिए मजबूर कर देती है। जैसे एक बच्चा जब अनाथ हो और गरीबी व आर्थिक तंगी से जूझ रहा हो तो यह विपरीत परिस्थिति भी एक बच्चे को बाल मजदूरी करने के लिए विवश कर देती है। द्रुत गति से शहरीकरण के कारण रोज़गार की तलाश में बहुत से ग्रामीण परिवार शहर की ओर प्रवास कर रहे हैं। किन्तु शहर की तेज रफ्तार से बढ़ती आबादी व रोजगार के अभाव के कारण बहुतों को दो वक्त का भोजन, रहने के लिए मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ नहीं मिल पा रही है। फलतः गरीबी व आर्थिक तंगी से जूझ रहा परिवार अपने बच्चों को किसी रेस्तराँ, गली/सड़क में किसी वेन्डर के यहाँ, या किसी घर में घरेलू नौकर के रूप में काम करवाने के लिए मजबूर हो जाता है[9]। गरीबी व आर्थिक तंगी के कारण जब रहने के लिए गरीब परिवार को मकान नहीं मिल पाता है तो यह गरीब परिवार ऐसे गन्दी बस्तियों में रहने के लिए मजबूर हो जाता है जहाँ पीने का साफ पानी नही होता, रहने के लिए हवादार कमरे नहीं होते ना ही स्वच्छ व साफ सुथरा पर्यावरण होता है। ऐसी स्थिति में जीवन के संघर्ष में जूझ रहा प्रवासित परिवार बच्चों से बाल मजदूरी करवाने के लिए मजबूर हो जाता है। यू0एन0डी0पी0[10] (UNDP- United Nations Development Programme, 2012) की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार का भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बाल मजदूरी से है। भ्रष्टाचार प्रजातान्त्रिक मूल्यों का अवमूल्यन करके मानवाधिकारों का हनन करता है। वंचित बच्चों के लिए शिक्षा स्वास्थ्य व पुष्टाहार की तमाम योजनाओं के बावजूद यदि देश में भ्रष्टाचार तेजी से व्याप्त है तो वंचित बच्चों को ना ही स्वास्थ्य लाभ मिल पाता है ना ही शारीरिक विकास के लिए पौष्टिक भोजन और ना ही मानसिक विकास के लिए शिक्षा के सुअवसर। कई बार भ्रष्टाचार के कारण नियोक्ता अधिकारियों को विभिन्न प्रलोभन देकर अपनी संस्था में प्रतिबन्धित आयु के बच्चों से कम आय में शोषणकारी अवस्था में काम करवाते हैं (यू0एन0डी0पी0, 2012)।

बसु[11] ने 2002 में बाल श्रमिक व बाल मजदूरी पर किये गये अपने अध्ययन में विकासशील देशों में तेजी से बढ़ते बाल मजदूरी के पीछे विभिन्न कारणों जैसे तीव्र जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, गरीबी, कुपोषण आदि कारणों को गिनाया। एक अध्ययन में वैश्विक स्तर पर यह भी पाया गया कि ग्रामीण बच्चे शहरी बच्चों की तुलना में अधिक बाल श्रमिक के रूप में आर्थिक गति विधियों में भाग लेते हुये पाये जाते है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रो में गरीबी अधिक है और वहाँ के अधिकतर लोग कृषि क्षेत्रो पर निर्भर है।[12]

भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में विकासशील देशों में नये व्यापार की संभावनाओं के प्रबल होने के कारण सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) व विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment, FDI) में निश्चित रूप से इज़ाफा हुआ है लेकिन भूमण्डलीकरण के कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आ रहे है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण व नगरीकरण के कारण बड़े–बड़े मिल व कारखानों के मालिक, बच्चों को अपने यहाँ नियुक्त करना सबसे अधिक उपयुक्त समझते हैं क्योंकि बच्चों से काम लेना ज्यादा आसान होता है और वे विभिन्न शोषणकारी स्थिति में भी अपनी आवाज़ नहीं उठा पाते है[13]। विकास की प्रतिस्पर्धा में तेजी से बढ़ते भारत में बच्चे ऐसे विभिन्न क्षेत्रो में श्रमिक के रूप में शोषणकारी अवस्था में कार्य कर रहे हैं जो उनके शरीर, स्वास्थ्य व जीवन तीनों के लिए जोखिम से भरा है[14]। मोटर गैरेज, होटल, रेस्तरां, ईटा के भट्टों, कालीन बुनकर आदि विभिन्न क्षेत्रो में बच्चों को बाल श्रमिक के रूप में कार्य करते देखा जा सकता है। बहुत से बाल–श्रमिक जो कि शीशा विनिर्माण उद्योग व चर्म उद्योग मिलों में काम करतें हैं उन्हें इन मिलों से उत्सर्जित हानिप्रद रसायन व बैक्टीरिया का खतरा बना रहता है। कॉरपेट उद्योग में लम्बे समय तक जब बच्चा बाल–श्रमिक के रूप में कार्य करता है तो उसे लगातार श्वसन सम्बन्धित संक्रमण का खतरा बना रहता है।

गुजरात जो कि तेजी से आर्थिक प्रगति व विकास की ओर अग्रसर है। इस विकास के साथ–साथ वहॉ बाल श्रमिक व बाल मजदूरों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही हैं[15]। कम्बापति और राजन[16] ने अपने अध्ययन में पाया कि आर्थिक विकास की तेज रफ्तार बाल श्रमिकों की संख्या को भी बढ़ा रहा है।

रोकथाम के उपाय –

विकासशील देशों में द्रुत गति से बाल मजदूरी की समस्या बढ़ रही है। वर्ष 2008 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने 5 से 17 वर्षीय करीब 215 करोड़ बालक व बालिकाओं द्वारा विभिन्न क्षेत्रो में बाल मजदूरी करके आर्थिक उपार्जन करने की गणना की है इनमें से 115 करोड़ बच्चें तो विभिन्न जोखिम भरे कामों में लगे हुए थे। बाल मजदूरी की समस्या वैश्विक है लेकिन यह समस्या सर्वाधिक एशिया के विभिन्न देशों में पायी जाती है।

मुहुमुजा[17] ने 2012 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के रिपोर्ट के आधार पर वैश्विक स्तर पर बाल मजदूरी से सम्बन्धित जो तथ्य प्राप्त किये है उसका विवरण सारणी–2 में निम्नलिखित है–

सारणी नं0–2

बाल मजदूरी से सम्बन्धित ऑकड़े

देशों का विवरण	बाल मजदूरी (करोड़ में)
एशिया पेसिफिक	113.6
सब सहारा अफ्रीका	65.1
लैटिन अमेरिका और कैरीबियन	14.1

भारत में बाल श्रम को रोकने के लिए सरकार की ओर से 1986 में प्रभावी कदम उठाते हुए 'बाल मजदूरी नियामक व निरोधक अधिनियम (The Child Labour Prohibition and Regulation, Act) पारित किया गया। इस अधिनियम के तहत् भारत में 14 वर्ष की आयु के अन्तर्गत आने वाले बच्चों से बाल श्रमिक के रूप में कार्य कराने को प्रतिबन्धित किया गया। अधिनियम के तहत् बच्चों से जोखिम भरे क्षेत्रों में लिये जाने वाले कार्य जो कि उनके शरीर, स्वास्थ्य व जीवन के लिए नुकसानदेह हो और साथ ही अगर उनसे बंधुआ मजदूरी करवाया जा रहा है तो इन सबके विरूद्ध कठोर नियम बनाये गये। विभिन्न जोखिम से भरे व शोषणकारी स्थिति में काम कर रहे बाल श्रमिक के रूप में लगे हुए बच्चों को बाल श्रम से मुक्ति दिलाकर उन्हें अनौपचारिक शिक्षा, विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक प्रशिक्षण, पूरक आहार का वितरण इत्यादि सुविधाएँ दिलाने हेतु 1987 में राष्ट्रीय बाल श्रमिक नीति (National Child Labour Policy) का निर्माण किया गया है। इसी अनुक्रम में भारत के विभिन्न गैर सरकारी संगठनों जैसे केयर इण्डिया, क्राई (Child Right & You- Cry) द्वारा बाल श्रमिकों को बाल मजदूरी से मुक्ति दिलाकर उन्हे वापिस स्कूल भेजने के प्रयास पर निरन्तर कार्य किया जा रहा है। इन सब प्रयासों के बावजूद जो शोचनीय विषय है वह यह कि अभी भी भारत के विभिन्न संगठित व असंगठित क्षेत्रों में बच्चों को बाल मजदूरी करते देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि यह आखिर क्यों? वर्ष 2005 की वेंकटरंगैय्या फाउन्डेशन[18] की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में भी बाल श्रमिक की समस्या की मौजूदगी का सबसे बड़ा कारण जो हमारे समक्ष आता है वह यह है कि भारत सरकार द्वारा पारित 'बाल श्रमिक निरोधक व नियामक कानून' बच्चों द्वारा कृषि क्षेत्र, थोक व्यापार, रेस्तरां व घरेलू नौकर के रूप में लिये जाने वाले कार्यो को आवृत नहीं करता है। जबकि वेंकटरंगैय्या फाउन्डेशन की रिपोर्ट के अनुसार इन क्षेत्रों में बाल श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक है। इसके अलावा इन क्षेत्रों में बाल श्रमिक सबसे असुरक्षित भी है। मार्फी[19] के अनुसार भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण अंचलों में रहती है जहॉ किसी भी प्रकार की मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है ऐसे ग्रामीण अंचलों में सरकारी नीतियों को लागू करना अति दुलर्भ है।

निष्कर्ष –

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जहॉ तमाम राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा मानवाधिकार के मुद्दे को जोर शोर से उठाया जाता रहा है वहीं दूसरी ओर यह विषय शोचनीय है कि भारत जैसे विशाल लोकतांन्त्रिक देश

में 3 करोड़ से अधिक बच्चे है जिनके सिर पर कोई छत नहीं है और वे खुले आसमान में नीचे रहने के लिए मजबूर है। 150 करोड़ से अधिक बच्चे बधुआ मजदूरी करने को मजबूर है। 6–14 वर्ष के सभी बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की राष्ट्रीय नीति बनने के बावजूद केवल 50 फीसदी प्राथमिक शिक्षा के अवसर को प्राप्त करने में सक्षम है ऐसी दशा में 'बच्चे ही हमारे राष्ट्र के भविष्य निर्माता है' जैसे तथ्य हमारे लिए अर्थहीन हो जाते है। यह कैसा लोकतन्त्र है और लोकतांन्त्रिक देश के संविधान में वर्णित बिना किसी भेदभाव के सबको देय समान मूल अधिकार जहाँ बच्चों की आधी आबादी अभी भी शिक्षा के मूलभूत अधिकार से ही वंचित है। संविधान तो केवल टेक्स्ट (Text) है, लेकिन असल बात उसको व्यवहार में लाने का प्रयास करना है। लेकिन केवल अकेले राज्य ही बाल श्रमिक व उनके मानवधिकार हनन की समस्या को हल नहीं कर सकता है। उसके लिए एक सशक्त नागरिक समाज (Civil Society) होना चाहिए। भूमण्डलीकरण के इस दौर में बाजार प्रतिस्पर्धा (Market Competition) चरम पर है, ऐसे में राज्य व नागरिक समाज को बाल श्रमिक जैसी समस्या के निदान हेतु मिलकर काम करने की जरूरत है। केवल सरकार व सरकारी तन्त्र इस समस्या का निदान नहीं कर सकते है। सरकार, उत्तम शासन विधि (Good Governance) व एक स्वस्थ मानसिकता तीनों को मिलकर काम करने की जरूरत है जिससे बाल श्रमिक जैसी समस्या से निपटा जा सके और बच्चों के मानवाधिकार हनन को रोका जा सके।

References

1. Moyi, P. Child Labour and School Attendance in Kenya. Educational Research and Reviews. Vol 6 (1), 2011, pp 26 – 35.
2. International Labour Organisation (ILO). Child Labour: A Textbook for University Students, 2004, Geneva.
3. Department of Secondary and Higher Education, Ministry of Human Resource Development, Government of India, 2001
4. Statistics on Children in India, Handbook, The National Institute of Public Cooperation and Child Development (NIPCCD), 1998.
5. Bhat B A and Rather T A. Child Labour in the Cotton Industry of Uzbekistan: A Sociological Study. Centre of Central Asian Studies. Vol 5 (6), 2009, 323 – 328.
6. Basu K and Van P H. The Economics of Child Labour. American Economic Review. 88, 1998, 412 – 427.
7. Edmonds E & Pavcnik N. Child Labour in the Global Economy. Journal of Economic Perspective. Vol 19, 2005, 199 – 220.
8. Cosment L. Child Labour: The Effect on Child; Causes and Remedies to the Revolving Menace. PhD Thesis, Department of Human Geography, University of Lund, Sweden, 2014.
9. Serwadda – Luwaga, J. Child Labour and Scholastic Retardation: A Thematic Analysis of the 1999 Survey of Activities of Young People in South Africa. Thesis (MA), (Demography), University of Pretoria, 2005.
10. United Nations Development Progmme. Seeing beyond the State: Grassroots Women's Perspectives on Corruption and Anti – Corruption. UNDP, 2012.
11. Basu K.A. Note on Multiple General Equilibria with Child Labour, Economics Letters, Vol 74, 2002, 301–308.
12. Akarro, RRJ & Mtweve N A. Poverty and its Association with Child Labour in Njombe District in Tanzania: The Case of Igima Ward. Current Research Journal of Social Science. Vol 3 (3), 2011, 199 – 206.
13. Mapaure C. Child Labour: A Universal Problem from a Namibian Perspective in Oliver C Ruppel (ed), Children's Rights in Namibia, Windhoek: Konrad Adenauer Stiftung, 2009.
14. Mishra L. History of labour Rights. Social Change, Vol 42 (3), 2012, 335 – 357.
15. Swaminathan M. Economic Growth and the Persistence of Child – Labour – Evidence from an Indian City. World Development, 26 (8), 1998, 1513 – 28.
16. Kambhampati U S & Rajan R. Economic Growth: A Panacea for Child Labour? Centre for Institutional Performance, Department of Economic Discussion Paper, 2004, The University of Reading, UK.
17. Muhumuza T. Access to Product Markets & Child Labour – Survey Evidence from Rural Uganda, 2012.
18. Venkatarangaiya Foundation. Child Labour Eradication Programs in Andhra Pradesh, 2005
19. Murphy D. Eliminating Child Labour through Education: The Potential for Replicating the Work of the MV Foundation in India. Centre for Development Studies, University College Dublin, 2005.

❑❑

5

भारतीय लोकतंत्र : मुद्दे, विकल्प और चुनौतियाँ

मनोज कुमार यादव
पूर्व सदस्य
उ.प्र माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद

भारत एक विशाल सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विविधता वाला देश है जहाँ सदियों से अनेक धर्मों को मानने वाले, अनेक भाषा बोलने वाले तथा अनेक जातियों उपजातियों के लोग निवास करते हैं। औपनिवेशिक शासन के दौरान अंग्रेजों ने पहली बार प्रशासनिक एकरूपता स्थापित की। यही वह समय था जब भारत के पारम्परिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक ढाँचे में औपनिवेशिक हितों के अनुरूप आवश्यक बदलाव किये गये। औपनिवेशिक हितों को ध्यान में रखकर किये गये तत्कालीन परिवर्तन का दूरगामी परिणाम हुआ। भारत एक राजनैतिक इकाई के रूप में संगठित तो हुआ परन्तु अनेक सामाजिक, धार्मिक असंतोष को हवा मिली। तत्कालीन हालात में उपजा सामाजिक, धार्मिक असंतोष आज तक कायम है।

जनता द्वारा प्रत्यक्ष शासन लोकतन्त्र का सर्वाधिक शुद्ध रुप है, जिसमें सभी लोग सरकार की गतिविधियों में भाग लेते हैं। प्राचीन भारत में ग्रामीण गणराज्यों में जनता को प्रत्यक्ष भागीदारी प्राप्त थी, आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता का प्रत्यक्ष निर्णय पाना अभी भी महत्वपूर्ण व विवादास्पद मुद्दों का एकमात्र हल समझा जाता है। जब ब्रिटेन के यूरोपीय आर्थिक समुदाय में प्रवेश का प्रश्न एक विवादास्पद मुद्दा बन गया तब इस मुद्दे का समाधान जनमत संग्रह द्वारा हुआ। महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त जनमत को अंतिम व न्यायसंगत लोकतांत्रिक निर्णय माना जाता है, प्रत्यक्ष लोकतन्त्र, जनमत संग्रह, प्रस्तावाधिकार प्रत्याहवान वापस बुलाना तथा लोकमत आदि के रूप में कार्य करता है। स्विटजरलैण्ड के कुछ कैण्टनों में अभी भी प्रत्यक्ष लोकतन्त्र को लागू किया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के सात से अधिक दशक बीत जाने पर भारतीय लोकतन्त्र की वस्तुस्थिति पर पुनर्चर्चा अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मानव मानव सम्बन्धी मुद्दे, चुनौतियाँ व समाधान सभी इस प्रणाली में निहित हैं, मूल्यों का संरक्षण इसमें ही सम्भव है।

यह भारत का सौभाग्य ही है कि यहाँ पर लोकतांत्रिक व्यवस्था है। भारत दुनिया के सबसे बड़े लोकपाल के रूप में जाना और पहचाना जाता है। निस्संदेह भारत में लोकतंत्र की जड़ें बहुत गहराई तक फैली हुई हैं। लेकिन समय के साथ–साथ भारतीय लोकतंत्र में कई खामियाँ आ गयी हैं। क्षरण प्रकृति का नियम है इसलिए भारतीय लोकतंत्र में भी समय के साथ–साथ कुछ ऐसी विकृतियाँ आ गयी हैं जिनके कारण लोकतंत्र से लोगों का भरोसा कभी–कभी उठने लगता है।ऐसा तभी होता है जब लोकतंत्र उनकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाता। वास्तव में यह लोकतंत्र की कमी नहीं अपितु व्यवस्था एवं व्यवस्था से जुड़े लोगों की कमी है। प्लेटो से लेकर वर्तमान तक राजनीति विज्ञान में 'लोकतंत्र' चर्चा का विषय रहा है। लोकतंत्र का शब्दार्थ बिल्कुल सहज है। 'लोक' अर्थात् जनता और 'तन्त्र' अर्थात् शासन अथवा राज्य। अतः लोकतंत्र का अर्थ हुआ–'जनता का राज्य'। इसका अंग्रेजी पर्याय 'डेमोक्रेसी' है। यह यूनानी भाषा के 'डेमोस' तथा 'क्रेटिया' शब्दों के योग से बना है। इसका भी यही अर्थ है–'बहुतों की शक्ति' अथवा 'जनता का राज्य।' संस्कृत साहित्य में 'लोकतंत्र' शब्द का प्रयोग 'जनता के राज्य' के अर्थ में नहीं, वरन् शासन अथवा राज्य कार्य के सामान्य अर्थ में हुआ है।

लोकतंत्र के अंग्रेजी पर्याय 'डेमोक्रेसी' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक मूल के शब्द डेमोस से हुई है जिसका अर्थ

है 'जनसाधारण' । इसमें 'क्रेसी' शब्द जोड़ा गया है जिसका अर्थ है, 'शासन' या 'सरकार' । इस तरह 'लोकतंत्र' शब्द का मूल अर्थ ही जनसाधारण या जनता का शासन है। अब्राहम लिंकन के अनुसार लोकतंत्र ''जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए'' (स्थापित) शासन प्रणाली है।'' सीले के अनुसार ''प्रजातन्त्र वह शासन है जिसमें हर व्यक्ति हिस्सा लेता है।'' इन परिभाषाओं का मूल अभिप्राय यह है कि लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छानुसार और जनता के हित – साधन के उद्देश्य से बनाई जाय और कार्यान्वित की जाय। इसमें शासन चलाने का काम जनसाधारण के प्रतिनिधियों को सौंपा जा सकता है, परंतु उन्हें निश्चित अंतराल के बाद फिर से जनसाधारण का विश्वास प्राप्त करना होगा।

आजादी के बाद सार्वभौम वयस्क मताधिकार ,प्रतिनिधियात्मक लोकतन्त्र ने इसे और बढ़ाया। आजादी के बाद जाति, धर्म भाषा तथा क्षेत्रवाद हमेशा अहम मुद्दे रहे हैं। समय–समय पर महंगाई, भ्रष्टाचार गरीबी भी मुद्दे बनते रहे है। सन् 1991ई0 के उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के बाद से भारत में घपलों, घोटालों की बाढ़ सी आ गई है। हाल में नित नये संगठित भ्रष्टाचार की परतें खुल रही हैं जिसमें कुछ अवसरों पर सरकार के अंगों की संलिप्लता दिखायी पड़ी है। नित नये भ्रष्टाचार एवं प्रभावी कार्यवाही का अभाव निराशा को बढ़ा रहा है। कतिपय यही कारण है कि हाल में स्वतः स्फूर्त नागरिक सक्रियता से एक विशाल जन आन्दोलन दिखायी पड़ रहा है।

वस्तुतः भारत के समक्ष गरीबी और सामाजिक न्याय दो बड़ी चुनौतियाँ थीं। रूढ़िवादी एवं आदर्शवादी दोनों ही इन समस्याओं से भली–भाँति परिचित थे और उनका निश्चित विचार था कि हिंसा एवं सर्वाधिकारवादी तरीकों से किया गया परिवर्तन काफी दुःखदायी होगा। एक शोषण के अन्त से दूसरे शोषण के आरम्भ होने की प्रवल सम्भावना थी। इसलिए वे जनतान्त्रिक साधनों मेल–मिलाप एवं समझौते द्वारा परिवर्तन के पक्षधर थे। रूढ़िवादियों एवं आदर्शवादियों के बीच समझौता मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में स्पष्ट तौर पर प्रकट हुआ।

सामाजिक न्याय भी लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर का मिलना। कानून एवं न्याय की दृष्टि में भी सभी को समान माना जाना चाहिए। आर्थिक असमानताओं के होते हुए सामाजिक न्याय की बात करना व्यर्थ है और जब तक सामाजिक न्याय नहीं होगा, तब तक लोकतंत्र की बात सोचना व्यर्थ है। लोकतांत्रिक व्यवस्था का तकाजा है कि जनता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता हासिल हो और वह खुलकर अपने विचार प्रकट कर सके। बिना स्वतंत्रता के नागरिक शासकीय कार्यों में भाग नहीं ले पायेंगे जिससे लोकतंत्र अपना अर्थ खो बैठेगा। लोकतंत्र की मजबूती के लिए जरूरी है कि देश में शांति का वातावरण हो, सुरक्षा का माहौल हो ताकि जनता स्वतंत्रतापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। स्वशासन प्रणाली को भी लोकतंत्र के लिए जरूरी माना जाता है। शक्ति का केन्द्रीयकरण तो निरंकुशता और अधिनायकतंत्र का प्रतीक है। लोकतंत्र की माँग है कि शक्ति और सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो, सत्ता एक हाथ से निकलकर कई हाथों में बँटे। इसीलिए स्वायत्शासी संस्थाओं व स्थानीय निकायों के विकास को लोकतंत्र में अधिक से अधिक अवसर देने की कोशिश की जाती है। स्थानीय सरकारों या स्थानीय निकायों को तो लोकतंत्र की पाठशाला तक करा गया है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से जनता को वास्तविक राजनीतिक और प्रशासनिक प्रशिक्षण मिलता है।

प्रजातांत्रिक देशों में हर नागरिक के मन में यह महत्व और गौरव जगाया जाना चाहिए कि वस्तुतः वही अपने देश के भाग्य का निर्माता है। उसके हाथ में मतदान का ऐसा अस्त्र है जिसके सदुपयोग और दुरूपयोग पर देश की तकदीर और तस्वीर बदलती है। मतदान को खिलवाड़ समझना अथवा उपेक्षित दृष्टि से देखना अपने नागरिक

कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व की गरिमा को अस्वीकार करना है। इस राष्ट्र की बहुमूल्य थाती समझना चाहिए, जिसे केवल सत्पात्रों के हाथ में ही स्थानान्तरित किया जाना उपयुक्त है। किसी दुराचारी, अनाचारी के हाथ में सत्ता चले जाने पर उसका दण्ड सारे समाज को भुगतना पड़ता है और उसका दोष उस अविवेक के ऊपर आता है जिसने मतदान करते समय अपने निकृष्ट स्वार्थों को ही ध्यान में रखा और राष्ट्रीय गौरव–गरिमा तथा प्रतिष्ठा को कूड़ेदान में डाल दिया। लोकतंत्र में मतदाता को यह हजार बार सोचना चाहिए कि उसे यह अद्‌भुत अधिकार मिला हुआ है कि चाहे तो वह देश को ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने में योगदान करे अथवा उसे टाँग पकड़ कर पीछे घसीटने एवं पतन के गहरे गर्त में धकेल देने की प्रक्रिया पूरी करे। इस मतदान के अधिकार को वह कई वर्षों बाद चुनाव के समय एक ही बार उपयोग में ला सकता है। मतदान से पहले मिठास, खुशामद और अपनेपन की जो वर्षा की जाती है, कल्पवृक्ष की तरह मनोकामना को पूरा करा देने की जो आशा दिलाई जाती थी, उसमें कितना दम था इसका नग्न रूप देखना हो तो चुनाव के बाद उन चुने हुए सज्जन का रंग–ढंग, तौर–तरीका देखकर आसानी से वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है। मत माँगने वाले भोले–भाले मतदाता को दिग्भ्रमित करने के लिए क्या–क्या तरकीबें लगाते हैं, उन्हें बारीकी से देखा जाय तो इन माननीयों की धूर्तता का लोहा मानना पड़ेगा। जाति–बिरादरीवाद का बहुत जोर उन दिनों दिखाई पड़ता है जिन दिनों मतदान का अवसर होता है। ऐसे लोगों के बिरादरी के दुःखी–दरिद्र और संतप्त लोगों की भलाई के लिए क्या किया है, इसका लेखा–जोखा माँगने पर वे शून्य ही निकलते हैं। मीठी बातें कहकर अपने को विश्वस्त और शुभचिन्तक सिद्ध करते हैं। प्रलोभन–उपहार देकर अपने को उदार और सज्जन सिद्ध करते हैं । शीघ्र ही कोई बड़ा फायदा करा देने का सब्जबाग दिखाते हैं। जब भोले–भाले मतदाता उनकी तरफ थोड़ा आकर्षित होने लगते हैं, तभी उनका मत झपट कर ये तिकड़मी लोग उन्हें चारों खाने चित्त कर देते हैं। चुनाव जीतने के लिए ओछे हथकण्डे प्रयुक्त किये जाते हैं। धर्मवाद, सम्प्रदायवाद की ओछी भावनाओं को भड़काकर अपना तात्कालिक स्वार्थ पूरा करने के लिए इस बात को भुला दिया जाता है कि इस विषबेल को बोकर सामाजिक स्थिति को भविष्य के लिए कितना विषाक्त बनाया जा रहा है। पैसा और प्रलोभनों के बल पर, प्रभावशाली लोगों को अपने पक्ष में करके उनके दबाव से मत प्राप्त करने का हथकण्डा प्रसिद्ध है। झूठे आश्वासन देकर लालची लोगों को अपने पक्ष में कर लेना, प्रतिपक्षी के सम्बन्ध में अनिति और मिथ्या आरोपों का दुष्प्रचार करना जैसी बाते चुनाव के दिनों में चलती है। राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी है। असली लोक–सेवकों का नजरअंदाज करके जिताऊ उम्मीदवारों का राजनीतिक दलों द्वारा चयन तथा उनका चुनाव जीतकर सदन में पहुँचना अत्यन्त दुःखद है।

लोकतंत्र रूपी वृक्ष अपने आप हरा–भरा हो जायेगा, केवल उसकी जड़ भर ठीक कर दी जाएँ। लोकतंत्र का मूल आधार है चुनाव, चुनाव की सफलता का आधार है मत और मत का सीधा सम्बन्ध प्रजा से है, इसलिए लोकतंत्र में मतदाता का महत्व सर्वाधिक है। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि देश को अच्छे भविष्य की ओर ले जाने का निर्णायक अधिकार प्रजा के हाथ में है और पतन के गर्त में धकेल देने का अधिकार भी उसी के पास है। यदि जनता अपने मताधिकार का समझदारी से प्रयोग नहीं करती तो आज का लोकतंत्र सड़े दूध की तरह पेट की खराबी, कब्ज और उल्टी का कारण ही हो सकता है। गाँधी जी कहा करते थे कि हमारा प्रजातंत्र श्रद्धा पर अवलम्बित है। श्रद्धा कैसी ? मतदाता को पता भी तो होना चाहिए कि वह जिसे शासन सत्ता सौंपने जा रहा है वह उसके हित का ध्यान भी रख सकता है या नहीं। कभी मतदाता चुनाव में खड़े होने वालों के लच्छेदार भाषण पर मुग्ध होकर मत देता है तो कभी जाति–पॉति और कभी क्षेत्रीयता के आधार पर। प्रभावशाली व्यक्तियों के दबाव में आकर मतदाता मत देता है, तो खुशामद और नोट लेकर वोट देने की बुराइयॉ भी भारतीय लोकतंत्र को जर्जर कर रही है। किसी जनप्रतिनिधि को मत देते समय यह भी देखना चाहिए कि प्रत्याशी का चरित्र और

उसके मत प्राप्त करने का तरीका भी नैतिक है या नहीं। यह ध्यातव्य है कि अब तक उसने अपने जीवन–क्रम की क्या तस्वीर प्रस्तुत की है और जनसेवा के लिए अब तक क्या किया है? एक दिन में कोई व्यक्ति न तो सज्जन बन सकता है और न ही जनसेवी। पिछले दिनों जिसकी वैयक्तिक क्रिया–पद्धति संदिग्ध तथा सामाजिक कार्य–कलाप असन्तोषजनक रहा है तो इतने मात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि उसे किसी प्रतिष्ठित राजनीतिक दल द्वारा टिकट मिला है अथवा उसके भावी आश्वासन आकर्षक है। भविष्य में कौन क्या करेगा यह निश्चित नहीं है। इसलिए भविष्य में कौन क्या करेगा इसका अनुमान उसके भूतकाल को देखकर लगाया जाना चाहिए। भावी आश्वासनों की अपेक्षा भूतकाल की गतिविधियों को देखकर किसी निर्णय पर पहुंचना अधिक सही सिद्ध होता है।

विवकेशील व्यक्तियों एवं शासन को इसके लिए तत्पर होना चाहिए कि जहाँ तक हो सके मतदाताओं की प्रजातंत्र का स्वरूप और उसमें मतदाता के कर्तव्य उत्तरदायित्व को समझाया जाय। इसके लिए लेखन, वाणी, विचार, विनियम,आन्दोलन के जितने भी तरीके उपयोग में लाये जा सकते हों उन समस्त श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में मतदान का अधिकार का महत्ता को समुचित स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि अपने प्रजातंत्रीय देश का भाग्य एवं भविष्य पूरी तरह इस अभिनव चेतना के अभिवर्धन पर ही निर्भर है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए जरूरी है कि जनता में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों व मूल्यों के प्रति विश्वास पैदा हो। इसके अलावा जनता बौद्धिक रूप से जागरूक भी होनी चाहिए। जनता इतनी समझदार और शिक्षित होनी चाहिए कि वह सार्वजनिक समस्याओं पर खुलकर अपने विचारों को प्रकट कर सके और वक्त आने पर इन समस्याओं का समाधान भी तलाश सके। मत देने वाले अर्थात अपने जनप्रतिनिधि चुनने वालों में इतनी योग्यता जरूर होनी चाहिए कि वह उनका चुनाव उचित तरीकों से कर सकें। लोकतंत्र तभी फल–फूल सकता है, जब वैधानिक परम्पराओं के प्रति निष्ठा रखी जाए। एक सफल लोकतंत्र वहीं पाया जाता है, जहाँ जन साधारण में राजनैतिक जागरूकता होती है, सार्वजनिक प्रश्नों के प्रति अभिरूचि होती और सच्चाई के साथ अपने राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है। यदि ऐसे जागरूक और सच्चे लोग चुनावों में अपने मताधिकार का उपयोग करें तो कोई कारण नहीं कि लोकतंत्र सफल न हो सकें।

वर्तमान परिवेश में सुशासन (गुड गवर्नेंस) केवल कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका का ही दायित्व नहीं है, इस दिशा में न्यायपालिका से भी बड़ी अपेक्षाएँ हैं। कार्यपालिका में काम कर रहे अस्थायी (राजनीतिज्ञ) तथा स्थायी (नौकरशाह) व्यक्तियों का उत्तरदायित्व गंभीरता के साथ सुनिश्चित किया जाय, नीति निर्माण तथा निर्णयों के क्रियान्वयन में पारदर्शिता लायी जाय, भ्रष्टाचार का समूलोन्मूलन कर योजनाओं का सफल क्रियान्वयन किया जाय, प्रभावशाली, कार्यकुशल एवं सच्चे अर्थों में लोककल्याणकारी लोकतंत्र का निर्माण हो, तर्कशील एवं जागरुक नागरिक चरित्र का निर्माण हो जो समाज की भावी आवश्यकताओं के प्रति चैतन्य हो–यह सब प्रयास भी 'राज्य' के एक अंग के रूप में न्यायपालिका को करना चाहिए। इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए न्यायपालिका को अनेक संस्थाओं से सहायता मिल सकती है जैसे– मुख्य सतर्कता आयुक्त, मुख्य सूचना आयुक्त, अम्बुडसमैन आदि। जनहित याचिकाओं के त्वरित समाधान हेतु भी न्यायपालिका को पृथक से संस्था सृजित करने का समय आ गया है क्योंकि इनकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है। जन चेतना के प्रवाह को सार्थक दिशा देने का कार्य न्यायपालिका को अपने कन्धों पर लेना ही होगा।

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

- भारतीय लोकतंत्र : समस्याएँ व समाधान–महेश्वर सिंह, साहित्यागार, प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड, जयपुर, 1999
- राजनीति सिद्धान्त–ज्ञान सिंह संधसु, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1983.

- भारतीय शासन व राजनीति, डॉ0 पुखराज जैन, डॉ0 बी0एल0 फाड़िया
- राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा,ओम् प्रकाश गाबा, प्रकाशक–मयूर पेपर बैक्स नोएडा, संस्करण–2005
- भारत की विदेश नीति,बी0एन0 खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा, प्रकाशक–विकास पब्लिशिंगहाउस प्रा0लि0, नई दिल्ली, संस्करण–2010
- भारतीय प्रजातांत्रिक प्रक्रिया एवं नागरिक असंतोष–रामकृष्ण पांडे, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994.
- आधुनिक लोकतंत्र–अनुवादक–ओम प्रकाश दीपक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988.
- भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन–अशोक शर्मा, अनुसंधान एवं विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1994.
- लोकतंत्र और चुनाव सुधार–डॉ0 निशांत सिंह, स्वप्निल सारस्वत, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2008.
- राजनीति विज्ञान व सरकार,ए0 वी0 डायसी
- भारतीय शासन व राजनीति,आर0 के0 सिंह
- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और भारत का संविधान,ऋशिकेश सिंह
- आधुनिक राजनीति विज्ञान का सिद्धान्त, जे0 सी0 जौहरी
- ऋग्वेद दशम मण्डल –सम्पादक,पं. दामोदर सातवलेकर
- लोक और लोक का स्वर,विद्यानिवास मिश्र,संस्करण 2000, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली
- संविधान का दर्शन,आचार्य,डॉ0 दुर्गा दास बसु
- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन,महावीर सिंह त्यागी
- ज्योति प्रसाद सूद : राजनीतिक विचारों का इतिहास भाग 1
- हमारा संविधान,सुभाष कश्यप
- राजनीतिक विचारों का इतिहास,ओ.पी. गाबा
- वेस्टर्न पोलिटिकल थॉट्स,बारकर
- यजुर्वेद–सम्पादक ,पं. दामोदर सातवलेकर
- काव्य प्रपानिका, डॉ. कपिलदेव पाण्डेय
- ऋग्वेद–सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर
- इन्ट्रोडक्शन टू पोलिटिकल सांइंस,गार्नर
- रोल आफ सिविल सोसाइटी,इन्श्योरिंग स्टेट एकाउटबिल,राडेस टण्डन
- मेनर, जेम्स का लेख, कास्ट एंड पालिटिक्स इन रीसेंट टाइम
- कास्ट इन इंडियन पालिटिक्स,कोठारी रजनी (सं) ओरिएन्ट ब्लैक स्वान,नई दिल्ली 2010
- मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार, AIR 1978
- कास्ट इन इण्डियन पॅालिटिक्स, ओरियन्ट लागमैन,रजनी कोठारी
- गर्वनमेंट एण्ड पालिटिक्स आफ इण्डिया,मौरिस जोस
- इण्डिया दि मोस्ट डेंजरस डिकेटस,डी0आर0 गाडगिल
- एन्थ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया,पीपुल आफ इण्डिया प्रोजेक्ट, संपादक, के0 एन0 सिंह
- दी पैटर्न आफ महाराश्ट्र पॉलिटिक्स,ए0जे0 दस्तूर
- स्टेट पालिटिक्स आफ इण्डिया,सं0–इकबाल नारायण

मूल ग्रन्थ

- मनुस्मृति
- अथर्ववेद
- कौटिल्य,अर्थशास्त्र
- गौतम
- विष्णुधर्मोत्तरपुराण
- संस्कृत–हिन्दी कोश,वामनशिवराम आप्टे
- अभिज्ञानशाकुन्तल
- शुक्रनीति

पत्र–पत्रिकाएँ

- जनसत्ता, समाचार पत्र, प्रकाशन–लखनऊ, अंक–जून 2011
- दैनिक जागरण, समाचार पत्र, प्रकाशन–इलाहाबाद, अंक 9 मई, 2011
- देश–देशान्तर पत्रिका,सम्पादक ,श्रीधर द्विवेदी प्रकाशक–मलय प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण–2011
- नवभारत टाइम्स, समाचार पत्र, प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण–फरवरी 2011
- वर्ल्ड फोकस वार्षिक अंक, भारत के पड़ोसी देश और विदेश नीति, प्रकाशन–दिल्ली,संस्करण–नवम्बर–दिसम्बर 2011
- दृष्टिकोण मंथन, संस्करण, 16–31 जुलाई 2011, ,प्रकाशन–दिल्ली
- दैनिक भास्कर, समाचार पत्र, प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण 01–15 मई, 2012
- नारायणन डॉ0 के0 आर0, उद्धृत हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा, 19 फरवरी 2000
- प्रतियोगिता दर्पण,हिन्दी मासिक पत्रिका, संस्करण–मार्च 2011
- दृष्टिकोण मंथन, संस्करण–1–15,अप्रैल–2011, प्रकाशन–दिल्ली
- दृष्टिकोण मंथन, संस्करण–1–15,मई–2011, प्रकाशन–दिल्ली
- दैनिक भास्कर, समाचार–पत्र, प्रकाशन–दिल्ली, अंक–10 सितम्बर, 2011
- इकोनोमी पॉलिटिकल वीकली 3 सितम्बर 2011
- निबंध मंजूषा–समीरात्मज मिश्र, टाटा मैग्रा हिल्स पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008.

❑❑

संक्रमण काल में भारतीय लोकतंत्र

डॉ. बिपिन चंद्रा कौशिक
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

भारत विविधताओं से भरा एक बहुत बड़ा देश है — भाषाई एवं धार्मिक अनेकों विविधताएँ पायी जाती हैं। स्वतंत्रता के समय यह आर्थिक रूप से अविकसित था। लगभग सभी सार्वजनिक कल्याण साधनों में व्यापक क्षेत्रीय विषमताएँ, व्यापक गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और कुपोषण था। नागरिकों को स्वतंत्रता से बहुत उम्मीदें थीं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, भारत बहुत बदल गया है। फिर भी, विभिन्न चुनौतियाँ हैं जिनका सामना समाज के विभिन्न वर्गों की अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए देश करता है। चुनौतियां प्रचलित घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के साथ—साथ लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिए पर्याप्त पूर्वापेक्षाओं के अभाव के कारण हैं। लोकतंत्र का कार्य कुछ मान्यताओं पर आधारित है। हाँ लोगों को राजनीतिक रूप से जागृत होना चाहिए और नेताओं को ईमानदार और समग्र के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। इसके अलावा, सत्ता में लोगों पर उचित जांच की जानी चाहिए। स्वतंत्र न्यायपालिका को उन कानूनों के कार्यान्वयन की जांच करनी चाहिए जो जनता के हितों की सेवा नहीं कर सकते हैं और जो संवैधानिक कानून के खिलाफ हैं। इसी तरह, स्वतंत्र मीडिया को सरकार द्वारा किए गए गलत को उजागर करना चाहिए। इनके अलावा राष्ट्र को एकीकृत होना चाहिए जिसमें राष्ट्र से खुद को अलग करने की जनता में कोई प्रवृत्ति न हो। भारत में लोकतंत्र अभी भी एक शिशु अवस्था से गुजर रहा है और यह दृढ़ नींव पर खड़ा नहीं हो पाया है।[1] फिर भी भारतीय लोकतंत्र के लिए अनेकों चुनौतियां हैं।

आजादी के बाद से भारत एक जिम्मेदार लोकतंत्र के रूप में कार्य कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा भी इसकी सराहना की गई है। यह सफलतापूर्वक चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के अनुकूल हो गया है। पंचायतों से राष्ट्रपति तक सभी राजनीतिक कार्यालयों के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष सावधिक चुनाव हुए हैं। कई मौकों पर राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर किसी एक राजनीतिक दल से राजनीतिक सत्ता का सुचारू हस्तांतरण या दूसरों के लिए राजनीतिक दलों का गठन किया गया है। आपको हमारे पड़ोसी देशों जैसे पाकिस्तान, म्यांमार और यहां तक कि बांग्लादेश में भी कई उदाहरण मिलेंगे, जहां सैन्य तख्तापलट के जरिए सत्ता का हस्तांतरण हुआ है। विधायी, कार्यकारी और न्यायिक अंग ठीक से काम कर रहे हैं। संसद और राज्य विधानसभाएँ प्रश्नकाल आदि जैसे माध्यमों से कार्यकारी अधिकारियों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करती हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि सूचना का अधिकार (आरटीआई) अधिनियम 2005, शिक्षा का अधिकार 2009 और अन्य कल्याणकारी साधनों जैसे कुछ महत्वपूर्ण अधिनियमों ने लोगों को सशक्त बनाया है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक सहित मास मीडिया को पूर्ण स्वायत्तता है और यह जनमत बनाने और प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लगभग सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुआ है और देश सामाजिक—आर्थिक विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है।[2]

भारत में, विभाजनकारी ताकतें हर दिन मजबूत होती जा रही हैं। विभिन्न जातियों के लोग भारतीय राजनीति में जाति के कारक को पेश करने की कोशिश कर रहे हैं। स्पष्ट रूप से अन्य जातियों के लोगों में इस प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया होगी और समाज को विभिन्न जातियों में विभाजित किया जाएगा। जातियों से संबंधित

समूहों के नेता अपने स्वयं के समूहों के लिए अधिक स्वायत्तता का दावा कर रहे हैं। भाषा और उप–संस्कृतियाँ या ऐसे अन्य कारक देश को छोटे समूहों में विभाजित कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में, राष्ट्र की एकता में स्थिरता आएगी। विभाजित राष्ट्र बड़ी संख्या में राजनीतिक दलों को जन्म देगा। इससे राज्य में भ्रम पैदा होता है और लोकतंत्र के काम में बाधा आती है।

राजनीतिक दलों को लोगों और अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रति ईमानदार होना चाहिए। भारत में एक या दो राजनीतिक दलों के अपवाद के साथ विभिन्न क्षेत्रीय समस्याओं से उनका निर्वाह हो जाता है। ऐसी पार्टियों में राष्ट्रीय अपील नहीं हो सकती है। वे क्षेत्रीय समस्याओं को वरीयता देने की कोशिश करते हैं और देश की राजनीति में भ्रम पैदा करते हैं। वे उचित तरीके से जनता की राय को व्यवस्थित करने में सक्षम नहीं होंगे। कभी–कभी, सरकार की अस्थिरता के लिए बड़ी संख्या में राजनीतिक दल जिम्मेदार होते हैं। संसद आज केवल कानून बनाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें कई भूमिकाएँ निभाई जा रही हैं जो निम्नानुसार हैं[3] :

क) राजनीतिक और वित्तीय भूमिका

ख) प्रशासनिक कार्य का पर्यवेक्षण करना

ग) सूचना के अधिकार की गारंटी के माध्यम से पारदर्शिता बनाए रखें।

घ) शैक्षिक और सलाहकार भूमिका

ङ) राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करना एवं संरक्षित करना।

च) कानून बनान और सामाजिक विकास।

छ) समाज में परिवर्तन के साथ तालमेल रखने के लिए संविधान का संशोधन।

ज) समग्र नेतृत्व की भूमिका।

भारतीय राजनीतिक इतिहास में, लगभग साठ वर्षों तक इसका नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी ने किया था। कांग्रेस के लिए अन्य प्रमुख विरोधी पार्टी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) एवं साम्यवादी दल थे। इनके अलावा, कुछ क्षेत्रीय दल भी हैं जो अपने–अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर कुछ वर्षों के बाद गठबंधन दलों का युग आया, जहाँ अगर किसी एक पार्टी ने चुनाव में पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त किया, तो राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.) अस्तित्व में आया। भारतीय राजनीति में सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि कम से कम संसद सदस्यों के पांचवे भाग पर कुछ आपराधिक आरोप लगते हैं और उनमें से लगभग 40 पर गंभीर आपराधिक आरोप लगते हैं। भारतीय राजनीतिक सेटअप में, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर कई दल होते हैं। हालाँकि, प्रत्येक पार्टी अपने या अपने लोगों के कल्याण की देखभाल करने की अपनी भूमिका निभा रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद, भारत ने खुद का एक संविधान बनाया और 26 जनवरी, 1950 को एक लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया और तब से इस संविधान द्वारा शासित है। यह वास्तव में एक सराहनीय उपलब्धि थी, खासकर तब जब कोई हमारे पड़ोस में और दुनिया भर के कुछ देशों को देखता है। इसके लिए एक शासन प्रणाली, एक कानूनी प्रणाली और एक लोकतांत्रिक समाजवादी समाज के लिए एक पर्याप्त क्षमता के आधार पर स्थापित किया गया जब चुनाव नियमित रूप से होते थे और लोकप्रिय जनादेश का सम्मान किया जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकतांत्रिक प्रणाली को भारतीय राजनीतिक जीवन के एक अनिवार्य हिस्से के रूप में स्वीकार

किया गया है फिर भी हमें यह पहचानना होगा कि व्यवहार में गंभीर कमियां हैं और इन्हें जल्द या बाद में संशोधित करना होगा। लोकतंत्र आधुनिक घटना नहीं है, प्राचीन एथेंस और प्राचीन भारत में सफलता के कुछ माप के साथ इसका अभ्यास किया गया था। उन्होंने लोकतांत्रिक समाज के कुछ मूलभूत सिद्धांतों को भी रखा, जो आधुनिक समय में भी हमारे लिए बहुत प्रासंगिक होगा।[4]

(क) अधिक जनसंख्या : भारतीय जनसंख्या लगभग 1.27 बिलियन तक पहुँच गई है। यह सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है जिसने हमारे देश की संभावित प्रगति को कुछ हद तक बाधित किया है। भारत सरकार जो पहले से ही विभिन्न कोणों से चुनौतियों का सामना कर रही है, जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में विफल रही है।

(ख) गरीबी : हालांकि भारत एक आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है, लेकिन गरीबी से निपटने के लिए उसके पास व्यापक चुनौतियां हैं। 2005 के आंकड़ों के आधार पर गरीबी पर विश्व बैंक के अनुमानों के अनुसार, भारत में प्रति दिन 1.25 डॉलर (पीपीपी) की नई अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या 45.6 मिलियन है। विश्व बैंक आगे अनुमान लगाता है कि 33 प्रतिशत वैश्विक गरीब अब भारत में रहते हैं। इसके अलावा, भारत में भी 828 मिलियन लोग हैं, यह प्रति व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी का 75.6 प्रतिशत, दक्षिण अफ्रीका के लिए 72.2 प्रतिशत की तुलना में अधिक है।

(ग) स्वच्छता : संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष (यूनिसेफ) द्वारा किए गए आंकड़ों से पता चला है कि भारत की केवल 31 प्रतिशत आबादी उचित स्वच्छता सुविधाओं का उपयोग करने में सक्षम है। यूनिसेफ के अध्ययनों से यह भी पता चला है कि खराब स्वच्छता के कारण होने वाले रोग बच्चों को प्रभावित करते हैं उनके संज्ञानात्मक विकास में अवरोध बनते हैं।

(घ) भ्रष्टाचार : भ्रष्टाचार भारत में व्यापक समस्या है। भारत ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक में 179 देशों में से 95 वें स्थान पर है, लेकिन इसका स्कोर 2002 में 2.7 से घटकर 2011 में 3.1 हो गया है। भारत में भ्रष्टाचार रिश्वत, कर चोरी, विनिमय नियंत्रण, गबन का रूप ले लेता है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 ने विभिन्न घोटाले उजागर करने में प्रमुख भूमिका निभाई है जो राजनीति से प्रेरित हैं। भ्रष्टाचार एक मुख्य कारण है जो किसी राष्ट्र की प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है।

(ङ) शिक्षा : शिक्षा स्वतंत्रता के बाद से भारत सरकार की प्राथमिकताओं में से एक रही है। यद्यपि भारत में अधिकतम साक्षरता सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार द्वारा कई पहल की गई हैं, लेकिन फिर भी अशिक्षा विकास के लिए बाधा के रूप में बनी हुई है।

(च) हिंसा : संवैधानिक रूप से, भारत को एक धर्मनिरपेक्ष माना जाता है, लेकिन स्वतंत्रता के बाद से बड़े पैमाने पर हिंसा समय–समय पर होती रही है। हाल के दशकों में सांप्रदायिक तनाव और धर्म–आधारित राजनीति अधिक प्रमुख हो गई है।

(छ) आतंकवाद : वे क्षेत्र जहाँ बहुत आतंकवादी गतिविधियाँ होती हैं, वे हैं जम्मू और कश्मीर, मध्य भारत और सात बहन राज्य और पंजाब। भारत में आतंकवाद को अक्सर पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित जिसके कारण वहाँ विकास एवं प्रगति अवरुद्ध होती है।

(ज) नक्सलवाद : नक्सलवाद एक कम्युनिस्ट समूह है जो भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन में चीन–सोवियत

विभाजन से बाहर निकला है। नक्सलवाद पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और आंध्र प्रदेश जैसे क्षेत्रों में पाया जाता है।

(झ) न्यनतम मतदान : भारत के राजनीतिक दलों को अगले साल 2019 के राष्ट्रीय चुनावों का बेसब्री से इंतजार है। लेकिन क्या भारतीय नागरिक वोट डालने को लेकर उतने ही उत्साहित हैं। चूंकि मतदान लोगों का अनिवार्य कर्तव्य नहीं है, इसलिए उनमें से कई इस अधिकार का उपयोग नहीं करते हैं और वे अपने घरों में रहना और उस दिन कुछ करना चाहते हैं।

लोकतंत्र के लिए उपयोग करने के लिए सुविधाएँ :

भारत में लोकतंत्र अधिक गंभीर चुनौतियों का सामना करता है और उन्हें चिंता करने की आवश्यकता है। हालांकि स्वतंत्रता सरकारों के प्रयासों में महत्वपूर्ण सुधार दिखाई दे रहा है लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना है। नागरिक समाज को मौजूदा स्थिति को बेहतर बनाने के लिए सरकार के साथ गंभीर रूप से भाग लेने की आवश्यकता है। गरीबी, शिक्षा की कमी और सामान्य रूप से सामाजिक बहिष्कार लोकतंत्र की पहुंच को कम करते हैं। हालाँकि कुछ उपायों की चर्चा इस प्रकार की गई है[5] :

(1) शिक्षा – लोकतंत्र के लिए समान गुणवत्ता शिक्षा स्पष्ट रूप से समानता के विचार पर आधारित है और लोकतंत्र के कुशल कामकाज के लिए शिक्षा के महत्व और आवश्यकता को भारतीय संविधान के निर्माताओं द्वारा सराहना की गई थी। भारत में सभी के लिए समान गुणात्मक शिक्षा नहीं है। चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, सर्व शिक्षा अभियान के तहत एक राष्ट्रीय साक्षरता मिशन 1988 के तहत संवैधानिक जनादेश का एहसास करने के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक शिक्षा में सुधार के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं। शिक्षा अधिनियम 2009 पर्याप्त और कुशल नहीं है।[6] इसके अलावा साक्षर भारत 2009 का उद्देश्य पंद्रह वर्ष और उससे अधिक आयु के लोगों में कार्यात्मक साक्षरता और संख्या का विकास करना है, ताकि वे अपने हस्ताक्षर बनाने में सक्षम हो सकें और उन्हें साक्षरता समूह के तहत विचार कर सकें और सही मायने में यह बुनियादी साक्षरता से परे सीखने और समानता हासिल करने के लिए नहीं बना रहे हैं औपचारिक शैक्षिक प्रणाली के लिए। हालांकि 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत तक बढ़ गई है और शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है परन्तु वास्तविक स्थिति पहले की तुलना में बहुत बेहतर नहीं है। यदि बच्चों की समान रूप से पूरे देश में अच्छी और गुणात्मक शिक्षा तक पहुंच है, तो शिक्षा की समस्या हल हो जाएगी यह भारत में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण के साथ ही संभव है। भारत में मतदाताओं से लेकर मंत्रियों तक कम शिक्षित हैं। कम शिक्षित मंत्री बौद्धिक वर्ग का संचालन कर रहे हैं और बौद्धिक वर्ग अहंकार से पीड़ित है। बाकी चीजें आपके ज्ञान से जुड़ी हो सकती हैं। यहां यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि राजनेता शिक्षा संस्थानों को व्यवसायिक साहसिक कार्य के रूप में शुरू करने, बढ़ाने और बढ़ाने के लिए भावुक हैं। यह शिक्षा के अधिकार (संवैधानिक प्रावधान) के अनुचित कार्यान्वयन का मुख्य कारण है।

(2) गरीबी उन्मूलन – मंत्री और नौकरशाह, केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर विकास नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में विफल रहे। कई लोग विशिष्ट उद्देश्य के लिए प्राप्त धन का उपयोग नहीं करेंगे और विकासात्मक गतिविधियों में रुचि नहीं दिखाते। इस तरह के निष्क्रिय दृष्टिकोण से पता चलता है कि गरीबी हमेशा के लिए वोट बैंक में से एक है। क्योंकि, 1970 के बाद से गरीबी उन्मूलन के लिए कई तरह के कार्यक्रम लागू किए गए हैं लेकिन स्थिति बेहतर नहीं है। शहरी गरीबी के बारे में बोलने के लिए पिछले एक दशक में देश की शहरी झुग्गी आबादी

में 17.8 मिलियन की वृद्धि हुई है, एक सरकारी समिति के अनुसार ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की गणना करने के लिए ''विश्वसनीय सांख्यिकीय मॉडल'' बनाने की आवश्यकता है। योजना आयोग के प्रधान सलाहकार प्रणब सेन की अध्यक्षता वाली समिति का कहना है कि देश में वर्ष 2011 के लिए अनुमानित झुग्गी आबादी 2001 में अनुमानित 75.26 मिलियन में से 93.06 मिलियन होगी[7], यह अनुमान है कि शहरी भारत का लगभग पांचवां हिस्सा मलिन बस्तियों में रहता है अनुपात नियमित रूप से बढ़ रहा है। इसे शहरीकरण के नकारात्मक अपराध के रूप में देखा जाता है। शहरों में ग्रामीण गरीबी, सामाजिक–आर्थिक विकास कार्यक्रमों को लागू नहीं करने, पुनर्वास में सरकारी विफलता, खराब कृषि पद्धतियों आदि जैसे विभिन्न कारणों से शहरों में झुग्गी–झोपड़ी के लोग बढ़ रहे हैं। समाज का सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन जाति व्यवस्था को जीवित और निरंतर बनाए रखने का कारण है। पिछड़ों के बीच झगड़े और इसके किसी भी मामले में आगे आने से सामाजिक पिछड़ापन या आर्थिक पिछड़ापन हो सकता है। इसके अलावा, उनकी धारणाओं को आकार देना शुरू कर दिया या उनकी पृष्ठभूमि के आधार पर आकार देने का फैसला किया जैसे कि जाति, शिक्षा, स्थिति, आदि। अमीर लोग गरीबों के साथ साझा करने के लिए तैयार नहीं हैं और गरीब अमीर के साथ अपना आत्मविश्वास खो रहे हैं। गरीब लोगों के लिए संवैधानिक लाभों के बारे में समाज में कोई आम सहमति नहीं है। तो केवल गलत लोगों द्वारा लाभ को पकड़ा जाता है या सही लोगों को असफल किया जाता है।[8]

(3) शासन सुधार – लोकतंत्र की सफलता मुख्य रूप से प्रशासन और न्यायपालिका की स्वतंत्रता के कुशल कामकाज पर निर्भर करती है। भारत में सार्वजनिक प्रशासन का प्रदर्शन बहुत खराब हो गया है, भ्रष्टाचार, अक्षमता, राजनीतिक हस्तक्षेप और गैर–जिम्मेदाराना कारणों से हो सकता है। हालाँकि, ईमानदार अधिकारी वहाँ हैं लेकिन संख्या में बहुत कम हैं और वे और उनकी विचारधाराएँ भी इस प्रणाली में सुरक्षित नहीं हैं। न्यायपालिका के बारे में स्वतंत्रता और तटस्थता पर्याप्त नहीं है। न्यायपालिका जनता को न्याय वितरित करने का अधिकार रखती है। इसलिए शीघ्र और शीघ्र समाधान करने के लिए उत्तेजित लोगों को दिए जाने की आवश्यकता है। लेकिन आज नियमित अदालतें विवादों को निपटाने के लिए अधिक समय ले रही हैं, कम अभियोजन, राजनीतिकरण नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानांतरण, विशेषज्ञता की कमी आदि इसके प्रमुख कारण हैं। न्यायाधीशों और नौकरशाहों की नियुक्ति और स्थानांतरण हमेशा सरकारी बदलाव के रूप में देखे जा सकते हैं।[9] जब भी अदालत ने आयोग या समिति के सहायक की मांग की निर्णय में देरी हुई। आयोग या समिति के प्रमुख की नियुक्ति, उसकी रिपोर्ट और सरकार द्वारा सभी नियंत्रण और विनियमन की सिफारिश करती है। चूंकि आयोगों के निष्कर्षों में कोई कानूनी बाध्यता नहीं है, इसलिए सरकारें उन्हें छोड़ने के लिए स्वतंत्र हैं। अदालतों के निर्णयों को लागू करना भी बहुत चुनौतीपूर्ण मुद्दा है क्योंकि कई लोग उनका पालन नहीं करते और किसी को भी इस पर सवाल उठाने की जरूरत नहीं है क्योंकि पर्यावरण प्रदूषण के मामलों के लिए अदालत की अवमानना है। यह दिखाता है कि हम लोग उनसे सवाल करने में बहुत सुस्त हैं। केवल बहुत कम पर्यावरणविद और सामाजिक कार्यकर्ता इसके लिए संघर्ष करते हैं।[10]

(4) सिविल सोसाइटी – भारतीय संविधान की भूमिका ''हम भारत के लोगों ...'' से शुरू होती है। यहाँ सवाल यह है कि यह किसका संदर्भ है? अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में 'लोक हित याचिका' का विस्तार 'लोकहित याचिका' के रूप में किया गया और नब्बे के दशक की शुरुआत में अदालतों के सामने बाढ़ आ गई। यह बहुत स्वागतयोग्य परिवर्तन है लेकिन यह केवल कुछ क्षेत्रों जैसे पर्यावरण, मानवाधिकार आदि के लिए आरक्षित है।[11] प्रश्न भारत में लोगों की लोकतांत्रिक भागीदारी का अनुपात है, जब लोकतांत्रिक भागीदारी बढ़ती है तो अधिक सार्थक लोकतंत्र

काम कर सकता है। लोकतंत्र तब सफल हो सकता है जब समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, जवाबदेही और सभी के लिए सम्मान जैसे बुनियादी मूल्य उनकी मानसिकता, सोच और व्यवहार में प्रतिबिंबित हों। इसलिए, नागरिकों की अवसरों और सक्रिय भूमिका के लिए सराहना लोकतंत्र की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। चूंकि गरीबी, पिछड़ेपन को मिटाने के लिए संवैधानिक प्रावधानों पर कोई उचित क्रियान्वयन नहीं होता है, और चुनाव प्रणाली चुनाव में अपनी भूमिका नहीं निभाती है और वोट बैंक बन जाती है। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक फॉरवर्ड क्लास की भूमिका है, वे आरक्षण नीति की आलोचना करते हैं, और पिछड़े वर्ग के लिए सरकारी सुविधाओं की मदद करते हैं। पिछड़ों की आगे की क्रीमी लेयर भी उनके समुदाय की बेहतरी के लिए प्रयास नहीं करती है। पहले ब्रिटिश शासन ने हमें विभाजित किया और शासन किया। लेकिन आज खुद हम अपनी जमीन का सब कुछ बर्बाद करने के लिए विभाजित, लूट और शासन कर रहे हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए और हमें व्यापक दृष्टिकोण के साथ अपनी आंखें खोलने की जरूरत है। यहाँ एक बात याद रखने की है कि आज भी जो भी कारण है उसके लिए महत्वपूर्ण स्थान पाने में पिछड़े हुए हैं।

संदर्भ संकेत

1. बनर्जी मुकुलिका (2012) : इण्डिया : द नेक्स्ट सुपर पावर डेमोक्रेसी, लंदनः लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स
2. राव, अश्विनी (2010), डेमोक्रेसी एण्ड ह्यूमन राईट, दिल्ली : पेसिफिक पब्लिकेशन
3. वही
4. शर्मा, महेन्द्र सिंह (2010), इण्डियन डेमोक्रेसी एण्ड कान्स्ट्रीट्यूशन, डी.पी.एस. पब्लिकेशन नई दिल्ली
5. शर्मा, सेवक राम (2010), रोल ऑफ मीडिया इन इण्डियन डेमोक्रेसी, डी.पी.एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
6. वर्द्धराजन, साम्पाल (2009), ए–जेड गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स, सेन्दूम प्रेस, नई दिल्ली
7. जॉयदीप : डेमोक्रेसी इन इण्डिया सक्सेस या फेल्यो (2013)
   URL : http//www.mapsofindia.com/my-India/Government/is-India-ademocratic - country accessed on 15^{th} october 2015
8. URL : filipsagnoli - word press.com/.-./statistics..poverty/statistics - on - poverty - in - india / accessed in 2nd Junuray 2013
9. Poverty in India - Azad India Foundation, URL : www.azadindia.org/social - issues/poverty - in - india. html. 10th october 2012
10. URL : http/artieles. economictimes. India times.com/2010-09-03/news/27618142-1-rajiv-awas-yojana-slum-poplation - slumcencus accessed in 20th January 2013
11. Challenges to Indian Democracy. URL :http://www.google.co.in/?gws-rd#g=challenges+to+Indian+Democracy
12. URL : http : //currentaffairs gKtoday.in/sc-upholds-constitutional-validity-education-act-0520/413084. html, accessed to 11th November 2015

❑❑

7

कन्या भ्रूण हत्या : एक अभिशाप

शालिनी सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (बी० एड०)
श० मं० पा० रा० म० स्ना० म० वि०, मेरठ

किसी देश की प्रगति तब तक संभव नही है जब तक वहाँ की महिलाओं को प्रगति के पर्याप्त अवसर न मिले। भारत की स्वतंत्रता के सात दशकों बाद भी विज्ञान, प्रौद्योगिकी और विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र प्रगति तथा संविधान द्वारा महिलाओं को समान अधिकार दिए जाने के बावजूद भी उनके प्रति सामाजिक भेदभाव में कमी नही हुई है। प्राचीन काल से ही महिलाओं को भारतीय समाज में अपने परिवार और समाज के लिए अभिशाप के रूप में देखा जाता रहा है। भारतीय समाज पुरुष प्रधान है यहाँ लड़की की तुलना में लड़के को अधिक महत्व दिया जाता है। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र प्राप्ति आवश्यक माना गया है क्योंकि वही श्राद्ध द्वारा मृत पिता एवं पूर्वजों को स्वर्ग पहुचाता है। इसलिए कुछ परिवारों में लड़कियों की संख्या अधिक होने पर लड़की के पैदा होते ही उसे मार दिया जाता है। नारी हत्या कई प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपों में देखने को मिलती है, माता के गर्भ में कन्या शिशु को मार देना (कन्या भ्रूण हत्या), जन्म के पश्चात मार देना, दहेज के लोभ में बहू को मार देना या उत्पीड़न की ऐसी परिस्थिति पैदा कर देना जिससे नारी स्वयं आत्महत्या के लिए विवश हो जाए आदि।

कन्या भ्रूण हत्या आमतौर पर मानवता और विशेष रूप से समूची स्त्री जाति के विरुद्ध सबसे जघन्य अपराध है। बेटे की इच्छा, परिवार नियोजन के छोटे परिवार की सकंल्पना के साथ जुडती है और दहेज की प्रथा ने ऐसी स्थिति को जन्म दिया है जहाँ बेटी के जन्म को किसी भी कीमत पर रोका जाता है। इसलिए समाज के कुछ अगुआ लोग माँ के गर्भ मे ही कन्या की हत्या करने का सबसे गंभीर अपराध करते हैं।

भारत में लड़कियों के प्रति भेदभाव, माता–पिता के द्वारा लड़कियों की अनदेखी, अवैध गर्भपात और शिशु हत्या इसके सबसे स्पष्ट उदाहरण है। स्त्री से भेदभाव हमारे देश में प्रचलित अपराध हैं। स्त्री भारतीय समाज का एक अहम हिस्सा है जो अपने विचारो में उदार होने के साथ–साथ अपने परिवार तथा समाज का जीवन स्तर उठाने हेतु सबसे बेहतर प्रदर्शन कर रही है, दूसरी ओर समाज का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जो वास्तव में स्त्रियों को अभी भी रूढ़िवादी दृष्टिकोण और विचारो के चंगुल से जकड़े हुए है।

सामंतवादी परम्परा से ग्रस्त भारतीय समाज मे आदिकाल से महिलाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता है। मध यकालीन भारत में तो महिलाओं को घर के झरोखों से भी बाहर देखना वर्जित था। भोग्य वस्तु के रूप मे देखे जाने कारण भी महिलाओं को कभी सम्मानित दर्जा नही मिल सका। भारत मे आज भी अनेक ऐसी जाति एवं समुदाय हैं जो पुत्री के जन्म पर माँ को अनेक तरह से प्रताड़ित करते हैं प्रताड़ना और उलाहना की यह स्थिति माँ को भ्रूण हत्या के लिए प्रेरित करती है। भारत मे आज भी अनेक परिवार ऐसे हैं जिनमें कन्याओं के जन्म को शुभ नही माना जाता है। भारतीय समाज में कन्याओं को लेकर अत्यंत विरोधाभासी स्थिति देखने का मिलती है, एक तरफ तो भारत की धार्मिक मान्यताओं के अनुसार उन्हें शक्ति का स्वरूप माना गया है तथा कन्या पूजन की परम्परा है तो दूसरी तरफ कन्याओं का कोख में ही कत्ल कर दिया जाता है यह एक शर्मनाक स्थिति है। कन्या भ्रूण का अवैध गर्भपात ससुराल पक्ष या स्त्री के माता पिता या परिवार के लोगों के दबाव की वजह से किया जाता है और जिसका मुख्य कारण बेटों की प्राथमिकता होती है। गरीबी, निरक्षरता और महिलाओ के खिलाफ सामाजिक भेदभाव के कारण लड़कियों को बोझ माना जाता है, इस परम्परा के वाहक अशिक्षित एवं निम्न व मध्यम वर्ग ही नही बल्कि उच्च एवं शिक्षित समाज भी है।

भारत में कन्या भ्रूण हत्या का सिलसिला करीब 2 या 3 दशक पहले से चल रहा है, ये सिलसिला तब शुरू हुआ जब 1990 के लगभग देश की मेडिकल साइंस ने 'अल्ट्रासाउंड' जैसी तकनीकी का उपयोग करना शुरू किया। अल्ट्रासाउंड तकनीक का आविष्कार माँ के गर्भ में पलते बच्चे की स्वास्थ्य अवस्था की जाँच के लिए किया गया था किन्तु चिकित्सा क्षेत्र मे अभिभावकीय लिंग निर्धारण जैसे तकनीकी उन्नति के आगमन के समय से भारत में कन्या भ्रूण हत्या को बढावा मिला। केवल इसलिए कि जन्म लेने वाला बच्चा एक लड़की है माँ के गर्भ से गर्भावस्था के 18 हफ्तों बाद स्वस्थ्य कन्या के भ्रूण का हटाना कन्या भ्रूण हत्या है। भारत में अल्ट्रासाउन्ड तकनीक की उपल्ब्धता सामान्य बात है और इसके माध्यम से लिंग परीक्षण कराकर प्रतिवर्ष लगभग 5 लाख कन्या भ्रूणों की हत्या की जा रही है।

यूनीसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सुनियोजित लिंग भेद के कारण भारत की जनसंख्या से लगभग 5 करोड़ लड़कियाँ एवं महिलाएँ गायब है। विश्व के अधिकतर देशों में जहाँ प्रति 100 पुरुषों के पीछे लगभग 105 स्त्रियां है वही भारत मे प्रति 100 पुरुष के पीछे 95 से भी कम महिलाएँ हैं। सयुंक्त राष्ट्र के अनुसार भारत में अवैध ा रूप से अनुमानित तौर पर प्रतिदिन 2000 अजन्मी कन्याओं का गर्भपात किया जाता है संयुक्त राष्ट्र ने चेताया है कि भारत में बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या, जनसंख्या से जुड़े संकट उत्पन्न कर सकती है।

भारत मे बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या की स्थिति 2011 की जनांकिकीय आंकड़ो से भी स्पष्ट हो जाता है। 2011 की जनगणना के आंकडो के अनुसार 0–6 आयु वर्ग में लिंगानुपात में 13 बिन्दु की गिरावट देखी गई है, इसलिए लड़कियों की संख्या में गिरावट का स्पष्ट संकेत मिल जाता है। 1901 की जनसंख्या के मुताबिक अंग्रेजी शासन के दौरान प्रति 1000 पुरुषों के पीछे महिलाओं की संख्या 972 थी जो 1911 में घटकर 964 रह गई। यह संख्या उत्तरोत्तर घटते हुये 1921 में 955, 1931 में 950 और 1941 में 945 रह गई। स्वतन्त्रता के पश्चात 1951 की जनगणना के अनुसार प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 946 थी, 1961 में यह घटकर 941, 1971 में 930 तथा 1981 में 934, 1991 में 927 तथा 2001 में 933 हो गई। देश मे केरल ही एकमात्र राज्य है जहाँ एक हजार पुरुषों के बीच स्त्रियों की संख्या अधिक हैं। मानक के अनुसार एक हजार लड़कों पर कम से कम 940–950 लड़कियों का होना जरूरी है, किन्तु ऐसी स्थिति कुछ ही राज्यों में पाई गई है। भारत में ऐसे 10 राज्य हैं जहाँ लिंगानुपात 900 से भी नीचे है इस मामले में हरियाणा का स्थान सबसे नीचे है जहाँ 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 830 है वर्ष 2001 की जनगणना की तुलना मे वर्ष 2011 की जनगणना मे महिलाओं की संख्या में 30 लाख की कमी आई है यह स्पष्ट रूप से कन्या भ्रूण हत्या की ओर इशारा करती है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 0–6 आयु वर्ग का लिंगानुपात 914 है जो स्वतन्त्रता के बाद से न्यूनतम है। 2011 के आंकड़ो के मुताबिक 0–6 आयु वर्ग के मामले मे मिजोरम और मेघालय में लिंगानुपात क्रमशः 971 और 970 है जो कुछ बेहतर आंकड़ा प्रदर्शित करता है। लेकिन हरियाणा और पंजाब में ये आंकड़े क्रमशः 830 तथा 846 है। हरियाणा के झज्जर में तो 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या 778 है। 0–6 आयु वर्ग में सबसे बेहतर लिंगानुपात वाले दो जिले लाहोल स्पीति (हिमाचल प्रदेश) प्रति 1000 पुरुषो पर 1013 महिलाएं व तवांग (अरूणाचल प्रदेश) में प्रति 1000 पुरुषों पर 1005 महिलाएँ हैं। लांसेट पत्रिका (ब्रिटेन) मे छपी रिर्पोट के मुताबिक विश्वभर में जन्म लेने से पहले ही शिशुओं की मृत्यु के मामलों में भारत का स्थान सबसे आगे है।

कारण –

- भारत में बढ़ती कन्या भ्रूण हत्याओं के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारण देश में पितृ सत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्व है। भारतीय समाज में सदियों से पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ संस्कार तथा कुछ सामाजिक जिम्मेदारियाँ केवल पुरुषों के लिए ही बनायी गयी हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति की लालसा केवल पुत्र प्राप्ति की होती है।

- समाज में प्रचलित मान्यताएँ भी कन्या भ्रूण हत्या के लिए जिम्मेदार है। परिवार में लड़के की माँ एव लड़की माँ के साथ भेदभाव ही इसके लिए जिम्मेदार है।
- कन्या भ्रूण हत्या के मुख्य कारणो में एक कारण यह भी है कि लड़कियों को समाज या घर में बोझ माना जाता है। कई परिवारो मे लड़कियों को लड़को के मुकाबले कम ही अहमियत दी जाती है। उसकी परवरिश, पढ़ाई एवं जिंदगी से जुड़े अहम फैसले लेने की भी आजादी नही होती।
- सदियो से चली आ रही दहेज प्रथा कन्या भ्रूण हत्या को आज भी बढ़ावा देती है। लड़की के माता पिता कई बार लड़की को जन्म इसलिए भी नही देना चाहते क्योकि शादी के वक्त उन्हे दहेज देना पडेगा।
- हमारे समाज में कई परिवार में लड़कियां को घर के काम काज तक ही सीमित रखा जाता है। इस तरह की सोंच और लड़कियों के प्रति व्यवहार समाज में लड़कियों की अहमियत घटा देती है।
- आज के इस मार्डन युग में भी कई परिवार में लड़को को ही घर का सहारा माना जाता है। लड़के ही उनकी वंश परम्परा को आगे बढ़ाते है जैसी संकीर्ण मानसिकता भी कन्या भ्रूण हत्या के लिए उत्तरदायी है।
- भारत में कन्या भ्रूण हत्या को सामाजिक एवं आर्थिक कारण से भी जोड़ा जा सकता है लड़कियो की तुलना में लड़को द्वारा पुश्तैनी व्यवसाय, आय अर्जन एवं वृद्धावस्था में माता–पिता को सहारा देने की सम्भावना अधिक होती है । ऐसा माना जाता है विवाह होने पर लड़का एक पुत्रवधू लाकर घर की लक्ष्मी में वृद्धि करता है जो घरेलू कार्य में अतिरिक्त सहायता देती है एवं दहेज के रूप में आर्थिक लाभ पहुँचाती है जबकि लड़कियां विवाहित होकर चली जाती है, एवं दहेज के रूप में आर्थिक बोझ होती है। लड़के को आय का मुख्य स्त्रोत माना जाता है जबकि लड़कियां केवल उपभोक्ता के रूप में होती है।
- गैर कानूनी लिंग परीक्षण और बालिका शिशु की समाप्ति के लिए भारत मे दूसरा बडा कारण गर्भपात की कानूनी मान्यता एवं तकनीकी उन्नति भी है हालांकि इस पर अब रोक लग चुकी है।
- महिलाओं की कम होती संख्या के लिए महिलाओ के विरूद्ध हिंसा राजनैतिक जागरूकता का अभाव भी जिम्मेदार है।
- घर पर अप्रशिक्षित दाइयों द्वारा प्रसव कराया जाना भी एक महत्वपूर्ण कारण है।
- मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवारों में बालिका भ्रूण हत्या बढ़ने का एक महत्वपूर्ण कारण बाजारीकरण एवं औद्योगीकरण भी है इसके अतिरिक्त आज भी सामाजिक परिदृश्य मे ंमाता–पिता लड़की नही चाहते क्योंकि बेटी की वजह से उनमे असुरक्षा की भावना रहती हैं।
- भारतीय समाज में गरीबी कन्या भ्रूण हत्या मे लिए महत्वपूर्ण कारण माना जाता है किन्तु कई राज्यो मे देखा गया है कि गरीबो की तुलना में कन्या भ्रूण हत्या का प्रचलन अमीर परिवारो में अधिक है। इसकी एक वजह लिंग की पहचान व उसको नष्ट करने की मंहगी प्रक्रिया भी है संभ्रात परिवार के लोग ही इतना खर्च उठा पाते है। ऐसे मे ंसंभ्रात परिवार में बेटे की चाहत में कन्या भ्रूण हत्या की घटनाएं ज्यादा है।
- आर्थिक क्षेत्र मे अभी भी महिलाएं पुरुषों पर निर्भर है और उनके घरेलू कार्य को मान्यता नही मिल पाई है आज भी स्त्रियों को शिक्षिका, नर्स, एयर होस्टेज, सेल्सगर्ल जैसी नौकरियों हेतु ही उपयुक्त माना जाता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो लैगिंक भेदभाव हर जगह विद्यमान है।

परिणाम –

कन्या भ्रूण हत्या समाज को एक अंधेरे कोने में ले जाएगा जहां से किसी भी दिशा में जाना मुमकिन नही होगा। कन्या भ्रूण हत्या के दुष्परिणाम निम्न प्रकार हैं–

- कन्या भ्रूण हत्या के दुष्परिणाम न सिर्फ भयानक है बल्कि दूरगामी भी है, अगर कन्या भ्रूण हत्या इसी तरह से चलती रही तो लिंगानुपात इस हद तक गिर जाएगा की समूचा सामाजिक ढाँचा ही असंतुलित हो जायेगा।

0–6 वर्ष के लिंगानुपात में कमी आती जा रही है जिसकी वजह से अगले 20 वर्षों में शादी के लिए लड़कियों का अभाव हो जाएगा।

- ग्रामीण क्षेत्रों में शादी योग्य महिलाओं का आभाव होने से लोग कम उम्र की लड़कियों से शादी करना शुरू कर चुके हैं, उससे प्रजनन काल और प्रजनन दर में भी वृद्धि होगी, जिससे जनसंख्या वृद्धि प्रभावित होगी।
- लिंगानुपात कम होने के कारण बलात्कार, जबरन शादी एवं लड़कियों का अपहरण जैसे अपराधो मे वृद्धि होगी।
- कन्या भ्रूण हत्या के कारण अविवाहित पुरुषों की संख्या में बढ़ोत्तरी होगी जिससे वैश्यावृत्ति, नशाखोरी तथा मानसिक अवसाद जैसी घटनाओं में वृद्धि होगी।
- महिलाओ की संख्या में कमी होने के सामाजिक संतुलन बिगड़ जाएगा और समाज मे अपराधो की संख्या बढ़ जाऐगी।
- संयुक्त राष्ट्र ने अपनी रिपोर्ट में हाल ही में माना है कि भारत में बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या एक चिंता का विषय है जो कि आगे जाकर देश में कई तरह के जुर्म को जन्म देगा। समाज में कम महिलाओं की वजह से सेक्स से जुड़ी हिंसा के साथ–साथ बाल अत्याचार और बाल विवाह की समस्या बढ़ेगी।
- कन्या भ्रूण हत्या मानव तस्करी का सबसे बड़ा कारण बन जाएगा जो कि कई जिंदगियों को नर्क से भी बदतर बना देगा ।
- कन्या भ्रूण हत्या के कारण लिंगानुपात मे कमी आयेगी। जनगणना 2011के अनुसार भारत में बाल लिंग अनुपात 1000 लड़को पर 919 लड़कियां है जो पिछले दशको से कम है, 1991 से भारत के 80 प्रतिशत से अधिक जिलों मे लिंगानुपात कम ही रहा है इसके हिसाब से 2022 तक अगली जनगणना निश्चित रूप से पूरे देश में लिंग अनुपात की बड़ी कमी दिखाएगी और यह सामाजिक बुराईयों को बढ़ाने में मदद करेगा।
- एक भ्रूण की हत्या एक स्त्री के स्वास्थ्य को कमजोर कर देती है जिसके परिणामस्वरूप मातृ मृत्यु की संख्या में बढोत्तरी हुई है जिन स्त्रियों का गर्भपात करवाया जाता है उन्हें संक्रमण और अन्य बीमारियों का सामना करना पड़ता है।
- कन्या भ्रूण हत्या बहुपतित्व में वृद्धि का कारण है। भारत मे ऐसी कई घटनाएँ बढ़ रही हैं। आज भी भारत के कई गाँवों में स्त्रियों द्वारा भ्रूण हत्या के कार्य किए जाते है और एक पत्नी कई अविवाहित देवरों के साथ रहती है।
- भारत में आज भी गरीबी से पीड़ित कई परिवार लड़कियों की 18 साल से पहले शादी कर देते हैं जिससे बालविवाह की संख्या बढ रही है। कई बार लड़कियों को अपने से दोगुनी उम्र वाले लड़को के साथ शादी करनी पड़ती है।

कन्या भ्रूण हत्या से जुड़े कानूनी प्रावधान –

कन्या भ्रूण हत्या जैसे कुकृत्य को रोकने हेतु सरकार द्वारा मेडिकल से लेकर कई विधिक प्रयास किये जा रहे हैं तथा जागरूकता फैलाने की कोशिश की जा रही है :–

- भारतीय दंड सहिता 1860 की धारा 312 के अनुसार जो कोई भी जान बूझकर किसी महिला का गर्भपात कराता है और गर्भावस्था का जारी रहना महिला के जीवन के लिए खतरनाक न हो तो उसे सात साल की कैद की सजा दी जायेगी। धारा 313 के अनुसार महिला की सहमति के बिना गर्भपात की कोशिश के कारण महिला की मृत्यु (धारा 314) इसे एक दण्डनीय अपराध बनाता है। धारा 315 के अनुसार माँ के जीवन की रक्षा के प्रयास को छोडकर अगर कोई बच्चे के जन्म से पहले ऐसा काम करता है जिससे जीवित बच्चे के जन्म को रोका जा सके या पैदा होने के बाद उसकी मृत्यु हो जाए, उसे 10 साल की कैद होगी। धारा (316) बच्चे के जन्म को रोकना, अजन्मे बच्चे की हत्या करना (धारा 317), नवजात शिशु को त्याग देना धारा (318), बच्चे के शरीर को छुपाना या इसे चुपचाप नष्ट करना अपराध को समाहित करती है।

- 1964 में स्वास्थ्य मंत्रालय ने शांतिलाल शाह नाम से गठित समिति को महिलाओं द्वारा की जा रही गर्भपात की कानूनी वैद्यता की मांग के मद्देनजर महिला के प्रजनन अधिकार को मानवधिकार के मुद्दो पर विचार करने का काम सौपा गया। 1971 में संसद में गर्भ की चिकित्सकीय समाप्ति अधिनियम, 1971 मे (एमटीपी एक्ट) पारित हुआ जो 1 अप्रैल 1972 को लागू किया गया और इस उक्त अधिनियम के दुरूपयोग की संभावनओं को खत्म करने के उद्देश्य से गर्भ की चिकित्सकीय समाप्ति संशोधन के द्वारा 1975 और 2002 में संशोधित किया गया। गर्भ की चिकित्सकीय समाप्ति अधिनियम केवल आठ धाराओं वाला छोटा अधिनियम है। यह अधिनियम महिला की निजता के अधिकार, उसके सीमित प्रजनन के अधिकार, उसके स्वस्थ बच्चे को जन्म देने के अधिकार, उसको अपने शरीर के सम्बन्ध में निर्णय लेने के अधिकार की स्वतन्त्रता की बात करता है। एमटीपी एक्ट में गर्भ के समाप्त करने की दशाएं (धारा 3) और ऐसा करने के लिए व्यक्ति (धारा 2 डी) और स्थान (धारा 4) को निर्धारित किया गया है इस अधिनियम के अनुसार निम्न दशाओ में गर्भास्था को समाप्त करने की अनुमति दी जाती है जिसमे गर्भ को जारी रखने की सलाह नही दी जाती हैं और गर्भ महिला के जीवन के खतरा बन सकता है, जहाँ पर गर्भावस्था के जारी रहने पर नवजात शिशु के लिए काफी जोखिम हो सकता है और इससे गंभीर तौर पर मानसिक/बौद्धिक विकलांगता उत्पन्न हो सकती है, जहाँ पर बलात्कार के कारण गर्भ ठहरा हो (1 से धारा 3 में व्याख्यायित), जहाँ माँ के आर्थिक और सामाजिक दशाओं के मद्देनजर उसे स्वस्थ रूप से गर्भवती रहने और स्वस्थ शिशु को जन्म देने में कठिनाई हो और उपाय अपनाने के बावजूद गर्भ निरोध उपकरणो की असफलता (2 से धारा 3 में व्याख्यातित) आदि। किसी भी गर्भपात से पहले स्त्री रोग विशेषज्ञ की पूर्व सलाह लेना आवश्यक हैं और अगर गर्भ 12 हफ्तों से अधिक और 20 हफ्तो से कम दिनो का है तो डाक्टरो की सलाह लेना अनिवार्य है धारा 2(क) और (ख)[1] गर्भपात के लिए निश्चित प्रपत्र पर महिला की लिखित सहमति लेना आवश्यक है। 18 साल से कम उम्र की लड़कियों और मानसिक रूप से अस्थिर महिलाओ के सम्बन्ध में उनके अभिभावको की सहमति लेना आवश्यक हैं। इस अधिनियम के प्रावधानों का उद्देश्य अवैध गर्भपात के खतरो को कम करना हैं।
- 18 दिसम्बर 1979 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावो के उन्मूलन को मंजूरी दी। 19 जून 1993 में घोषणा को यथावत् मंजूर कर लिया गया।
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 'जीवन के अधिकार' की घोषणा करता हैं। अनुच्छेद 51 ए(ई) महिलाओ के प्रति अपमानजनक प्रथाओं के त्याग की व्यवस्था करता है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में लिंग तय करने वाली तकनीकी के दुरूपयोग और इस्तेमाल से कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए जन्म पूर्व परीक्षण तकनीक (दुरूपयोग का नियमन और बचाव) अधिनियम 1994 में पारित किया गया है। 1994 के अधिनियम का लक्ष्य गर्भधान पूर्व लिंग चयन तकनीकी को प्रतिबंधित करना, लिंग चयन सम्बन्धी गर्भपात के लिए जन्म पूर्व परीक्षण तकनीकों के दुरूपयोग का रोकना एवं सभी स्तरो पर अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना है। इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए और मौजूदा कानून में खामियों को दूर करने लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने संशोधनों की एक श्रृंखला प्रस्तावित की थी जिसे संसद में मंजूर कर लिया इससे पीएनडीटी अधिनियम 2002 दिसम्बर में अस्तिव में आया। बाद में इसे गर्भाधान पूर्वप्रसव परीक्षण तकनीक (लिंग चयन प्रतिबंध) अधिनियम कहा गया। इसके बाद स्वास्थ्य एवं परिवार मंत्रालय ने प्रसव–पूर्व परीक्षण (दुरूपयोग का नियम एवं बचाव) अधिनियम 2003 में 1996 के नियम को विस्थापित कर दिया। इस अधिनियम के अनुसार लिंग निर्धारण के लिए मौखिक परीक्षण का प्रयोग तभी किया जा सकता है, जब गर्भवती महिला की आयु 35 वर्ष से अधिक हो या जिसके कम से कम दो गर्भपात हो चुके हों अथवा उसके या उसके परिवार में शारीरिक या मानसिक विकलांगता की पृष्ठभूमि हो। अधिनियम के अन्तर्गत सभी अल्ट्रासांउड क्लीनिकों का पंजीकरण अनिवार्य करते हुए उपयुक्त अधिकारियों द्वारा समय–समय इनके निरीक्षण का प्रावधान आवश्यक किया गया। कोई भी क्लीनिक, प्रयोगशाला कर्मी,

डाक्टर तथा अन्य कोई भी व्यक्ति जो निर्धारित कारणो के अतिरिक्त इन परीक्षणो के लिए उत्तरदायी होगा और वो कानून का उल्लंघन करेगा उस पर (1) प्रथम बार में 3 साल की सजा तथा 50 हजार रूपयें तक का जुर्माना (2) दूसरी बार मे 5 वर्ष की सजा तथा एक लाख रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

- कन्या भ्रूण हत्या की घटनाओ को रोकने के लिए 'साइलेट आब्जर्बर' डिवाइस बनाया गया है। यह लिंग का पता लगाने के बाद गर्भपात या कन्या भ्रूण हत्या को रोकेगा और सोनोग्राफी की संम्पूर्ण प्रक्रिया को रिकार्ड करेगा। इस उपकरण को आनलाईन बना दिया गया है ताकि इसके इस्तेमाल पर नजर रखी जा सके।
- इन विधिक प्रयासों के अलावा कन्या भ्रूण हत्या पर नियन्त्रण एवं रोक के लिए केन्द्र और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा विशेष रूप से पिछले एक दशक मे बालिकाओं को संरक्षण, सुरक्षा और विकास की समुचित दशाएं उपलब्ध कराने के लिए विशिष्ट योजनाएँ और कार्यक्रम भी शुरू किए गए है इन योजनाओं कें संचालन का कुछ क्षेत्रों में अच्छा प्रभाव रहा है। इसके अलावा कुछ अन्य प्रयास निम्नलिखित हैं :–
- पीएनडीटी कानून के अंतर्गत केन्द्रीय निगरानी बोर्ड का गठन किया गया और इसकी नियमित बैठक कराई जा रही है।
- वेबसाइटों पर लिंग चयन के विज्ञापन रोकने के लिए यह मामला संचार एवं सूचना प्रौद्यौगिकी मंत्रालय के समक्ष उठाया गया।
- राष्ट्रीय निरीक्षण और निगरानी समिति का पुनर्गठन किया गया और अल्ट्रासाउंड निदान सुविधाओं के निरीक्षण में तेजी लाई गई।
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत कानून के कार्यान्वयन के लिए सरकार, सूचना, शिक्षा और संचार अभियान के लिए राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को वित्तीय सहायता दे रही हैं। राज्यों को सलाह दी गई है कि इसके कारणों का पता लगाने के लिए कम लिंग अनुपात वाले जिले, ब्लाकों, गॉवों पर विशेष ध्यान दे, उपयुक्त व्यवहार परिवर्तन, संपर्क अभियान तैयार करें और पीसी और पीएनडीटी कानून के प्रावधानो को प्रभावकारी तरीके से लागू करें।
- धार्मिक नेता और महिलाएं लिंग अनुपात और लड़कियों के साथ भेदभाव के खिलाफ चलाए जा रहे अभियान में शामिल हों।
- कन्या भ्रूण हत्या के लिए सिर्फ विधिक प्रयास काफी नहीं है यह एक सामाजिक समस्या हैं बालिकाओं एवं महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा, अत्याचारों, दहेज प्रथा तथा बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों और अशिक्षा जैसी बुराई को दूर किया जाना जरूरी है।
- परिवर्तन के लिए प्रारम्भिक चरण अभी भी परिवार एवं समाज है इसलिए पुरुष प्रधान सोच को बदलना होगा।
- निचले स्तर पर शिक्षा को प्रसारित करके अशिक्षा रूपी बाधा को खत्म करना होगा।
- राष्ट्रीय महिला आयोग के अनुसार महिलाओं को भी भ्रूण हत्या के खिलाफ नेतृत्व संभालना होगा।
- महिला सशक्तीकरण हेतु प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहान देना होगा राजनीतिक प्रतिबद्वता और विभिन्न दलों के मध्य आपसी तालमेल आवश्यक है ताकि भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराईयों के प्रति सकारात्मक कदम उठाया जा सके।
- चिकित्सकों के लिए मजबूत नीति सम्बन्धी नियमावली का सख्त पालन किया जाना चाहिये।
- दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों के निदान हेतु कन्याओं को शिक्षित एवं सशक्त किया जाना चाहिए।
- एक निश्चित अंतराल के बाद महिलाओं की मृत्यु, लिंग अनुपात, अशिक्षा, अर्थव्यवस्था में भागीदारी की स्थिति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष —

केवल कानून बना देने से इस सामाजिक बुराई का अंत नहीं हो सकता। महिलाओं के प्रति भेदभाव आम बात है और खासतौर पर कन्या के प्रति उपेक्षा हमारे समाज में गहरें जड़ों तक धंसी है। तमाम कानूनों के बावजूद समाज की श्रेष्ठता की गलत अवधारणा समाज के लिए खतरनाक है आम जनता को महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध भेदभाव रखने वाली प्रथाओं के उन्मूलन के लिए संवेदनशील बनाने की तत्काल आवश्यकता है। गिरते लिंगानुपात को संभालने की जरूरत है और इसमें राज्य, मीडिया, पत्रकार, गैरसरकारी संगठनो, चिकित्सकों महिला संगठनों और जनता को साथ खड़े होने की आवश्यकता है ताकि इस बात को सुनिश्चित किया जा सके कि कन्या भ्रूण हत्या विरोधी कानून पूरे तरीके से और कारगर दंग से लागू हो पाएं। निगरानी, शैक्षिक अभियान और प्रभावी कानून क्रियान्वयन इन सबके संयोजन से लोंगों के मन में गहरी बैठी महिला और कन्या विरोधी मानसिकता और कुप्रथाओं को दूर किया जा सकता है। कई राज्यों ने कन्याओं के लिए योजनाएं जारी की है जैसे कि कन्या के जन्म के समय पर माता–पिता को नकदी देना, स्नातक स्तर तक मुफ्त शिक्षा, कुछ पॉलिसी में किश्त में भुगतान किया जाता है जो कन्या के विवाह के समय परिपक्व होती है इत्यादि। जमीनी स्तर पर स्थानीय पंचायतो एवं नेताओं को कन्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए कदम उठाने चाहिए। इस कुप्रथा की भयावहता और गम्भीरता के बारे में व्यापक स्तर पर प्रचार होना चाहिए। गैर सरकारी संगठनों, राष्ट्रीय महिला आयोग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को मौजूदा कानूनों को समुचित ढंग से लागू करने के लिए बेहतर योजनाएं बनानी चाहिए और अखबारों, रेडियो, दूरदर्शन एवं इन्टरनेट पर व्यापक स्तर पर जन अभियान चलाने जानें चाहिये। चिकित्सा, व्यवसाय और इसके संगठनों जैसे भारतीय चिकित्सा संगठन, रेडियोलाजिस्ट एसोशिएशन, प्रसूति विशेषज्ञ तथा स्त्री रोग संगठन इत्यादि के साथ चिकित्सा जगत को मानवता के लिए एक मजबूत आचार संहिता बनाने की महती आवश्यकता है। भारतीय समाज में कन्या भ्रूण हत्या की गम्भीर चुनौती को रोकने के लिए हमें महिलाओं को शिक्षित एवं सशक्त बनाना होगा ताकि दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों के खिलाफ अभियान चलाकर मौजूदा कानूनों को सख्ती से लागू कर महिलाओं के अधिकारों को मजबूती प्रदान की जा सके।

सन्दर्भ

- आहुजा राम, "सामाजिक समस्यायें", रावत पाब्लिकेशन, जयपुर।
- पाण्डेय तेजस्कर, पाण्डेय संगीता, "भारत में सामाजिक समस्यायें" मैक्ग्रो हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटिड, नई दिल्ली।
- शर्मा जी एल, "सामाजिक मुद्दे" रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- निबन्ध मंथन, मंथन पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
- 'भारत की सामाजिक समस्यायें', सिविल सर्विसेज क्रानिकल, दिसम्बर 2014.
- http://hi vikaspedia.in-governanie/online-legal-services
- http://hindi mapsotindia.com/my-india/social-issues/stop-female-foeticide-save the girl child
- http://hi vikaspedia.in/social-welfare/93893e92
- http://hi hindibloggingtips.in/kanya-bhrun-hatya-nibandh

❑❑

8

कुछ भी असंभव नहीं है दिव्यागों के लिए

नन्हकू प्रसाद यादव
शोध छात्र–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

संस्कृत में कहा गया है –

दृष्टि किमपि लोकेऽस्मिन न निर्दोष न निर्गुणमा

अर्थात् इस विश्व में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो न तो निर्दोष हो, न निर्गुण सभी वस्तुओं में, सभी प्राणियों में कुछ दोष भी रहता है और कुछ गुण भी। केवल परमपिता परमेश्वर ही इस बात के अपवाद हैं, जिन्हे सृष्टि में संतुलन बनाए रखने के लिए ऐसा नियम बनाया है। इसी के तहत यह देखा गया है कि गुणवान व्यक्तियों में कोई न कोई दोष और गुणहीन व्यक्तियों में कोई – न कोई गुण अवश्य होता है।

यदि विश्व की दिव्यांग विभूतियों के जीवन – चरित्र का बारीकी से अध्ययन किया जाय तो सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि दिव्यांग के लिय कुछ भी असंभव नहीं है। मानव जाति द्वारा किए जाने वाले हर प्रकार के कार्य दिव्यांग व्यक्तियों ने भी बड़ी कुशलता से कर दिखाए हैं। यदि उनकी – जीवन की सफलता का आकलन करें तो हर प्रकार के व्यवसाय उन्होने बड़ी कुशलता से वरन एक आम आदमी से बेहतर तरीके से किए है।

आदिकाल से ही दिव्यांग व्यक्तियों ने समाज के लिय व्यापक योगदान किया है। यह योगदान अनेकानेक अवसरों पर इतना मूल्यवान रहा कि सामान्य व्यक्ति यह सोचने को मजबूर हो जाता कि ये लोग वास्तव में दिव्यांग थे या नहीं। निश्चय ही जब हम दीर्घतमा की वैदिक ऋचायॅ, होमर की कविताएँ और सूरदास के पद पढ़ते है तो इन महाकवियों की नेत्रहीनता को भूल जाने को मजबूर हो जाते है। इस प्रकार जब हम जॉन मिल्टन की कवितायॅ या बीथोवन का संगीत सुनते है, तो यह कतई याद नहीं रहता कि ये विभूतियाँ दिव्यांग थी ।

प्रस्तुत शोध पत्र में हमने विश्व की ऐसी दिव्यांग विभूतियों के उत्कृष्ट कार्यों का उल्लेख किया है जिन्होने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपनी शेष बची हुई शक्ति से न सिर्फ अपनी दिव्यांगता के असर को कम किया, वरन अपने कृतित्व से समाज में अपनी विशिष्ट और अति विशिष्ट जगह बनायी।

साहित्य – विश्व के हर भाग में, हर काल में, हर भाषा में दिव्यांग साहित्यकारों ने अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं के जरिए अपना अमिट स्थान बनाया है। ब्रिटेन में मिल्टन, बायरन, वाल्टर, यूनान में होमर, अमेरिका में हेलेन, कीलर, वेद मेहता, रूस में निकोलाई अस्त्रोवस्की, भारत में सूरदास, जायसी, रघुवंश,राजेन्द्र यादव आदि ने अपनी सुंदर व सरस रचानाओं से यह साबित कर दिया है कि दिव्यांगता साहित्य – रचना में बाधक नहीं बन सकती है। जहाँ एक ओर नेत्रहीनता साहित्य – रचना में बाधक नहीं बन सकती है। जहाँ एक ओर नेत्रहीन साहित्यकार सूरदास, होमर, मिल्टन, वेद मेहता आदि ने धूम मचाई है तो दूसरी ओर अस्थि दिव्यांग बायरन, वाल्टर स्काट, रघुवंश भी आगे ही रहे हैं। जहाँ वल्लतोल बिना सुने ही समाज की हर गतिविधियों को समझ जाते थे, वहीं बिना हाथों के डॉ0 रधुवंश पैरों से एक के बाद एक पुस्तकें लिखते चले गए। साहित्य की किसी भी विधा में दिव्याग व्यक्ति कभी पीछे नहीं रहे। सूरदास, होमर मिल्टन आदि का काव्य किसी भी अन्य महाकवि की काव्य – रचनाओं से बेहतर है। वेद मेहता, डॉ0 रधुवंश यादव का गद्य लेखन आम आदमी से लेकर विद्वान द्वारा पढ़ा

और सराहा जाता है। वाल्टर की कहानियँा भी उतनी ही रोचक है, जितनी राजेन्द्र यादव की । बायरन के व्यंग्य, रधुवंश के उपन्यास आम पाठक को रचना पूरी होने से पहले किताब बन्द न करने के लिए मजबूर कर देते हैं। रधुंवश ने गंभीर लेखन और आलोचना में अपना जो स्थान बनाया है वह एक सामान्य कद – काठी के व्यक्ति के लिए कठिन है। वैदिक ज्ञान और वेद रचना में दिव्यांग साहित्यकार पीछे नहीं रहे हैं। प्रख्यात ऋषि दीर्घतमा जन्मांध ा थे और उन्होंने ऋग्वेद की तमाम ऋचाएँ लिखीं। अष्टावक्र ने राजा जनक के दरबार में जो शास्त्रार्थ किया वह अष्टावक्र संहिता के नाम से संकलित है और इनसे उनके तत्वज्ञान की झलक मिलती है। अष्टावक्र की गीता अपार से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने समय में अद्‌भुत ज्ञान से तमाम विद्वानों का उद्धार भी किया था । आधुनिक काल में भी स्वामी बिरजानंद ने वेदो में और प्राचीन ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। पाणिनी के सूत्र उन्हें कंठस्थ थे। उन्होंने अपना ज्ञान अपने शिष्य स्वामी दयानंद के जरिए संसार को बाँटा और आर्यसमाज द्वारा समाज में फैलाया ज्ञान वास्तव में बिरजानंद से ही निकला था। वल्लातोल ने प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का मलयालम में अनुवाद करके आम आदमी को प्राचीन ग्रंथों का ज्ञान रूप सुलभ कराया।

संगीत – साहित्य की तरह संगीत की हर विधा में दिव्यांग संगीतकारों ने अपना स्थान बना लिया । श्रवणहीन संगीतकार बीथोवन ने संगीत को नौ नई रागनियाँ दीं। वह जब पियानो बजाते थे तो श्रोता अपने आँसू रोक नहीं पाते थे । उनकी संगीत – रचना उनके समकालीन संगीतकारों की रचनाओं से श्रेष्ठ थी। नेत्रहीन गायकों कृष्णचंद्र डे, रवीन्द्र जैन, मारिया थेरेसा वान पैराडी ने अपने मधुर स्वर से श्रोताओं का दिल जीत लिया । रवीन्द्र जैन की संगीत – रचना को अपनी फिल्म में फिल्माने के लिए सभी फिल्मकार हमेशा बेताब रहते हैं गायन – वादन, संगीत – रचना, धुन – रचना आदि सभी कार्य नेत्रहीन व अस्थि दिव्यांग कलाकार बड़ी आसानी और अत्यंत कुशलता से कर चुके हैं।

चित्रकला : संगीत की ही भाँति चित्रकला, वास्तुकला और शिल्पकला में दिव्यांग कलाकारों ने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा से अपना उच्च स्थान बनाया। नेत्रहीन विनोद बिहारी मुखोपाध्याय, श्रवणहीन सतीश गुजराल, मूक–बधि र प्रभा शाह, अस्थि दिव्यांग हिम्मत भाई शाह किसी भी कलाकार से कम नहीं हैं और हर प्रकार का सम्मान अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के कारण प्राप्त कर चुके हैं। नेत्रहीन विनोद बिहारी स्पर्श से ही सुन्दर और बोलते हुए चित्र और उँगलियों से अनुभव करके सजीव मूर्तियाँ बना लेते थे। बिना सुने सतीश गुजराल ने अपनी चित्रकला, शिल्पकला और वास्तुकला का इस्तेमाल करते हुए दिल्ली की अनेक इमारतें बनवाई और सजाई हैं। मूक–बधिर प्रभा शाह सामने खड़े व्यक्ति की फरमाइशों को अपनी आँखो से सुनकर कैनवास पर रंगो द्वारा पूरा करती हैं। हिम्मत भाई शाह अस्थि दिव्यांग के बावजूद खूबसूरत चित्र बनाकर मन मोह लेते हैं।

नृत्य एवं फिल्म निर्माण : आम आदमी को सहज विश्वास ही नहीं होता है कि रोजाना टेलीविजन पर आने वाली सुधा चदंन कृत्रिम टाँगो के सहारे सुन्दर और कलात्मक नृत्य कर लेती है। सुधा की अदाकारी किसी भी उम्दा अदाकारा से कम नहीं है। इसी प्रकार रितु रावल ने व्हील चेयर पर ही सुंदर मॉडलिंग करके दर्शकों का मन मोह लिया है। आज विज्ञापन कंपनियाँ रितु से न सिर्फ मॉडलिंग, वरन् पूरी विज्ञापन फिल्म बनवाने के लिए आगे–पीछे घूमती हैं।

खेल–कूद : आम तौर पर माना जाता है कि स्वस्थ शरीर के लिए खेल–कूद आवश्यक है और आम खिलाड़ी खेलने के लिए अपने आप को स्वस्थ रखते हैं, पर दिव्यांग व्यक्तियों ने अपने कमजोर और निष्क्रिय अंगों के बावजूद खेल–खूद में अग्रणी स्थान प्राप्त किया है। मूक– बधिर तारानाथ शैनाय ने खतरनाक इंगलिश चैनल पार कर दिखाई है, जबकि अंजन भट्टाचार्य ने रणजी ट्राफी के तमाम मैचों मे अपने खेल द्वारा दर्शकों की तारीफ पाई।

वह बिना सुने ही खेल के उतार–चढ़ाव को समझ जाते थे और बिना बोले ही अपने कप्तान और साथी खिलाड़ियों से संवाद कायम कर लेते थे।

अपने पोलियोग्रस्त हाथ से चंद्रशेखर ने ऐसी गुगली गेंदें फेंकीं की हर देश का उम्दा से बल्लेबाज जल्दी पैवेलियन लौट गया। टॉम व्हाइटकर कृतिम टाँग के सहारे एवरेस्ट पर चढ़ गया । नवयुवक गोहेल तैराकी, क्रिकेट, पर्वतारोहण आदि खतरनाक खेलों में एक साथ उम्दा प्रदर्शन कर रहे हैं। लैरी टॉपलिफ पहले पहलवानी करते थे। एक दुर्घटना में उनकी रीढ़ की हड्डी क्षतिग्रस्त हो गई। बरसों तक बिस्तर पर पड़े रहे। एक के बाद एक उनके ऑपरेशन हुए। जब वे स्वस्थ हुए, तो फिर से कुश्ती के रिंग में पहुँच गए । आज वह नवोदित पहलवानों को कुश्ती की शिक्षा दे रहे हैं। घर के खर्चे चलाने के लिए व्यवसाय और शौक के लिए कुश्ती वह एक साथ कर पा रहे हैं। राजीव बग्गा अपनी दिव्यांगता के बावजूद एक के बाद एक पुरस्कार जीतते चले जा रहे हैं। नेत्रहीन क्रिकेट नेत्रहीनों के बीच उतना ही रोचक है, जितना आम क्रिकेट दृष्टिवानों के बीच । दिव्यांग अपने विशेष ओलिम्पिक, जिन्हें पैरा ओलिम्पिक कहते हैं, में भी भाग लेते हैं ओर अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भी । प्रसिद्वउद्योगपति अरविंद वर्मा तीरंदाजी और तैराकी दोनों में महारत रखते हैं। वह अपनी गाड़ी खुद ड्राइवर करते हैं और उनका डाइवर पीछे बैठता है। जब गंतव्य स्थल आ जाता है, तो वह उनकी व्हील चेयर निकालता है और वह व्हील चेयर पर बैठकर आगे के लिए प्रस्थान करते हैं। अस्थि दिव्यांगता, नेत्रहीनता, मूकता और बधिरता किसी भी प्रकार के खेल में बाधक नहीं रही है। क्रिकेट, टेनिस, एथलेटिक्स, पर्वतारोहण, तैराकी, शूटिंग कुछ भी अछूता नहीं है दिव्यागो के लिए । अल्प दृष्टिवान जार्ज अब्रहम ने नेत्रहीन क्रिकेट के विश्व कप का आयोजन करके दिखा दिया है कि दिव्यांग न सिर्फ खेल सकते हैं, वरन् खेल आयोजित भी कर सकते हैं।

संघर्ष – आम व्यक्ति की अपेक्षा दिव्यांग व्यक्ति को अपने जीवन में ज्यादा संघर्ष करना पड़ता है उसे ऐसी आदत पड़ जाती है कि संघर्ष ही उसका जीवन बन जाता है। बायरन ने सुंदर साहित्य रचने के अलावा ग्रीस को तुर्कों के कब्जे से आजाद कराने के लिए संघर्ष किया । ग्रीस उनका अपना मुल्क नहीं था, पर इसकी मिट्टी से उन्हें इतना प्यार हो गया था कि अपने जीवन की सारी कमाई, समय और अपना स्वास्थ्य ग्रीस की आजादी के लिए दॉव पर लगा दिया । उस समय पूर्वी और पश्चिमी ग्रीस के बीच एकता नहीं थी, पर ब्रिटिश मूल के बायरन ने दोनों इलाके के लोगों की एकता के लिए सतत प्रयास किए। उन्होंने सैन्यशक्ति गठिन करने, तोपचियों को नियुक्त करने, हथियार पहुँचाने जैसे कार्य अपनी अस्थि दिव्यांगता के बावजूद किए। जब एक बार इंग्लैण्ड में विदेशी आक्रमण के खतरे का घंटा भूल से बज गया, तो आम आदमी से ज्यादा सजगता दिव्यांग वाल्टर स्कॉट ने दिखाई । उसने घोड़े पर चढ़कर 100 मील की यात्रा तेजी से तय की और कम्बरलैंड से डालकीथ तक के सीमावर्ती क्षेत्र की निगरानी की । जब मेटकाफ को पता चला कि जिस प्रेमिका से वह प्रेम करते हैं, उसकी शादी उसकी मर्जी के खिलाफ किसी अन्य व्यक्ति से हो रही है, तो नेत्रहीन मेटकाफ घोड़े पर आए और शादी के मंडप से अपनी प्रेमिका को उठा ले गए । इससे पहले कि लोग उन्हें ढूढ़ पाते, उन्होंने शादी कर ली और एक सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत किया। हेलेन कीलर ने अमेरिका में नेत्रहीनों की दयनीय अवस्था को सुधारने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने बाद में विश्व के हर भाग के दिव्यांगों के लिए लगातार संघर्ष किया । विश्वशांति के लिए किया गया उनका संघर्ष आज भी याद किया जाता है। इसी प्रकार नेत्रहीन ब्रिटिश सांसद हेनरी फासेट ने आजीवन गरीब मजदूरों व कमजोरों के हक में अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतवासियों के शोषण के खिलाफ भी आवाज बुलंद की। अपनी पत्नी के साथ मिलकर उन्होंने महिलाओं के लिए मताधिकार हेतु संघर्ष किया। विभिन्न प्रकार के दिव्यांगों ने विभिन्न क्षेत्रों में इतनी जीवटता से संघर्ष किया कि लोग उनके संघर्ष को

लम्बे समय तक याद करते रहेंगे और उनके द्वारा हासिल परिणामों से लाभ उठाते रहेंगे।

राजनीति – दिव्यांगों ने राजनीति में भी भाग लिया और हर प्रकार के दायित्वों का निर्वाह किया । धृतराष्ट्र ने अपने साथ किये गये अन्याय के बावजूद हर किसी के साथ न्याय करने का भरसक प्रयास किया। ज्येष्ठ पुत्र होने के बावजूद उन्हें राजा नहीं बनाया गया और पांडु के देहान्त के बाद कोई और उपाय न होने पर ही उन्हें गद्दी पर बैठाया गया। फिर भी उन्होंने अपने अनुज पुत्रों का लालन–पालन किया और अपने पुत्रों के समान शिक्षा दीक्षा दिलाई। उन्होंने युधिष्ठिर को युवराज भी बना दिया था। उनके पुत्र दुर्योधन, जो अपने पिता को ही राज्य का वास्तविक शासक मानता था, ने प्रतिकार किया और इसकी परिणति महाभारत रूपी महाविनाश में हुई। हालाँकि इतिहास ने दुर्योधन द्वारा किए गए प्रतिकार को धृतराष्ट्र द्वारा किये गए अन्याय की संज्ञा दे दी, पर धृतराष्ट्र ने अपनी नेत्रहीनता के बावजूद अपने राज्य और अपने पूरे परिवार को संगठित और शक्तिशाली बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

धृतराष्ट्र को सम्मान नहीं मिल पाया, पर अमेरिका राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डिलानो रूजवेल्ट ने लगातार चार बार राष्ट्रपति चुने जाने और अमेरिका को हर प्रकार के संकट से निकालकर सशक्त राष्ट्र बनाने के लिए आजीवन सम्मान पाया। उन्होंने अपने देश को भयानक मंदी से उबारा। अनेक विकास–कार्य किए और दूसरे विश्वयुद्ध में जब जर्मनी, जापान और इटली ने अमेरिका पर युद्ध थोप दिया, तो उन्होंने अपने देश का नेतृत्व इस ढंग से किया कि मित्र राष्ट्रो ने उन्हें नेता मान लिया और उन्होंने धुरी राष्ट्रो को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन में प्रमुख भूमिका निभाई और विश्व–शांति का मार्ग प्रशस्त किया।

जहाँ एक और दिव्यांग जयपाल रेड्डी ने मंत्री के रूप में अपने छोटे से कार्यकाल में ही पूरी कुशलता से कार्य किया, वहीं ओमप्रकाश कोहली ने अपनी पार्टी के संगठन में तमाम जिम्मेदारियाँ निभाकर यह दिखा कि वह राजनीति के किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं। सांसद के रूप में हेनरी फासेट का लम्बा कार्यकाल लम्बे समय तक याद किया जाता रहेगा। ब्रिटेन के पोस्टमास्टर जनरल के रूप में उन्होंने डाक प्रणाली में न सिर्फ आमूलचूल सुधार किए, वरन् पार्सल प्रणाली भी प्रारम्भ कराई। तैमूर लंग, राणा सांगा और महाराजा रणजीत सिंह अपनी वीरता और रणकुशलता के लिए ज्यादा प्रसिद्ध है, पर राजनीति और राज्य–संचालन में उनकी दक्षता किसी भी अन्य राजा से कम नहीं थी। विकलांग होते हुए भी आम आदमी का विश्वास अर्जित करके शक्ति प्राप्त करना और उसका सदुपयोग करके आम आदमी को लाभान्वित करना काबिले–तारीफ है।

वीरता, रणकुशलता, देश की रक्षा : द्वितीय विश्वयुद्ध में अलैक्सेई मरैस्येव ने शत्रु के विमानों से मुकाबला करते समय दोनों पैरों के कटने के बाद भी अपने धैर्य और लगन से कृतिम टाँगो के सहारे पहले नृत्य करना और फिर इस प्रकार चलना–फिरना प्रारम्भ किया कि किसी को आभास ही नहीं होता था कि उनकी टाँगे नकली हैं। उन्होंने फिर से विमान उड़ाना प्रारम्भ किया और दूसरे विश्वयुद्ध में लगातार 7–8 उड़ाने भरकर बड़ी संख्या में जर्मन विमान मार गिराए और शत्रु के ठिकानों को तहस– नहस कर दिया। युद्ध के बाद शांति– प्रयासों में भी उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई भूतपूर्व सैनिकों के पुनर्वास और कल्याण – कार्यों में भाग लेकर उन्होंने रूस में देशभक्ति की भावना पैदा कर दी । बायरन और वाल्टर स्कॉट ने भी बचपन से ही टाँगें विकृत होने के बावजूद वीरता का परिचय दिया। बायरन कुशल तैराक भी था। वाल्टर अच्छा घुडसवार था। उसने अपने मुल्क की रक्षा के लिए स्वयंसेवकों का एक दल गठित किया। विकलांगता के बावजूद वह ड्रिल में नियमित रूप से भाग लेता था। तथा अस्थि दिव्यांगता के बावजूद सैनिक गतिविधियों में नियमित रूप से भाग लेता था। जॉन मेटकाफ ने नेत्रहीनता के बावजूद सैन्य दल गठित करने का काम किया। वह स्पर्श करके घोड़े की क्षमता का भी आकलन कर लेता था तथा आदमियों

का भी ।

राणा सांगा और तैमूर लंग की वीरता जगजहिर है। राणा सांगा की वीरता की कहानी न सिर्फ मेवाड़ में, वरन् पूरे भारतवर्ष में बच्चे–बच्चे की जबान पर है। विपरीत परिस्थितियों में भी सांगा ने एक विशाल सेना गठित की और बड़ा साम्राज्य कायम कर लिया था। राणा की वीरता की तारीफ खुद बाबर ने अपनी आत्मकथा में की। इसी प्रकार अपनी वीरता और रणकुशलता के बल पर तैमूर ने एक साधारण कबीले के सरदार से उठकर एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। तैमूर को कट्टर धर्मांध आक्रमणकारी के रूप में ज्यादा जाना जाता है, जो बड़े पैमाने पर कत्लेआम करता था, पर उसके जीवन के अनेक उज्ज्वल पहलू भी हैं। वह विद्वता, कला, शिल्प की बहुत कद्र करता था। वह जो कुछ भी लूटता था उसे नष्ट करने के बजाय समरकंद ले जाकर सुरक्षित तरीके से रखता था। उसने विद्वानों तथा कलाकारों को समरकंद में बसाया और व्यापार को संरक्षण दिया। महाराजा रणजीत सिंह ने सिख साम्राज्य स्थापित किया। अपनी वीरता के बल पर एक छोटी मिस्ल के सरदार के रूप में जीवन प्रारम्भ करके बड़ा राज्य बनाकर दिखा दिया। एक बार दिव्यांग रणजीत सिंह अपने सैनिकों के साथ जा रहे थे, तो पास में एक आम के पेड़ पर एक बालक अपनी गुलेल से आम तोड़ने का प्रयास कर रहा था। उसकी गुलेल से निकला पत्थर का टुकड़ा महाराजा को लगा और उनकी चमड़ी छिल गयी महाराजा के सैनिक दौड़कर गए और उस बालक का पकड़कर ले आए। पीछे– पीछे बालक की माँ रोते– चीखते हुए आ पहुँची । उसने रोते हुए महाराजा के सामने बालक को क्षमा करने के लिए प्रार्थना करनी शुरू की । महाराजा ने उस बालक को न सिर्फ छोड़ दिया, वरन् एक अशर्फी भी इनाम में दी। रणजीत सिंह के सेनानायक ने पूछा कि महाराज, अशर्फी देने का कारण क्या है, तो रणजीत सिंह ने कहा कि वह बच्चा एक बेजबान पेड़ को पत्थर मार रहा था, जो बदले में स्वादिष्ट आम देता, तो मैं अच्छा–खासा होकर एक अशर्फी भी न देता ? विश्व में ऐसे अनेक योद्धा हुए हैं, जिन्होंने हाथ– पैर कटने के बाद भी लम्बे समय तक वीरता दिखाई है।

विज्ञान के आविष्कार, शोध : हर प्रकार के दिव्यांगो ने विज्ञान के आविष्कार करके हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखाई है। श्रवणहीन थामस एडीसन दुनिया के सबसे बड़े आविष्कार माने जाते हैं। उन्होंने अपने जीवन में 1300 से ज्यादा आविष्कार पेटेंट कराए। इनमें से ज्यादातर ध्वनि से संबंधित थे, जिन्हें वह स्वयं सुन नहीं पाते थे। सिनेमा, बिजली के बल्ब, ग्रामोफोन आदि के लिए सारी दुनिया हमेशा उन्हें याद करती रहेगी। लुई ब्रेल ने नेत्रहीनों के लिए ब्रेल लिपि ईजाद की । उन्होंने इसके लिए अपना सर्वस्व होम दिया। उन्होंने रैफीग्राफी भी विकसित की थी, जो टाइपराइटर के आविष्कार के बाद अप्रासंगिक हो गयी।

आविष्कार की दुनिया में अस्थि दिव्यांग तथा व्हील चेयर पर जीवन बिताने वाले और अब बेज़बान स्टीफन हाकिंग्स का नाम मशहूर है। उन्होंने दुनिया को चमत्कृत कर दिया। ब्रह्मांड की उत्पति, विकास और भविष्य से संबंधित एक–एक रहस्य उन्होंने दुनिया के सामने बिल्कुल सरल और सीधे शब्दों में रख दिए। वह अभी बीस वर्ष जीने की तमन्ना रखते हैं और ब्रह्मांड से संबंधित कोई भी प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहने देना चाहते हैं। आम तौर पर नेत्रहीन गणित से घबराते हैं और संगीत जैसे विषयों तक ही सीमित रहना चाहते हैं, पर निकोलस सैंडरसन ने गणित में भी महारत हासिल की। उन्होंने सर आइजक न्यूटन के साथ भी काम किया तथा गणित के प्रश्नों को हल करने के लिए एक उपकरण भी बनाया । इसी प्रकार नेत्रहीन हेनरी फासेट ने अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया । उन्होंने न सिर्फ अर्थशास्त्र की पुस्तकें लिखी, वरन् बड़ी–बड़ी कमेटियों की बैठकों में आँकड़े इतनी सरलता से प्रस्तुत कर दिखाए कि सामने बैठे दृष्टिवान चमत्कृत हो गये। उन्होंने साबित कर दिया कि नेत्रहीने गणित या सांख्यिकी में बाधक नहीं बन सकती है।

व्यापार और व्यापार प्रबंध, प्रशासन : इसी प्रकार आधुनिक युग में अस्थि विकलांग अरविंद वर्मा ने एक बड़ी कम्पनी एमिल को चलाकर दिखा दिया है कि आधुनिक युग की गलाकाट प्रतियोगिता के दौर में भी दिव्यांग पीछे नहीं हैं। अरविंद वर्मा ने अपनी कम्पनी के हर विभाग में काम किया और अब वे कम्पनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं। उनके नेतृत्व में कम्पनी एक के बाद एक नए–नए आधुनिक प्रोजेक्ट ले रही और आगे बढ़ रही है। वह सैकड़ो लोगों को नौकरी दे पा रहे हैं और आधुनिक युग में काम आने वाले हर किस्म के उपकरण उपभोक्ताओं को पहुँचा रहे हैं। वाल्टर स्कॉट ने लेखन के अलावा प्रकाशन का व्यवसाय बड़ी कुशलता से किया। उन्होंने लेखकों को प्रोत्साहित किया। हेनरी फासेट ने पोस्टमास्टर जनरल का कार्यभार सँभालकर दिखा दिया कि हर प्रकार का प्रबंध और प्रशासन दिव्यांग व्यक्ति कर सकते हैं। इसी प्रकार नेत्रहीन लाल आडवानी ने भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग में अनेक पदों पर कुशलतापूर्वक काम करके अपनी योग्यता साबित कर दी है।

शिक्षा – दिव्यांग विभूतियों ने विपरीत परिस्थितियों में पहले स्वयं शिक्षित होकर और फिर अपने दिव्यांग बंधुओं को शिक्षित करके मिसाल कायम की है। नेत्रहीन, श्रवणहीन और मूक लारा ब्रिजमैन ने शिक्षा प्राप्त करके दिखा दिया कि संवाद के माध्यम स्पर्श, घ्राण आदि भी उतने ही सशक्त और कारगर हो सकते हैं। लारा ने नेत्रहीन और अनाथ लड़की एनी सलीवान को शिक्षित करने में योगदान दिया। एनी सलीवान ने नेत्रहीन, श्रवणहीन और मूक हेलेन कीलर को न सिर्फ शिक्षित किया, वरन् हेलेन के विकास में अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया भारत में लाल बिहारी शाह, न्यूजीलैंड में सर क्लूथा मैकेन्जी, अमेरिका में राबर्ट बैंजामिन इरविन आदि ने दिव्यांगों के लिए विशेष शिक्षा हेतु लगातार प्रयास किए। आज हर दिव्यांग शिक्षा को आवश्यक मानता है और उसे पाने के लिए प्रयास करता है। यह परिवर्तन इन विभूतियों के कारण ही संभव हो पाया है। विभिन्न शिक्षण– संस्थाओं की नींव में किसी न किसी दिव्यांग व्यक्ति का खून – पसीना छिपा है।

वकालत – प्रसिद्व वकील एस0 के0 रूंगटा ने नेत्रहीनता के बावजूद सुप्रीम कोर्ट में दिव्यांगों के हित में दायर याचिका हेतु इतनी कुशलता से जिरह की कि अदालत ने अपने फैसले में अपने विचार दर्ज करते हुए कहा कि विद्वान रूंगटा ने अदालत में इतनी बारीकी से कानून की विभिन्न धाराओं की व्याख्या करते हुए जिरह की कि लगता नहीं है कि वह नेत्रहीन हैं। उन्होंने कानून की मोटी – मोटी पुस्तकों से संबंधित पृष्ठ बड़ी आसानी से निकालकर दिखा दिए । इससे पूर्व साधना गुप्ता ने वकालत का पेशा अपनाकर दिखा दिया कि नेत्रहीनता वकालत में बाधक नहीं बन सकती है। वह पश्चिम बंगाल के एडवोकेट जनरल भी रही । नेत्रहीन अंजलि अरोड़ा भी बड़ी कुशलता से वकालत कर रही हैं। वाल्टर स्कॉट अस्थि दिव्यांगता के बावजूद अच्छे वकील माने जाते थे।

समाज–सेवा : दिव्यांग विभूतियों ने न सिर्फ अपने लिए या अपने दिव्यांग भाइयों के लिए कार्य किया, वरन् समाज के अन्य वर्गो के लिए भी कार्य किया । हेलेन कीलर विश्वशांति के लिए जानी जाती है। दिव्यांगों के कृतित्व से आम आदमी भी उतना ही लाभान्वित हुआ। जॉन मेटकाफ ने नेत्रहीनता के बावजूद 180 मील लंबी सड़कों का निर्माण किया । हेनरी फासेट अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़कर लगातार कार्य करते रहे।

प्यार–मुहब्बत, शादी : आम मनुष्य की भाँति विकलांग भी प्यार – मुहब्बत आदि में पीछे नही रहे। बायरन ने अपने जीवनकाल में अनेक स्त्रियों से प्रेम किया । उसकी अवैध संतान भी थी । इसी प्रकार वाल्टर स्कॉट की दिव्यांगता भी उसके प्रेम – प्रसंगों में बाधक नहीं बन सकी और उसने प्रेम – विवाह किया । विश्व के तमाम दिव्यांग शादी – विवाह कर सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं भयंकर दिव्यांगता के शिकार होने के बावजूद स्टीफन हाकिंग्स ने जेन वाइल्ड के साथ लम्बा और सुखी वैवाहिक जीवन बिताया। उसके वैवाहिक जीवन में बाधा तब पड़ी जब उसने खोज के दौरान यह साबित किया कि ईश्वर है ही नहीं। यदि है भी तो उसके पास करने के लिए

कुछ भी नहीं। इससे उसकी कैथोलिक विचारों वाली पत्नी को ठेस लगी और उनका तलाक हो गया । स्टीफन ने फिर दूसरी शादी कर ली । जॉन मेटकाफ ने लम्बा और सुखी वैवाहिक जीवन अपनी उस पत्नी के साथ बिताया जिसे वह फिल्मी हीरो की भाँति विवाह–मण्डल से उठा लाया था। मरते समय मेटकाफ के नब्बे पौत्र–पौत्रियाँ थे। तैमूर लंग ने अनेक शादियाँ कीं। अपनी पत्नियों से वह बहुत प्रेम करता था। कुल मिलाकर प्यार–मुहब्बत और वैवाहिक जीवन में दिव्यांगता कोई विशेष बाधा नहीं बन सकी।

पत्रकारिता : दिव्यांगता पत्रकारिता के पैरों में भी बाधक नहीं बन सकी। नेत्रहीनता के बावजूद वेद मेहता विश्व के जाने–माने पत्रकार माने जाते हैं। नेत्रहीन चमन प्रकाश शर्मा का अखबार 'समर्थ चेतना' दिव्यांगों द्वारा पढ़ा और सराहा जाता है। बिस्तर पर पड़े– पड़े डॉ0 राजेन्द्र जौहर एक खूबसूरत और रोचक अंग्रेजी पत्रिका लगातार निकाल रहे है। जावेद आबिदी के विचारोत्तेजक लेख अकसर बड़े अखबारों में छपते रहते हैं और वह न सिर्फ दिव्यांगों, वरन् आम आदमी को भी सोचने पर मजबूर कर देते है।

कुल मिलाकर किसी भी प्रकार की दिव्यांगता दुनिया के किसी कोने में किसी भी समय किसी प्रकार के कार्य में बाधा नहीं बन सकी। दिव्यांगों ने अपने निष्क्रिय या कमजोर अंग की कमी को अपने दूसरे अंगों से पूरा किया और आम आदमी से बेहतर प्रदर्शन किया। यदि भारत के 8–10 करोड़ दिव्यांगों और विश्व के पचास करोड़ दिव्यांगों की छिपी हुई प्रतिभा का पूरा उपयोग किया जाय, तो पूरे समाज को बहुत बड़ा लाभ मिल सकेगा।

सदर्भ गन्थ सूची

- सुरेश भटनागर, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास,आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2008
- विनोद कुमार मिश्र, विकलांग विभूतियों की जीवन गाथाएँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
- डॉ0 अलका गुप्ता, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद,2016
- डॉ0 विमलेश शर्मा, समावेशित विशिष्ट शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद,2016
- डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद,2016

❑❑

9

भारत में आतंकवाद के विविध परिदृश्य

डॉ0 आनन्द कुमार खरे
प्राचार्य
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज, उरई (जालौन)

आतंकवाद एक सुव्यवस्थित विचारधारा है। सभ्य समाज तर्क विज्ञान और साक्ष्य के जरिए अपने पक्ष में लोकमत बनाते हैं। आतंकवादी हिंसा के बल पर 'अपने सत्य' को जोर–जबर्दस्ती थोपते हैं। भारत के राष्ट्र जीवन में तर्क, विमर्श की परंपरा रही है, लेकिन जेहादी राजनीतिक चिंतन अपना सत्य मनवाने के लिए सभी रास्ते अख्तियार करता है। जेहादी राजनीतिक चिंतन के अंतर्राष्ट्रीय विद्वान प्रो. डेनियल पाइप्स लिखते हैं, ''जेहाद एक अंतर्राष्ट्रीय धारणा है। यह दुनिया को दो भागों में बाँटती है। एक, दारुल हरब यानी जहाँ इस्लाम का राज्य नहीं है और दूसरा, दारुल इस्लाम अर्थात जहाँ इस्लाम का राज्य है। जेहाद इन दोनों के बीच निरंतर युद्ध की स्थिति है।'' भारत कोई 1300 वर्ष से इसी युद्ध का शिकार है। इस्लामी विद्वान और राजनीतिक विचारक हिंसक घटनाओं की सतही निंदा करते हैं और युद्धप्रिय इस मानसिकता का गहन समर्थन करते हैं। मौलाना मंदनी जैसे लोगों की राय है, ''इकामते दीन (मजहब की स्थापना) फर्ज है। दीनेहक में जेहाद फीसबिल्लाह (अल्लाह के वास्ते लड़ना) को इसीलिए जरूरी माना गया। इसी के लिए किताल फीसबिल्लाह (अल्लाह की राह में लड़ना) है।'' आतंकवादी किसी सनक, मूर्खता या धनलोभ के कारण ही अपने प्राण नहीं देते। वे अल्लाह की राह पर अल्लाह के लिए अपनी जान देते हैं। कुरान (4/74) का पवित्र वचन है, ''जो अल्लाह के मार्ग में लड़ेगा, चाहे वह मारा जाए या जीते उसे हम शीघ्र ही बड़ा बदला (इनाम) प्रदान करेंगे।'' युद्ध प्रत्येक इनाम वाले का फर्ज है। कुरान (2/216) का हुक्म है कि तुम पर युद्ध अनिवार्य किया गया।

एक पूरी शताब्दी हमारे सामने फैली पड़ी है और हम अपने वर्तमान में काँप रहे हैं। जाते हुए वर्ष ने हमारे सामने धर्माश्रित राष्ट्रवाद के आतंकवादी स्वरूप को हठात् प्रस्तुत किया है। एक धर्मप्राण देश के लिए यह एक दुखद शिक्षा है कि अब अहिंसा का अर्थ भारत के लिए कायरता ही है। हम चुप रहेंगे तो कायर कहलायेंगे और आतंकवादी शब्दों की भाषा बोलते भी नहीं और समझते भी नहीं। जब तर्क बलाश्रित हो रहे हों तब बल प्रयोग ही एकमात्र तर्क है। मैं नहीं जानता कि हमारी सरकारें कब इसे स्वीकार करेंगी ? आतंकवादियों के मानवाधिकारों की बातें होती हैं। हम विचित्र तर्कों के संसार में रह रहे हैं। हम निर्दोष हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों के हत्यारों के लिए मानवाधिकारों की बात करते हैं और चाहते हैं कि वे पशुवत् धर्मचेता अपनी हिंसाभाषा को छोड़कर सभ्यता की भाषा में बात करें।

आतंकवाद अब ए दूरस्थ युद्ध नहीं रह गया है। वह आगे बढ़ता हुआ हमारे दरवाजों तक चला आया है। हमारी गलियों में बेखौफ टहल रहा है। हमारे दरवाजे खटखटाता है आतंकवाद और दरवाजा खोलते ही स्टेनगनों की तड़तडाहटों से धर्म के स्वर (?) फूटने लगते हैं। कश्मीर घाटी में, जम्मू की सब्जीमंडी में बारूदी सुरंगें फटती हैं और मासूम हिन्दू–मुसलमानों के खून से धर्मयुद्ध अपनी इबारतें लिखता है। यह आतंक का धर्म है। यह वह ध ार्म नहीं है जो दुनिया को रोशनी देने के लिये पैदा हुआ था। यह वह धर्म नहीं है जो इंसान को खल्क की 'सबसे कीमती शै' बताता था और दुनिया को 'अखलाको–मोहब्बत' के रूहानी पैगाम देता था। यह आतंकवादियों का धर्म है और हम जान लें कि दुनिया भर के आतंकवादियों का एक ही धर्म होता है और उस धर्म का नाम है 'आतंक'।

आतंक के सिवा कुछ भी नहीं। सारी लड़ाई यही है। धर्म का आतंक और आतंक का धर्म। पूरा युद्ध यही है, युद्ध की परिभाषा भी यही है और परिणाम भी यही है।

आतंक से निकले धर्म एक दिन आतंक को ही धर्म मानने लगे हैं। उनका धर्म मार्ग ही उन्हें आतंक के पथ पर आगे बढ़ने का नैतिक साहस देता है। ये जीवित मनुष्यों का रक्त बहाकर अपनी धार्मिक विजय की उद्घोषणा करते हैं। इस पशुकर्म को धर्म कैसे कहा जा सकता है, किन्तु यह हमारा चिंतन है। हम एक ऐसे देश के नागरिक हैं जिसने अहिंसामूर्ति गांधी को अपना राष्ट्रपिता कहा है और माना है।

आतंकवाद का भविष्य क्या है ? क्या हमारी आने वाली शताब्दियाँ इसी तरह काँपती–थरथाराती रहेंगी ? क्या जाने, कब–कहाँ पर कौन सा संगठन अपने पागल मंतव्यों को लेकर हमारे परिवारजनों को मौत की नींद सुला देगा ? हम इसी भय से काँपते रहेंगे तो प्रगति के नये सोपानों पर चढ़ने वाला उत्साह कौन सृजित करेगा ?इतिहास साक्षी है कि वर्तमान संत्रस्त हो तो आविष्कार भी भयानक ही होते हैं। जब हिटलर की सत्ता काँपती है तो आइंस्टीनों के दिमागों में भी ईश्वर परमाणु बम बनाने के विचार डाल देता है। यही हर युग का सत्य है। हम आतंक में काँपेंगे तो कोई भी शुभ विचार हमारी बुद्धि का मार्ग नहीं लेगा। तब हम विनाश से महाविनाश की दिशा में बढ़ेंगे, तब हम अशुभ से अशुभतर की कल्पना ही करते रहेंगे और फिर इतिहास साक्षी है कि मानव ने जब जो कुछ भी सोचा है वह होकर ही रहा है। हमें इस प्रकट सत्य को पलटना होगा। उसे अपने भविष्य को अनुकूल बनाना होगा, स्वयं को जीवित रखने के लिये ही सही। कोई परमार्थ नहीं है यह, किन्तु एक शुभ स्वार्थ ही सही। एक पूरी सदी फैली पड़ी है हमारे आगे और हम काँप रहे हैं। हम जो कभी किसी से नहीं काँपे। हम जो चट्टानों को काटकर गंगा के लिये रास्ता बनाते आये हैं, हम जो समुद्र पर सेतु बाँधने वालों वंशज हैं, हम जो महाभारत रचते हैं, हम जो पाँच हजार वर्षों की गर्वपूरित संस्कृति के गौरवान्वित वंशधारक हैं, हम काँप रहे हैं कि आने वाले कल में जाने कब कहाँ कौन सा विस्फोट होगा और चौराहों पर खून बिखर जायेगा ?

आतंकवादी वर्षों से बेगुनाह लोगों का कत्ल कर रहे हैं। उन्होंने भारत में गुरिल्ला युद्ध छेड़ा हुआ है। अफसोस की बात यह है कि हमारी केंद्र और राज्य सरकारें इस गुरिल्ला युद्ध का सामना करने में और आतंकी हमलों को रोक पाने में विफल रही है। बड़े आतंकी हमलों के बाद जनता को इस सदमें को बर्दाश्त करने और शांति बनाए रखने का उपदेश दिया जाता है। हमले के पाँच–सात दिन बाद ही सजगता–सतर्कता की भावना ठंडी पड़ जाती है। सरकारी तंत्र और जनता आगे की चिंता न करते हुए सामान्य काम–काज में व्यस्त हो जाते हैं और आतंकवादियों को फिर से हमला करने का मौका मिल जाता है। इसके बाद फिर वही क्रम दोहराया जाता है। हमारे देश में वर्षों से यही हो रहा है। देश के विरूद्ध छेड़े गए इस छद्म युद्ध को जीतने के लिए जनता का सहयोग तो आवश्यक है, परंतु लड़ाई तो प्रमुख रूप से सरकारों को ही लड़नी है।

किसी फोड़े का सही इलाज उसकी मरहम पट्टी से नहीं होता। रोग के लक्षण के बजाय मूल कारण को समाप्त करना होगा। आतंकवाद जेहाद के नाम पर हो रहा है। हाल ही में दैनिक जागरण में 'अपनों से परेशान इस्लाम' लेख में फिरोज अहमद बख्त ने लिखा है कि अगर इस्लाम धर्म को नहीं माना जा रहा हो तो जेहाद की घोषणा की जा सकती है। वह भारत में चलाए जा रहे जेहाद को गैर–इस्लामिक मानते है। कुछ लोगों का मानना है कि जो सरकारें शरीयत के अनुसार नहीं चल रही हैं, उनके खिलाफ जेहाद चलाना कुरान की आयतों के अनुसार जायज है। ऐसे लोग खुद को वास्तविक जेहादी समझते हैं। पिछले दिनों आतंकवादियों ने शाहरूख खान, आमिरखान और सलमान खान समेत सभी मुस्लिम कलाकारों को फिल्मों में काम न करने की जो धमकी दी है वह शरीयत के खिलाफ है। दरअसल जब तक इन आतंकवादियों के सही उद्देश्य को नहीं पहचाना जाएगा, तब तक आतंकवाद

को खत्म करना संभव नहीं होगा। आतंकवाद में लिप्त लोग कौन है और वे जेहाद के नाम पर निर्दोष लोगों की हत्या करने का घिनौना काम क्यों कर रहे हैं ? वे कोई डाकू–लुटेरे नहीं हैं। वे तो मजहब–इंसान के नाम पर अपने नापाक इरादों को अंजाम दे रहे है।

आतंकवादी हमारे देश में मारकाट करना चाहते हैं, अशांति और तनाव फैलाना चाहते हैं। क्या यही उनका अंतिम ध्येय है कि देश में मारकाट हो, बगावत हो और सरकार कमजोर हो ? देश में वोटों के आधार पर बनने वाली सरकारें किसी संगठित समूह के वोटों के दबाव में आकर एक दिन इतनी कमजोर हो सकती है कि आतंकवादियों को अपना उद्देश्य पूरा करने का मौका मिल जाए। अभी भी हमारी लोकतांत्रिक सरकारें इतनी कमजोर हो गई हैं कि आतंकवादियों को जब–तब अपना उद्देश्य पूरा करने का भरपूर मौका मिल जाता है।

अमेरिका, रूस, भारत, ब्रिटेन, चीन, लंका, अल्जीरिया, सूडान, मिस्र दुनिया का शायद ही ऐसा मुल्क होगा, जो आतंकवाद का शिकार न हो अथवा इससे जूझ न रहा हो। आतंकवाद की अभिव्यक्ति कई रूपों में नजर आती है, इनमें मानवी बम अत्यधिक घातक एवं खतरनाक है, जिसकी काट अब तक विश्व के किसी भी सुरक्षा एजेंसी, सेना अथवा सरकार के पास नहीं है। विश्व में 75 से भी अधिक ऐसे आतंकवादी संघटन हैं, जिनके पास मानव बम मौजूद है।

चीन भी मुस्लिम आतंकवाद का शिकार है। यहाँ के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र शिनच्यांग में वर्ष 1988 से यह आन्दोलन चल रहा है। वर्ष 1997 में यहां के अलगाववादी आतंकवादियों ने चीन के कई बड़े अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया। बाद इन्हें फांसी की सजा सुनायी गयी। इनमें 11 आतंकवादियों को जनवरी, 1998 में फांसी दे दी गयी। इन सभी पर पुलिस के वाहन फूंकने एवं सरकारी सम्पत्तियों को जलाने का आरोप था। अल्जीरिया, सूडान और मिस्र भी आतंकवाद की भट्टी में झुलस रहे हैं। अल्जीरिया में पिछले 6–7 वर्षों से आतंकवाद जारी है। यहां 75000 से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। सूडान में 1958 से हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी हैं। मिस्र का कट्टरपन्थ अपनी पराकाष्ठा पर है। तुर्की, जार्डन, लाबिया, ईरान भी इसी कतार में हैं। पेरू से लेकर फिलीपोन्स तक, अंगोला से लेकर अजर बैजान तक आतंकवादी गतिविधियां जारी हैं।

दुनिया भर में आतंकवाद के विरूद्ध कारवाई के लिए विशेष पुलिस एवं सैनिक बलों का गठन किया गया। पश्चिम जर्मनी ने जी.एस.जी.–9 ब्रिटेन ने एस.ए.एस. अमेरिका ने ग्रीन बेरटस तथा रैंजस का गठन किया। भारत में भी दक्षिणपंथी तथा वामपंथी आतंकवादी ग्रुप अरसे से सक्रिय है, जिन्हें कुचलने के लिए सरकार ने न सिर्फ 'पोटा' सरीखे सख्त कानून बनाये, बल्कि केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल, असम रायफल्स, भारत–तिब्बत सीमा पुलिस तथा केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल भी तैनात किये। इसके बावजूद आतंकवादी रोकथाम में ये बुरी तरह विफल रहे तथा नक्सल एवं आतंकवाद जड़ जमाता चला गया।

17वीं सदी में भारत की केन्द्रीय मुगलिया सत्ता की निगाहों में शिवाजी की हैसियत सिर्फ छापामार अथवा आतंकवादी की थी पर वे मराठों के हीरो थे। 20वीं सदी के प्रारम्भ में रूसी जार सत्ता लेनिन एवं ट्राटस्की स्टालिन जैसे क्रान्तिकारियों को आतंकवादियों की श्रेणी में रखती थी पर 1917 की क्रान्ति के लेनिन जननायक कहलाये। चीन में माओत्से तुंग की स्थिति इससे भिन्न नहीं थी। वही माओ बाद में सम्पूर्ण चीन के महानायक बने। वियतनाम के ही ची मिन्ह तथा क्यूबा के कास्त्रो एवं चेंग्वेराकी आतंकवादी से लोकनायक बनने की दास्तान इससे भिन्न नहीं है। भारत के शासक वर्ग के सन्दर्भ में रजनी कोठारी ने लिखा है– राज्य और राज्यसत्ता का अभिजन वर्ग के छोटे से ग्रुप द्वारा अपहरण कर लिया गया है और उनके द्वारा राजसत्ता का प्रयोग अपने ही विशेषाधिकारों और स्वार्थों

को पूरा करने के लिए किया जा रहा है। ग्लोबलाइजेशन के नाम पर दुनिया भर के उद्योगपति, पूंजीपति एवं सामन्ती तत्व एक हो चुके हैं। नाम तो वे प्रजातन्त्र, लोकतन्त्र का लेते हैं पर इसके विपरीत इनका इरादा शोषण एवं दमन पर आधारित प्राचीन एवं मध्ययुगीन सामन्तवादी, पूँजीवाद एवं साम्राज्यवादी ढाँचे को न सिर्फ बनाये रखना, बल्कि सुदृढ़ करना है, जबकि आम आदमी जनवादी, समाजवादी एवं साम्यवादी व्यवस्था के निर्माण में लगा है। दरअसल दो व्यवस्थाओं के बीच की टकराहट ही आतंकवाद की जड़ है, जिसे मानवाधिकारों का सम्मान एवं समतामूलक समाज की स्थापना से ही दूर किया जा सकता है।

विपुल धनराशि और विश्व के सर्वाधिक संपन्न तेल संसाधनों पर नियंत्रण होने का परिणाम है कि कमजोर, सामंती और आंतरिक कारणों से परेशानी में फंसी शेखशाही अपने वजूद का गलत इस्तेमाल पर विश्व के कामकाज में असंगति पैदा करने में सफल रही है। 1970 के दशक में तेल की कीमतों में उछाल से मिली मोटी रकम में से अनेक शेखों ने कुछ राशि वहाबी इस्लाम के प्रसार के लिए खर्च करनी शुरू कर दी। इस राशि के एक हिस्से को विश्व भर में जिहादी तैयार करने वाले मदरसों की स्थापना पर भी खर्च किया गया। यह महज इत्तेफाक नहीं था कि आठवें दशक में मोरक्को, सूडान, मलेशिया से इंडोनेशिया तक में पेट्रो डालर की मदद से कट्टरता और उग्रवाद को बढ़ावा दिया गया। आज भी यह सिलसिला कायम है। अलकायदा से संबद्ध लश्करे–तैयबा का मामला देखें। यद्यपि आईएसआई ने इसकी स्थापना भारत को हजार जख्म देने के लिए की थी, किंतु पंजाबी दबदबे वाला यह गुट लंबे समय से उऊदी पेट्रोडालर से पोषित हो रहा है। अमेरिका में पाकिस्तान के राजदूत हुसैन हक्कानी ने 2005 में लिखा था कि लश्करे–तैयबा वहाबी गुट है। इसे सऊदी पैसा मिलता है और पाकिस्तानी खुफिया सेवा से सुरक्षा। यह संगठन भारत, इजरायल और अमेरिका को इस्लाम का जन्मजात शत्रु करार देता है। संयुक्त अरब अमीरात द्वारा अंतर्राष्ट्रीय भगोड़ों को आश्रय देने और आतंकवाद को वित्तीय सहायता पहुँचाने के साथ–साथ सऊदी अरब द्वारा विदेशों में जिहादी गुटों के बैक खातों में धनराशि भेजने से यह स्पष्ट है कि तेल के शेख अंतर्राष्ट्रीय कायदे–कानून का खुलेआम उल्लंघन करते है।

भारतीय परिदृश्य में आतंकवाद के देशी संस्करण भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। नक्सलवादियों को तो हिंसात्मक गतिविधियों के लिए जाना ही जाता था, पर इधर पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में उल्फा आतंकवादियों तथा नागा व कूकी जनजातियों की पारस्परिक हिंसा और बिहार में 'पीपुल्स वार ग्रुप', 'माओवादी कम्युनिष्ट सेन्टर' और 'रणवीर सेना' आदि की हिंसात्मक गतिविधियों में तेजी आई है। पूरे देश में ऐसे अनेक उग्रवादी व अलगाववादी संगठनों का जाल सा फैलता जा रहा है। वास्तव में भारत की भोली–भाली, गरीब व अशिक्षित जनता व नवयुवक अज्ञानता में इन संगठनों के सदस्य बनते जा रहे हैं। बेरोजगारी से प्रभावित युवक मादक पदार्थों, अवैध हथियारों व जाली मुद्रा के अन्तर्राष्ट्रीय तस्करों के हाथ बड़ी आसानी से आकर ''सवारी'' (मालवाहक) का काम कर रहे हैं। अब तो इन तस्करों की निगाह देश के उस वर्ग पर लगी है जो सामान्यतः चोरी व डकैती तथा अपहरण जैसे जघन्य अपराध करता है। वे उसको भी अपनी ''सवारी'' बनाने के प्रयास में हैं। अनेक प्रकार के साम्प्रदायिक व जातीय हिंसा के भुक्त–भोगी भी आतंकवादी संगठनों के कुटिल जाल में फँस जाते हैं। और इस प्रकार देशी आतंकवाद, इस्लामी–आतंकवाद व अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद में एक समरसता स्थापित हो रही है। इसीलिये आतंकवाद का केवल सुरक्षात्मक या सैनिक पहलू ही नहीं, वरन् सामाजिक व आर्थिक पहलू भी महत्वपूर्ण है। अतः आतंकवाद से निपटने की किसी भी कार्य योजना को बहुत ही सोचविचार कर तथा समग्रता में बनाना होगा।

भारत में आतंकवाद की गहराती जड़ों में कुछ कारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, इसमें नेपाल व भारत–नेपाल सीमा, मुस्लिम समाज का एक गुमराह वर्ग तथा धर्मस्थल, भारतीय राजनीतिज्ञों, सैनिक व अर्द्धसैनिक

बलों के सदस्य, नागरिक व पुलिस प्रशासन के अफसरों व रंगहटों में व्याप्त आकण्ठ भ्रष्टाचार तथा राजनीति में अपराधियों की बढ़ती पैठ आदि विशेष रूप से जिम्मेदार है। भारत–नेपाल सीमा 1800 किमी. लम्बी है व उत्तर प्रदेश, बिहार, पं. बंगाल व सिक्किम से गुजरती है। इसमें केवल उत्तर प्रदेश–नेपाल सीमा ही 800 किमी. है जो घुसपैठ के लिये आदर्श है। 1989 में जब आई.एस.आई. की गतिविधियाँ बढ़ी तबसे यह तथ्य जाना जाता है कि उनके एजेन्ट व घुसपैठिये पश्चिमी सीमा के बजाय नेपाल से घुसपैठ को बहुत आसान मानते हैं। यही नहीं, इसी कारण पाकिस्तान भी नेपाल में अपने दूतावास को आतंकवादियों की मदद का केन्द्र बनाये हुये हैं और प्रायः उसके कर्मचारियों को जाली नोटों की तस्करी या मादक द्रव्यों व हथियारों की तस्करी में पकड़ा जाता है, पर लचर नेपाली पुलिस व सुरक्षा व्यवस्था को धता बताकर ये सब बच निकलते हैं। कुछ को राजनयिक संरक्षण प्राप्त होने के कारण गिरफ्तार नहीं किया जाता वरन् देश छोड़ने को कहा जाता है।

भ्रष्टाचार और अपराधियों की राजनीति में घुसपैठ भी काफी हद तक आतंकवाद को हवा दे रही है। आज माहौल कुछ ऐसा खराब हो गया है कि संभवतः हर व्यक्ति ''बिकाऊ'' हो गया है– प्रश्न केवल उसकी कीमत का है। मन्त्री, अफसर, नेता, न्यायाधीश, पुलिस, प्रशासन और नीचे के छोटे मोटे कर्मचारी– सभी की एक कीमत है। सो आतंकवादी इन सभी को सही–गलत हर प्रकार के नोट थमा कर अपना काम निकाल लेते है। नोट लेने वाले को यह पता ही नहीं कि उसने अपने ही बाल–बच्चों, परिवारजनों व मित्रों की मौत का सौदा कर लिया है और जाने कितना आर.डी.एक्स. मादक पदार्थ व गोला–बारूद देश में प्रविष्ट करा दिया है। अनेक अपराधियों के विधायक, सांसद व मंत्री बन जाने के कारण भी आतंकवाद वस्तुतः 'सरकारी संरक्षण' में फल–फूल रहा है।

आपको शायद यकीन न हो और सरकार भी इसे नहीं मानना चाहेगी, मगर हकीकत है कि देश के एक–तिहाई हिस्से पर भारत का कानून नहीं चलता। करीब 40 हजार वर्ग किलोमीटर के इलाके में शासन–प्रशासन नक्सलियों का संविधान मानता है। इन इलाकों में नक्सलियों की अपनी अदालत और सेना है। यानी लाल गलियारे में भारत या संबंधित राज्य सरकार के समानांतर एक पूरी सरकार चलती है, जो टनों बारूद के सुरक्षित घेरे में है। यह संगठित तंत्र आज देश में नक्सलियों को बड़ी और डरावनी ताकत बना चुका है। वह भी तब जबकि नक्सल प्रभावित 16 राज्यों में से किसी की भी सीमा अंतर्राष्ट्रीय सीमा से नहीं मिलती। इन राज्यों के 194 में से जो 58 जिले बुरी तरह प्रभावित हैं, वहां नक्सली अदालत लगाते हैं और फैसला सुनाते है। मुखबिर एक ऐसा शब्द है जिसके नाम पर नक्सली किसी को भी बेदर्दी से मार डालते हैं। सुरक्षा बलों व पुलिस के जवानों को भी उन्होंने इतनी बेदर्दी से मारा है कि इस इलाके के लोग भारत सरकार के कानून को छोड़ 'लाल कानून' में भरोसा करने लगे हैं। लाल गलियारे में करीब एक हजार वर्ग किलोमीटर जमीन के नीचे हजारों टन बारूद बिछा कर नक्सलियों ने सुरक्षा बलों को बांध दिया है।

भाकपा (माओवादी) के कुछ गोपनीय दस्तावेज के आधार पर गृह मंत्रालय का आंकलन है कि नक्सलियों का सालाना बजट 15,000 करोड़ रूपये से भी ऊपर जा पहुंचा है। यहां गौर करने लायक बात है कि बिहार जैसे बड़े राज्य की सालाना योजना भी 12,000 करोड़ रूपये की ही है। मतलब यह कि नक्सलियों का सालाना बजट कई छोटे राज्यों के बजट से भी ज्यादा है। फिर भी वे अपना बजट 20,000 करोड़ रूपये तक पहुंचाने की कोशिश में है।

इलाकाई पिछड़ेपन और विकास की मुख्य धारा से कटे रहने के विरोध में शुरू हुए नक्सलवाद के मायने अब बिल्कुल उलट चुके हैं। वास्तव में तो विकास कार्य या किसी भी तरह की प्रगति नक्सलियों के वसूली उद्योग की राह में बाधा है। लिहाजा, आदिवासी इलाकों में होने वाले हर विकास कार्य और संचार माध्यमों पर नक्सलियों

के हमले लगातार बढ़ते जा रहे हैं।

आतंकवाद को पैरों तले रौंद देने का वक्त है और हम, केवल हम, अमेरिका नहीं, रूस नहीं चीन भी नहीं, इंग्लैंड और जर्मनी भी नहीं, पूरे विश्व में दूसरा कोई नहीं, केवल हम ही इतनी नैतिक ताकत और अटूट विश्वास रखते हैं कि धर्म की शक्तियां जब बढ़ चलेंगी, अधर्म के आतंक को स्थापित करने के षड्यंत्र वाष्प की तरह हवा में उड़ जायेंगे। हम उस समय की प्रतीक्षा करें जब शेर के दाँत गिनने वाले भारतवंशियों की सेना आतंकवाद के समूल नाश का अभ्यास करेगी। यह लोकतंत्र है और लोकप्राण संकट में है। लोकसत्ता समझ ले कि देश की जनता उससे क्या चाहती है ? हम मान लें कि बीते हुए वर्ष के अंतिम क्षणों की वह समर्पण चेष्टा आतंकवाद के समक्ष हमारी अंतिम पराजय थी। जब जीवन रक्षा ही ध्येय हो तब जीवन रक्षा धर्म बनता है। प्रश्न पूरे राष्ट्र के जीवन का है और राष्ट्र अपने निवासियों के जीवन से कहीं उच्चतर–महत्तर सत्ता है। हमने मानव जीवन की रक्षा को ही सर्वोच्च धर्म माना है। मानव–जीवन को छीनकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने वाले आतंकवादियों के आतंक–धर्म से हमारा नैतिक बैर स्वयं सिद्ध है। हम आतंकवाद के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करें विश्व हमारे साथ है।

संदर्भ

1. डॉ0 एस0 वी0 सिंह – अन्तर्राष्ट्रीय कानून
2. हर्ष बिहारी श्रीवास्तव – आतंकवाद की आग में झुलसता भारत
3. डा0 नीता शर्मा – विश्व में आतंकवाद का कसता शिकंजा
4. इंडिया टुडे – जनवरी, 2009
5. क्रानिकल – मई, 2009
6. दैनिक जागरण, कानपुर – दिसम्बर, 2010

❑❑

10

श्रवण बाधितों हेतु सम्प्रेषण के विकल्प एवं भाषा क्षमता पर उनका प्रभाव

डॉ० अर्जुन प्रसाद
विशेष शिक्षक – श्रवण बाधितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डॉ०श०मि०रा०पु० विश्वविद्यालय, लखनऊ

हम सुनकर बोलना सीखते हैं। किसी बच्चे की सामान्य श्रवण क्षमता उसकी वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण के समुचित विकास में सहायक है। बच्चे की श्रवण क्षमता का स्तर उसकी वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण के स्तर को निर्धारित करता है। सीमित श्रवण दोष वाले बच्चों में वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण की समस्या अधिक गम्भीर नहीं होती है। श्रवण प्रवर्धक उपकरणों की सहायता से इस स्थिति में कुछ सीमा तक सुधार लाया जा सकता है। किन्तु गम्भीर एवं अतिगंभीर श्रवण दोष की स्थिति में सुधार की सम्भावना अधिक नहीं होती है। ऐसे बच्चे मौखिक सम्प्रेषण में प्रतिभाग नहीं कर पाते हैं। इसलिए उन्हें मौखिक सम्प्रेषण के अतिरिक्त सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों की आवश्यकता होती है। विचारों के आपसी आदान–प्रदान को सम्प्रेषण कहते हैं। सम्प्रेषण के द्वारा किसी विचार या सन्देश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषक द्वारा प्रेषित व प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त किया जाता है।

सम्प्रेषण को दो माध्यमों में विभाजित कर सकते हैं– शाब्दिक एवं अशाब्दिक सम्प्रेषण। शाब्दिक सम्प्रेषण से तात्पर्य उस सम्प्रेषण से है, जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विचारों एवं भावों को किसी ज्ञात भाषा में सुनकर, पढ़कर एवं छूकर ग्रहण करते हैं तथा बोलकर व लिखकर प्रकट करते हैं‐ अशाब्दिक सम्प्रेषण से तात्पर्य सामान्यतः शब्द रहित सन्देशों को भेजने एवं प्राप्त करने की सम्प्रेषण प्रक्रिया से है। अशाब्दिक सम्प्रेषण को संकेत, इशारे, शारीरिक हाव–भाव, स्पर्श, चेहरे की अभिव्यक्ति, आँखों के संपर्क आदि से सम्प्रेषित किया जा सकता है।

सम्प्रेषण के विकल्पों को अपनाये जाने के कुछ प्रमुख कारण

श्रवण बाधित बच्चों, उनके अभिभावकों, शिक्षकों एवं प्रशिक्षकों द्वारा सम्प्रेषण के विकल्पों को अपनाने में श्रवण दोष की कोटि के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी उत्तरदायी हैं। जैसे– श्रवण–दोष की पहचान की आयु, परिवार की अंतर्दृष्टि एवं मूल्य, बच्चे का स्वस्थ्य, परिवार की प्रतिभागिता का स्तर, बच्चे की बुद्धि, बच्चे के श्रवण प्रवर्धक उपकरण की प्रभावशीलता, सुनने का सामर्थ्य, अवशेष श्रवण क्षमता का स्तर, बच्चे की आंगिक स्थिति, विद्यालय का प्रकार, सम्प्रेषण के विकल्पों में दक्षता आदि।

सम्प्रेषण के विकल्पों से तात्पर्य : श्रवण बाधित बच्चों हेतु सम्प्रेषण के विकल्पों से तात्पर्य उन विकल्पों से है, जिनके द्वारा वे अपने विचारों एवं भावों को दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरों के विचारों एवं भावों से स्वयं अवगत होते हैं। सम्प्रेषण के यही विकल्प उनके शिक्षण, प्रशिक्षण एवं पुनर्वास में भी अहम् भूमिका निभाते हैं। श्रवण बाधित बच्चों हेतु सम्प्रेषण के अनेक विकल्प उपलब्ध हैं।

सम्प्रेषण के विभिन्न विकल्प : सम्प्रेषण के विकल्पों को सैद्धान्तिक रूप में चार भागों में विभाजित किया जा सकता हैं– (1) मौखिक सम्प्रेषण (Oral communication), (2) हस्तचालित सम्प्रेषण (Manual Communication) (3) द्विभाषिक सम्प्रेषण (Bilingual Communication) एवं (4) समग्र सम्प्रेषण (Total Communication)।

(1) मौखिक सम्प्रेषण– इस विकल्प को सैद्धान्तिक रूप में ओरालिज्म (Oralism) नाम से जाना जाता है। सन 1867 ई० में स्थापित क्लार्क स्कूल फॉर द डेफ, नॉरथेम्प्टन, मेसाचसेट्स पहला विद्यालय था जहाँ ओरालिज्म

को अपनाया गया। मौखिक सम्प्रेषण में श्रवण बाधित बच्चों की बची हुई श्रवण क्षमता का श्रवण प्रवर्धक उपकरणों द्वारा उपयोग कर एवं वाणी वाचन के द्वारा, वाणी उच्चारण कौशल विकसित करने पर जोर दिया जाता है। इसका मानना है कि भाषा का विकास सुनकर व बोलकर होना चाहिए इसमें संकेत भाषा को बढ़ावा नहीं दिया जाता है। किन्तु प्राकृतिक भाव–भंगिमा का उपयोग किया जा सकता है। सम्प्रेषण के इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य सुनने वाले समुदाय में समेकन हेतु श्रवण बाधित बच्चों में आवश्यकतानुरूप वाणी एवं सम्प्रेषण कौशल का विकास करना है।

(2) हस्तचालित सम्प्रेषण– इस सम्प्रेषण विकल्प को सैद्धान्तिक रूप में मैनुआलिज्म (Manualism) नाम से जाना जाता है। मैनुआलिज्म का प्रारम्भ 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में एब्बे डी एलइप्पी के द्वारा पेरिस में नेशनल स्कूल फॉर द डेफ की स्थापना कर किया गया था। इस सम्प्रेषण में मुख्यतः हस्तचालित भाषा का प्रयोग किया जाता है हस्तचालित भाषा स्वयं की व्याकरणिक व्यवस्था के रूप में एक विकसित भाषा है। संकेत भाषा बधिर समुदाय में व्यापक रूप से प्रयोग की जाती है। यह एक स्वाभाविक दृश्य भाषा है। यह बधिर व्यक्तियों के सम्प्रेषण हेतु एक सुगम्य माध्यम है। इसमें मौखिक भाषा विकसित करने पर जोर नहीं दिया जाता है। इस माध्यम का प्राथमिक उद्देश्य प्रभावशाली रूप से बोलना नहीं सीख पाने की स्थिति में बच्चों को सम्प्रेषण के योग्य बनाना है।

(3) द्विभाषिक सम्प्रेषण– इसे सैद्धान्तिक रूप में एजुकेशनल बिलिन्गुअलिज्म (Educational Bilingualism) नाम से जाना जाता है। इस माध्यम का प्रारम्भ जेम्स कमिन्स ने 1976 ई० में किया था। द्विभाषिक सम्प्रेषण के माध्यम में बच्चों को प्राथमिक भाषा के रूप में संकेत भाषा सिखाई जाती है और मौखिक भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिखाई जाती है। यह विकल्प बधिर समुदाय व सुनने वाले समुदाय, दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य बच्चों को द्विभाषिक बनाना है। जिससे वे सांकेतिक भाषा एवं मौखिक भाषा, दोनों में सक्षम व निपुण हो सकें और अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

(4) समग्र सम्प्रेषण– समग्र सम्प्रेषण को सैद्धान्तिक रूप में टोटल कम्युनिकेशन (Total Communication) नाम से जाना जाता है। इस माध्यम का विकास डेविड डेंटन द्वारा मेरिलैण्ड स्कूल फॉर द डेफ, यू०एस० में सन 1967 ई० में किया गया था। समग्र सम्प्रेषण में सम्प्रेषण के सभी साधनों जैसे– करवर्तनी, संकेत, प्राकृतिक भाव–भंगिमा, वाणी–वाचन, ओष्ठ पठन, शारीरिक भाषा, लिखित एवं मौखिक भाषा आदि का प्रयोग किया जाता हैप्। इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों एवं उनके साथ सम्प्रेषण करने वाले व्यक्तियों के लिए एक सरल सम्प्रेषण विधि उपलब्ध कराना है। इसमें व्यक्ति वाणी और संकेत के साथ ही अन्य दृश्य व प्रासंगिक माध्यमों का उपयोग कर सकता है। इस विकल्प का मुख्य उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों व उनसे संपर्क स्थापित करने वाले व्यक्तियों के लिए सम्प्रेषण का एक सरल माध्यम उपलब्ध कराना है।

सम्प्रेषण हेतु कुछ कृत्रिम व्यवस्थाएँ– उपर्युक्त सम्प्रेषण विकल्पों के अतिरिक्त कुछ कृत्रिम व्यवस्थाएँ भी हैं, किन्तु ये वास्तविक भाषाएँ नहीं हैं। कुछ कृत्रिम व्यवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(1) करवर्तनी– करवर्तनी से तात्पर्य उन वर्तनियों से है, जिन्हें एक हाथ अथवा दोनों हाथों की उँगलियों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। करवर्तनी के उदहारण निम्नलिखित हैं–

(iv) अमेरिकन संकेत भाषा (ASL)– इसमें अंग्रेजी वर्णों (A से Z तक) को एक हाथ की उँगलियों के माध यम से व्यक्त किया जाता है।

(ब) ब्रिटिश संकेत भाषा (BSL)– इसमें अंग्रेजी वर्णों (A से Z तक) को दोनों हाथों की उँगलियों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

(स) भारतीय संकेत भाषा (ISL)– इसमें अंग्रेजी वर्णों (अ से ज्ञ तक) को एक हाथ की उँगलियों के माध यम से व्यक्त किया जाता है।

(2) क्यूड स्पीच– क्यूड स्पीच बधिर या सुनने में कठिनाई वाले बच्चों हेतु ध्वनि आधारित सम्प्रेषण की एक

व्यवस्था है। इस सम्प्रेषण व्यवस्था का प्रतिपादन ओरिन कॉर्नेट ने सन 1966 ई० में गेलाऊडेट कॉलेज, वाशिंगटन डी०सी० में किया था। इस विधि में हाथ की आठ आकृतियों को चार स्थानों के संयोजन एवं वाणी द्वारा स्वाभाविक मुख गतिशीलता के माध्यम से मौखिक भाषा की ध्वनियों में अंतर कराया जाता है। क्यूड स्पीच भाषा प्रकट करने का एक माध्यम हैय यह स्वयं में एक भाषा नहीं है।

(3) रोचेस्टर विधि— रोचेस्टर विधि श्रवण बाधित बच्चों को ए०एस०एल० करवर्तनी और मौखिक भाषा के माध यम से पढ़ाने की एक विधि है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना है। इस विधि को सर्वप्रथम रोचेस्टर स्कूल फॉर द डेफ, न्यूयॉर्क में सन 1886 ई० में इसी विद्यालय के अधीक्षक प्रोफेसर जीनस फ्रीमैन वेस्टरवेल्ट द्वारा लागू किया गया था।

(4) मेकाटोन— मेकाटोन उन व्यक्तियों के लिए एक भाषा कार्यक्रम है जो दक्षतापूर्ण बोलकर सम्प्रेषण नहीं कर सकते हैं। उनके सम्प्रेषण को अर्थ प्रदान करने के लिए इसे तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम का नाम यू०के० के वाणी और भाषा चिकित्सक मारग्रेट वॉकर के पहले अक्षर से रखा गया थाय जिन्होंने इस कार्यक्रम को बनाने में सहायता की थी। इस कार्यक्रम में मौखिक भाषा के सहयोग के लिए वाणी के द्वारा बोले गए शब्दों के क्रमानुसार संकेत और प्रतीकों को प्रस्तुत किया जाता है।

(5) साईनअलोंग— साईनअलोंग एक संकेत शब्द है। यह ब्रिटिश संकेत भाषा के सम्प्रेषण व्यवस्था पर आधारित है और मौखिक शब्दों को क्रमानुसार प्रयोग किया जाता है। यह केन्ट स्पेशल स्कूल, यू०के० में बनाया गया था। इसमें संकेत व शब्दों के मध्य वाणी, संकेत, शारीरिक भाषा, चेहरे के हाव—भाव, आवाज की शैली को जोड़कर प्रयोग किया जाता है, जिससे सम्प्रेषण विकसित हो सके।

(6) पजेट गोरमन— पजेट गोरमन संकेत व्यवस्था को पजेट गोरमन साईंड स्पीच के नाम से भी जाना जाता है। यह व्यवस्था वाणी अथवा सम्प्रेषण की कठिनाई वाले बच्चों के लिए बनाया गया है। इस व्यवस्था का विकास सन 1930 ई० में सर रिचर्ड पजेट ने विकसित किया था। यह अंग्रेजी भाषा की हस्तचालित संकेतबद्ध, संगठित संकेत व्यवस्था है इस व्यवस्था में 37 मूलभूत संकेत और 21 मानकीकृत हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। जोकि संयुक्त रूप से अंग्रेजी भाषा के शब्दों के वृहद् शब्दकोश जिसमें शब्द प्रत्यय और क्रिया काल सम्मिलित हैंय को प्रस्तुत करते हैं।

(7) साइनिंग इक्जैक्ट इंग्लिश— साइनिंग इक्जैक्ट इंग्लिश, अंग्रेजी के शब्दकोश एवं व्याकरण को प्रस्तुत करने की सटीक व्यवस्था है। इस व्यवस्था का सृजन सन 1971 ई० में किया गया था। यह व्यवस्था अंग्रेजी शब्दों के मोर्फीम्स पर आधारित है। इसका संकेत शब्दकोश अमेरिकन साइन लैंगुएज पर आधारित है किन्तु इसमें सुधार किया गया है। अब अमेरिकन साइन लैंगुएज में चार घटकों को अंग्रेजी के शब्दों को समरूपता देने के उद्देश्य से जोड़ा गया हैं। ये चार घटक हैं— संकेत व हाथ की स्थिरता एवं सक्रियता, हथेली का स्थापन, शरीर के प्रदर्शन का स्थान, एवं प्रदर्शनकर्ता की गतिशीलता।

(8) संयुक्त सम्प्रेषण तकनीक— इस तकनीक को सिमकोम अथवा साईंड सपोर्टेड स्पीच तकनीक के नाम से जाना जाता है। यह बधिर, सुनने में कठिनाई वाले बच्चों अथवा संकेत भाषा का समर्थन करने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रयोग किया जाता है। इसमें मौखिक भाषा और हस्तचालित भाषा के भिन्न रूपों, जैसे— अंग्रेजी और हस्तचालित संकेतबद्ध अंग्रेजी को संयुक्त रूप में प्रयोग करते हैं।

श्रवण बाधितों की भाषा क्षमता पर सम्प्रेषण के विकल्पों का प्रभाव

भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। यह वाणी के माध्यम से सम्प्रेषण हेतु प्रकट होती है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा हम आपस में वैचारिक आदान—प्रदान करते हैं। भाषा के तीन रूप हैं— मौखिक, लिखित एवं सांकेतिक। भाषा को सुनकर, पढ़कर, छूकर व देखकर ग्रहण किया जा सकता है तथा बोलकर, लिखकर व शारीरिक प्रक्रिया द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। भाषा का व्याकरणिक रूप उसे अर्थपूर्ण सम्प्रेषण के योग्य बनाता है।

सुनना एवं बोलना एक स्वभाविक प्रक्रिया है बच्चे सुनकर बोलना सीखते हैं। यदि बच्चे को सुनने में कठिनाई है, और उसकी शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप नहीं हुआ है, तो उसमें वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण का विकास एक समान आयु वर्ग के सुनने वाले बच्चे की तुलना में कम होगा५। इस कमी की भरपाई के लिए अन्य महत्वपूर्ण प्रयासों के साथ ही सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन में भी अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए। सम्प्रेषण के विकल्पों का सीधा प्रभाव भाषा क्षमता पर पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र, (2006) के अनुसार सभी बधिर एवं सुनने में कठिनाई वाले बच्चों को उस भाषा और सम्प्रेषण के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जो उनके वैयक्तिक विकास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो।

मौखिक सम्प्रेषण का भाषा क्षमता पर प्रभाव

मौखिक सम्प्रेषण में वाणी के द्वारा सम्प्रेषण पर जोर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में भाषा क्षमता का स्तर अच्छा होना आवश्यक है। भाषा क्षमता का स्तर अच्छा होना इस बात पर निर्भर करता है बच्चे की श्रवण क्षमता का स्तर कितना है, उसमें कितनी श्रवण क्षमता अवशेष है, और उस अवशेष श्रवण क्षमता का किस प्रकार उपयोग किया जा रहा है। विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि, इस विकल्प में वही बच्चे अधिक सफल होते हैं, जिनकी अवशेष श्रवण क्षमता का उपयोग सही ढंग से किया गया हो एवं जिनके श्रवण प्रवर्धक उपकरण प्रभावी ढंग से कार्य कर रहे हों। यह इस पर भी निर्भर करता है कि उसके शिक्षक उसे किस प्रतिबद्धता के साथ शिक्षित–प्रशिक्षित कर रहे हैं व उसके अभिभावक उसे किस स्तर का सहयोग दे रहे हैं। इस विकल्प के द्वारा शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चों की मौखिक एवं लिखित भाषा की क्षमता का स्तर अन्य विकल्पों से शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चों की भाषा के स्तर की तुलना में अच्छी पायी गयी है।

हस्तचालित सम्प्रेषण का भाषा क्षमता पर प्रभाव

हस्तचालित सम्प्रेषण में संकेत भाषा का प्रयोग किया जाता है। मौखिक सम्प्रेषण पर जोर नहीं दिया जाता है। यह विकल्प उन बच्चों के लिए अधिक उपयुक्त है, जिनमें श्रवण दोष का स्तर गम्भीर अथवा अति गम्भीर है एवं जिन्हें श्रवण प्रवर्धक उपकरणों से लाभ नहीं होता है। ऐसे बच्चों को संकेत भाषा में शिक्षित–प्रशिक्षित किया जाता है। संकेत भाषा भी व्याकरण संवत एक पूर्ण भाषा है। किन्तु इस विकल्प से शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चों की मौखिक भाषा का स्तर अन्य माध्यमों से शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चों की तुलना में निम्न स्तर का होता है तथा लिखित भाषा में व्याकरणिक त्रुटियाँ अधिक पायी जाती हैं। मौखिक भाषा के अभाव में यह बच्चे सुनने–बोलने वाले समाज अर्थात समाज की मुख्य धारा से कट जाते हैं। मौखिक एवं लिखित भाषा के परीक्षणों में इस विकल्प से शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चे अन्य विकल्प से शिक्षित–प्रशिक्षित बच्चों की तुलना में उत्कृष्ट उपलब्धि नहीं दर्शा पाते हैं।

द्विभाषिक सम्प्रेषण का भाषा क्षमता पर प्रभाव

इस विकल्प का उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों को सुनने–बोलने वाले समुदाय व बधिर समुदाय अर्थात् दोनों ही समुदायों में सम्प्रेषण के योग्य बनाना है। श्रवण बाधित बच्चों को मौखिक भाषा व सांकेतिक भाषा, दोनों ही भाषाओँ का ज्ञान दिया जाता है। यह विकल्प एक प्रकार से मौखिक सम्प्रेषण एवं हस्तचालित सम्प्रेषण के बीच मध्यस्थता की भूमिका निभाता है। इस विकल्प में बच्चों को दोहरा परिश्रम करना पड़ता है। एक ओर जहाँ उसे लिखित–मौखिक भाषा सीखनी पड़ती है तो वहीँ दूसरी ओर उसे सांकेतिक भाषा भी सीखनी पड़ती है। इस स्थिति में बच्चों को दोनों ही भाषाओँ में पूर्ण निपुणता प्राप्त नहीं हो पाती है। परिणामतः इस विकल्प वाले बच्चों में लिखित–मौखिक भाषा कि तुलना में सांकेतिक भाषा का विकास अधिक अच्छे ढंग से हो जाता है। क्योंकि श्रवण बाधितइंकीपज बच्चे लिखित–मौखिक भाषा की अपेक्षा सांकेतिक भाषा में स्वयं को अधिक सहज अनुभव करते हैं।

समग्र सम्प्रेषण का भाषा क्षमता पर प्रभाव

सम्प्रेषण का यह विकल्प उद्देश्य प्राप्ति पर अधिक जोर देता है। इसका मानना है कि उद्देश्य किस माध्यम से प्राप्त किया जाता हैय यह महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण यह है कि बच्चों में विकास होना चाहिए। यह विकल्प यह भी मानता है कि इसमें बच्चे वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण के विकास के उद्देश्य से अनेक विधाओं में पारंगत हो जाते हैं। बच्चे वाणी तथा संकेत दोनों विधाओं का लाभ उठा पाते हैं। बच्चों के पास वाणी तथा संकेत दोनों ही विधाओं के प्रयोग का विकल्प खुला होता है। किन्तु इस विकल्प में वाणी व संकेत व्यवस्था साथ–साथ चलते हैं, हर एक बच्चे की श्रवण क्षमता, वाणी क्षमता व एक ही शब्द पर संकेत भिन्न हो सकते हैं इसलिए पठन–पाठन में समस्या आती है। इसमें शिक्षण के दौरान बच्चों तथा अध्याकों को एक साथ अनेक पहलुओं पर कार्य करना पड़ता है। जैसे– श्रवण प्रवर्धक यन्त्र–उपकरण का उपयोग, वाणी वाचन करना, संकेतों का प्रयोग करना, पाठ्य–पुस्तक का उपयोग करना, श्यामपट्ट कार्य करना, सहायक सामग्री का प्रयोग करना आदि, जिससे पठन–पाठन में सहजता नहीं रहती है जिस कारण बच्चों की शाब्दिक एवं आशाब्दिक भाषा क्षमता भी प्रभावित होती है।

सम्प्रेषण के सभी विकल्प स्वयं में परिपूर्ण हैं। श्रवण बाधित बच्चों की आवश्यकता एवं क्षमता के अनुरूप उचित विकल्प के चयन की आवश्यकता है जिससे उन बच्चों में वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण का समुचित विकास हो सके।

सन्दर्भ सूची

- Bienvenu, MJ- (2003)- When fingerspelling replace signs: remembering an encounter with Visible English- Odyssey-
- Darwin, C-R-(1872)-The EÛpressions of the emotions in man and animals-Londan: John Marray-1st edition-
- DSE (HI) Manual (2006)- Language and Communication-Rehabilitation Concil of India- Kanishka Publishers] New Delhi-
- Lynas] Windy (1994)- Commonication Options- Whurr Publication England-
- Marschark, Marc, Lang, Harry G- and Albertini, John A - (2002)- Educating Deaf Students: From Research to Practice- New York: OÛford University Press-
- Musselman, Carol - (2000) - How Do Children Who Can*t Hear Learn to Read an Alphabetic Script\ A Review of the Literature on Reading and Deafness- Journal of Deaf Studies and Deaf Education- 5: 9&31
- Paul] Peter, V-and Quigly, Stephen P-(1994)- Language and Deafness- Singular Publishing: California-
- Quigly, Stephen P- and Kretshmer Robert E- (1982), The Education of the Deaf Children: University of Park Press-
- Rosenberg & Naparsteck, Ruth - (2002)- The Rochester School for the Deaf- Rochester History] LXIV: 1&23-
- United Nations (2006 & 2007)- Convention on the Rights of Persons with Disabilities- United Nations-osclkbV~l (Websites)
- https://en-wikipedia-org/wiki/Bilingual%E2%80%93bicultural_education
- https://en-wikipedia-org/wiki/Manualism
- https://en-wikipedia-org/wiki/Maryland School_for_the_Deaf
- https://en-wikipedia-org/wiki/Oralism
- https://en-wikipedia-org/wiki/TotalCommunication
- https://hi-wikipedia-org/wiki/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A4%BE
- https://www-agbell-org/Document-aspÛ\id144

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

11

समावेशी भारत की प्रमुख समस्याएँ–गरीबी, बेरोजगारी एवं असमानताएँ (विशेष संदर्भ)

ममता यादव
शोध छात्रा–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 श0मि0रा0पु0. विश्वविद्यालय, लखनऊ।

परिवर्तन प्रकृति के अनिवार्य नियम के रूप में सम्पूर्ण सृष्टि सम्पूर्ण समाज में विद्यमान है। जो समाज जितना अधिक गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील होगा उसमें उतनी ही अधिक समस्याएँ विद्यमान होंगी। समाज का ताना–बाना इतना जटिल है, कि इसकी इकाई में होने वाला परिवर्तन अन्य इकाईयों को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन अति तीव्र गति से हो रहा है। इस तरह बदलते आधुनिक समाज के स्वरूप ने देश में अनेक समस्यायें उत्पन्न की हैं जिनसे देश ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो .चुका है, और अब ऐसा लगता है कि समस्या विहीन समाज की कल्पना करना असंभव प्रतीत होता है। वर्तमान समय में हमारा देश अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है जिसमें गरीबी, बेरोजगारी, असमानता इत्यादि समस्याएँ सम्मिलित हैं।

गरीबी

श्रीमती बीना एन्सटे का यह कथन– ''भारत एक समृद्ध राष्ट्र है, परन्तु यहां निर्धन जनता निवास करती है।'' भारत के संदर्भ में बिल्कुल ही उचित एवं समीचीन प्रतीत होता है। भारत प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु आर्थिक विकास में अनुकूल प्रवृत्ति रखती है।इसके साथ–साथ भारत में मानवीय संसाधन भी विद्यमान है। फिर भी भारत में निर्धनता की स्थिति विद्यमान है। भारत में नियोजन–प्रक्रिया की शुरूआत ही इस लक्ष्य से प्रेरित होकर की गयी। आर्थिक विकास का अधिकाधिक लाभ अपेक्षाकृत समाज के गरीब एवं पिछड़े वर्ग के लोगों को मिले तथा समाज से निर्धनता को समूल नष्ट किया जा सके। पांचवी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन को प्रमुख लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया था। यही नहीं 1971 में लोकसभा के आम चुनाव में श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। परन्तु दुर्भाग्य है कि भारत में गरीबी की दिशा में उठाये गये कदम अभी भी सफलता की मंजिल से कोसों दूर हैं।

निर्धनता वह परिस्थिति है जिसमें लोग जीवन के आधारभूत जरूरतों के लिए जूझते रहते हैं। जैसे–अपर्याप्त भोजन, वस्त्र, मकान भारत में ज्यादातर लोग ठीक ढंग से दो वक्त की रोटी भी नहीं हासिल कर सकते, वो सड़क किनारे सोते हैं और गंदे कपड़े पहनते हैं। वो उचित स्वस्थ पोषण, दवा और दूसरी जरूरी चीजें नहीं पाते हैं। शहरी जनसंख्या में बढ़ोत्तरी के कारण शहरी भारत में गरीबी बढ़ी है क्योंकि नौकरी और धन सम्बन्धी क्रियाओं के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से लोग शहरों और नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। लगभग 8 करोड़ लोगों की आय गरीबी रेखा से नीचे है और 4.5 करोड़ शहरी लोग सीमा रेखा पर हैं। झुग्गी, झोपड़ी में रहने वाले अधिकतर लोग अशिक्षित होते हैं कुछ कदमों के उठाये जाने के बावजूद गरीबी को हटाने के संदर्भ में कोई भी संतोष जनक परिणाम नहीं दिखाई देता है। भारत में गरीबी बहुत व्यापक है। जहां कुछ अनुमानों के आधार पर दुनिया की सारी आबादी का तीसरा हिस्सा रहता है। योजना आयोग के साल 2009–10 के गरीबी आंकड़े कहते हैं कि पिछले पांच साल के दौरान देश में गरीबी 37.2 प्रतिशत से घटकर 29.8 प्रतिशत पर आ गई है। यानि अब शहर में 28 रूपये 65 पैसे प्रतिदिन और गाँवों में 22 रूपये 42 पैसे खर्च करने वाले को गरीब नहीं कहा जा सकता। वहीं पर वर्ष 2011 मई में विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में सामने आया था कि गरीबी से लड़ने के लिए भारत सरकार के प्रयास पर्याप्त

नहीं हो पा रहे हैं। योजना आयोग के मुताबिक यदि शहरी व्यक्ति के द्वारा प्रतिदिन 32 रूपये और ग्रामीण व्यक्ति के द्वारा 26 रू0 तक खान–पान पर खर्च किया जा रहा है तो वह गरीब नहीं है। इस प्रकार भारत में गरीबी पर विभिन्न आंकड़े आ चुके हैं। भारत में लगातार मंहगाई में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। कई विश्लेषकों का कहना है कि ऐसे में मासिक कमाई पर गरीबी रेखा के आंकड़े तय करना जायज नहीं है।

गरीबी लोगों को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। गरीबी के कारण व्यक्ति को उचित शिक्षा भी प्राप्त नहीं हो पाती है। मुद्रा अभाव केकारण ही आहार और पर्याप्त पोषण की अपर्याप्त उपलब्धता जो ढेर सारी खतरनाक और संक्रामक बीमारियों को जन्म देती है। गरीबी ही बड़े स्तर पर अशिक्षा को जन्म देते हुए बहुत कम उम्र में बहुम कम कीमत पर बालश्रम जैसी समस्या को जन्म देती है। निर्धनता लोगों के आम जीवन को प्रभावित करते हुए इच्छा के विपरीत जीवन जीने को मजबूर करती है। यह लैंगिक असमानता को भी जन्म देती है जिससे महिलाओं का जीवन बड़े स्तर पर प्रभावित होता है।

निर्धनता किसी भी देश को अविकसित श्रेणी की तरफ ले जाती है। निष्कर्ष रूप में हम देखें तो यह किसी भी देश को कई तरह से प्रभावित करती है जैसे– अशिक्षा, असुरक्षित आहार एवं पोषण, बालश्रम, खराब घर, गुणवत्ता हीन जीवन शैली, बेरोजगारी, अस्वच्छता, लैंगिक असमानता आदि।

इस ग्रह पर मानवता की अच्छाई के लिए तवरित आधार पर गरीबी की समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्न करना होगा। मेरे विचार से कुछ समाधान जो गरीबी की समस्या को सुलझाने में बड़ी भूमिका अदा कर सकते हैं–

– अशिक्षित वयस्कों को जीवकोपार्जन हेतु जरूरी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
– कृषि प्रधानता होने के कारण उत्तम कृषि के लिए कृषक को उचित और जरूरी सुविधायें मिलनी चाहिए।
– निरन्तर बढ़ रही जनसंख्या और इसी तरह से गरीबी को जांचने के लिए लोगों के द्वारा परिवार नियोजन का अनुसरण करना चाहिए।
– गरीबी मिटाने हेतु सम्पूर्ण धरातल से भ्रष्टाचार जैसी महामारी का खात्मा किया जाना चाहिए।
– रोजगार के नए अवसर तलाशे जाए जहां सभी वर्गों के लोग एक साथ कार्य कर सकें।

गरीबी निवारण कार्यक्रमों में आर्थिक वृद्धि, रोजगार सृजन सामाजिक स्थानिक समानता, पर्यांवररण सुस्थिरता और राजनीतिक स्थिरता के मुद्‌दों पर न्यायपूर्ण ढंग से कार्यवाही होनी चाहिए। सर्वेक्षण के अनुसार लोगों को गरीबी में पड़ने से बचाने और उन्हें इससे बाहर लाने के प्रयासों में असमानता है। गरीबी उन्मूलन केनाम पर चल रहे अनेक कार्यक्रम अपर्याप्त और कमतर हैं।

बेरोजगारी

बेरोजगारी आज विकासशील देशों की प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर आयी है। बेरोजगारी का अर्थ है काम करने योग्य और काम करने के इच्छुक लोगों के लिए काम का अभाव। बेरोजगारी से आज सम्पूर्ण विश्व जूझ रहा है। इस समस्या की विकरालता सामान्यतः सभी विकासशील देशों के लिए गंभीर चिन्ता का विषय है वहीं विकसित देश भी इससे अछूते नहीं हैं। इस समस्या के समापन के लिए जितने भी प्रयास किए गए हैं वे सभी समस्या की भयावहता की तुलना में अत्यधिक अल्प हैं। यद्यपि बेरोजगारी अशिक्षित और शिक्षित वर्ग इससे सर्वाधिक पीड़ित है। आधुनिक समाज की यह विकराल और विसंगतियां इसी शिक्षित बेरोजगारी के दुष्परिणाम हैं। बेरोजगारी की यह विकराल समस्या वैयक्तिक जीवन के साथ साथ पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित कर रही है, साथ ही अनेक समस्याओं जैसे आत्महत्या, अपराध, वेश्यावृत्ति को भी जन्म दे रही है। इसने व्यक्ति के नैतिक पतन को चरम सीमा पर पहुंचा दिया है। इसने समाज की प्रगति में अनेक गतिरोध पैदा कर दिये हैं।

बेरोजगारी देश के सम्मुख एक प्रमुख समस्या है जो प्रगति के मार्ग को तेजी से अवरूद्ध करती है। यहाँ पर बेरोजगार युवक–युवतियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। स्वतंत्रता के कई वर्षों बाद भी सभी को रोजगार देने के अपने लक्ष्य से हम मीलों दूर हैं।

बेरोजगारी की बढ़ती समस्या निरंतर हमारी प्रगति शांति और स्थिरता के लिए चुनौती बन रही है। हमारे देश में बेरोजगारी के अनेक कारण हैं अशिक्षित बेरोजगार के साथ शिक्षित बेरोजगारों की संख्या भी निरन्तर बढ़ रही है। देश के 90 प्रतिशत किसान अपूर्ण या अर्द्ध बेरोजगार हैं जिनके लिए वर्ष भर कार्य नहीं होता है। वे केवल फसलों के समय ही व्यस्त रहते हैं। शेष समय में उनके करने के लिए खास कार्य नहीं होता है। यदि हम बेरोजगारी के कारणों का अवलोकन करें तो हम पाएंगे कि इसका सबसे बड़ा कारण देश की निरंतर बढ़ती जनसंख्या है। हमारे संसाधनों की तुलना में जन संख्या वृद्धि की गति कहीं अधिक है। जिसके फलस्वरूप देश का सन्तुलन बिगड़ता जा रहा है।

इसका दूसरा प्रमुख कारण शिक्षा–व्यवस्था है। वर्षों से हमारी शिक्षा पद्धति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति का आधार प्रायोगिक नहीं है। यही कारण है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भी हमें नौकरी नहीं मिल पाती है।

बेरोजगारी का तीसरा प्रमुख कारण हमारे लघु उद्योगों का नष्ट होना अथवा उनके महत्ता का कम होना। इसके फलस्वरूप देश में लाखों लोग अपने पैतृक व्यवसाय से विमुख होकर रोजगार की तलाश में इधर–उधर भटक रहे हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि बेरोजगारी के मूल–भूत कारणों की खोज के पश्चात इसे निदान हेतु कुछ सार्थक उपाय किये जायें इसके लिए सर्वप्रथम हमें छात्र–छात्राओं तथा युवक–युवतियों की मानसिकता में परिवर्तन लाना होगा।

यह तभी प्रभावी हो सकता है जब हम अपनी शिक्षा पद्धति में सकारात्मक परिवर्तन लाएं। उन्हें आवश्यक व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करें,जिससे वे शिक्षा पद्धति में सकारात्मक परिवर्तन लाकर शिक्षा का समुचित प्रयोग कर सकें विद्यालयों में तकनीकी एवं प्रायोगिक कार्य पर आधारित शिक्षा दें, जिससे उनकी शिक्षा का प्रयोग उद्योगों व फैक्ट्रियों में हो सके और वे आसानी से नौकरी पा सकें। देश के विकास और कल्याण के लिए 1951–52 में पंचवर्षीय योजनाओं को आरंभ करने के अवसर पर आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि किसी भी राष्ट्रीय योजना की पहली शर्त सबको रोजगार देना है। यदि योजना से सबको रोजगार नहीं मिलता तो यह एक पक्षीय होगा राष्ट्रीय नहीं। आचार्य भावे की आशंका सत्य सिद्ध हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल से ही बेरोजगारी घटने के स्थान पर निरंतर बढ़ती चली गयी। आज बेरोजगारी की समस्या एक विकराल रूप धारण कर चुकी है।

हमारे देश में बेरोजगारी की इस भीषण समस्या के अनेक कारण हैं। उन कारणों में लार्ड मैकाले की दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति, जनसंख्या की अतिशय वृद्धि, बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना के कारण कुटीर उद्योगों का ह्रास आदि प्रमुख है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में रोजगारोन्मुख शिक्षा व्यवस्था का सर्वथा अभाव है। इस कारण आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के सम्मुख भटकाव के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह गया है। बेरोजगारी की विकराल समस्या के समाधान के लिए कुछ राहे तो खोजनी पड़ेंगी। इस समस्या के समाधान के लिए गंभीर प्रयास किये जाने चाहिए।

भारत में बेरोजगारी की समस्या का हल आसान नहीं है फिर भी प्रत्येक समस्या का समाधान तो है ही। इस समस्या के समाधान केलिए मनोभावना में परिवर्तन लाना आवश्यक है। मनोभावना में परिवर्तन का तात्पर्य है कि किसी कार्य को लघु न समझना।

इसके लिए समाज के लोगों को सरकारी नौकरी की अन्धा धुंध दौड़ को समझते हुए, सामाजिक स्थिति को जानते हुए उन धंधों को भी अपनाने पर बल दिया जाना चाहिए, जिसमें श्रम की आवश्यकता हो। इस अर्थ में घरेलू

उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित करना तथा उन्हें विकसित करना आवश्यक है। शिक्षा नीति में परिवर्तन लाकर इसे रोजगारोन्मुखी बनाने की भी आवश्यकता है। केवल डिग्री ले लेना ही महत्वपूर्ण नहीं, अधिक महत्वपूर्ण है योग्यता और कुशलता प्राप्त करना युवावर्ग की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होनी चाहिए कि वह शिक्षा प्राप्त कर स्वावलम्बी बनने का प्रयास करें। सरकार को भी चाहिए कि योजनाओं में रोजगार को विशेष प्रश्रय दिया जाए। परन्तु सरकार की तमाम नीतियां एवं कार्यान्वयन नाकाफी ही साबित हुए हैं। मतलब साफ है कि सरकार की नीतियों में कहीं न कहीं कोई व्यवहारिक कठिनाई अवश्य हैं। अतः सरकार को चाहिए कि वह इसके निराकरण हेतु एक व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाएं और समस्या को अधिक बढ़ने न दें।

विश्व के दूसरे देशों में बेरोजगारी की समस्या है। पर भारत जितनी उग्र नहीं जनसंख्या के अनुसार भारत विश्व में इसके स्थान पर आता है, चीन पहले स्थान पर है, किन्तु चीन में अब जन संख्या वृद्धि में स्थिरता आयी है। बहुत सम्भावना है कि भारत अगले दशक तक विश्व में जनसंख्या में पहले स्थान पर आ जाये। इस प्रकार बेरोजगारी का पहला कारण बढ़ती जनसंख्या है। इस दिशा में प्रभावी कदम उठाने जरूरी है। हमें अपनी शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाना होगा। प्रशिक्षण केन्द्र व्यवसायिक शिक्षा इत्यादि को प्रोत्साहन देना होगा। स्वरोजगार के इच्छुक युवाओं को कर्ज एवं मार्गदर्शन के रूप में उचित मदद मिलनी चाहिए। देश में उद्योगों का विकास करना चाहिए, ताकि रोजगार के अवसर बढ़े देश में विदेशी पूंजी उन्नत तकनीक को आकर्षित करना चाहिए, जिससे रोजगार में वृद्धि हो। बेरोजगारी कई समस्याओं को जन्म देती है जैसे–भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अराजकता इत्यादि। युवा वर्ग की शक्ति एवं ऊर्जा के सही प्रयोग के लिए उन्हें शिक्षा और उचित मार्गदर्शन मिलना जरूरी है।

असमानताएँ

हमारी सम्पूर्ण प्रकृति तमाम विविधताओं से भरी पड़ी है। भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों, पेड़–पौधों, नदी, नालों, स्थलाकृतियों आदि के रूप में यह विविधिताओं की प्रकृति का सौन्दर्य है। हमारा समाज भी भिन्न–भिन्न रंग रूप, क्षमता, प्रकृति, भाषा, वेशभूषा, खान–पान, आचार व्यवहार आस्था मान्यता धर्म–सम्प्रदाय आदि से सम्बन्धित विविध व्यक्तियों व समुदायों से समृद्ध है। यही विविधता हमारे समाज की खूबसूरती है। हमारे समाज में विद्यमान विभिन्न समुदाय व लोगों की क्षमताएं व खासियत अलग अलग हैं एक लोकतांत्रिक सत्ता व व्यवस्था की यह भूमिका होनी चाहिए कि इन विविध जनों व समुदाय के विकसने व एक बेहतर जीवन जीने की व्यवस्थाओं को बिना भेद–भाव के सुलभ कराए परन्तु हमारे समाज ने मानव सभ्यता के विकास क्रम में सत्ता व व्यवस्था के भिन्न–भिन्न रूपों को देखा व उन वर्चस्ववादी ताकतों के अनुरूप जीने को बाध्य हुआ। सहस्राब्दियों तक सुविधाहीन धन प्रतिष्ठा व ताकत से महरूम एक बड़े वर्ग को सुविधायुक्त, बेहतर एवं सम्मानित जीवन जीने की व्यवस्थाओं से दूर रखा गया। सुविधाओं से वंचित किए जाने से ही असमानता वर्चस्ववादी ताकतों के प्रत्यक्ष या परोक्ष व्यवहार द्वारा विकास के साधनों के असमान वितरण से उत्पन्न हुई वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति एक ही समाज में भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में रहने को बाध्य होते हैं। दूसरे ढंग से देखा जाय तो असमानता सत्ता व वर्चस्ववादी ताकतों का व्यवहार भी है और समाज की स्थिति भी। विकास हेतु आवश्यक सुविधाओं से वंचित होने तथा प्राकृतिक संसाधनों के असमान वितरण से उत्पन्न हुई स्थिति है। देश में असमानता के कई रूप व्याप्त हैं जेसे – सामाजिक असमानता, आर्थिक असमानता, शैक्षिक असमानता, क्षेत्रीय असमानता, औद्योगिक असमानता इत्यादि। वर्तमान में असमानता ही देश में सबसे बड़ी समस्या है। हमें इसे खत्म करना होगा। असमानता के विविध रूप देश को कहीं न कहीं विकसित राष्ट्र बनने की राह से भटका रहे हैं।

समाजिक असमानता के कारण ही आज समाज में आपसी प्रेम, भाईचारा, मानवता, इंसानियत और नैतिकता की भावना, खत्म होती जा रही है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाज को जाति और धर्म में बांटना जायज नहीं है। आर्थिक असमानता के कारण ही आज समाज में अमीरों और अरबपतियों की संख्या तो बढ़ रही है परन्तु समाज

के गरीब लोग या तो जिस हाल में थे आज भी वहीं खड़े हैं या नहीं तो और गरीब ही होते जा रहे हैं आर्थिक न्याय ही सामाजिक न्याय की नींव है। आर्थिक न्याय के बिना हम सामाजिक न्याय की कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि वास्तव में हम सामाजिक न्याय के पक्षधर हैं तो हमें आर्थिक न्याय को मजबूत बनाना ही होगा। शैक्षिक असमानता के कारण ही हम समाज में वंचित वर्गों को अच्छी शिक्षा दे पाने में असफल साबित हो रहे हैं। हम जानते हैं कि शिक्षा के बिना किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का विकास हो ही नहीं सकता। शिक्षा ऐसी हो जो हमें सोचना सिखाये, कर्तव्य और अधिकार का बोध कराये, हमें हमारा हक दिलाये और हमें समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदार बनाये। क्या हम ऐसी शिक्षा समाज के सभी वर्गों को दे पाने में सफल साबित हो रहे हैं ?क्षेत्रीय असमानता के कारण ही आज हम देश के सभी भागों खासकर ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने में विफल साबित हो रहे हैं भारत को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिए हमें सूदूरवर्ती गांवों में विकास की किरणों को पहुंचाना होगा। आखिर हम दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, बंगलुरू, अहमदाबाद, पुणे और हैदराबाद के अनुपात में ही अन्य शहरों और गांवों का विकास करने में असफल क्यों साबित हो रहे हैं ?हमें इस पर गंभीरता पूर्वक विचार करना होगा, यदि हम इन्हीं शहरों जैसे और शहर बनाने में कामयाब होते है तो न सिर्फ इन शहरों पर से लोगों का दबाव कम करने में कामयाब होगे बल्कि हमें इस तरह के और कई अन्य शहर भी विकसित करने में सफलता मिलेगी जो क्षेत्रीय असफलता को खत्म करने में मील का पत्थर साबित होगा। औद्योगिक असमानता के कारण ही आज हमें कई गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है ऐसा देखा जा रहा है कि जिस शहर में पहले से ही बहुत सारे उद्योग धंधे लगे हुए हैं, आज भी उन्हीं जगहों पर नए–नए उद्योग और कारखाने लगते जा रहे हैं। हमें नए–नए औद्योगिक शहर बसाने की जरूरत है इसके दो फायदे होंगे। एक तो पुराने औद्योगिक शहरों पर जो लोगों का बोझ बढ़ता जा रहा है, वह कम होगा और दूसरा हम नए औद्योगिक शहर बसाने में भी कामयाब होंगे। इसी तरह बिजली, पानी, सड़क, स्वास्थ्य, रेल और कृषि आदि अनेक क्षेत्रों में असमानताओं से आमजनों को जूझना पड़ रहा है। कहीं चौबीस घंटे बिजली तो कहीं आज भी लोग लालटेन और ढिबरी युग में जीने को विवश हैं। कहीं पानी ही पानी तो कहीं पानी के लिए हाहाकार, कहीं पक्की सड़कों की भरमार है तो कहीं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी नहीं, कहीं रेलवे लाइनों की जाल तो कहीं रेलवे का घोर अभाव, कहीं किसानों के लिए आधुनिक संसाधनों की भरमार तो कहीं किसान बेहाल, यह असमानता उस घुन की तरह है जो अन्दर ही अन्दर समाज को खोखला बनाती जा रही है। हमें हर हाल में इस असमानता को समाप्त करने के लिए कड़े प्रयास करने होंगे। तभी हम स्वस्थ समाज का निर्माणकर देश को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में स्थान दिला सकेंगे। गरीबी, बेरोजगारी एवं असमानता जैसी समस्याएं केवल एक व्यक्तिकी समस्या नहीं है बल्कि ये राष्ट्रीय समस्याएं हैं, जो देश को और कमजोर बनाने का कार्य कर रही हैं। हम सभी समस्याओं को त्वरित आधार पर कुछ प्रभावी तरीकों से सुलझाया जाना चाहिए। सरकार द्वारा गरीबी, बेरोजगारी और असमानता को हटाने के लिए समय–समय पर विभिन्न प्रकार के कदम उठाये गये लेकिन इनसे विशेष कोई भी स्पष्ट परिणाम देखने को नहीं मिले। अर्थव्यवस्था, समाज और देश के चिरस्थायी और समावेशी वृद्धि के लिए इनका उन्मूलन अति आवश्यक है। भारत में गरीबी, असमानता, बेरोजगारी कुछ प्रभावकारी कार्यक्रमों के प्रयोगों द्वारा मिटायी जा सकती है, हालांकि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केवल सरकार के द्वारा ही नहीं बल्कि सभी के समन्वित प्रयास की जरूरत है।

❑❑

12

दिव्यांगजन सशक्तिकरण एवं पुनर्वास : वैधानिक अधिकार

श्रीमती नीलम सिंह
मनोवैज्ञानिक, विशेष शिक्षा संकाय
डी0एस0एम0एन0आर0 विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत एक प्रजातन्त्रात्मक और विविधताओं से परिपूर्ण देश है जिसमें लगभग 121 करोड़ लोग निवास करते है जिसमें से 2.68करोड़ दिव्यांगता की श्रेणी में आते है। प्रजातन्त्रात्मक देश होने के नाते भारत में प्रत्येक व्यक्ति के लोक कल्याण और अधिकारों को बहुत अच्छे तरीकें से संरक्षित किया जाता है। लोककल्याणकारी और अधिकारों का संरक्षक होने के नाते यहां पर सामान्य और दिव्यांगजनों को समान दृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि जिस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति देश की उन्नति में भागीदार होता है उससे कही बढ़कर एक दिव्यांगजन अपनी भागीदारी निभाता है।

दिव्यांगजनों को समझने से पहले यहां पर दिव्यांगता को समझना बहुत ही आवश्यक है। सरल शब्दों में अगर दिव्यांगता के बारे में बात करे तो यह कहा जा सकता है कि ' जब किसी कार्य को करने या सामाजिक समायोजन करने कि लिए आवश्यक औसत शारीरिक एवं मानसिक क्षमता, सीमा के अधिक कम हो जाए और उन्हें करने में पर्याप्त कठिनाईयॉ आने लगे, तब उसे दिव्यांगता कहा जाता है'।

दिव्यांगजनों के सशक्तीकरण को ध्यान में रखते हुए भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने विकलागंता शब्द हो हटाकर इनके लिए दिव्यांगता शब्द का उपयोग करने को कहा है। निशक्तजन समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता अधिनियम, 1995 में सिर्फ 7 प्रकार की दिव्यांगताओ के बारे में बात की गयी थी परन्तु सन् 2016 में एक अधिनियम पारित करके दिव्यांगताओं की संख्या 21 कर दी गयी है। दिव्यांगजनों के अधिकार अधिनियम 2016 को दिव्यांगताओं की श्रेणी में निम्नलिखित दिव्यांगताओ को शामिल किया है–

1– दृष्टिहीनता
2– अल्पदृष्टि
3– प्रमास्तिष्क अंगघात
4– श्रवणबाधिता बधिर और ऊँचा सुनने वाला
5– गामक बाधा
6– बौनापन
7– बौद्धिक अक्षमता
8– मानसिक रोग
9– स्वलीनता
10– कोढ़ उपचारित व्यक्ति
11– स्नायु दुर्विकार
12– चिरकालिक स्नायुविक स्थिति
13– विशिश्ट अधिगम अक्षमता
14– थैलेसीमिया
15–वाणी एवं भाशा अक्षमता
16– हीमोफीलिया
17– सिकल रस्त कोशिका विकार
18– बहुविकलांगता बधिरान्ध
19– तेजाब पीडित
20– पार्किन्सन्स विकार
21– मल्टीपल स्कलोरोसिस

इस तरह से देखे तो दिव्यांगजनों के अधिनियम 2016 द्वारा अधिक से अधिक दिव्यांगजन को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया गया है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है जिसमें से 2.68 करोड़ दिव्यांग हैं जो सम्पूर्ण जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत है।

जनसंख्या–2011			दिव्यांगजनों की जनसंख्या		
व्यक्ति	महिला	पुरुष	व्यक्ति	महिला	पुरुष
121 करोड़	58.76 करोड़	62.32 करोड़	2.68 करोड़	1.18 करोड़	1.5 करोड़

दिव्यांगताओं को और अधिक अच्छी तरह से दर्शाने के लिए सन् 2011 की जनगणना में विभिन्न दिव्यागंताओं के प्रतिशत को दर्शाया गया है, जो निम्नलिखित है –

क्र0सं0	दिव्यांगता	प्रतिशत
1.	दृष्टिबाधिता	19
2.	श्रवणबाधिता	19
3.	वाणी विकार	7
4.	चलन दिव्यांगता	20
5.	बौद्धिक अक्षमता	6
6.	मानसिक रोग	3
7.	बहुविकलांगता	8
8.	अन्य दिव्यांगताएँ	18

उपरोक्त सारणी के अनुसार सन् 2011 में सिर्फ 8 तरह की दिव्यांगताओं को जनसंख्या का हिस्सा बनाया है लेकिन वर्तमान समय में दिव्यांगजनों के अधिकार अधिनियम – 2016 के पारित हो जाने से दिव्यांगताओं की संख्या 21 हो गयी है जो कि दिव्यांगजनों के सशक्तिकरण में मील का पत्थर साबित होगा।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार, देश के विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में सबसे अधिक प्रतिशत दिव्यांगजन उत्तर प्रदेश में रहते है, जो सम्पूर्ण दिव्यांगता का 15.5 प्रतिशत है।

दिव्यांगजनो के सशक्तिकरण की आवश्यकता – दिव्यांगजनों की दिव्यांगता के कारण समाज में यह भ्रांति विद्यमान रहती है कि वह कोई उत्पादनकारी कार्य नहीं कर सकते हैं, उन्हें बिल्कुल लाचार और अयोग्य समझा जाता है, उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है। जिस कारण समाज से मिलने वाले अधिकारों से वंचित रहकर, अकेले अपना जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

वर्तमान समय की बात करें तो देखने को मिलता है कि सरकार द्वारा दिव्यांगजनों की दशा में सुधार लाने अर्थात उनके सशक्तिकरण के लिए बहुत सारे राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय कानूनों का निर्माण किया जा चुका है। इन कानूनों के पालन से दिव्यांगजनों की स्थिति समाज में बहुत अच्छी हो गयी है। यह अब समाज में उत्पादनकर्ता की भूमिका को बहुत ही अच्छी तरह से निभा रहे हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर दिव्यांगजनों को मिलने वाले कानूनी अधिकार या वैधानिक अधिकारों की बात करें तो यह देखने को मिलता है कि भारतीय संविधान में सामान्य और दिव्यांगजनों, दोनों को अधिकार दिए गये हैं, जिनका हर व्यक्तियों को पालन करना बहुत जरूरी है। इसके अलावा समय– समय पर दिव्यांगजनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बहुत सारे अधिनियम बनाये गये हैं जो कि उनको समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता सुनिश्चित कराते हैं।

अब्राहम मैसलो नामक मनोवैज्ञानिक का मानना था कि व्यक्ति को अच्छा जीवन जीने के लिए कुछ आधारभूत आवश्यकताओं जैसे– शारीरिक आवश्कता, सुरक्षा की आवश्यकता और सम्मान पाने की आवश्यकता आदि की पूर्ति करना बहुत जरूरी है। इनकी पूर्ति कि बिना मनुष्य का जीवन सुगमता से नहीं चल सकता है। इन्हीं मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के द्वारा दिव्यांगजन को अधिकार दिए गये हैं।

वैधानिक अधिकार–भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों (सामान्य और दिव्यांग) को मिलने वाले अधिकारों को वैधानिक अधिकार की श्रेणी में रखा जाता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत दिव्यांगजनो को निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्रदान किए गए है। जिनमें से कुछ निम्नलिखित है–

1. दिव्यांगजनो को सोचने, विचार– अभिव्यक्ति करने, धार्मिक मान्यता रखने का अधिकार, बराबरी के दर्जे का अधिकार और समान अवसर का अधिकार प्राप्त है।
2. संविधान के अनुच्छेद–15 (1) के अनुसार, दिव्यांगो के साथ जाति, लिंग, धर्म, मूल, जनसंख्या आादि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है।
3. अनुच्छेद–15 (2) के अनुसार, दिव्यांगजन को किसी भी सार्वजनिक स्थल, दुकान, होटल, रेस्तंरा, मनोरंजन स्थल पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है। साथ ही सरकारी दफतरों में किसी भी पद पर नियुक्ति से समय किसी भी किस्म का भेदभाव नहीं किया जायेगा।
4. अनुच्छेद–17 के अनुसार, दिव्यांगजन को अस्पृश्य नहीं माना जायेगा, अर्थात इनके साथ छुआछूत नहीं बरती जायेगी।
5. अनुच्छेद–21 के अनुसार, हर व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार है।
6. अनुच्छेद– 23 के अनुसार, दिव्यांगजन को किसी भी व्यक्ति को खरीदा या बेचा नहीं जा सकता और उनसे बेगारी भी नहीं कराई जा सकती है।
7. अनुच्छेद–24 के अनुसार, 14 साल से कम आयु के दिव्यांग बच्चों को किसी काम पर नहीं लगाया जा सकता है।
8. अनुच्छेद–25 के अनुसार, दिव्यांगजन को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार है।
9. किसी परिस्थिति में अगर दिव्यांगजनो के मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है तो उन्हें अनुच्छेद– 32 के तहत न्याय मिलेगा।
10. बौद्धिक रूप से अक्षम दिव्यांगजनो को छोड़कर प्रत्येक दिव्यांग 18 वर्ष की आयु होने पर वोट देने का अधिकार भी रखता है।

उपरोक्त मौलिक अधिकारों के अलावा संविधान में नीति–निर्देशक तत्वों के माध्यम से भी दिव्यांगजन को लाभ मिलता है। नीति– निर्देशक तत्वों के माध्यम से सरकार कल्याणकारी निमय कानून बना सकती है। इसके अलावा कुछ अधिकारों को बहुत ही आवश्यक माना गया है जो कि प्रत्येक मनुष्य को मिलना अत्यधिक आवश्यक है क्योकि इसके आधार पर ही व्यक्ति जीवन को सरलता और सफलतापूर्वक जी सकता है। यह महत्वपूर्ण अधिकार निम्नलिखित है–

शिक्षा सम्बन्धी अधिकार–संविधान के अनुच्छेद–29(2) के अनुसार, सरकार द्वारा स्थापित या प्रबंधित या सरकारी सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्थान में जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय आदि के आधार पर प्रवेश मे किसी किस्म का कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा अर्थात दिव्यांगजन आसानी से कहीं भी शिक्षण प्राप्त कर सकते है।

संविधान के अनुच्छेद– 45 के अनुसार, 14 वर्ष तक की आयु के दिव्यांग और सामान्य बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करायी जाती है।

इसके अलावा सरकार द्वारा समय–समय पर दिव्यांगजनों की शिक्षा के लिए विशेष स्कूल भी खोले गये है, जहाँ उन्हें उनकी दिव्यांगता के अनुसार विशेष सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती है। वर्तमान समय में दिव्यांगों को समावेशी शिक्षा की ओर अधिक से अधिक अग्रसर किया जा रहा है। अर्थात उन्हें सामान्य बच्चों के साथ मिलकर पढ़ने की प्रेरणा दी जाती है ताकि उनका सर्वांगीण विकास हो सके।

स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार–संविधान के अनुच्छेद– 47 के अनुसार दिव्यांगजन को स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार दिये गये है। इसके अलावा समय–समय पर उनके लिए कुछ विशेष कानून भी बनाये गये है जैसे–मानसिक स्वास्थ्य कानून–1987 (मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के इलाज और उनकी देखभाल आदि), निशक्तता अधिनियम–1995 और भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम–1992 में भी दिव्यांगजनो को स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार दिया गया है।

परिवार सम्बन्धी अधिकार–हिन्दू विवाह कानून–1995 के अनुसार, शारीरिक रूप से दिव्यांग कोई भी व्यक्ति विवाह करने और वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के लिए स्वतन्त्र है। बौद्धिक अक्षमता और मानसिक रोगों से ग्रसित व्यक्तियों पर कुछ पाबंदी लगायी गयी है।

अभिभावक कानून–1890 के अनुसार, अगर किसी व्यक्ति की दिव्यांगता इतनी ज्यादा है कि वह अभिभावक का दायित्व नहीं निभा सकता है, तो उसे अभिभावक नहीं नियुक्त किया जा सकता है।

हिन्दू उत्तराधिकार कानून–1956 के अनुसार, दिव्यांगजन भी उत्तराधिकार में मिली संपत्ति के हकदार होते है और साथ ही शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्ति भी वसीयत लिखकर अपनी संपत्ति आगे किसी को दे सकता है।

आयकर सम्बन्धी अधिकार–दिव्यांगजनों को आयकर की धारा–80 यू0 और 80 डी0डी0 के तहत छूट मिलती है। जिसके आधार पर दिव्यांगजनों को अपनी दिव्यांगता को प्रमाणित करते हुए आयकर में छूट मिलती है। यहाँ पर दिव्यांगो को छूट मिलने के साथ ही जिन व्यक्तियों के आश्रित दिव्यांग है, उन्हें भी आयकर में छूट मिलती है।

न्यायिक प्रक्रिया–सामान्य नागरिकों की तरह दिव्यांगों को भी न्यायिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार है। वह भी समय या परिस्थिति आने पर किसी पर मुकदमा चला सकता है और अपने खिलाफ हुए मुकदमें में अपना बचाव भी कर सकता है।

उपरोक्त वैधानिक कानूनों के अलावा समय–समय पर दिव्यांगजनो के कल्याण और उन्हें मुख्य धारा में शामिल करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कानून या अधिनियम भारत सरकार द्वारा पारित किए गये है। जिसमें सबसे पहले दिव्यांगजनो के लिए मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम–1987 है जो मानसिक रोगियों के उपचार व उनकी देखभाल के कानूनों की बात करता है।

सन् 1992 में दिव्यांगजनों के लिए समानता, न्यूनतम मानकों की सुनिश्चितता, शिक्षा की गुणवत्ता व प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता के कारण भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम अस्तित्व में आया।

दिव्यांगजनों के लिए सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम 1995 में आया जिसे निशक्तजन समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता अधिनियम कहा जाता है। यह अधिनियम दिव्यागजनों को दैनिक जीवन में पूर्ण सहभागिता के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने, जीवन के हर क्षेत्र में दिव्यांगता के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव को निषिद्ध करते हुए, दिव्यांगजन के समानता और सम्मान के जीवन को सुनिश्चित करने के लिए पूरी तरह से कटिबद्ध है। इस अधिनियम में 7 तरह की दिव्यांगताओं को शामिलकिया गया है। यहाँ पर दिव्यांगजनो की शिक्षा, रोजगार, दिव्यागताओं के निदान, रोकथाम और साथ ही उनके लिए बाधारहित वातावरण बनाना सुनिश्चित किया गया है।

इस तरह से वर्तमान समय में यह कहा जा सकता है कि भारत सरकार द्वारा दिव्यांगजनों के सशक्तिकरण का हर समय ख्याल रखा गया है और आगे भी रखा जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 2016 में पारित दिव्यागंजनो का अधिकार अधिनियम–2016 है।

पुनर्वास – दिव्यांगजनों को सशक्त बनाने के साथ ही साथ उनके पुनर्वास की बात करे तो वर्तमान समय में वह बहुत सारे विद्यालयों में प्रधानाचार्य और शिक्षक की भूमिका, सरकारी संस्थाओं में निदेशक की भूमिका, प्राइवेट नौकरी रिसेप्सनिस्ट, मॉल मे सेल्समैन आदि की भूमिका बखूबी निभा रहे है। दिव्यांगजनों को रोजगार

मिलना सिर्फ उनके आर्थिक विकास के लिए ही काफी नही है बल्कि इसके आधार पर उनका आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, सामाजिक विकास भी चरम पर पहुँचता है। वह अपने आप को दूसरों पर बोझ न समझकर आत्मनिर्भरता के साथ अपना जीवन व्यतीत करते है।

दिव्यांगजनों का पुनर्वास बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है, जिसकी पूर्ति हेतु समय–समय पर उन्हें रोजगार दिलाने के लिए सरकार द्वारा खुली प्रतियोगिता के जरिये सरकारी पद प्राप्त करने का अवसर, सरकारी क्षेत्र में आरक्षण के जरिये रोजगार, विशेष अभियान द्वारा रोजगार दिलाना, व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों के जरिये रोजगार, दिव्यांगो के लिए विशेष उद्योग आदि अवसर प्रदान कराये जाते है। वर्तमान समय में दिव्यांगजनो को सरकारी नौकरी में आने के लिए 4 प्रतिशत आरक्षण का लाभ दिया गया है, जो कि उनके पुनर्वास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष – 'सशक्तिकरण' एक ऐसा पद है जो कि कहीं न कहीं मनुष्य को अपनी कमजोरियों पर विजय पाकर उन्हें लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। अगर समाज के नजरिये से देखे तो सशक्तिकरण ऐसे व्यक्तियों का किया जाता है जो कि अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठा पाते है या समाज में उनके वजूद को लेकर संशय व्याप्त रहता है।

इस शोध पत्र के माध्यम से दिव्यांगजनों के सशक्तिकरण में मुख्य भूमिका निभाने वाले वैधानिक अधिकारों का संक्षिप्त रूप से प्रस्तुतिकरण किया गया है। इसका कारण यह है कि समाज में रहे वाले अधिकतर व्यक्ति कानूनों से बंधकर ही अन्य व्यक्तियों को उनके अधिकार का लाभ उठाने का मौका देते है।

यहॉ पर यह भी बताने का प्रया किया गया है कि दिव्यांगजन ऐसे व्यक्ति है जो बहुत सारी योग्यताओं और क्षमताओं से युक्त है, लेकिन उनके पास इनकी अभिव्यक्ति के साधन नही है। इसलिए दिव्यागजनों को समाज में पुनर्वासित करने के लिए उन्हें बहुत सारे सरकारी और गैर सरकारी संस्थानो में कार्य करने का मौका मिलना चाहिए ताकि वह भी समाज में अपनी उपयोगिता साबित कर सकें और अपने सशक्तिकरण के लिए वैधानिक अधिकारों का उपयोग कर सकें। यही प्रयास दिव्यांगजनों को आत्मनिर्भरता अपना जीवन जीने का आधार प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mishra, V. K. (2011). Viklang Swastha ve Aatmnirbhar kaise banein. New Delhi: Kalyani Shiksha Parishad.
2. Moshra, V. K. (2008). Viklango ke Adhikar. New Delhi: Kalyani Shiksha Parishad.
3. (n.d.). Nihshaktata evam Samekit Shiksha ka Parichay. In Nihshakt Bachhon ki Shiksha ka Aadhar Pathyakram. New Delhi: IGNOU.

❑❑

13

ग्रामीण विकास और मीडिया

रश्मि पूजा निकुंज
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

आज के संदर्भ में हम ग्रामीण विकास की बात करें तो स्थिति गंभीर मालूम पड़ती है। हालांकि अब तक ग्रामीण विकास को वर्तमान स्तर तक लाने में मीडिया ने दखल जरूर दी है। लेकिन 1991 के उदारीकरण और फरवरी 2009 में मीडिया में विदेशी निवेश भी छूट के बाद अब स्थिति बदलने की संभावना है और बदली भी है। हालांकि मीडिया में विदेश निवेश 25 जून 2001 को ही अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा मंजूरी दे दी गई थी। इसके बाद से ग्रामीण विकास के मुद्दों को दरकिनार करने की खतरनाक कोशिश की गई जो अब तक बदस्तूर जारी है।

आज मीडिया से ग्रामीण मुद्दे और हाशिए के लोग दूर होते जा रहे हैं, जिसके पीछे मुख्य वजह है मीडिया में विदेशी पूंजी की छूट। श्री राय ने ग्रामीण मुद्दों, हाशिए के लोगों और वंचितों की आवाज का विकल्प खोजने के लिए हमें समानांतर मीडिया को विकसित करना होगा।

अगर संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि चाहे अखबार हो अथवा न्यूज चौनल या सिनेमा इनसे ग्रामीण विकास के मुद्दे और गांव गायब होते जा रहे हैं। फिर इनके गायब होते जाने का सिलसिला नया नहीं है। इसका संबंध तत्कालीन भारत में अपनायी गयी विकास की खास पद्धति से भी रहा है, जिसने नगरीकरण को बढ़ावा दिया है और गांव को राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से बाहर फेंक दिया है।

गाँवों के देश भारत में, जहाँ लगभग तीन चौथाई से ज्यादा आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है, देश की बहुसंख्यक आम जनता को खुशहाल और शक्तिसंपन्न बनाने में पत्रकारिता की निर्णायक भूमिका हो सकती है। लेकिन विडंबना की बात यह है कि अभी तक पत्रकारिता का मुख्य फोकस सत्ता की उठापठक वाली राजनीति और कारोबार जगत की ऐसी हलचलों की ओर रहा है, जिसका आम जनता के जीवन–स्तर में बेहतरी लाने से कोई वास्तविक सरोकार नहीं होता। पत्रकारिता अभी तक मुख्य रूप से महानगरों और सत्ता के गलियारों के इर्द–गिर्द ही घूमती रही है। ग्रामीण क्षेत्रों की खघ्बरें समाचार माध्यमों में तभी स्थान पाती हैं जब किसी बड़ी प्राकृतिक आपदा या व्यापक हिंसा के कारण बहुत से लोगों की जानें चली जाती हैं। ऐसे में कुछ दिनों के लिए राष्ट्रीय कहे जाने वाले समाचार पत्रों और मीडिया जगत की मानो नींद खुलती है और उन्हें ग्रामीण जनता की सुध आती जान पड़ती है। खासकर बड़े राजनेताओं के दौरों की कवरेज के दौरान ही ग्रामीण क्षेत्रों की खबरों को प्रमुखता से स्थान मिल पाता है। फिर मामला पहले की तरह ठंडा पड़ जाता है और किसी को यह सुनिश्चित करने की जरूरत नहीं होती कि ग्रामीण जनता की समस्याओं को स्थायी रूप से दूर करने और उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए किए गए वायदों को कब, कैसे और कौन पूरा करेगा।

सूचना में शक्ति होती हैं। हाल ही में सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के जरिए नागरिकों को सूचना के अधिकार से लैस करके उन्हें शक्ति–संपन्न बनाने का प्रयास किया गया है। लेकिन जनता इस अधिकार का व्यापक और वास्तविक लाभ पत्रकारिता के माध्यम से ही उठा सकती है, क्योंकि आम जनता अपने दैनिक जीवन के संघर्षों और रोजी–रोटी का जुगाड़ करने में ही इस कदर उलझी रहती है कि उसे संविधान और कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों का लाभ उठा सकने के उपायों को अमल में लाने की चेष्टा करने का अवसर ही नहीं मिल पाता।

ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा, गरीबी और परिवहन व्यवस्था की बदहाली की वजह से समाचार पत्र–पत्रिकाओं

का लाभ सुदूर गाँव–देहात की जनता नहीं उठा पाती। बिजली और केबल कनेक्शन के अभाव में टेलीविजन भी ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं पहुँच पाता। ऐसे में रेडियो ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो सुगमता से सुदूर गाँवों–देहातों में रहने वाले जन–जन तक बिना किसी बाधा के पहुँचता है। रेडियो आम जनता का माध्यम है और इसकी पहुँच हर जगह है, इसलिए ग्रामीण पत्रकारिता के ध्वजवाहक की भूमिका रेडियो को ही निभानी पड़ेगी।

रेडियो के माध्यम से ग्रामीण पत्रकारिता को नई बुलंदियों तक पहुँचाया जा सकता है और पत्रकारिता के क्षेत्र में नए–नए आयाम खोले जा सकते हैं। इसके लिए रेडियो को अपना मिशन महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को साकार करने को बनाना पड़ेगा और उसको ध्यान में रखते हुए अपने कार्यक्रमों के स्वरूप और सामग्री में अनुकूल परिवर्तन करने होंगे। निश्चित रूप से इस अभियान में रेडियो की भूमिका केवल एक उत्प्रेरक की ही होगी।

रेडियो एवं अन्य जनसंचार माध्यम सूचना, ज्ञान और मनोरंजन के माध्यम से जनचेतना को जगाने और सक्रिय करने का ही काम कर सकते हैं। लेकिन वास्तविक सक्रियता तो ग्राम पंचायतों और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पढ़े–लिखे नौजवानों और विद्यार्थियों को दिखानी होगी। इसके लिए रेडियो को अपने कार्यक्रमों में दोतरफा संवाद को अधिक से अधिक बढ़ाना होगा ताकि ग्रामीण इलाके की जनता पत्रों और टेलीफोन के माध्यम से अपनी बात, अपनी समस्या, अपने सुझाव और अपनी शिकायतें विशेषज्ञों तथा सरकार एवं जन–प्रतिनिधियों तक पहुँचा सके। खासकर खेती–बाड़ी, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार से जुड़े बहुत–से सवाल, बहुत सारी परेशानियाँ ग्रामीण लोगों के पास होती हैं, जिनका संबंधित क्षेत्रों के विशेषज्ञ रेडियो के माध्यम से आसानी से समाधान कर सकते हैं। रेडियो को "इंटरेक्टिव"बनाकर ग्रामीण पत्रकारिता के क्षेत्र में वे मुकाम हासिल किए जा सकते हैं जिसे दिल्ली और मुम्बई से संचालित होने वाले टी.वी. चौनल और राजधानियों तथा महानगरों से निकलने वाले मुख्यधारा के अखबार और नामी समाचार पत्रिकाएँ अभी तक हासिल नहीं कर पायी हैं।

टी.वी. चौनलों और बड़े अखबारों की सीमा यह है कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में अपने संवाददाताओं और छायाकारों को स्थायी रूप से तैनात नहीं कर पाते। कैरियर की दृष्टि से कोई सुप्रशिक्षित पत्रकार ग्रामीण पत्रकारिता को अपनी विशेषज्ञता का क्षेत्र बनाने के लिए ग्रामीण इलाके में लंबे समय तक कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता। कुल मिलाकर, ग्रामीण पत्रकारिता की जो भी झलक विभिन्न समाचार माध्यमों में आज मिल पाती है, उसका श्रेय अधिकांशत जिला मुख्यालयों में रहकर अंशकालिक रूप से काम करने वाले अप्रशिक्षित पत्रकारों को जाता है, जिन्हें अपनी मेहनत के बदले में समुचित पारिश्रमिक तक नहीं मिल पाता।

इसलिए आवश्यक यह है कि नई ऊर्जा से लैस प्रतिभावान युवा पत्रकार अच्छे संसाधनों से प्रशिक्षण हासिल करने के बाद ग्रामीण पत्रकारिता को अपनी विशेषज्ञता का क्षेत्र बनाने के लिए उत्साह से आगे आएँ। इस क्षेत्र में काम करने और कैरियर बनाने की दृष्टि से भी अपार संभावनाएँ हैं। यह उनका नैतिक दायित्व भी बनता हैं।

आखिर देश की 80 प्रतिशत जनता जिनके बलबूते पर हमारे यहाँ सरकारें बनती हैं, जिनके नाम पर सारी राजनीति की जाती हैं, जो देश की अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक योगदान करते हैं, उन्हें पत्रकारिता के मुख्य फोकस में लाया ही जाना चाहिए। मीडिया को नेताओं, अभिनेताओं और बड़े खिलाड़ियों के पीछे भागने की बजाय उस आम जनता की तरफ रुख करना चाहिए, जो गाँवों में रहती है, जिनके दम पर यह देश और उसकी सारी व्यवस्था चलती है।

पत्रकारिता जनता और सरकार के बीच, समस्या और समाधान के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच, गाँव और शहर की बीच, देश और दुनिया के बीच, उपभोक्ता और बाजार के बीच सेतु का काम करती है। यदि यह अपनी भूमिका सही मायने में निभाएँ तो हमारे देश की तस्वीर वास्तव में बदल सकती है।

सरकार जनता के हितों के लिए तमाम कार्यक्रम बनाती है नीतियाँ तैयार करती है कानून बनाती है योजनाएँ

शुरू करती है सड़क, बिजली, स्कूल, अस्पताल, सामुदायिक भवन आदि जैसी मूलभूत अवसंरचनाओं के विकास के लिए फंड उपलब्ध कराती है, लेकिन उनका लाभ कैसे उठाना है, उसकी जानकारी ग्रामीण जनता को नहीं होती। इसलिए प्रशासन को लापरवाही और भ्रष्टाचार में लिप्त होने का मौका मिल जाता है।

जन–प्रतिनिधि चुनाव जीतने के बाद जनता के प्रति बेखबर हो जाते हैं और अपने किए हुए वायदे जान–बूझकर भूल जाते हैं।ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में नई–नई खोजें होती रहती हैं शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में नए–नए द्वार खुलते रहते हैंय स्वास्थ्य, कृषि और ग्रामीण उद्योग के क्षेत्र की समस्याओं का समाधान निकलता है, जीवन में प्रगति करने की नई संभावनाओं का पता चलता है। इन नई जानकारियों को ग्रामीण जनता तक पहुँचाने के लिए तथा लगातार काम करने के लिए उन पर दबाव बढ़ाने, प्रशासन के निकम्मेपन और भ्रष्टाचार को उजागर करने, जनता की सामूहिक चेतना को जगाने, उन्हें उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों का बोध कराने के लिए पत्रकारिता को ही मुस्तैदी और निर्भीकता से आगे आना होगा। किसी प्राकृतिक आपदा की आशंका के प्रति समय रहते जनता को सावधान करने, उन्हें बचाव के उपायों की जानकारी देने और आपदा एवं महामारी से निपटने के लिए आवश्यक सूचना और जानकारी पहुँचाने में जनसंचार माध्यमों, खासकर रेडियो की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है।

पत्रकारिता आम तौर पर नकारात्मक विधा मानी जाती है, जिसकी नजर हमेशा नकारात्मक पहलुओं पर रहती है, लेकिन ग्रामीण पत्रकारिता सकारात्मक और स्वस्थ पत्रकारिता का क्षेत्र है। भूमण्डलीकरण और सूचना–क्रांति ने जहाँ पूरे विश्व को एक गाँव के रूप में तब्दील कर दिया है, वहीं ग्रामीण पत्रकारिता गाँवों को वैश्विक परिदृ श्य पर स्थापित कर सकती है। गाँवों में हमारी प्राचीन संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान की विरासत, कला और शिल्प की निपुण कारीगरी आज भी जीवित है, उसे ग्रामीण पत्रकारिता राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पटल पर ला सकती है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यदि मीडिया के माध्यम से धीरे–धीरे ग्रामीण उपभोक्ताओं में अपनी पैठ जमाने का प्रयास कर रही हैं तो ग्रामीण पत्रकारिता के माध्यम से गाँवों की हस्तकला के लिए बाजार और रोजगार भी जुटाया जा सकता है। ग्रामीण किसानों, घरेलू महिलाओं और छात्रों के लिए बहुत–से उपयोगी कार्यक्रम भी शुरू किए जा सकते हैं जो उनकी शिक्षा और रोजगार को आगे बढ़ाने का माध्यम बन सकते हैं।

इसके लिए ग्रामीण पत्रकारिता को अपनी सृजनकारी भूमिका को पहचानने की जरूरत है। अपनी अनन्त संभावनाओं का विकास करने एवं नए–नए आयामों को खोलने के लिए ग्रामीण पत्रकारिता को इस समय प्रयोगों और चुनौतियों के दौर से गुजरना होगा।

चूंकि भारत एक कल्याणकारी राज्य है और इस नाते वह आम जनता के विकास के लिए तमाम विकास योजनाओं को क्रियान्वित करता है। ये सभी योजनाएं लोगों के प्रगति को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। आजादी से लेकर वर्तमान तक सरकारी एवं गैर सरकारी विकास योजनाओं को जनता तक पहुंचाने तथा उसमें जनता की भागीदारी सुनिश्चित कराने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सवाल शिक्षा का हो अथवा चिकित्सा या अन्य बुनियादी विकास का मीडिया के कारण ही ये जनता तक पहुंच पा रहा है। उदाहरण के लिए आज अगर भारत पोलियो मुक्त देश बनने के कगार पर है तो इसमें मीडिया की जबर्दस्त भूमिका है क्योंकि पोलियो उन्मूलन के लिए लोगों में लोक चेतना जागृत करने का काम मीडिया ने ही किया।

दलितों का प्रश्न देश से तो जुड़ा ही हुआ है, मीडिया से भी जुड़ा है। आजादी के इतने वर्ष बीत जाने पर भी हम देश में आर्थिक–सामाजिक खाई को पाटने में अक्षम रहे। दलितों का प्रश्न हमारे विकास के दावों की पोल खोलने वाला है। मीडिया ने आजादी के बाद लगभग तीन दशक तक इनके प्रश्न व इनकी आवाज को उठाने की मुहिम जरूर शुरू की थी लेकिन कालांतर में मीडिया पर बाजार की पकड़ बनने के बाद दलित समेत सभी कमजोर समूहों को जगह देने में मीडिया को मुश्किल होने लगी। हालांकि दलित तबके में जो भी चेतना जागृत हुई है उसमें मीडिया की भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन यह भी सही है मीडिया ने जब से खबर का

उत्पादन करना शुरू किया वैसे–वैसे उत्पादन से दलित प्रश्न व उनसे जुड़े मुद्दे दरकिनार होने लगे। यह दीगर बात है कि मीडिया इस बात को नहीं समझ रहा है कि भारत में सबसे तेजी से दलितों में चेतना जागृत होनी शुरू हुई है।

इसी कारण आज यह बात समझ लेना चाहिए कि भूमंडलीकरण की व्यवस्था में दलित खुद एक सशक्त स्तंभ बनकर उभर रहे हैं। इसी कारण सच्चिदानंद सिन्हा जैसे चिंतक दलित एवं आदिवासियों के विकास पर बल दे रहे हैं क्योंकि इससे ही भारत की स्थिति मजबूत हो सकेगी।

आजादी से लेकर आज तक लोकतंत्र के इस सुहाने सफर में संचार माध्यमों की भूमिका तलाशने पर हम पाते हैं कि समय के साथ–साथ इनकी भूमिका भी बदलती रही है। जैसे 1970 तक पत्रकारीय मूल्य मर्यादाएं प्रभावी थी पर उसके बाद व्यावसायिकता का दौर शुरू हुआ और आज तो संचार माध्यमों पर बाजारवादी प्रवृत्तियों का खासा प्रभाव देखा जा सकता है। संचार माध्यमों अर्थात मीडिया की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए हमें इसकी कार्यप्रणाली, वर्तमान स्थिति, लोगों तक पहुंच, विषय वस्तु इत्यादि पर भी नजर डालना होगा।

मीडिया की भूमिका का अध्ययन एक दिलचस्प मामला भी इस कारण हो जाता है क्योंकि यह एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें निरंतर परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। हम इसकी भूमिका को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों संदर्भों में दिखा सकते हैं, लेकिन बेहतर होगा कि इसकी सपाट व्याख्या की जाए, ताकि सच का सामना मीडिया स्वमेव कर सके।

संदर्भ ग्रंथ

- अरविंद कुमार, कुसुम कुमार, (1996) समांतर कोश हिंदी थिसारस अनुक्रम खंड, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली
- जी. एस. भार्गव,(1980)भारत मेँ प्रेस, नेशनल बुक ट्रस्ट (एन. बी. टी.) दिल्ली
- रॉबिन जेफ्री, (1984) भारत की समाचारपत्र क्रांति, आई. आई. एम. सी., दिल्ली
- राकेश कु. दुबे (सं.)(2015) जनसंचार और जनभाषा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
- मनोहर श्याम जोशी, (1998) मास मीडिया और समाज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
- प्रेम सिंह, (2007)कट्टरता जीतेगी या उदारता ,राजकमल प्रकाशन दिल्ली
- प्रेम सिंह (2008)उदारीकरण की तानाशाही ,राजकमल प्रकाशन दिल्ली
- अरविंद मोहन (2001)लोक तंत्र का नया लोक (दो खण्ड), वाणी प्रकाशन, दिल्ली
- आनंदितापैनन्यूमीडियाएंडदलैंग्वेज, , मीडियावॉच 23–28, वॉल्यूम 3, जुलाई–दिसंबर 2012
- शालिनीजोशीऔरशिवप्रसादजोशी 2015, "नयामीडियाःअध्ययनऔरअभ्यास, पेंग्वीन, दिल्ली
- दन्यूमीडियाहैंडबुक, एंड्रयुड्युडनेऐंडपीटरराइड, रूटलेज, 2006.
- शिलर, हरबर्टआई.,(अनु.) रामकवींद्रसिंह, संचारमाध्यमऔरसांस्कृतिकवर्चस्व, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली,
- पाण्डेय, भगवानदेव, पाण्डेय, मिथिलेशकुमार, ग्लोबलमीडियाटुड़े, तक्षशिलाप्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली.
- कुमार, सुरेश, इंटरनेटपत्रकारिता, 2004, तक्षशिलाप्रकाशन, नईदिल्ली

❑❑

14

समावेशी भारत का परिदृश्य

प्रशान्त सिंह
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

समावेशी भारत से अभिप्राय विभिन्न प्रकार की विविधताओं में एकता से है। हमारे भारत का निर्माण विविध परिवेशीय स्थलों, विभिन्न भाषाओं बोलियों तथा भिन्न–2 संस्कृतियों के समावेश से हुआ है। हिन्दुस्तान नाम ही साझा संस्कृति की विरासत को प्रतिबिम्बित करता हैं। हिन्दी जो साझा संस्कृति की सूचक बन गई है।

सिंधु घाटी सभ्यता जो प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है प्राचीन समय में यह संस्कृति अपने चरम पर थी। कालान्तर में ईरानियों द्वारा सिन्धु प्रदेश के वासियों को हिन्दु, हिन्दवी आदि आदि नाम से पुकारा जाने लगा। क्योंकि वह स को ह उच्चारित करते थे। पूर्व में हिन्दवी शब्द स्थानवाची के रूप में प्रयोग होता था जिसका भाषा के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग अमीर खुसरों ने किया।

विश्व का सबसे अनूठा देश हिन्दुस्तान जिसमें सभी धर्मो का समावेश परिलक्षित होता हैं एवं सभी धर्मो की साझा विरासत हिन्दुत्व जिसे किसी सम्प्रदाय या मत के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। हिन्दू प्रदेश में जन्मा हर व्यक्ति हिन्द का वासी और हर व्यक्ति हिन्दू है और हमारी भाषा हिन्दुस्तानी है। शिरोमणि गजलकार दुश्यंत कुमार जी जो अनी ग़ज़लें हिन्दुस्तानी भाषा में लिखा करते जहाँ हिन्दी और उर्दू भाशा अपने सिंहासन से उतरकर जनसामान्य के बोलचाल की भाषा बन गयी थी जिसे हम सभी हिन्दुस्तानी बोल गुन गुना और समझ सकते थे। उनकी ग़ज़ले सत्ता पक्ष के पाँव उखाड़ने में सक्षम है और उनके ग़ज़ल के तीखे व्यंग्य से जर्जर राजनीति की नींव जीर्णशीर्ण हो जाती है। और वे ग़ज़लों के माध्यम से राजनीति को रेशा–2 उधेड़ देते है।

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
कहा चिरागा मयस्सर नहीं बाहर के लिए

हृदय के भाव अपनी मातृभाषा द्वारा ही व्यक्त किए जा सकते है इसी विषय पर भारतेन्दु ने निज भाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिलत न हिय को सूल।

जो भाषा हमारी स्वतंत्रता की डोर बनती है हम हिन्दुस्तानियों को एक जुट करती हैं वह समावेशी भाषा हिन्दी है। जिसमें जन सामान्य अपने हृदय के भावों को आसानी से व्यक्त कर सकता है हिन्दी समावेशी भाषा है क्योंकि इसने सभी भाषाओं के शब्द अपने अचल में समेटा और निरन्तर सरलता की ओर सरिता के समान बही है। यह समावेशी भारत का प्रतिनिधित्व करती है। ग़ज़लकार दुश्यंत कुमार हिन्दुस्तानी भाषा के माध्यम से भारत का समावेश ही करना चाहते थे।

यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चले उमग्र भर के लिए।

ये दरख्त और कुछ नहीं हमारी क्षमताये है जो हमारे समावेशी भारत में मौजूद हैं जिन्हें हमने अपनी कमजोरी बना ली है उनको समावेशित कर हम उन्हें अपने मजबूती का जरिया बना सकते हैं। हिन्दी भाषा किसी विशेष सम्प्रदाय आदि से जुड़ी न होकर विविध भाषाओं का (मेल) समावेश है। जो हमें विकास की ओर ले जाने में सक्षम

है। सरल, सहज, व सर्वग्राही है। इसमें लगभग सभी भाषाओं के शब्दों का समावेश है जैसे कि ऊर्दू, अग्रेजी, तुर्की, संस्कृत, अरबी आदि इन्ही विविधताओं के समावेश से ही तो अतुल्य अखण्ड भारत का निर्माण होता है।

इन शेरों के माध्यम से दुश्यंत कुमार हमें सम्प्रदाय मुक्त भारत के निर्माण का रास्ता दिखा गये।

पूर्व में सामन्तवादी सोच ने भारत सोच न भारत को अपंगता की अवस्था में पहुँचा दिया की नारी क्षमताओं को फलित होने का उचित अवसर न देकर प्रतिभावान दलितों की अनदेखी करके लेकिन हमारा यह जान लेना जरूरी है कि वास्तव में दलित कौन?सत्तापक्ष या शोशित पक्ष। शोशित पक्ष की कोई जाति–धर्म नहीं होता है। दलित से अभिप्राय है जिसका दलन हुआ हो जिसे रौंदा गया हो। जिन सत्ताओं का बोलबाला रहा उन्होंने हमेशा अपने से निचले वर्ग को दबाया है। कई प्रकार के स्तरों में उन्हें बाँटकर सत्तापक्ष ने अपनी आवश्यकतानुसार जनसामान्य को दमित और प्रताड़ित किया है। हम इतिहास पर नजर डाले तो भान होता है कि क्योंकि विशाल साम्राज्य का स्वामी–जिसकी राजधानी मगध थी। महापद्म नन्द जिसने नन्द वंश की नीव रखी और जिसे परशुराम की तरह क्षत्रियों का समूल नाश करने वाला कहा जाता है, वह दासी पुत्र था। उस समय भी सत्तापक्ष ने समान्य जनता को कुचला। उसके उपरान्त उसके पुत्र ने नृशंसता से मानवता को कुचल दिया और दमनकारी मदान्ध राजा बन बैठा। उसके द्वारा दमित कुचली हुई जनता कुंठा में जीवन–यापन करती थी।

विशाल भारत साम्राज्य की नींव रखने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य सामान्य वर्ग से नहीं थे वह दमित जनता में से एक थे। जिन्होंने अपने समावेशी भारत की नींव रखी थी। राज्य की सुरक्षा के लिए युद्ध स्थल में राजा की नहीं अपितु सैनिकों की बलि चढ़ती थी। आज का सामान्य वर्ग जाति आधारित है। महाराणा प्रताप जिन्हें राष्ट्र अपने राष्ट्र की सुरक्षा व अस्मिता हेतु घास की रोटी खाकर जीवनयापन करना पड़ा उन्हें या उनके वंशजों को सामन्य वर्ग में रख देना तर्क संगत नही जान पड़ता। सजा तो अपराधी को मिलनी चाहिए उनके वंशजों को क्यों? हमारा संविधान इसका विरोध करता हैं। उत्तर कोरिया में अपराधी के चार पीढ़ियों तक को उनके अपराध की सजा भुगतनी मिलती है। क्या ये आपको सही लगता हैं अगर सही नहीं लगता तो सामान्त वादी पूर्वजों द्वारा किये कृत्यों की सजा उनके वंशजों को मिलना न्यायिक है? इसका फैसला जनता को करना है। क्योंकि अब न सामन्तवादी रहे और न वे शोधित पूर्वज। आज सामान्य वर्ग अपराधी की तरह खड़ा होकर अपने पूर्वजों के अपराध का मुआवजा भुगतना पड़ रहा है। उसकीं ओर से बोलने वाला कोई भी नही।

क्या पूँजीपति धनाढ्यजन, नेता, अफसर, सांसद, विधायक आदि जो आर्थिक रूप सें सम्पन्न है वे आरक्षण के अधिकारी हैं या वे दलित हैं, सम्पन्न वर्ग अब भी निम्नवर्ग को बांट रहें है। कमजोर गरीब जिनके पास खाने को रोटी नही क्यां वे आरक्षण का लाभ ले पा रहे है। या शिक्षा ही प्राप्त कर पा रहे है। वे मजदूरी कर रोटी कमाए या शिक्षा प्राप्त करें। वे शिक्षा में आरक्षण का लाभ तभी ले पायेंगे जब वे शिक्षा प्राप्त करेंगे। उनकी आर्थिक मदद करनी चाहिए। समवेशी शिक्षा तो वह शिक्षा जिसमें प्रतिभावना को पर हर स्तर पर शिक्षित किया जाना चाहिए चाहे वह सामान्य छात्र हो या दिव्यांगजन नही तो दिव्यांग जन मुख्य धारा में कैसे आ पायेंगे उन्हें आर्थिक मदद देकर हम उनका बौद्धिक विकास कर सकते हैं।

समावेशी शिक्षा तो तब सम्भव है जब हर तबके के आर्थिक रूप से कमजोर छात्र को आर्थिक सहायता दी जाये उन्हें मुख्य धारा में लाया जाएं जाति सम्प्रदाय से कोई अमीर–गरीब नही होता। वैसे बहुत से बच्चों को बुनकर का काम करते देखा मजदूरी करते देखा जिनकी उम्र अभी पढ़ने लिखने की है। जों किसी भी तबके से सम्बन्ध रखते है।

समता क्या है ये समझना मुश्किल है ओर उसे भी अधिक जटिल प्रश्न समवेशी शिक्षा का हैं मुझे लगता है समावेशी शिक्षा तो जाति धर्म, वर्ग, लैंगिक आधार तथा शारीरिक विकृति से ऊपर उठकर हैं जिसमें किसी भी स्तर पर कोई भेद नही चाहिए हमारा संविधान भी शिक्षा में किसी भी भेद निषेध करता है।

मैं कहना चाहूँगा कि हमारा भारत समवेशी भारत है क्योंकि यहाँ विविधताओं का समावेश हुआ है जिसमें प्रकृति परिवेश स्तर, भाषायी स्तर, विविध रंग–रूप, विभिन्न संस्कृति का समावेश (मेल) हुआ है। जो हमारी विविध क्षमताएँ है उन्हें हमने अपनी कमजोरी मान लिया लिंग भेद के आधार पर समाज को बाँट दोहरे मापदण्डों से घिरे स्त्री व पुरुष/वर्चस्व वादी पुरुषसत्ता ने स्त्री क्षमताओं को अनुकूल परिस्थितियाँ न देकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी हैं अब तक देश का विकास न होने का मूल कारण भी यही है। नारी सशक्तिकरण से बहुत सुधार हुआ है मैं आशा करता वर्तमान में हम अपनी पूरी क्षमता से समावेशित भारत का निर्माण करेंगे। भारत में उपस्थित विविधतायें हमारी पूंजी है हमारी क्षमता है व हमारा सामर्थ्य हमारे देश में सभी धर्मो का समावेश हुआ है सभी दशर्नों को आत्मसात करके एक समावेशित भारत बना है।

इक्कीसवीं सदी हमारी है ये सच है विश्व में कौन सा देश हमसे ज्यादा बोलियाँ या भाषाएँ जानता है। विश्व में कौन से देश के वासी सभी मौसमों में अनुकूलता के साथ रहने का सामर्थ्य रखते हैं। विश्व मे ऐसा कौन सा देश है जहाँ सभी धर्मों के अनुयायी या इतनी संख्या में बहुभाषी लोग निवास करते है जो इतनी बोलियों के विषय में जानते हों। हामरे यहाँ इतनी बोलियाँ हैं कि सारा संसार भी इसका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। इतनी बोलियों का समावेश हमारे अतुल्य भारत में ही है। हमारे देशवासी हमारे हिन्दुस्तानी विश्व की लगभग सभी भाषाएँ बोल सकते हैं और समझ सकते हैं यह समावेशी भारत का ही प्रारूप हैं।

हमें अपनी विविध क्षमताओं को एकजुट प्रयोग कर समावेशी भारत को आगे बढ़ाना होगा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने एक भाषण भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है में कहा था "हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी है" यह सही भी है जैसे रेल के डिब्बों को चलाने के लिए इंजन की जरूरत पड़ती है। हम भारतवासियों को प्रेरित करने और हमारा नेतृत्व करने के लिए हमें नायक चाहिए हम सौभाग्यशाली हैं हमारी राष्ट्र भूमि ने कई नायक दिये पर यह भी सच की हमारा दुर्भाग्य है कि हमें नायकों अधिक नायकत्व चाहिए। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है") में जामवन्त से कहलाया है। वस उन्हें नायकत्व का बोध हो जाता है। वे समुद्र लाघ गये हमें वही का चुप साधि रहा बलावाना जामवंत चहिए अर्थात वही शिक्षक चाहिए जो समावेशी शिक्षा का माहौल तैयार कर समावेशी भारत की नींव पर समावेशी भारत का निर्माण कर सकते हैं। हमारी देश की नींव जो कि हमारे हैं युवा और हमारा देश अन्य देशों की अपेक्षा युवाओं का देश हैं। युवाओं को शिक्षकों का प्रतिनिधित्व चाहिए समावेशी भारत के निर्माण के विकास का अवसर चाहिए। विवेकानन्द जी अपने वक्तत्व में कहा था अगर दस नचिकेता जैसे युवा शिष्य उन्हे मिल जाये तो अपना भारत विश्व गुरू बन सकता है। हमें गिने चुने नायक नहीं चाहिए हमें नायकत्व चाहिए जिसके लिए हमें जामवंत की आवश्यकता होगी। हमे तो कुम्हार चाहिए जिसकी बात कबीर दास जी करते हैं।

पाका कलश कुम्हार, बहुरि न चढ़ई चाकि।

हमें वे जामंवत रूपी राम चाहिए जिन्होंने सभी प्राणियों को नायक बना दिया। हमें वे कबीर, तुलसी चाहिए जिन्होंने राम को नायक बना दिया और उनके माध्यम से नायकत्व का बीजांकुरण किया।

उपसंहार : हमारा देश लोक तान्त्रिक देश है देश में सभी नायक है सभी में नायकत्व का समावेश हैं क्षेत्र या दायरे सीमित हो सकते हैं पर उनमें मौलिकता का समावेश है और यही मौलिकता का समावेश ही तो समावेशित भारत की रूप रेखा हैं आप सभी नायक हैं यदि आप अपने अधिकार के साथ कर्त्तव्यों का भी पालन कर रहे हो।

हम यह भी समझ लेना चाहिए दिव्यांग से अभिप्राय क्या है?जिस प्रकार से कोयले की खान का अंग हीरा है जो दिव्य होता है जिसे एक जौहरी ही पहचान सकता है और किसी भी आकार में निखार सकता हैं उसे मूल्यवान बना सकता हैं उसी प्रकार सामान्य लोगों में जो दिव्यांग होता है वह प्रखर व प्रतिभा से पूर्ण होता है जो समाज रूपी कोयले की खान में किसी भी आकार रंग रूप का हो सकता है लेकिन जिसे केवल जौहरी रूपी शिक्षक ही

पहचान सकता है उसके नायकत्व को जान पहचान कर उसका उचित मार्ग दर्शन कर उसका वर्तमान व भविष्य निखार सकता है। अतएव हमें समावेशी शिक्षा हेतु जामवंत रूपी शिक्षक चाहिए। कबीरदास जी ने गुरू के विषय में वक्तत्व देते हुये बताया कि हमे सत गरू चाहिए।

सतगरू की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उधाड़िया, अनंत दिखावण हार।।

समावेशी शिक्षा हेतु समावेशी गुरू चाहिए जिनके प्रयास से समावेशी शिक्षा दी जा सकती है जो वर्ग भेद रंग भेद, आकार भेद को मिटा सकती है। और समावेशी भारत का निर्माण कर सकती है। दिव्यांगों को सामान्य छात्रों के साथ मुख्य धारा में लाना प्रतिभाओं को निखारना शिक्षकों और समाज पर निर्भर करता है।

दिव्यांगजन वे हैं जिसमें विविध प्रकार की मौलिकता कुछ खास कला है। दिव्यांग एंव सामान्य छात्र एक मुख्य धारा में शिक्षा व कुशलता प्राप्त करे व उनकी कुशलता से उन्हें रोजागार प्राप्त हो यही तो समावेशी भारत है।

संदर्भ सूची

1. साये में धूप,पृष्ठ,सं0 13, दुश्यंत कुमार।
2. मातृभाषा प्रेम पर दोहे, कविता कोश भारन्तेन्दु हरिश्चन्द।
3. साये में धूप, पृष्ठ संख्या 13, दुश्यंत कुमार
4. भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है, पृष्ठ सं0 30, गद्य गरिमा इण्टरमीडिएट भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
5. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, पृष्ठ सं0 30, गद्य गरिमा इण्टरमीडिएट भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
6. काव्यांजलि 'साखी' इण्टरमीडिएट सामान्य हिन्दी (द्वितीय प्रश्न–पत्र)
7. कविता कोश : कुछ रचनाएँ गुरूदेव का अंग

❑❑

15

भारत में महिलायें और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण
(भारत के सन्दर्भ में)

डॉ0 अभिलाष सिंह यादव
असि0 प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर हण्डिया, इलाहाबाद

कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा होने के कारण महिला और विकास का अंतरंग संबंध है। कोई भी समाज तब तक विकास नही कर सकता जब तक उसका आधा हिस्सा दलित शोषित अथवा अविकसित है। विकास से तात्पर्य गरीबी का अंत, उत्पादकता में वृद्धि और परिणामतः सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन की गुणवत्ता में सुधार है। विकास के मानकों में अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण की व्यवस्था के साथ–साथ जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार, क्रय–शक्ति का विकास और कल्याणकारी सामाजिक सेवाओं तक उनकी पहुंच इत्यादि कहे जा सकते हैं।

समाज में स्त्री अथवा पुरुष की अवस्थिति उसके द्वारा प्रयुक्त राजनीतिक, वैधानिक सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की संपूर्णता और उनके परिणाम द्वारा निर्धारित होती है। महिलाओं की अवस्थिति के निर्धारण का निम्नलिखित संकेत उपयोगी हो सकता है–

स्त्री–शिशु जीवन दर, मातृ–जीवन दर, स्त्री–साक्षरता दर, स्त्री की विवाह की आयु, स्त्री पुरुष अनुपात, परिवार और समाज में महिला की अवस्थिति, महिलाओं की रोजगार–दर, महिलाओं के संपत्ति अधिकार, देश के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में महिलाओं की सहभागिता, सामाजिक बुराइयों जैसे सती, तलाक, घरेलू दुर्घटनाएँ, बलात्कार दहेज, मृत्यु इत्यादि की घटना–दर और महिलाओं का सामाजिक एवं वैयक्तिक शोषण। इन संकेतकों के सम्मिलित स्वरुप से 'जीवन की गुणवत्ता' का अनुमान लगाया जा सकता है। विकास में महिलाओं की उचित भूमिका के लिए यही आवश्यक नहीं है कि उन्हें कार्य का अधिकार दिया जाए, उससे भी ज्यादा आवश्यक है कि उनके द्वारा किए गए कार्य का उचित मूल्यांकन किया जाय।

भारतीय महिला की अवस्थिति का इतिहास अत्यन्त जटिल और विविधायुक्त है यह इतिहास के पन्ने पलटने से स्पष्ट हो जाता है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संरचना पे परिवर्तनों के साथ बदलती रही है। कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय नारी अपने पिता, भ्राता, पति और पुत्रों के माध्यम से जीवन जीती है। अधिकांशतः वह ''अपने जीवन'' और परिवार के जीवन में भेद नहीं कर पाती, कानून की दृष्टि से स्त्री की स्थिति पुरुष के समकक्ष है किंतु दैनिक व्यवहार में जाति पितृसत्तात्मक परिवार संस्था, धार्मिक परम्पराएँ तथा सत्तावादी सामाजिक मूल्यों का प्रभाव अभी भी बहुत व्यापक है जो महिलाओं की निर्भरता की स्थिति और निम्न स्थिति का आधार है। भारत में स्त्री–पुरुष अनुपात में स्त्रियों की संख्या निरन्तर कमी आयी है। शिक्षा जो विकास का एक महत्वपूर्ण मापदंड है, से संबंधित आंकड़े भी महिलाओं की पिछड़ी स्थिति के द्योतक है। रोजगार के क्षेत्र में दर महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं की जा सकती है। राजनीतिक सहभागिता और निर्गमन के क्षेत्र में महिलाओं पर कोई वैधानिक और संविधानिक प्रतिबन्ध नहीं है। फिर भी लोकसभा, राज्य सभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों से कम है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों में कमी आने के बजाय निरंतर वृद्धि हो रही है।

स्वतंत्रता के समय से ही भारतीय नेतृत्व ने इस तथ्य को पहचाना कि महिलाएं राष्ट्र के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानवीय संसाधन है जिसका पूर्ण और प्रभावी उपयोग और विकास राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य है।

इसका आधार समाज वैज्ञानिक का यह विचार था कि किसी भी राष्ट्र में महिलाओं की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और कोई राष्ट्र उसकी अवहेलना नहीं कर सकता। यदि महिला शक्ति का उचित पोषण और नियंत्रण किया जाय तो वह राष्ट्र को प्रगति की ओर ले जाने वाली महान शक्ति बन सकती है। महिलाएं तब तक विकास में सार्थक भूमिका नहीं निभा सकती जब तक उनके व्यक्तित्व का विकास न किया जाय और व्यक्तित्व का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक विकास की क्रियाओं का लाभ महिलाओं तक न पहुँचाया जाय। इस प्रकार महिलाओं को एक ही समय पर विकास प्रक्रिया का सक्रिय सहभागिता भी बनना था और उस प्रक्रिया से आने वाले परिवर्तन का दूत भी।

इस धारणा के अनुरुप ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अन्तर्गत महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हैं। किंतु समान अधिकारों के उपभोग के लिए समान शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्तर की भी आवश्यकता होती है जो भारत में नहीं था। परिणामस्वरुप विकास का जो मॉडल भारत में अपनाया गया उससे महिलाओं की स्थिति में बहुत कम परिवर्तन आ सका और वे विकास में समान सहभागी नहीं बनाई जा सकीं। वास्तव में हमने विकास के परिचयी मॉडल को ही कुछ संशोधनों के साथ पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लागू किया जिससे कुछ विशिष्ट वर्गों की आर्थिक स्थिति अवश्य सुधरी, उपभोक्ता संस्कृति भी बढ़ी परन्तु विशाल जनसंख्या, जिससे महिलाएं भी सम्मिलित हैं, की समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, कुपोषण, निरक्षरता, शक्तिहीनता आदि का समाधान नहीं हो सका।

ऐसा नहीं है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास न किया गया हो।

स्वतंत्रता के पश्चात से ही महिलाओं को कमजोर वर्ग मानते हुए उनके कल्याण को लक्ष्य बनाया गया। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में महिलाओं की समस्याओं के समाधान के लिए अलग–अलग नीति बनायी गयी।

महिला सशक्तिकरण से देश का बदलाव –

मानव सभ्यता के विकास में महिलाओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सभ्यता के प्रारम्भिक युगों में ऐतिहासिक साक्षों से प्रमाणित होता है कि मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था रही है। जिसमें महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका सर्वोच्च होती थी। लेकिन धीरे धीरे मातृसत्ता के स्थान पर पुरुष सत्ता की स्थापना होती गई। नारी की स्थिति दासों जैसे हो गई। इस प्रकार नारी मानव जाति में सर्वप्रथम शोषण का शिकार हुई। आज वैश्विकरण के युग में जबकि दुनिया संचार क्रांति, तकनीकि प्रगति तथा उदारीकरण के कारण छोटी हो गई है ''वैश्विक ग्राम'' के रुप में, तब भी नारी का शोषण तथा अपमान हो रहा है। जिस किसी भी समाज या देश में ये घिनौने कृत्य हो रहे हैं, वह कभी भी उत्थान तथा प्रगति नहीं कर सकता है। इसलिए महिला सशक्तिकरण करके ही देश में बदलाव लाया जा सकता है। महिलाओं की जनसंख्या दुनिया में पुरुशों के लगभग बराबर है। इसीलिए उन्हें 'आंधी दुनिया' कहा जाता है। ज्ञान, क्षमता तथा कार्य कुशलता में महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है। ऐसी स्थिति में महिला शक्ति तथा विकास के संसाधन के रुप में उनकी उपेक्षा करके कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता है।

महिला सशक्तिकरण का आशय है, महिला का बिना अपना सम्मान तथा गरिमा को गवांये स्वयं अपने से सम्बन्धित तथा देश के प्रगति से सम्बन्धित किसी भी मामले में बिना किसी पर निर्भर हुए स्वतः निर्णय लेना। कहने का तात्पर्य है कि किसी महिला को सशक्त तभी कहा जा सकता है जब वह परिवार में, समाज में तथा देश में किसी भी मुद्दे तथा समस्या का अपने स्व–विवेक तथा निर्णय क्षमता के बल पर सही एवं उचित समाधान कर सके, तो हम कह सकते हैं कि महिला सशक्तिकरण हो रहा है। महिला सशक्तिकरण का मतलब पुरुष वर्चस्व को चुनौती देकर महिला सत्ता की स्थापना करना नहीं है बल्कि पुरुष तथा महिला के बीच लिंग असमानता तथा विभेद को समाप्त करना है। एक–दूसरे की गरिमा तथा प्रतिष्ठा का सम्मान करते हुए समानपूर्वक व्यवहार करना है। नारी

को उपभोग की वस्तु समझने की मानसिकता को समाप्त करना है। पुरुष तथा नारी में क्षमता, ज्ञान तथा विवेक के मामले में कोई भेद नहीं है। नारी भी वह सभी काम कर सकती है, जो पुरुष कर सकते हैं, तो नारी को दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति क्यों प्राप्त हो? महिला सशक्तिकरण का अर्थ पुरुष तथा नारी का समानतापूर्ण सहः अस्तित्व है, प्रभुत्व व वर्चस्व संघर्ष नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक तथा सहचर है। दोनों मिलकर समाज तथा राष्ट्र में बदलाव ला सकते हैं, जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान स्वतंत्रता की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका को देखा जा सकता है। कस्तूरबा गाँधी, अरुणा आसफ अली, बासंती देवी, मीरा बेन, सरोजनी नायडू तथा एनी बेसेन्ट आदि महिलाओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई के साथ–साथ गाँधी जी के 'रचनात्मक कार्यक्रमों' जो नए राष्ट्र निर्माण के लिए चलाए जा रहे थे, में बढ़चढ़कर भाग लिया। चाहे राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना हो, छुआछूत एवं अस्पृष्यता का विरोध करना हो, नशाबन्दी उम्मूलन हो या साफ–सफाई का मामला हो या फिर धरना प्रदर्शन एवं आंदोलन करना हो या फिर जेल जाना हो। हर जगह महिलाओं ने अपनी महती भूमिका निभाई है। महिलाओं की क्षमता तथा कार्यकुशलता को देखकर गाँधी जी ने कहा था कि नारी को अबला कहना नारी का अपमान करना है। नारी अबला नहीं सबला है।

आज के दौर में भी महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी क्षमता तथा कुशल नेतृत्व के झण्डे गाड़ रही है। चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, आर्थिक क्षेत्र हो, सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र हो, खेलकूद तथा विज्ञान एवं तकनीकि का क्षेत्र हो। राजनीतिक क्षेत्र में आज महिलाएँ राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री बन रही हैं। भारत में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कुशल नेतृत्व तथा साहसपूर्ण निर्णय क्षमता के बगैर 1971 में पाकिस्तान से युद्ध नहीं जीता जा सकता था, जबकि अमेरिका सहित पश्चिमी यूरोपीय देश पाकिस्तान की मदद कर रहे थे। लेकिन इन्दिरा गाँधी ने केवल भारत को विजयी बनाया बल्कि पूर्वी पाकिस्तान को अलग करके एक नए देश 'बांग्लादेश' का निर्माण भी करवाया, न केवल राजनीतिक क्षेत्र में बल्कि इन्दिरा गाँधी ने आर्थिक नीतियों को समाजीकरण का जामा पहनाते हुए देश की आर्थिक नीतियों में भी बदलाव किया। 16 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके तथा प्रीवी पर्स को समाप्त करके अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी। आर्थिक क्षेत्र में नैना लाल किदवई, इन्दिरा नूयी, चन्द्रा कोचर, इन्दुजैन, सावित्री जिन्दल, आदि महिलाएँ व्यवसाय तथा कारोबार में वैश्विक स्तर पर अपने कीर्तिमान स्थापित कर रही है। विज्ञान तथा तकनीकि के क्षेत्र में भी महिलाएँ किसी से पीछे नहीं हैं।

टेसी थामस ने अग्नि–द्वितीय मिसाइल का प्रोजेक्ट डायरेक्टर का काम संभाला, तो कल्पना चावला तथा सुनीता विलियम्स ने अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्री के रुप में नाम कमा चुकी है। झारखण्ड की रहने वाली प्रेमलता अग्रवाल ने मई 2013 में विश्व के सातों महाद्वीपों के सर्वोच्च पर्वत शिखरों का सफल आरोहण करने का गौरव प्राप्त किया।

लेकिन इन सबके बावजूद दुनिया में महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका में गिरावट ही देखी जा रही है। उक्त जो भी कार्य महिलाओं ने किया तथा सफलता अर्जित की वह केवल उच्च वर्ग की महिलाओं ने किया। आर्थिक रुप से संपन्न तथा बड़े घर की पढ़ी लिखी महिलाओं ने, जबकि वास्तविकता यह है कि आज बड़े पैमाने पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न, अश्लील हरकतें तथा छेड़खानी, आफिस एवं सार्वजनिक स्थानों पर दुराचार, तेजाब फेंकना, सम्मान के नाम पर हत्याकर देना, कन्या भ्रूण हत्या, पाकिस्तानी 14 वर्षीय बालिका मलाला–युसुफजई की इसीलिए हत्या करने का प्रयास किया गया क्योंकि वह लड़कियों की शिक्षा की मुहिम की मसाल लेकर खड़ी हो गयी थी। अवैध देह व्यापार, दहेज के कारण जला देना। आज बाजार ने प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से महिलाओं की अश्लील तथा उत्तेजक तस्वीरें अपने उत्पाद के साथ प्रचार तथा विज्ञापन के रुप में प्रस्तुत कर रहा है। ऐसी स्थिति में महिला सशक्तिकरण की बात बेईमानी लगती है। जबकि वास्तविक महिला सशक्तिकरण तभी हो सकता है जब इसके लिए प्रयास ग्रास रुट पर किया जाय अर्थात् समाज के हासिए पर खड़ी अन्तिम महिला को जब उसकी रुचि तथा पसंद के अनुसार आगे बढ़ने का अवसर मिले तथा वह स्वतंत्रापूर्वक अपने विषय में सोच सके तथा आत्मसम्मान एवं गरिमायुक्त जीवन जी सकें। तभी हम महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को

प्राप्त कर सकते हैं। दुनिया में महिला साक्षरता, स्वास्थ्य तथा रोजगार आदि की विषमता को दूर करके ही महिला को सशक्त तथा समर्थ बनाया जा सकता है। क्योंकि 'सबलता' तथा 'सुयोग्यता' ही नारी सशक्तिकरण का मूलाधार है। इसके लिए निम्न प्रयास करने की जरुरत है–

1. महिला आरक्षण विधेयक को पास करना चाहिए जिससे राजनीति में उन्हें 33 प्रतिशत की भागीदारी प्राप्त हो सके। अभी तक संसद में महिलाओं की भागीदारी केवल 8–10 प्रतिशत तक ही है।
2. दहेज के कारण हत्या के लिए कठोर कानून की जरुरत है।
3. महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न, छेड़खानी तथा अश्लील हरकत करने वाले को सजा देने के लिए फास्टट्रैक अदालत का गठन होना चाहिए जो बिना अत्यधिक समय गवाएँ शीघ्र ही निर्णय दे सकें।
4. कन्या भ्रूण हत्या जैसे गंभीर अपराध को रोकने के लिए जो नियम तथा कानून बने हैं उनका कठोर से पालन किया जाए। इस मामले में महिलाओं को स्वयं आगे आना होगा तथा कन्या भ्रूण हत्या पर अपनी सहमति को साहस के साथ रोकना होगा।
5. पारिवारिक हिंसा को रोकने के लिए पारिवारिक अदालतों के द्वारा शीघ्र कार्यवाही करने तथा शीघ्र निर्णय लेने की जरुरत है।
6. महिला को आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर प्रदान करने के लिए उन्हें नौकरियों में विशेष छूट हो। पढ़ने लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। कमजोर लड़कियों को छात्रवृत्ति तथा निःशुल्क शिक्षा दी जाय।
7. राष्ट्रीय महिला आयोग को और अधिक चुस्त–दुरुस्त बनाने की जरुरत है जिससे वह शीघ्र ही किसी मामले को संज्ञान में ले सके तथा शीघ्र कार्यवाही करने में मदद कर सके।
8. महिलाओं की अश्लील तस्वीरों को ब्राण्ड के रुप में मीडिया द्वारा पेश करने पर तत्काल रोक लगे। फिल्मों एवं टी.वी. सीरियलों में महिलाओं को अश्लील तथा उपभोग की वस्तु के रुप में प्रस्तुत करने पर रोक लगे। महिलाओं को एक स्वस्थ समाज के निर्माण के शिल्पकार के रुप में दिखाया जाए।

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। महिलाओं को जागरूक करके, पढ़ने–लिखने तथा रोजगार का सम्मानजनक अवसर प्राप्त होना चाहिए जिससे वह अपने हम तथा अधिकार की लड़ाई स्वयं वह लड़ सके। इसमें मीडिया, स्वयं सहायता समूह तथा न्यायालय आदि बेहतर भूमिका निभा सकते हैं। तभी महिलाएं वास्तविक रुप में सक्षम हो सकती है। तभी हर कोई महिलाओं का सम्मान करेगा। यह लड़ाई परिवार के स्तर पर, समाज के स्तर पर तथा राष्ट्र के स्तर पर महिलाओं को स्वयं लड़ना होगा। तभी सामाजिक बदलाव का रास्ता निकलेगा तभी कोई कोई देश प्रगतिशील एवं उन्नत राष्ट्र बन सकेगा।

संदर्भ

1. सुषमा यादव, राम अवतार शर्मा–भारतीय राजनीति (ज्वलंत प्रश्न)
2. मीरा देसाई–भारतीय समाज में नारी।
3. सुशीला सहाय–राष्ट्र के विकास में नारी का योगदान और उसकी समस्याएँ।
4. आशा रानी ब्होरा– भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार।
5. अमर उजाला, झाँसी संस्करण सन् 2014
6. दैनिक जागरण, इलाहाबाद संस्करण जुलाई–15
7. इंडिया टूडे– दिल्ली संस्करण।

❑❑

बुन्देलखण्ड की आदिवासी महिलाओं की आर्थिक क्रियाशीलता का अध्ययन

रामेन्द्र कुमार
शोधार्थी – समाजशास्त्र विभाग
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त
वि0वि0, इलाहाबाद

डॉ. स्वामी प्रसाद
समाजशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हमीरपुर–उ0प्र0

अनुभवजन्य शोध पत्र उत्तर प्रदेश राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित बुन्देलखण्ड भू–भाग के नवसृजित जनपद चित्रकूट के ''पाठा'' क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस भू–भाग के मूल निवासी कोल आदिवासी हैं ।

नव सृजित जनपद चित्रकूट जिसमें पाठा क्षेत्र अवस्थित है , का क्षेत्रफल 2918.27 वर्ग किलोमीटर है। उत्तर प्रदेश की औसत जनसंख्या का घनत्व (2001 के अनुसार) 690 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमिटर है। तुलनात्मक दृष्टि से जनपद चित्रकूट का जनसंख्या घनत्व (2001 के अनुसार) 242 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमिटर है। इस प्रकार जनसंख्या घनत्व राज्य की तुलना में काफी कम है। यहाँ औसतन प्रति व्यक्ति 1.10 एकड़ भूमि उपलब्ध है, जबकि प्रदेश का औसतन 0.59 एकड़ है। भूमि के असमान वितरण के कारण यहाँ के सबसे निर्धन लोग आदिवासी कोल हैं। विड़म्बना यह है कि विपुल भूमि – खण्ड में रहने वाले इस इलाके के मूल निवासी कोलों के पास जमीन नहीं है, यदि है भी, तो बहत कम। वनाच्छादित एवं पठारी क्षेत्र होने के कारण यहाँ की अधिकांश भूमि वन विभाग एवं खनन विभाग के आधिपत्य में है। फलस्वरूप यहाँ के मूल निवासी आदिवासी कोलों की जनसंख्या का एक बड़ा भाग भूमिहीन है। भूमिहीन या छोटी खेती वाले कोलों को मजदूरी से या वनोत्पादन की बिक्री से प्राप्त धन से जीवनयापन करना पड़ता है। वन क्षेत्र से वनोत्पादन बटोरने वाले कोलों को वनों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ता है। अनेक कोल इस क्षेत्र के बड़े किसानों या भूमिपतियों के यहाँ कृषि मजदूरों अथवा बंधुआ मजदूरों के रूप में काम करते हैं। इन दोनों ही प्रकार के मजदूरों (कोलों) की दैनिक मजदूरी अन्य मजदूरों की तुलना में बहुत कम है। स्वतंत्र रूप से मजदूरी करने वाले कोलों की संख्या प्रायः कम है। अधिसंख्य कोल (स्त्री, पुरूष) खनन एवं वन विभाग के ठेकेदारों के अधीन कार्य करते हैं।

'पाठा' क्षेत्र के कोलों के उक्त सामान्य सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में इस शोध पत्र की परिकल्पना की गयी है। आदिवासियों की आर्थिक संरचना में महिलाओं की सहभागिता प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य विषय है। यद्यपि 'पाठा' क्षेत्र कोल बाहुल्य है, फिर भी इसके कुछ भागों में कोलों की संख्या पाठा के गैर–कोलों की तुलना में बहुत कम है। अतः जिन क्षेत्रों में कोल अपेक्षाकृत अधिक संख्या में रहते हैं, उन्ही भाग को अध्ययन का आधार बनाया गया है। पाठा के कोलों की आर्थिक संरचना में उनके निवास स्थान का विशेष प्रभाव है। इसी आधार पर अध्ययन हेतु दो प्रकार के कोल ग्रामों को चुना गया – कस्बा अथवा नगर के कोल ग्राम, तथा जंगल में आबाद कोल ग्राम। अध्ययन में कोलों की आर्थिक संरचना में महिलाओं की सहभागिता पता लगाने की दृष्टि से चार ग्रामों का चयन किया गया। पाठा क्षेत्र के दक्षिण जंगल में आबाद''इटवा–डुडैला'' तथा ''टिकरिया'' ग्राम , कस्बा अर्थात नगर के रूप में विकसित ''मानिकपुर'' एवं ''बरगढ़'' बाजार के समीप रहने वाले कोल।

किसी भी अध्ययन की पृष्ठभूमि, सन्दर्भ एंव महत्व के आधार पर अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट करना आवश्यक है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य ''पाठा के कोलो की आर्थिक संरचना में महिलाओं की सहभागिता का पता लगाना है, अध्ययन में यह देखने का प्रयास गया है कि कोलों की आर्थिक संरचना उन्हें एक विशेष प्रकार

की सामाजिक स्थिति में रहने के लिए बाध्य किये है। अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि आर्थिक गतिशीलता के अवरूद्धता के कौन–कौन से कारक हैं, और उनका कोलों के विकास और उनककी आर्थिक संरचना पर कितना प्रभाव है।

अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि – आर्थिक संरचना में महिलाओं की सहभागिता पुरूषों की तुलना अधिक है।

1. कोल अधिवासित क्षेत्रों में संचालित कार्यो में पुरूषों की तुलना में महिलाओं के लिए कार्य उपलब्धता अधिक है।
2. प्रतिबन्धित वन क्षेत्रों से लकड़ी कटान कर अधिकांश कोल महिलाएं आय प्राप्त करती है।
3. कोल महिलाओं को उनके द्वारा किए गए कार्यो तथा संकलित उत्पादों के विक्रय से उन्हें उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है।
4. नगरीय क्षेत्र की तुलना में जंगली ग्रामों में अधिवासित कोल महिलाओं को आर्थिक योजनाओं की जानकारी कम होती है।
5. कोल महिलाओं को आर्थिक क्रिया कलापों के दौरान शारीरिक मानसिक एवं आर्थिक शोषण का शिकार होना पड़ता है।

❑❑

17

भारतीय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी

डॉ0 कविता यादव
टाईप 4/502 डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
आवासीय परिसर, मोहान रोड, लखनऊ (उ.प्र.)

सृष्टि के विकास के क्रम में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान तथा अभूतपूर्व योगदान रहा है। भारत की धरती इस बात की साक्षी है कि यहाँ पर न केवल वीर पुरुष ही जन्में बल्कि ऐसी वीरांगनाएं भी पैदा हुई जिन्होंने देश की रक्षा में अपने प्राणों को अर्पण कर दिया। अपने बच्चों तथा पति की जरा भी चिन्ता नही की, देश की रक्षा के लिए। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की यदि बात करें तो पुंज महारानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, रानी चेनम्माया से लेकर मैडम धीरवजिरूतम, के0आर0 कामा, कनकलता वरूणा, प्रति लता, बंददेदार रानीदत्त, चारूशीला देवी, उज्जवला मजूमदार, रेणुका सेन, दुर्गा भाभी, जो कि क्रांतिकारियों की सबसे बड़ी सहभागिनी थीं, आदि के नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। इसके साथ ही यदि वैदिक युग की बात करें तो मुख्यतः अपाला घोशा, गार्गी मैत्रेयी, लोपामुक्ता, शकुन्तला, सीता, सवित्री दमयन्ती, कुन्ती जैसी महान विभूतियों के नाम आज भी अमर हैं।

भारतीय संविधान में भी महिलाओं के अधिकारों के सम्बन्ध में स्पष्ट व्याख्या की गयी है। संविधान की धारा 39 में कहा गया है ''राज्य महिलाओं की रक्षा करेगा और पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करेगा।'' संविधान में महिलाओं के साथ किसी प्रकार का भेद भाव किये बिना मूलभूत अधिकार प्रदान किये गये हैं। संविधान में पुरुषों एवं महिलाओं के लिए राजनैतिक अधिकारों में समानता प्रदान करके देश में प्रजातंत्र की एक उद्भुत मिशाल पेश की गयी है।

महिलाओं को पुरुषों के बराबर के अधिकार प्राप्त होने के बावजूद भी आज महिलाएँ, चाहे भारत हो या फिर विश्व का कोई भी देश क्यों न हो, अधिकांश देशों में महिलाओं को अब तक वास्तविक रूप में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक या फिर अन्य क्षेत्रों में बराबरी का अधिकार प्राप्त नहीं हो पाया है। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थित में सुधार के लिए आवश्यक है कि वे राजनैतिक रूप में मजबूत हों। इसके लिए उन्हें सभी प्रकार के बंधनों को तोड़कर आगे आने की आवश्यकता है। विधानसभाएँ एवं लोकसभाएँ जहाँ पर देश चलाने हेतु नियम कानून (विधेयक) बनाये जाते है, यदि इन जगहों पर महिलाओं की भागीदारी मजबूत न हुई तो निश्चित रूप से महिलाओं का सर्वांगीण विकास मात्र एक सपना बनकर रह जायेगा।

स्वतंत्रता पश्चात, भारत की पहली लोकसभा चुनाव में कुल 43 महिलाएँ मैदान में उत्तरी, जिसमें मात्र 14 ही चुनाव जीतकर लोकसभा पहुँची। संसद में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने जब इस ओर ध्यान दिया तो उन्होंने अफसोस जताया। उन्होंने कहा कि ''मुझे अफसोस है कि इतनी कम महिलाएं चुनाव जीती हैं। इसकी जिम्मेदारी हम सब पर है ...... हमारे कानून, हमारे समाज में सब जगह पुरुषों का वर्चस्व है और हम सबका इसको लेकर एकतरफा रवैया है लेकिन अन्त में महिलाएँ ही भारत में भविष्य की निर्मात्री होगी।''

भारतीय राजनीति में यदि महिलाओं के योगदान पर दृष्टि डालें तो निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री के रूप में स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी का नाम सबसे शक्तिशाली एवं प्रभावशाली महिलाओं के रूप में आज भी अमर है। सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजकुमारी अमृत कौर को देश की प्रथम महिला स्वास्थ्य मंत्री बनने का सम्मान मिला, जो कि 1957 तक केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री पद पर विद्यमान रहीं है। इस अन्तराल में इन्होंने

महिलाओं एवं देश के लिए अद्‌भुत कार्य किये।

स्वतंत्र भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी बनी जिन्होंने उत्तर प्रदेश जैसे महत्वपूर्ण और वृहत प्रदेश की बागडोर संभाली। उत्तर प्रदेश मे ही सुश्री सरोजनी नायडू प्रथम महिला राज्यपाल भी बनी। यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बात की जाय तो श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा की पहली महिला सचिव बनने का गौरव हासिल किया। कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने भारत के सर्वोच्च पद राष्ट्रपति के पद पर नामांकन करके महिलाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर देश एवं विदेश में हलचल पैदा कर दी। उत्तरोत्तर महिलाओं की दिशा एवं दशा में सुधार होता जा रहा है। वर्तमान समय में महिलाओं की भारी भागीदारी रही है। देश का कोई ऐसा पद नही है जिस पर महिलाएं आसीन न हुई हों। राष्ट्रपति से लेकर प्रदेशों की मुख्यमंत्री भी महिलाएँ बनी हैं, तथा जहाँ पर इन्होंने अपनी अलग छाप छोड़ी। वर्तमान समय में निर्मला सीतारमण देश की रक्षामंत्री है देश का सबसे अहम विभाग रक्षा विभाग होता है जो कि सदैव पुरुषों के पास ही रहा है। इससे यह जाहिर होता है कि आज महिलाओं का राजनीति में काफी योगदान है।

कांग्रेस की अध्यक्ष रही, श्रीमती सोनिया गांधी देश की काफी चर्चित एवं शक्तिशाली राजनैतिक महिला के रूप में रही है। तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश की तीन बार मुख्यमंत्री रह चुकी सुश्री मायावती भी आइरन लेडी के रूप में मशहूर है। मायावती ने अपने शासन काल में ऐसे कार्य किया, एक से एक अद्‌भुत निर्माण कराये जो कि देश की धरोहर हो गये। अंग्रेजों एवं मुगलों के शासन काल में जिन इमारतों का निर्माण हुआ था उनसे कहीं और अधिक प्रशासनीय इमारतों को बनवाया जो कि भविष्य में इतिहास के पन्नों में ये जुड़ेगी। मायावती ने न सिर्फ महिला राजनीति बल्कि दलित राजनीति को भी नई ऊँचाइयाँ दी हैं। आज सम्पूर्ण देश का दलित मायावती की तरफ उम्मीद भरी निगाहों से देख रहा है कोई भी कितना क्यों न बरगलाए देश का दलित सिर्फ मायावती का ही इसारा समझता है। कुछ दिन पूर्व गोरखपुर, फूलपुर, कैराना जैसे महत्वपूर्ण जगहों पर हुए उप चुनाव मायावती के ही इसारे का परिणाम है कि देश एवं प्रदेश में भाजपा की सरकार होते हुए भी उप चुनाव हार गये तथा समाजवादी पार्टी की जीत हुई। आज वर्तमान समय की राजनीति भी मायावती पर ही टिकी है। भाजपा को मायावती की राजनीति से डर है वह समझ रही हैं यदि कहीं सपा और बसपा का गठबंधन हो गया तो समझो फिर केन्द्र की सरकार खटाई में पड़ सकती है।

महिलाओं का बहुत ही बोलबाला एवं दब—दबा बनता जा रहा है भारतीय राजनीति में तमिलनाडु से जय ललिता भी जब तक रही राजनीति में अपनी धमक जमायें रही। राजस्थान में वसुन्धरा राजे सिंधिया, बिहार में राबड़ी देवी तथा दिल्ली में श्रीमती शीला दीक्षित ने लगातार मुख्यमंत्री बनकर देश व प्रदेश की राजनीति में नये आयाम रचे हैं। इसके साथ ही ममता बनर्जी, डॉ0 गिरजा व्यास, मारगेट अल्वा, अंबिका सोनी, उमाभारती, साध्वी ऋतम्भरा, प्रतिभा पाटिल, सुषमा स्वराज, स्मृति ईरानी आदि महिलाओं ने आपकी महत्वपूर्ण उपस्थित दर्ज करा रखी है।

अगर रूस जैसे देश की बात करें जहां पर महिलाओं की जनसंख्या पुरुषों से भी अधिक है फिर भी वहां पर आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी है परन्तु राजनीति में उनका योगदान कम है।

हमेशा से ही महिलाओं के राजनीतिक एवं प्रशासन हेतु प्रतिबंधित रहे इस्लामी देश ईरान तक में उदारवादी शासकों ने महिलाओं को राजनीति में गलत माना है। वहाँ भी संसद में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अनवरत जारी है। एक सर्वेक्षण में यह बात सामने आयी कि महिलाएं पुरूशों की तुलना में नेतृत्व क्षमता अधिक रखती है।

भारत की अधिकांश जनसंख्या गांवो में निवास करती है। तथा भारत को ग्रामीण देश कहा जाता है। इसलिए यहां पर त्रिस्तरीय पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी के लिए की गयी व्यवस्था एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें

एवं 74वें संविधान संशोधन के परिणाम स्वरूप देश की ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार की पंचायतों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था हो जाने के परिणामस्वरूप लाखों महिलाओं को जन प्रतिनिधियों के रूप में विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व एवं राजनैतिक अधिकार प्राप्त हुए हैं। पंचायती राज में संस्थाओं में इन चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों ने अपवादों को छोड़कर अपनी भूमिका सक्षमता से निभाते हुए सिद्ध कर दिया कि महिलाएं किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं हैं।

अपने देश की राजनीति में यदि महिलाओं की अब तक की भागीदारी की स्थिति का विश्लेषण करे तो कुल मिलाकर उनकी सहभागिता और किसी भी स्तर पर संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

किसी भी पिछड़े तथा अविकसित वर्ग को विकास की मुख्यधारा में जोड़ने, उसे आर्थिक, शैक्षिक सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में विकसित वर्गों के साथ लाने में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जो प्रतिशत चाहिए था वह आज की बढ़ नहीं पा रहा है।

आज जो महिलाओं की भागदारी राजनीति में होनी चाहिए थी वैसी दिख नहीं पायी। महिलाएँ जो कि पिछड़ी एवं दलित हैं उनकी भागीदारी बढ़ाने हेतु भी प्रयास नगण्य ही रहे हैं।

एक बार स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि ''दुनिया का कल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि महिलाओं की दशा में सुधार न लाया जाय, बेहतर न बनाया जाये। यह सम्भव नहीं है कि कोई पक्षी एक पंख से ही उड़ सके।

अतः देश को समृद्ध बनाने के लिए राजनीति में महिलाओं को आगे आना पड़ेगा तथा पुरुषों को भी उनकी हर सम्भव मदद करके मुख्य धारा के साथ लाकर उनके चहुमुखी विकास के सपने को पूरा करने की जरूरत है।

❑❑

ग्रामीण महिलाओं में समावेशी शिक्षा के बदलते प्रतिमान

धर्मेन्द्र सिंह यादव
एम0फिल0 यू0जी0सी0 नेट
जीवाजी विश्वविद्यालय,ग्वालियर, म0प्र0

किसी विकासशील देश का सामाजिक, आर्थिक वं सांस्कृतिक विकास तभी संभव है, जब वहाँ की श्रमशक्ति, मानव संसाधन के आकार एवं कार्य में नियमितता हो तथा उस समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान समझा जाये। वैश्विक पटल पर कोई भी सभ्य देश आज स्त्री के अधिकारों के प्रश्न की उपेक्षा नहीं कर सकता है। यह सर्वविदित है कि सामाजिक जीवन में स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों के औचित्य को स्वीकार न करने वाले कभी भी वे स्वयं को प्रगतिशील नहीं कह सकते।

भारत में पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को एक वस्तु सरीखा माना और उनको निम्न प्रस्थिति प्रदान की, पुरुषों और स्त्रियों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विभेदों का सामान्य प्रतिमान है। परिवार, समाज व राज्य की विभिन्न गतिविधियों में सहभागिता के पश्चात् भी स्त्रियाँ घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न तथा दहेज प्रथा जैसी समस्याओं की शिकार हो रही हैं, ऐसी स्थिति में शिक्षा की भूमिका स्त्रियों के जीवन में महत्वपूर्ण है। शिक्षा द्वारा तर्क और बौद्धिक विकास, औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण, मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों की परम्परागत प्रस्थिति को क्षतिग्रस्त किया तथा धीमा सुधार हुआ है। सामाजिक गतिशीलता से पितृसत्ता की चहारदीवारी में एवं घूंघट में मुंह छिपाये स्त्री को आधुनिक सशक्त महिला बना दिया। महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता सम्बन्धी अनेक अध्ययन उपलब्ध हैं। इन समाजशास्त्रियों ने अध्ययन का लक्ष्य परिवार में महिलाओं की प्रस्थिति के औचित्य की व्याख्या करना रहा है। ये अध्ययन यह दर्शाते हैं कि भारतीय पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की है तथा पुरुष ही महिलाओं के भाग्य–विधाता रहे हैं एवं सामाजिक गतिशीलता ही इनकी इस स्थिति को परिवर्तित कर सकती है। इस अध्ययन में महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक गतिशीलता का अध्ययन किया जायेगा तथा यह स्पष्ट किया जायेगा कि महिलाओं में सशक्तिकरण की सुखद बयार नगरी सीमाओं तक ही सीमित न रहकर ग्रामीण क्षेत्रों में भी फैल रही हैं।

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य – किसी भरी सामाजिक घटना के समाज शास्त्रीय विश्लेषण के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य का होना आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही दिशा–निर्देश प्राप्त होता है तथा किस पद्धति द्वारा अध्ययन किया जाए यह निश्चित होता है। प्रस्तुत अध्ययन में जिन सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों को अपनाया गया है, उनमें संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक तथा परिवर्तन की अवधारणाएँ शामिल हैं। संरचना–प्रकार्यात्मक उपागम के लिए सामाजिक मानवशास्त्रीय विचारों को जैसे–रेडक्लिफ ब्राउन, एडमण्ड लीच, रेमण्ड फर्थ, मेयर फोर्टेस के विचारों को अपनाया गया है। संरचना–प्रकार्यात्मक उपागम का श्रेय मुख्य रूप से रेडक्लिफ ब्राउन (1952) को जाता है। उन्होंने अण्डमान द्वीप समूह में (1920) में क्षेत्रीय कार्य किया था। जिसमें सामयविक समरूपता सिद्धान्त को अपनाया तथा समाज की तुलना सावयव के साथ की और कहा कि सावयव में कई अन्तःनिर्भर तथा अन्तः संबंधित अंग होते हैं। कई नवीन कोशिकाएँ जन्म लेती हैं तथा पुरानी कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है लेकिन सावयव की संरचना यथावत रहती है।

रेडक्लिफ ब्राऊन के अनुसार ''किसी भी समाज की सामाजिक संरचना वहां पर वास्तविक रूप से पाया जाने वाला, संबंधों का जटिल जाल है। संरचना वास्तविकता है जबकि संरचनात्मक स्वरूप वास्तविकता का पुनः निर्माण

है। संरचना में छोटा–मोटा परिवर्तन होता है जबकि संरचनात्मक स्वरूप में लम्बी अवधि तक परिवर्तन नहीं पाया जाता।

ब्राऊन के अनुसार प्रकार्य का अर्थ किसी भी प्रक्रिया का सम्पूर्ण क्रियाओं की ओर योगदान तथा आंशिक क्रिया का अर्थ बार–बार होने वाली क्रिया है। सम्पूर्ण क्रिया का अर्थ समाज का निरंतर चलना है।

लीच (1954) के अनुसार समाज एक गतिशील प्रक्रिया है यहॉ पर संबंधों की प्रकृति में स्थायित्व एवं स्थिरता नहीं पाई जाती। शोधकर्ता जब समाज की संरचना का वर्तन करता है तब वह वास्तविकता का एक प्रारूप प्रस्तुत करता है, वास्तविक समाज कभी भरी संतुलित नहीं होता।

मेयर फोर्टेस (1969) के अनुसार संरचना के आन्तरिक या मुख्य अंग बरकरार रहता है जबकि कुछ तत्वों में परिवर्तन होता है, उदाहरणार्थ भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा में विघटन तो हुआ है लेकिन सम्पूर्ण विघटन नहीं हुआ है भावनात्मक एवं प्रकार्यात्मक रूप से लोग अभी भी संयुक्त परिवार के साथ जुड़े हुए है। अमूल–चूक संरचना का परिवर्तन न होकर संरचना में परिर्वतन होता है उदाहरणार्थ लैंगिक समानता अथवा नारी को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है, स्त्री स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकती है, पुत्र प्राथमिकता एवं नारी भ्रूण हत्या समाप्त हो गई है, नारी की धार्मिक भूमिकाओं में परिवर्तन हो गया है तो इन तत्वों को संरचना का परिवर्तन कहा जाता है।

सामाजिक गतिशीलता – गतिशीलता एक सामाजिक तथ्य है। आधुनिक सामाजिक गतिशीलता औद्योगिक नगरीय संस्कृति की देन है जिसने नवीन मूल्यों, वर्गों एवं सामाजिक आर्थिक संरचना प्रदान की है। समाज को नवीन प्रकार का संस्तरण, वर्ग व्यवस्था, श्रम विभाजन एवं सामाजिक विभेदीकरण प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक स्वतंत्रता समानता की भावना में वृद्धि हुई, प्रतिस्पर्धा बढ़ी तथा व्यक्तिगत सहभागिता कर अपनी प्रस्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करने लगे।

फिशर (1967) के अनुसार, ''सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति, समूह या श्रेणी के एक सामाजिक पद या स्तर से दूसरे में गति करने का कहते हैं''।

पिटरिम सोरोकिन (1927) के अनुसार, ''सामाजिक गतिशीलता से तात्पर्य सामाजिक समूहों तथा स्तरों के झुण्ड में एक सामाजिक पद से दूसरे सामाजिक पद में परिवर्तन होना है।

इन परिभाशाओं से स्पष्ट है कि–

1. सामाजिक गतिशीलता का संबंध व्यक्ति या समूह के पद या प्रस्थिति से है।
2. सामाजिक गतिशीलता में व्यक्ति या समूह की सामाजिक प्रतिस्थित में परिवर्तन आता है।
3. यह परिवर्तन एक समूह या समाज की संरचना के अन्तर्गत ही होता है।
4. समाजिक परिवर्तन की कोई निश्चित दिशा नहीं है, यह ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज हो सकती है।

सामाजिक गतिशीलता के प्रकार – सेरोकिन (1927) ने सामाजिक गतिशीलता के दो प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया है––

1. उदग्र या रैखिक सामाजिक गतिशीलता।

2. क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता।

1. उदग्र या रैखिक सामाजिक गतिशीलता – जब किसी व्यक्ति या समूह द्वारा एक सामाजिक स्तर से दूसरे सामाजिक स्तर में गमन होता है तो इसे उदग्र गतिशीलता कहा जाता है। हार्टन एवं हंट (1981) के अनुसार, ''यदि किसी प्रस्थिति एवं भूमिका में ऐसा परिवर्तन जिससे सामाजिक वर्ग पद में भी परिवर्तन सम्मिलित हो तो उसे उदग्र गतिशीलता कहा जाता है।''

उर्ध्वाधर सामाजिक गतिशीलता में सामाजिक स्तर पहले से उच्च या निम्न हो सकता है। सोरोकिन ने

गतिशीलता की दिशा के आधार पर उदग्र गतिशीलता को भी उपभागों में बांटा है–

1. उर्ध्वगामी गतिशीलता– जैसे श्रमिक का कारखाना मालिक बन जाना, क्लर्क का प्रथम श्रेणी का अधिकारी बन जाना आदि।

2. अधोगामी गतिशीलता– जैसे कारखाना मालिक का दीवालिया होकर श्रमिक बन जाना, प्रथम श्रेणी के अधिकारी का दण्ड स्वरूप पदोवनति होना आदि।

एम0एन0 श्रीनिवास (1966) ने संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा जातियों की उर्ध्वगामी गतिशीलता को व्यक्ति किया। संस्कृतिकरण यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न जाति या जनजाति अपने से ऊंची या द्विज जाति के संस्कारों, विश्वासों, विचारों तथा रहन–सहन के ढंग को अपना लेती है। दूसरी ओर ब्राम्हण और कई उच्च जातियों के लोग निम्न जातियों के उच्च अधिकारियों के अधीन चपरासी या क्लर्क, आदि पदों पर कार्य कर रहे है जो कि उच्च जातियों की अधोगामी गतिशीलता का सूचक है।

फिशर ने उर्ध्वगामी गतिशीलता के लिए निम्नांकित प्रकारों को उत्तरदायी माना है–

1. आप्रवास
2. उच्च वर्ग में कम प्रजनन क्षमता।
3. अर्जित प्रस्थिति तथा प्रतिस्पर्धा का महत्व।
4. समानता और विशमता के प्रतिमान।

एल्विन बर्ट्रांण्ड (1959) ने उदग्र सामाजिक गतिशीलता के लिए जिन पांच स्त्रोतों का उल्लेख किया है वे हैं– व्यावसायिक उन्नति, आर्थिक सफलता, शैक्षणिक उपलब्धि, शक्ति पर नियंत्रण, कार्य विशेष में दक्षता आदि।

2. क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता – सेरोकिन के अनुसार, ''क्षैतिज या समरैखिक सामाजिक गतिशीलता में एक व्यक्ति या समूह उसी स्तर के पर या समूह में गमन करता है तो उसे क्षैतिज सामाजिक गतिशीलता कहते है''।

सामाजिक गतिशीलता के निर्धारक कारक – किसी भी समाज की गतिशीलता की दर क्या होगी, यह बहुत कुछ उसकी सामाजिक दशाओं पर निर्भर है। बरट्रान्ड (1959) के द्वारा मुख्य रूप से जिन कारकों का विश्लेषण किया गया वे निम्नांकित हैं––

1. आधुनिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार – ब्रूम एवं सेल्जनिक के अनुसार भी शिक्षा, गतिशीलता का महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा में वृद्धि से व्यक्तियों की आकांक्षाओं कें वृद्धि होती है। व्यक्ति अपने गुणों एवं योग्यताओं में वृद्धि कर समाज में ऊंचा पद प्राप्त कर सकता है।

सोरोकिन का भी मानना है कि शिक्षा समाज में सोपान का कार्य करती है। आधुनिक शिक्षा के कारण रूढ़ियों व परम्पराओं में तर्क का प्रवेश हो रहा है।

2. नए अवसरों की संभावना– समाज में नए–नए अवसर प्राप्त होने के साथ सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है। जटिल समाजों (आधुनिक समाज) में व्यापार, शिक्षा, नौकरशाही की व्यापक व्यवस्था होने के कारण सामाजिक गतिशीलता के अवसर अधिक होते हैं।

3. जनांकिकी प्रक्रियाएं– निम्न प्रस्थिति के कारण ग्रामीण लोग नगरों में आकर बस जाते है तथा उच्च वर्ग की प्रस्थिति पाने के लिए प्रयासरत हो जाते हैं।

4. महत्वाकॉक्षाओं का स्तर– जिन समाजों में महत्वाकॉक्षाओं का स्तर जितना ऊँचा होगा गतिशीलता उतनी ही अधिक होगी।

5. सामाजिक मूल्यों का स्वरूप– गतिशीलता की तीव्रता समाज में बुनियादी प्रतिमानों एवं मूल्यों के स्वरूप

पर भी निर्भर करती है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति को ज्यादा आगे बढ़ने का अवसर प्रदान नहीं करते। मैक्स वेबर ने अपनी कृति 'द रिलीजन ऑफ इण्डिया' एवं 'द प्रोटेस्टेण्ड एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में ऐसे ही तर्क प्रस्तुत किये हैं।

6. नियमहीनता की दशा – मर्टन ने अपनी पुस्तक 'सोशल थियरी एण्ड स्ट्रक्चर (1968) में सामाजिक संरचना से संबंधित ऐसी दशा का उल्लेख किया जो सामाजिक गतिशीलता में बाधक है।

जब समाज में उच्च पदों पर आसीन लोगों द्वारा समाज के स्वीकृत साधनों का उपयोग नहीं करते तब समाज में नियमहीनता की दशा उत्पन्न हो जाती है। नियमहीनता की दशा में अधिकांश व्यक्तियों को अपनी सामाजिक स्थिति के बदलने के अवसर नहीं मिल पाते। दूसरे शब्दों में नियमों का दुर्बल होना सामाजिक गतिशीलता की एक प्रमुख बाधा है।

7. अन्य निर्धारक तत्व– व्यावसायिक पक्षपात, भाई–भतीजावाद, परम्परावाद, परिवारवाद, जैसे कारक सामाजिक गतिशीलता के बाधक तत्व हैं।

महिलाओं की प्रस्थिति – नारी महिला उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में गतिशील और निरंतर परिवर्तन होने वाली विचारधारा है जिसमें व्यक्तिगत, राजनीतिक तथा दार्शनिक पहले भी शामिल हैं। नारीवाद से सम्बन्धित मुख्यतः चार विचारधाराएं हैं––

1. उदारवादी नारीवाद– ये एक दार्शनिक परम्परा है जो 17वीं सदी से 18वीं सदी तक पश्चिमी जगत में सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक बदलाव की उपज थी। इस विचारधारा के अन्तर्गत महिलाओं को निम्न प्रस्थिति को सुधारकर पुरुषों के समकक्ष लाने का प्रयास करना है लेकिन पितृसत्ता के चलते ऐसा संभव नहीं है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना की जड़ों को नकारना तो दूर छुआ भी नहीं जा सकता लेकिन महिलाओं में शिक्षा द्वारा ज्ञानोदय, जागरूकता एवं विकास के माध्यम से परिवर्तन की अवाज उठाई गयी।

उदारवादी परिप्रेक्ष्य का अर्थ है– सामाजिक संरचना बरकरार रहते हुए भी महिलाओं में शिक्षा द्वारा उनको विकासशील बनाया जा सकता है। भारत में भी रूढ़िवादी परम्परा बरकरार है लेकिन नारियों को विभिन्न विकास के कार्यों के माध्यम से उनकी प्रस्थिति सुधारने की कोशिश की जा रही है। नारियों को शिक्षा एवं रोजगार के अवसर दिये जा रहे हैं लेकिन नारियों को कोई निर्णयात्मक भूमिका नहीं दी जा रही है। उदारवादी सुधारों का प्रतिफल ये रहा कि महिलाओं को अधिक अवसर तथा महिला अधिकारों के बारे में बढ़ती जनचेतना संभव हो सकी हालाँकि फायदा सभी महिलाओं को समान रूप से नहीं मिल पाया।

2. मार्क्सवादी/समाजवादी नारीवाद – ये विचारधारा पूंजीवादी व्यवस्था की विरोधी रही है। इन्होंने पूंजीवादी पितृसत्ता को समझने और बदलने का प्रयास किया। प्राक् पूंजीवादी समाज में पुरुष और महिलाए उत्पादन में संयुक्त रूप से भाग लेते थे। इसमें दो विचाराधाराए हैं–

(1) मार्क्सवादी नारीवादी विचारधारा (2) समाजवादी नारीवादी विचारधारा

1. मार्क्सवादी नारीवादी विचारधारा ने महिलाओं का उत्पीड़न मूलतः परिवार में उनकी परम्परागत स्थिति को कारण माना अर्थात महिलाओं को सार्वजनिक उत्पादन में बाहर कर दिया जाता है जिससे वे घर के कार्यों में बंधकर रह जाती है। इन्होंने महिला उत्पीड़न पूंजीवाद की उपज बताया।

2. मार्क्सवाद से ही समाजवादी नारीवादी विचारधारा प्रारम्भ हुई जिसमें नारी को पुरुष की तरह समानता देने की कोशिश की गई। सत्तर के दशक में समाजवादी नारीवादियों ने परम्परागत मार्क्सवाद की यह कहकर आलोचना की कि उन्होंने पूंजीवाद को बनाये रखने में महिलाओं के पारिवारिक श्रम की भूमिका की अनदेखी की है। समाजवादी नारीवादियों का कहना है कि स्त्री के घरेलू श्रम ने पुरूश और पूंजीवाद दोनों को लाभ पहुंचाया है। इसलिए मार्क्सवाद को परिवार में महिलाओं के श्रम के विषय में विश्लेषण करना चाहिए और ये खोजना चाहिए

कि पारिवारिक श्रम से किसको लाभ होता है। लिंक के आधार पर श्रम विभाजन में स्त्री ने पूंजीवाद और पुरुष दोनों की सेवा ही है।

3. उग्रनारीवादी/अतिवादी नारीवाद– 1960 के दशक में उत्तरार्द्ध तथा 1970 के दशक के शुरूआत में रेडिकल नारीवादी विचारधारा आयी जिसमें पुरुषों द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न तथा सत्ता संबंधों में उनकी गैर बराबरी को दखा गया। ये कहा गया कि नारी का कोई मूल विचार नहीं होते हैं, उनके विचार पुरुषों द्वारा प्रभावित एवं प्रेरित होते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। पुरुषों की तरह नारी भी समाज का अभिन्न अंग है। अगर महिलाओं को अवसर दिया जाये तो उनकी भी अपनी विचारधाराएँ होती हैं जो स्वतंत्र एवं विकसित हो सकती हैं। बुआ (1953) ने कहा कि सेक्स को जेण्डर से अलग समझना चाहिए और महिलाओं का उत्पीड़न जेण्डर के कारण है।

नारीवादियों का कहना है कि लैंगिक विषमता की वजह से नारी पुरुष की कठपुतली बनने पर मजबूर हो जाती है इसलिए समलैंगिक व्यवहार करना चाहिए। ये विचारधारा पुरुष मूल्यों को चुनौती देती है। ये नहीं चाहते हैं कि महिलाएँ पुरुष संस्कृति का अनुसरण करें। महिलाओं को चाहिए कि वे पारम्परिक संस्कृति पर आधारित नए मूल्यों का सृजन करें। नारी संस्कृति उन सभी पहलुओं का निषेध करती है जो महिलाओं का पराधीन अकर्मण्य बनाये रखते हैं।

4. उत्तर आधुनिकतावादी नारीवाद (तीसरी दुनिया का नारीवाद) :– ये विचारधारा भी 1960 के दशम में प्रारम्भ हुई यहाँ तीसरी दुनियां से तात्पर्य उन सभी देशों से है जो उपनिवेशी ताकतों से बहुत वर्षों बाद स्वतन्त्र हुई। महिलाओं की विषमताओं को समझे बगैर नारीवाद की कल्पना की नहीं जा सकती है। इस विचारधारा में नारियों की प्रस्थिति अलग–अलग होने के कारण नारियों के बीच अंतर को बल देते हैं। पुरुष तो महिलाओं का शोषण करता ही है साथ ही ज्ञानी महिला भी अज्ञानी महिला का शोषण करती है।

इसमें नारियों को शक्ति प्रदान करने की बात कही गयी है। इसी से नारी सशक्तिकरण की विचारधारा उत्पन्न हुई। यह कहा जाता है कि ज्ञान ही शक्ति है लेकिन किसी भी क्षेत्र में उत्तम रूप से ज्ञान अर्जितकर महिलाएँ अज्ञानी महिलाओं को शोषण कर सकती हैं।

महिला सशक्तिकरण – इसका अर्थ नारियों को शक्ति प्रदान करना है तथा वे क्षेत्र राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक, सामाजिक हो सकते हैं। बेत्तई के अनुसार, ''सशक्तिकरण एक सिद्धांत नहीं है बल्कि एक परिस्थिति एवं वास्तविकता है जिससे साधारण व्यक्ति को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से शक्ति प्रदान करना है। यह संस्तरण लोकतांत्रिक, राजनैतिक व्यवस्था में पाया जाता है इससे मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं को करने के लिए क्षमता बढ़ाई जाती है।'' सशक्तिकरण द्वारा नारियों का स्वविकास या आत्मविकास तथा उनके साधारण जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है।

कारलेकर के अनुसार, ''सामूहिक नेतृत्व की भूमिका एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकेन्द्रीकरण महत्वपूर्ण है। स्थानीय स्तर पर महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए उनमें गतिशीलता लानी होगी एवं उनको शक्ति प्रदान करना होगा जैसे– महिला समितियाँ, महिला मण्डल को बढ़ावा देना इनके सदस्यों को प्रशिक्षण देना आदि। सरकारी स्तर पर विकास के कार्यक्रमों नारी केन्द्रित होना चाहिए जैसे–सेल्फ हेल्थ ग्रुप (स्व सहायता समूह)

इस क्षेत्र में सरकार द्वारा 'नेशनल कमीशन फॉर सेल्फ इम्प्लाइड वीमेन' की स्थापना की गयी जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर नारी संगठनों को शामिल किया गया। 1990 के दशक में नारियों के कल्याणकारी उपागम को हटाकर विकास का उपागम लाया गया। महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत सरकार द्वारा महिलाओं के विकास एवं समानता के लिए किये गये प्रयास निम्न हैं–

1. शासन का विकेन्द्रीकरण एवं उसमें महिलाओं की सहभागिता लोकसभा, विधानसभा एवं ग्रामीण पंचायतों में।

2. खाद्य पदार्थों की सुरक्षा एवं उपलब्धता जिससे गरीबी एवं शोषण को कम किया जा सके।
3. सीमित ऋण देकर आर्थिक रूप में मजबूत करना।
4. रोजगार एवं स्वरोजगार के माध्यम से गरीबी कम कर आत्मनिर्भर बनाना।
5. लैंगिक अंतर को न्यूनतम रखना एवं शिक्षा देकर जागरूकता बढ़ाना।
6. घरेलू हिंसा को कम करना एवं कामकाजी महिलाओं के प्रति शोषण को निषिद्ध करना आदि।
7. महिलाओं को समान अधिकार एवं उनके प्रति भेदभाव को समाप्त किया जा रहा है।
8. गरीब महिलाओं के लिए आर्थिक सहायता के लिए योजनाएँ चलायी जा रही हैं।
9. बालिका व्यापार, भ्रूण हत्या, प्रसव पूर्व लिंग निर्धारण, बाल विवाह, महिला अश्लील चित्रण, एवं वैश्यावृत्ति पर भी अंकुश लगाया जा रहा है।

महिला उत्थान नीति 2001 के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष भारत में 8 मार्च को महिला सशक्तिकरण दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। महिला के प्रति अत्याचार को उजागर करने तथा उन्हें न्याय दिलाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग एवं महिलाओं को प्रोत्साहन के लिए अनेक पुरस्कार शुरू किये गये जैसे देवी अहिल्याबाई होल्कर पुरस्कार, रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार, माता जीजाबाई पुरस्कार जसै अन्य पुरस्कार भी दिये जा रहे हैं।

महिलाओं के सशक्तिकरण में उनकी पंचायती राज में भूमिका महत्वपूर्ण है। जिसमें उनको 33 प्रतिशत आरक्षण देकर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया जा रहा है। महिलाओं के बारे में अबला एवं पति परमेश्वर जैसी पारम्परिक धारणा आधुनिक समाज में गलत साबित हो रही है। क्योंकि शिक्षागत आधुनिक समाज का लक्षण है— संरचना में परिवर्तन। गैर सरकारी संगठनों (N.G.O's) द्वारा भी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए उन्हें शिक्षित तथा जागरूक बनाने संबंधी विकास कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

महिला लिंगानुपात जीवन प्रत्याशा एवं शिक्षा का स्तर :— भारत में स्त्री पुरुष लिंगानुपात 2011 में अनुसार (7 वर्ष से ऊपर की जनसंख्या अनुपात) 944:1000 है जिसमें सर्वाधिक केरल में 1099:1000 उ0प्र0 910:1000 तथा हरियाणा में सबसे कम 885:1000। केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक 1047:1000 तथा दमन—दीव में सबसे कम 589:1000 है।

देश में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा 2011 के अनुसार 64.2 वर्ष है। जिसमें केरल में सर्वाधिक 74.0 वर्ष तथा सबसे कम मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, एवं झारखण्ड की 58 वर्ष है। उत्तर प्रदेश की 60 वर्ष है। (इण्टरनेट के माध्यम से)

महिला साक्षरता 2011 के अनुसार भारत की 65.5 प्रतिशत तथा ग्रामीण महिला साक्षरता 58.8 प्रतिशत है। ग्रामीण महिला सर्वाधिक साक्षरता 90.74 प्रतिशत केरल न्यूनतम महिला साक्षरता 46.26 प्रतिशत राजस्थान में है। उ0प्र0 की महिला साक्षरता 59.26 प्रतिशत है। कानपुर देहात की साक्षरता 77.52 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 68.48 प्रतिशत है। (वाणी प्रकाशन जनसंख्या एंव नगरीयकरण)

शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के बावजूद भी व्यक्ति संकीर्ण मानसिकता से उभर नहीं पाया है। कन्या भ्रूण हत्याएं बेहिचक हो रही हैं। जिसमें हरियाणा, पंजाब प्रमुख हैं। ग्रामांचलों की 40 प्रतिशत गर्भावस्था या प्रसव के समय अधिक रक्त स्राव या एनीमिया से पीड़ित होती हैं। ज्यादातर गाँव में पेयजल समस्या, स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सेवाओं की समस्या तथा संतुलित पोषाहार की कमी बीमारियों एवं कुपोषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

नारी एवं परिवार :— भारत के गांवों में अभी भी ज्यादातर संयुक्त परिवार मिलते हैं जिनमें महिलाओं पर काम की अधिकता देखने को मिलती है। सारे घरेलू कार्य घर की महिलाएं ही करती हैं, पति, सास—ससुर की सेवा करना, घर के ज्येष्ठ लोगों की आंखों से बचने के लिए पर्दा करना, घर की चाहरदीवारी में रहना, पुरुष के लिए यौनक्रिया

की वस्तु मानना, परिवार के लिए सन्तानोत्पत्ति करना तथा सेवा करना एवं अपनी हर कामनाओं को भूल जाना या छुपाकर रखना।

स्वतंत्रता के पश्चात, विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा सरकारी कार्यक्रमों के द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति सम्मानजनक बनाने तथा सशक्त करने का प्रयास हो रहा है। इसी कारण उन्हें आर्थिक अधिकारिता के प्रति सचेत एवं पंचायती राज के माध्यम से उनकी अधिक से अधिक राजनैतिक भागीदारी, आरक्षण के द्वारा सुनिश्चित की जा रही है। इसी पृष्ठभूमि में अनेक सामाजिक प्रक्रियाओं जैसे आधुनिकीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा व्यैक्तिकरण आदि ने महिलाओं की परम्परागत भूमिकाओं को प्रभावित किया है।

बेत्तई (1975) ने कृषक परिवारों में स्त्रियों की प्रस्थिति के संदर्भ मे पाया कि ग्रामीण, उच्च जातियों के परिवारों में स्त्रियाँ खेतों में कार्य नहीं करती। यहाँ तक कि मध्यम एवं निम्न जाति के कुछ परिवार जो आर्थिक दृष्टि से बेहतर हो गये हैं, उन्होंने इस मानक को इस उद्देश्य से अपनाया है ताकि ग्रामीण समुदाय में उनकी सामाजिक प्रस्थिति उच्च हो सके। इसका अर्थ यह नहीं कि वे महिलाएं जो कृषि कार्य नहीं करती या खेतों पर कार्य बन्द कर दिया है उन्हें अपने परिवार में पुरुषों के बराबर स्थान दे दिया गया है। गांवों में स्त्रियों को खेतों पर कार्य से हटाना उच्च प्रतिष्ठा का द्योतक माना जा सकता है।

कैपलोव (1979) ने अपने अध्ययन के दौरान पाया कि महिलाओं की व्यवसायिक प्रस्थित के धरातल में होने के कुछ कारण इंगित हैं–

क– पितृसत्तात्मक समाजों में स्त्री की माँ एवं पत्नी की भूमिका अति महत्वपूर्ण होने के कारण, पेशे के चयन संबंधी प्रयास बाधित हो जाता है।

ख– स्त्रियों का परिवार संबंधी आर्थिक दायित्व द्वितीयक महत्व का है।

ग– भौगोलिक गतिशीलता महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा कम होती है जिससे महिलाओं की व्यवसायिक गतिशीलता बाधित होती है।

आहूजा (1992) ने राजस्थान में एक जिले के आठ गांवों में 18 से 50 आयु की 753 स्त्रियों पर किये गये अनुभवाश्रित अध्ययन में पाया कि महिलाओं की सामाजिक गतिशीलता एवं जागरूकता चार तत्वों पर निर्भर करती है—

क– स्त्री की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि

ख– उसका सामाजिक वातावरण

ग– उसका अपना दृष्टिकोण

घ– अपना आर्थिक आधार।

डोलार्ड (2005) ने महिला शिक्षा तथा उनके अधिकारों की बात की है, परन्तु आहूजा का मत है कि यह सत्य नही है कि अधिकारों की जागरूकता मात्र से महिलाओं की प्रस्थिति सुधर जायेगी। विवाह के उपरांत लड़की का अपने मायके पत्र लिखने की योग्यता का होना ही, स्त्री शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रकार्य माना जाता है। समाज मे ऐसा संप्रेषण तब और ज्यादा आवश्यक हो जाता है जब नवविवाहिता को शारीरिक तथा मानसिक प्रताड़ना से दो–चार होना पड़ता है।

❑❑

19

नवजागरण काल एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक दशा में परिवर्तन

डॉ. शिवानी शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
श्री गुरूननाक गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ

अठारह सौ सत्तावन में जो क्रान्ति प्रेरणा जागी थी उसने भारतीय समाज में नवसंस्कार की लहर फैलायी। यद्यपि इस अवधि के मध्य में कुछ विद्राह हुए थे जिनमें नील विद्राह, कूका विद्रोह आदि प्रसिद्धि विद्रोह थे परन्तु कुल मिलाकर इस अवधि को शांतिकाल ही कहा गया। इस अवधि में महिलाओं ने भी नवजागरण व स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई जो आगे आने वाले स्वतंत्रता संघर्ष के लिये पृश्ठभूमि बनी थी।[1]

19वीं शताब्दी का यह पूरा दौर आंखों पर से परदे हटाने का, दिमागी जाले साफ करने का, कुसंस्कारों के दाग–धब्बे मिटाने का दौर था। यह भारतीय मनीशा के नवजागरण का दौर था। हिंदु और मुसलमान दोनों ही समाजों में ऐसे लोग पैदा हुए जो अपने समाज की अंदरूनी कमियों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने लगे एवं उसमें सुधार की संभावनाएं टटोलने लगे। बंगाल इस नवजागरण का केन्द्र था। राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर बंगाल में, तो महादेव गोविंद रानाडे, ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र में इस चेतना को अपनी तरह से उकसा रहे थे। दयानंद सरस्वती रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय आदि ने उसे एक व्यवस्थित आंदोलन का रूप देने का कार्य किया। इस दौर में सबसे बड़ा कार्य यह हुआ कि देश को इस बात का एहसास कराया कि विभिन्न जातियों, भाषाओं धर्मों, संस्कृतियों का यह संगम हमारी विवषता नहीं, हमारी विशेषता है। इन विशेषताओं के आधार पर यदि एक नयी संस्कृति बनानी हो तो उसका आधार सर्वधर्म समभाव ही हो सकता है।[2]

उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधार आंदोलन के उद्भव के साथ भारतीय स्त्री को पुनः व्याख्यातित किया गया है। भारतीय सामाजिक सुधार के आंदालेन के उद्भव एवं विकास को सामान्यतया पाश्चात्य विचारों के आगमन का परिणाम माना जाता है। भारत में आधुनिक विचार के विकास को अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के लागू होने का परिणाम माना है। इसी के साथ 19वीं शताब्दी के अनेक विषयों में महिलाओं का प्रश्न केन्द्र बिन्दु बनकर उभरा क्योंकि पुनर्जागरण आंदोलन के नायक तथा अंग्रेज दोनों ही इस बिंदु के प्रति सजग थे। सामान्यता महिलाओं के विरूद्व कई घृणित रीति–रिवाजों के विरुद्ध अंग्रेजों का ध्यान गया। भारतीय जागृत जनमत ने अमानवीय रीति – रिवाजों को अपने प्रयासों से सुधारने का श्रीगणेश कर दिया था। सती प्रथा, बालिका वध एवं बाल विधवा प्रथा जिसमें बाल विधवा जीवन भर दुख का जीवन व्यतीत करने को बाध्य थी एवं इसका प्रमुख कारण बाल विवाह तथा बेमेल विवाह था, ऐसी कुप्रथाओं ने अंग्रेजों का ध्यान आकर्षित किया तथा इन बुराइयों को समाप्त करने के लिए प्रेरित तथा भारतीय महिलाओं के जीवन स्तर को उठाने के लिये, भारतीय बुद्धिजीवियों को प्रेरित किया।[3]

19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय ने सबसे पहले सती प्रथा को घोर अन्याय कहा। उन्हीं के नाम के साथ जुड़ा सबसे बड़ा समाज सुधार कार्य 1829 का सती एक्ट था जो उन्हीं के प्रयासों का फल था। सन् 1811 में अपने बड़े भाई जगमोहन राय की पत्नी के सती होने का भीषण प्रसंग उन्होंने देखा। वे नारी अधिकारों के जबरदस्त पक्षधर थे। 1832 में उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखकर धर्मशास्त्रों के प्रमाण से यह सिद्ध किया था कि प्राचीन काल में भारतीय नारी को बहुत अधिकार थे, जो बाद में उससे छीन लिये गये।[4]

समाजिक सुधारों में स्त्रियों की दशा को दृष्टि में रखते हुए स्वामी दयानंद ने भी सबसे अधिक कार्य स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिये किया। उन्होंने सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक थे, जिन्होंने शूद्र तथा स्त्री को वेद पढ़ने तथा ऊँची शिक्षा प्राप्त, यज्ञोपवीत धारण करने तथा अन्य सभी पक्षों से ऊँची जाति तथा पुरुषों के बराबर के अधिकार प्राप्त करने के लिये आंदोलन किया। इसके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन, वेदसमाज, प्रार्थना समाज आदि सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन अस्तित्व में आए, जिन्होंने राष्ट्रीय नवजागरण तथा स्त्री–जागरण में अपना महती योगदान दिया।[5]

इसी प्रकार थियोसाफिकल सोसायटी सामाजिक संस्था का भारत में सफलता सूत्र ऐनी बेसेण्ट के हाथों में था, जब वे भारत आईं तब उन्होंने इस संस्था द्वारा महिलाओं की स्वतन्त्रता के बल को स्पश्ट किया। ऐनी बेसेण्ट ने अपने व्यक्तत्व में स्पष्ट किया कि पुरुष का अधिकार एक स्वीकार्य सिद्धांत बन चुका है। ये अधिकार लैंगिक अधिकार हैं न कि मानवीय अधिकार, एवं जब तक ये मानवीय अधिकार नही बनते तब तक समाज एक औचित्यपूर्ण, सुरक्षित नींव पर खड़ा नहीं हो सकता....स्त्रियों के इन अधिकारों (स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा तथा अन्याय विरोध) को नकारने का अर्थ है मानवता को नकारना या यह मानने से इनकार करना कि स्त्रियां मानवता का एक अंग है यदि स्त्रियों के अधिकारों का नकारा जाता है तो स्त्रियों के अधिकारों की बात करना बेमानी है,...या तो सभी मनुश्य के अधिकार समान हों या फिर किसी को कोई अधिकार न हो।[6]

ईश्वर चंद्र विद्यासागर जिन्होंने 1856 में विधवा विवाह कानून पास करवाया । उन्होंने अनेक विधवा विवाह स्वयं अपने खर्चे से आयोजित किये एवं बाल विवाह रोकने के लिये भी उन्होंने प्रयत्न किये थे। पंडिता रमाबाई समाज सुधार युग की सबसे तेजस्विनी महिला थीं, इन्होंने बाल विधवा प्रथा को रोकने के लिये प्रयत्न किये।[7]

यद्यपि महिलाओं के उत्थान के लिये आंदोलन का प्रारंभ पुरुषों द्वारा किया गया था परंतु शीघ्र ही महिलाएं भी इस कार्य में जागरूक हो गई एवं महिलाओं के उत्थान के लिये प्रयासरत् हो गयी थीं। इन महिलओं में प्रमुख –ऐनीबेसेण्ट, पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानाडे थीं, जिन्होंने महिला संगठन स्थापित करके उत्थान का कार्य किया। पंडिता रमाबाई 19वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण भारतीय सुधारक थी, वे स्वयं एक महिला एवं विधवा थी अतः महिलाओं की दशा को अनुभव करने में सक्षम थी।

ये पहली भारतीय महिला थीं जिन्होंने भारतीय महिलाओं के लिये संघर्ष किया एवं उनके पक्ष में भाषण देने लगी। उनके भाषणों में महिलाओं की उन्नति और उनकी शिक्षा के प्रयास व्यक्त होते थे। उन्होंने बाल विधवाओं के पक्ष में न्याय के लिये गुहार कीं। उन्होंने अपने विचारों को समाज में फैलाने के लिये पुस्तकों एवं लेखों का उपयोग किया तथा उन्होंने महिलाओं को अपने स्वयं के लिये सहायता की प्रेरणा दी थी।[8]

समाज सुधारकों द्वारा किये गये सुधारों के परिणामस्वरूप उन सुधारों का प्रभाव विभिन्न प्रान्तों पर भी पड़ा जहां महिलाओं के उत्थान के लिये आश्रम स्थापित किये गये सामाजिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न जिलों में विधवाओं की स्थिति तथा पुर्नविधवा विवाह के लिये सकारात्मक कार्य किये गये।[9]

भारत में नारी जागृति एवं प्रगति के लिये प्रारंम्भिक कदम इस सुधार युग में भारतीय मनीशियों एवं सुधारकों द्वारा ही उठाये गए थे। उन्होंने ही महिलाओं को आगे किया था। आगे चलकर महात्मा गांधी के आह्वान पर हजारों देश भर की स्त्रियां अलग–अलग प्रांतों से निकलकर राष्ट्रवादी आंदोलनों में आगे आईं। समाज सुधार और देश की आजादी के संयुक्त लक्ष्य में कहीं भी स्त्री पुरुष का भेदभाव आड़े नहीं आया। इस नवजागरण काल ने स्वतंत्रता संग्राम के लिये पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी एवं इसी के साथ–साथ अधिकारों की प्राप्ति के लिये राजनीतिक संगठन भी जन्म लेने लगे थे।[10]

कांग्रेस एवं महिलाएं –

19वीं शताब्दी में नारी समाज में नवजागरण के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही

व्यवस्थित रूप से ब्रिटिश शासन को हटाकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये आंदोलन चलाया गया। जिस समय यह संस्था आंखें खोल रही थी, देश में तरह–तरह की लहरें उठ रही थीं। तीस साल पहले जो बगावत देश के साधारण लोगों ने उठायी थीं, मानों उसी का छोर पकड़कर इतिहास फिर चलने की कोशिश कर रहा था।

परिवर्तन चाहने वाली ताकतों के पीछे कोई नहीं था, कोई संस्था नहीं थी, कोई एक संगठित दल नहीं था। देश के सभी भागों से एकत्र होने एवं उन्होंने मिलकर इस संस्था के निर्माण का फैसला किया था। इसी के साथ व्योमेश चंद्र बनर्जी के अध्यक्षता में इसका अधिवेशन बम्बई में आयोजित किया था। देश भर से आये 72 प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुये थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भारतीय राजनीतिक इतिहास की एक ऐसी घटना थी, जिसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता है।[11]

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस वास्तव में भारत का पहला बड़ा राजनीतिक संगठन था जिसकी स्थापना 1885 में सर ह्यूम ने की। इसका प्रथम अधिवेशन बम्बई में आयोजित हुआ था, जिसके साथ सारे भारत में नए जीवन के स्पन्दन अनुभूत हुए थे तत्पश्चात् इसने एक नवयुग के आगमन की घोषणा की। राष्ट्रीय एकता के युग की घोषणा जो ऊपर से लादी नहीं गयी थी, वरन् जनता के संकल्प की अभिव्यक्ति थी। निःसंदेह यह उस प्रक्रिया की पूर्णता थी जिससे सभी भारतीयों का व्यैक्तिक रूप से एवं साथ ही सामूहिक रूप से संबंध था।[12]

आगे चलकर कांग्रेस के इतिहास में इसके अधिवेशन प्रत्येक वर्ष देश के प्रत्येक भाग में आयोजित होते रहे तथा इतनी बड़ी संस्था में महिलाओं की भागीदारी को लेकर प्रश्न उठने लगे थे। अंततः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में पुरुषों के समान महिलाओं ने प्रतिनिधियों के रूप में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था। कांग्रेस के संस्थापक सर ह्यूम ने आरंभ में कहा था, ''महिलाओं को साथ लिये बिना संगठन की गतिविधियों की सफलता संदिग्ध होगी एवं प्रयत्न निष्फल रहेंगें।[13]

प्रथम बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में 1890 में रमाबाई पंडिता तथा स्वर्णकुमारी देवी के प्रयत्नों से लगभग 100 महिलाओं ने कलकत्ता अधिवेशन में भाग लिया। श्रीमती ज्योतिर्मयी गांगुली ने 1900 में प्रथम बार कांग्रेस मंच से ''वंदेमातरम्'' का गान किया एवं उनके नेतृत्व में लड़कियों का एक सेवा दल भी कांग्रेस अधिवेशन की व्यवस्था संभालने पहुँचा था।

धीरे–धीरे महिलाओं की संख्या संस्था में बढ़ती गयी थी।[14] इस संबोधन का कांग्रेस के इतिहास में दूरगामी महत्व था क्योंकि इससे राष्ट्रीय स्वंतत्रता संघर्ष में महिलाओं की सहभागिता परिलक्षित होती है।

कांग्रेस का 15वां अधिवेशन 1899 में लखनऊ में आयोजित किया गया एवं इस अधिवेशन की अध्यक्षता आर. सी.दत्त ने की थी। इसमें कांग्रेस ने पहली बार अपने उद्देश्यों को परिभाषित किया था–कि भारतीयों के जीवन स्तर को हर संभव तरीके से ऊपर उठाया जाए।[15]

कांग्रेस अपने प्रारंम्भिक वर्षों में उदारवादी संस्था थी एवं इस समय तक कांग्रेस की मांगों में अवज्ञा या चुनौती का स्वर न होकर आग्रह एवं प्रार्थना का स्वर ही होता था परंतु प्रारंभ से ही उनका रूप मौलिक संवैधानिक परिवर्तनों की ओर था। कुछ वर्षों के पश्चात् 1892 ई. के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के समय 1892 के एक्ट के खोखलेपन को उदारवादियों द्वारा उजागर किया गया, जिसके फलस्वरूप इसी समय कांग्रेस ने परिवर्तनवादी दल अर्थात् उग्रवाद का आरंभ हो चुका था।[16]

अतः 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों अर्थात् 1890 के पश्चात् उग्र–राष्ट्रवाद का उदय प्रारंम्भ हुआ। 1905 तक इसने अपना पूर्ण स्वरूप धारण कर लिया था।

इस प्रकार बदलती हुई सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भारतवर्ष में महिलाओं का आंदालेन एक आवश्यक प्रतिफल था। देश तथा समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं के शैक्षिक एवं

सामाजिक सुधार अभिन्न अंग थे। महिलाओं द्वारा भारतीय समाज में अपनी स्थिति में सुधार के प्रयासों के लिये विभिन्न कार्यों का संगठन किया गया बहुत से संगठनों ने उनकी शिक्षा तथा सामाजिक सुधार पर अभिन्न बल दिया। कुछ संगठनों ने शिक्षा से बाहर अन्य क्षेत्रों पर भी ध्यान दिया।[17]

समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महिला गतिविधियों में नई हलचल आरम्भ हुई थी, जब भारतीय महिलाओं का पहला अखिल भारतीय संगठन ''विमेन्स इंडियन एसोसिएशन'', अस्तित्व में आया।[18]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जो कि सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था थी उसी ने महिलाओं के सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से पहली बार अपने 1917 के अधिवेशन में स्पष्ट किया था कि लिंग के आधार पर महिलाओं को आयोग्य मानना उचित नहीं है यद्यपि मताधिकार के संदर्भ में पुरुषों की भाँति उनके लिय भी सभी संस्थाओं में चुनाव के लिये योग्यताएं निर्धारित हैं।[19] इसी तरह 1917 में कई महिला संगठन अस्तित्व में आए और कांग्रेस ने दिल्ली में 1918 के विशेष अधिवेशन में 'स्त्री मताधिकार' के संबंध में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये।[20]

महिला संगठनों के प्रयासों से कांग्रेस के माध्यम से ऑल इंडिया विमेन कांग्रेस की स्थापना 1927 ई. में की गयी। इस संगठन ने महिलाओं के मताधिकार के साथ–साथ संपत्ति की योग्यता को निर्धारित किया। कांग्रेस ने महिलाओं के साक्षर होने में सहयोग किया।[21]

स्पष्ट है कि 1920–1930 की अवधि के मध्य तक सामाजिक रूप से जागृत होने के साथ–साथ महिलाएं अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति भी जागरूक हो चुकी थीं क्योंकि समाज सुधारकों द्वारा सामाजिक दशा में सुधार किया जा चुका था। अब महिलाएं सामाजिक परिवर्तन के चरम बिंदु अर्थात् अपने राजनैतिक अधिकारों से अवगत हो रही थी। जिसमें कांग्रेस का योगदान महत्वपूर्ण है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा ही महिलाओं ने समाज के सामने एक सशक्त महिला जागृति के रूप में अपनी तस्वीर प्रस्तुत की। 1937 के चुनाव में भाग लेकर भारतीय महिलाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि घर की चारदीवारी मे रहने वाली स्त्री प्रशासनिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अपनी उत्तरदायित्वपूर्ण छवियां प्रस्तुत कर सकती हैं।

समय की अवधि के बढ़ते क्रम में ही वर्ष 1940 के आते–आते कांग्रेस की प्रसिद्ध राष्ट्रीय महिला नेताओं विजयलक्ष्मी पंडित, अरुणा गांगुली, मृदुला साराभाई एवं सुचेता कृपलानी ने कांग्रेस के तहत ही महिलाओं के लिये पृथक विभाग की आवश्यकता पर बल दिया।

फलस्वरूप कांग्रेस ने उसी वर्श महिलाओं के लिये पृथक विभाग की स्थापना की स्वीकृति प्रदान की, जिससे कि महिलाओं को भली प्रकार से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक एवं संगठित किया जा सके।[22]

कांग्रेस द्वारा स्वयं महिला विभाग का स्वागत इन शब्दों में किया गया कि, ''महिला विभाग की स्थापना से महिलाएं स्वयं अपनी सहायता का मार्ग विकसित करेंगी। नई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपने नये उत्तरदायित्वों के निर्वाहन में अपनी भूमिका स्वयं निर्धारित करेंगी।[23]

रचनात्मक कार्यक्रम जैसे कि गांव का विकास, चरखा, खादी, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, साक्षरता, सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध प्रचार आदि थे। महिलाएं कार्यकर्ता के रूप में महिला विकास से संबंधित सृजनात्मक कार्यों में व्यस्त हो चुकी थी। अतः 1940 में महिला विभाग की स्थापना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।[24]

नवजागरण के समय नारी समाज के लिये विशेष जागृति जो स्वयं महिला समाज सुधारकों द्वारा परिलक्षित की गयी थी निःसंदेह उसने कांग्रेस कार्य समिति के साथ कदम से कदम मिलाकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया और आगे आने वाले स्वतन्त्रता आंदोलन में महिलाओं के प्रवेश की पृष्ठभूमि को निर्मित किया था। आम घरों की महिलाएं अपने सामाजिक दायरे से बाहर निकलकर राजनैतिक और प्रशासनिक जमीन पर आकर खड़ी हुई

थी, जो कि भारतीय समाज के लिये एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आशारानी व्होरा – महिलाएं और स्वराज्य (1757–1956) – प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली, भारत सरकार 1999, पृ. 87
2. धर्मयुग – 7 अगस्त 1988 – पृ. 25
3. प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा – भारतीय स्त्री–सांस्कृतिक संदर्भ, रावत प्रकाशन–जयपुर एवं दिल्ली 1998, पृ. 214–215
4. धर्मयुग – 7 अगस्त 1988, पृ. 27
5. आशारानी व्होरा – पूर्वोत्तर पृ.89
6. राधा कुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990) वाणी प्रकाशन दिल्ली–2002, पृ. 107
7. धर्मयुग – 7 अगस्त 1988, पृ. 28
8. प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा : पूर्वोक्त, पृष्ठ 219
9. चांद – जुलाई.1926, पृ. 220
10. आशारानी व्होरा – पूर्वोक्त, पृ. 91
11. धर्मयुग – 7 अगस्त 1988, पृ. 32
12. ताराचंद – भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास भाग – 2, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली 1969 पृ. 481–482
13. आशरानी व्होरा – पूर्वोक्त पृ. 94
14. तदैव – पृ. 94–95
15. श्रीमती ईशा बसंती जोशी – उत्तर प्रदेश, जिला गजेनियर, लखनऊ उत्तर प्रदेश, गवर्नमेंट प्रेस, पृ. 62
16. विपिन चंद्रा – इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडस (1857–1947), नई दिल्ली –1988, पृ. 139–140
17. विजय एगन्यू – एलिट विमेन इन इंडियन पॉलिटिक्स विकास प्रकाशन, नई दिल्ली 1979, पृ.104
18. आशारानी व्होरा – पूर्वोक्ल, पृ. 105
19. कमला देवी चट्टोपाध्याय – इंडियन विमेन्स बेटैल फार फ्रीडम, नई दिल्ली 1982, पृ. 196
20. शीला मिश्रा – महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता एवं विविध राजनीतिक दल, उप्पल प्रकाशन, नई दिल्ली 1989 पृ. 29
21. विजय एगन्यू – पूर्वोत्त, पृ. 120
22. शीला मिश्रा – पूर्वोक्त – पृ. 33
23. ए.आई.सी.सी. पेपर्स – फाइल नं. डब्ल्यू डी–9 – 1940–41 माइक्रोफिल्म नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी नई दिल्ली
24. तदैव

❑❑

20

भारतीय एकता के सूत्रधार : लौह पुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
अध्यक्ष–हिंदी अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

यह हर एक नागरिक की जिम्मेदारी है कि वह यह अनुभव करे की उसका देश स्वतंत्र है और उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। हर एक भारतीय को अब यह भूल जाना चाहिए कि वह एक राजपूत है, एक सिख या जाट है। उसे यह याद होना चाहिए कि वह एक भारतीय है और उसे इस देश में हर अधिकार है पर कुछ जिम्मेदारियाँ भी हैं। मेरी एक ही इच्छा है कि भारत एक अच्छा उत्पादक हो और इस देश में कोई भूखा ना हो, अन्न के लिए आँसू बहाता हुआ। देश के प्रति ऐसी भावना रखने वाले ही महापुरुष ही सच्चे अर्थों में लौह पुरुष कहलाने के हकदार हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को वैचारिक एवं क्रियात्मक रूप में एक नई दिशा देने के कारण सरदार बल्लभभाई पटेल ने राजनीतिक इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। अन्तःकरण से निर्भीक सरदार पटेल आधुनिक भारत के शिल्पी ही नहीं बल्कि उनके कठोर व्यक्तित्व में विस्मार्क जैसी संगठन कुशलता, कौटिल्य जैसी राजनीतिक सत्ता तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति अब्राहम लिंकन जैसी लगन एवं अटूट निष्ठा थी। जिस अदम्य उत्साह असीम शक्ति से सरदार बल्लभभाई पटेल ने नवजात गणराज्य की प्रारम्भिक कठिनाइयों का समाधान किया, उसके कारण विश्व के राजनीतिक मानचित्र में आपने अमिट स्थान बना लिया।

अपने जीवन में खुले मस्तिष्क एवं स्पष्ट दृष्टिकोण के हिमायती सरदार बल्लभभाई पटेल मन, वचन तथा कर्म से एक सच्चे देशभक्त होने के साथ ही वर्ण–भेद तथा वर्ग–भेद के कट्टर विरोघी थे। अद्‌भुत अनुशासन प्रियता,शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता बल्लभभाई पटेल चरित्र के अनुकरणीय अलंकरण थे। कर्म उनके जीवन का साधान था। संघर्ष को पटेल जी जीवन की व्यस्तता समझते थे। ईश्वर के प्रति सरदार जी की अनन्य श्रद्धा थी और जीवन तथा मृत्यु एवं दुःख के संबंध में वे उसे ही एकमात्र नियामक मानते थे। इस चलते उनके मन में जीवन के प्रति उसी प्रकार की विरक्ति भावना का दर्शन होता है जो निष्काम कर्मयोग की साधना में आवश्यक रूप में पायी जाती है। अपने व्यक्तिगत जीवन में बालगंगाधर तिलक से प्रभावित एवं महात्मा गाँधी जी को जीवन में आदर्श मानने वाले (महात्मा गाँधी जी के प्रति उनका समर्पण कुछ इस प्रकार का था कि जिसे अंधभक्ति की भी संज्ञा दी जा सकती है। इस संदर्भ में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए पटेल जी ने कहा कि–''मैंने अपने ऊपर ताला लगाकर चाभी गाँधी जी को दे दी है)। सरदार पटेल का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण रहा है। स्वतन्त्रता उपरान्त अदम्य साहस से आपने देश की विभिन्न रियासतों का विलीनीकरण किया तथा भारतीय प्रशासन को निपुणता तथा स्थायित्वत प्रदान किया।

राजनीतिक महत्वाकांक्षा या राजनीतिक चतुराई नहीं बल्कि घटना क्रम का दवाब एवं समाज सेवा की भावना ही सरदार बल्लभ भाई पटेल के राजनीति में उतरने का प्रमुख कारण रही। राजनीति में सरदार बल्लभ भाई का सेवा एवं कर्त्तव्य भाव ही सदैव प्रधान रहा। अर्थात् आपने यह अनुभव किया कि राजनीति के माध्यम से सम्भवतः समाज सेवा का कार्य तत्कालीन परिस्थितियों में कहीं अधिक प्रभावी ढंग से निष्पादित हो सकता है। सम्भव है पटेल जी का ऐसा दृष्टिकोण गाँधी के सम्पर्क में आने के बाद उन्हीं के जीवन वृत्ति की जानकारी से बन पाया हो।

राजनीतिक महत्वकांक्षाएँ सरदार बल्लभ भाई को छू भी न सकी थीं। इस युग का परिचय उनके जीवन की

अनेक घटनाओं से मिलता है। बारदोली में सरदार पटेल पहले गाँधी के साथ मिलकर कुछ रचनात्मक कार्य करते रहे। जैसे उन्होंने पाठशालाओं और चरखे–करघे के प्रचार के माध्यम से ग्रामीण तलहट वर्ग के लोगों में आत्म निर्भरता की प्रवृत्तियों को जागृत कर दुर्बल एवं बंधुआ मजदूर प्रथा को समाप्त करने का प्रयास तो किया ही इसके साथ ही मद्य निषेध बाल–विवाह विरोध, स्त्री जागरण आदि के कार्यक्रम चलाए। सूदखोरी का विरोध कर शादियों में सादगी बरते जाने के विषय में पुरजोर कोशिश करने के साथ ही क्षेत्रीय कुम्भकारों को अपेक्षित सुविधा दिलवाई।

भारत के गृहमंत्री के रूप में सरदार बल्लभ भाई पटेल पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय नागरिक सेवाओं (आई.सी.एस.) का भारतीयकरण कर इन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवाएं (आई.ए.एस.) बनाया। अंग्रेजों की सेवा करने वालों में विश्वास भरकर उन्हें राजभक्ति से देशभक्ति की ओर मोड़ा। यदि सरदार पटेल कुछ वर्ष और जीवित रहते तो संभवतः नौकरशाही का पूर्ण कायाकल्प हो जाता।

शक्ति के अभाव में विश्वास किसी काम का नहीं है। विश्वास और शक्ति दोनों किसी महान काम को करने के लिए अनिवार्य हैं। इस सोच को आगे बढ़ाते हुए देशी राजाओं का हृदय परिवर्तन किया। भारतीय स्वतंत्रता के साथ देशी राजाओं को दोनों उपनिवेशों में किसी के भी साथ 'भारत व पाकिस्तान' रहने की छूट थी इसके चलते उनमें से अनके एक प्रकार से भारत के शत्रु बन गये थे। परन्तु सरदार ने उनके दिलों को विश्वास के बलपर जीतकर उन्हें भारत संघ में शामिल होने के लिए राजी कर लिया। सरदार बल्लभ भाई पटेल की एक और विशिष्ट कला थी कि वे अपने कट्टर से कट्टर विरोधी को भी अपना बना लेते थे। वे अपना पक्ष भी ऊपर रखते थे, वे उससे सावधान भी रहते थे तथा शत्रु से मनचाहा काम भी लेते थे। जब गुजरात में भयंकर बाढ़ आई तो आपने उस औपनिवेशिक सरकार से जिसके वे कट्टर विरोधी थे, एक करोड़ की बड़ी रकम सहायतार्थ प्राप्त कर लिया और उसे जरूरतमंद बाढ़ पीड़ितों में बाँटकर, उन्हें घरों में बसाकर एक अन्यथा अनहोनी बात सम्भव कर दिखायी। लेकिन उनका विरोधी को विजित करने वाला सबसे प्रखर उदाहरण जिसे इतिहास में सदैव याद रखा जाएगा, वह है देशी राज्यों का भारतीय संघ में विलय। पं0नेहरू जी ने सन् 1953 ई0 में भूतपूर्व राजाओं को तीन पृष्ठों का पत्र इस आशय का दिया था कि अपने प्रिवीयर्स में कमी कर दें, किन्तु वे राजी नहीं हुए जबकि सरदार बल्लभ भाई पटेल ने उनसे उनका राज्य ही ले लिया और वह भी उनकी सहमति से–यह थी पटेल जी की क्षमता। अपना राज्य छीनने वाले सरदार बल्लभ भाई पटेल की मृत्यु पर अनेक राजा यह कह कर रोये कि हमारा मित्र एवं रक्षक चला गया।

सरदार बल्लभ भाई पटेल दृढ़ मस्तिष्क के साथ ही प्रत्येक तथ्य को उसके वास्तविक स्वरूप को परखने की शक्ति रखते थे और दूरदर्शिता से काम लेते थे। प्रत्येक मनुष्य अपने संस्कारों, अपनी शिक्षा–दीक्षा और जीवन की कार्य पद्धति के द्वारा पोषित स्वभाव की इच्छा या अनिच्छा का ही अनुसरण करता है– सरदार पटेल भी इसके अपवाद नहीं थे । उदाहरणतः सरदार पटेल कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने के विरूद्ध थे और इस बात पर आश्वस्त थे कि इससे मामला उलझ जाएगा । पं0 नेहरू के जिद पर अड़ जाने पर सरदार बल्लभ भाई पटेल ने तब तक रूक जाने को ''कुछ दिन'' कहा जब तक की भारतीय फौजें आक्रमणकारियों को घाटी से बाहर नहीं कर देती । परन्तु नेहरू ने लार्ड माउण्ट बेटेन की सलाह पर कश्मीर का प्रश्न सरदार की दूर–दृष्टि की उपेक्षा करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप दिया, जिसका परिणाम सामने है । सरदार बल्लभ भाई पटेल की ऐसी सलाह के पीछे उनका यही व्यवहारिक दृष्टिकोण काम कर रहा था, कि हम जहाँ तक हो सकें वादी के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत न हो । हमें सदैव प्रतिवादी के रूप में ही न्याय के लिए खड़ा होना चाहिए । सरदार बल्लभ भाई पटेल ने जान लिया था कि मुस्लिम समुदाय में लीग ने सम्प्रदायिकता को जिस रूप में घुसा दिया है वह खत्म नहीं होगी और उसके परिणाम आगे भी भारत के लिए घातक ही होंगे । इसलिए उन्होंने बँटवारे की बात मान ली थी।

सरदार बल्लभ भाई पटेल न तो कभी मर्यादा की सीमा रेखा से बाहर निकले न ही किसी को आपने भरसक इससे बाहर निकलने की आज्ञा दी। उनका संदेश था कि– प्रत्येक मनुष्य को अपने–अपने क्षेत्र में अपनी–अपनी

मर्यादाओं में रहकर ही अपना काम पूरा करना चाहिए। वे स्वयं जीवन भर इस मंत्र का पालन करते रहे। सरदार के व्यक्तित्व से संबंधित मौलाना शौकत अली का यह शब्द अक्षरसः सत्य प्रतीत होता है कि ''बल्लभ भाई बरफ से ढका हुआ ज्वालामुखी हैं। उदाहरणार्थ– हैदराबाद के विरूद्ध सरदार बल्लभ भाई पटेल ने पुलिस की कार्यवाही तो करवाई लेकिन कब जबकि निजाम और उनके सलाहकार पुरी तरह से मर्यादाहीन बन गये तथा संधियों को तोड़ उन्होंने अपनी सीमा का उल्लंघन करना शुरू कर दिया। नरेशों को प्रिवीपर्स संबंधी दिए गए वचन का भी वे इसी भावना के चलते सुनिश्चित पालन की अपेक्षा रखते थे। सरदार जी के जीवन से कोई भी ऐसा दृष्टांत इंगित नहीं किया जा सकता जबकि उन्होंने अपने द्वारा स्वीकृत मर्यादा रेखा का उल्लंघन किया हो या अपना वचन भंग किया हो।

सरदार पटेल जहाँ पाकिस्तान की छद्म व चालाकी पूर्ण चालों से सतर्क थे वहीं देश के विघटनकारी तत्वों से भी सावधान रहने की बात सदैव करते थे। विशेषकर वे भारत में मुस्लिम लीग तथा कम्युनिस्टों की विभेदकारी तथा रूस के प्रति उनकी भक्ति से सजग थे। जहाँ तक कश्मीर रियासत का प्रश्न है इसे पंडित नेहरू ने स्वयं अपने अधिकार में लिया हुआ था, परंतु यह सत्य है कि सरदार पटेल कश्मीर में जनमत संग्रह तथा कश्मीर के मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने पर बेहद क्षुब्ध थे। निरूसंदेह सरदार पटेल द्वारा इन रियासतों का एकीकरण विश्व इतिहास का एक आश्चर्य था। भारत की यह रक्तहीन क्रांति थी। महात्मा गाँधी ने सरदार पटेल को इन रियासतों के बारे में लिखा था, रियासतों की समस्या इतनी जटिल थी जिसे केवल तुम ही हल कर सकते थे।

भारतीय इतिहास में सरदार बल्लभ भाई पटेल को इसलिए भी लौह पुरुष कहा जाता है कि विषम परिस्थितियों में भी उनके निर्णय लेने और स्पष्ट वक्ता के रूप में उनके कथन निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। उदाहरणार्थ भगत सिंह और उनके साथियों को फाँसी दिए जाने के बाद कराची में हुए कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने युवाओं के आक्रोश को सही बताया।

देशी राज्यों के एकीकरण की समस्या को पटेल ने बिना खून–खराबे के बड़ी खूबी से सरदार पटेल ने रियासतों के प्रति नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि रियासतों को तीन विषयों – सुरक्षा, विदेश तथा संचार व्यवस्था के आधार पर भारतीय संघ में शामिल किया जाएगा। जिनमें राजकोट, जूनागढ़, वहालपुर, बड़ौदा, कश्मीर, हैदराबाद को भारतीय महासंघ में सम्मिलित करने में हॉलाकि सरदार जी को कई पेचीदगियों का सामना करना पड़ा। जब चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई ने नेहरू को पत्र लिखा कि वे तिब्बत को चीन का अंग मान लें तो सरदार पटेल ने पं0 नेहरू से आग्रह किया कि वे तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व कतई न स्वीकारें अन्यथा चीन भारत के लिए खतरनाक सिद्ध होगा। नेहरू नहीं माने बस इसी भूल के कारण हमें चीन से पिटना पड़ा और चीन ने हमारी सीमा पर जो जमीन कब्जाई हुई है वह जगजाहिर है।

नये और शक्तिशाली भारत के वास्तविक निर्माता और संस्थापक, महान क्रांतिकारी सरदार वल्लभभाई पटेल के निधन पर विश्व भर के नेताओं ने शोक मनाया। श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उस समय लार्ड माउंटबेटन ने कहा था कि, 'उनकी छवि भारत के जनमानस पर सदैव अंकित रहेगी। सन 1947 और 1948 में रियासत मंत्रालय के प्रभारी के रूप में उनका महान कार्य इतिहास में लिखा जायेगा, क्योंकि उन्होंने रियासतों की समस्या को भली–भांति समझकर तथा उनके शासकों का पूर्ण सम्मान करते हुए अत्यंत ही जटिल समस्या का जिस प्रकार समाधान किया, वैसा आज तक कोई भी राजनीतिज्ञ नहीं कर पाया था।' 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने लिखा था कि 'पटेल के बिना गाँधी जी के विचारों का व्यवहारिक प्रभाव कम पड़ता और नेहरू के आदर्शवाद का क्षेत्र संकुचित हो जाता। पटेल स्वतंत्रता–संग्राम के नायक ही नहीं थे, बल्कि वे स्वातंत्रयोत्तर भारत के निर्माता भी थे। एक ही व्यक्ति एक क्रांतिकारी और कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रायः सफल नहीं होता है। किन्तु सरदार पटेल अपवाद थे।' लेकिन लंदन के टाइम्स ने लिखा था बिस्मार्क की सफलताएँ पटेल के सामने महत्वहीन रह जाती हैं। यदि पटेल जी के कहने पर चलते तो कश्मीर, चीन, तिब्बत व नेपाल के हालात आज जैसे न होते। पटेल जी सही मायनों में मनु के शासन की कल्पना थे। उनमें कौटिल्य की कूटनीतिज्ञता तथा महाराज शिवाजी की दूरदर्शिता थी। वे केवल सरदार

ही नहीं बल्कि भारतीयों के हृदय के सरदार थे।

सरदार बल्लभ भाई पटेल को जो स्थान एवं सम्मान इतिहास एवं देश में मिलना चाहिए वह नही मिला। इस तरह के प्रश्न इतिहास एवं आलोचकों के बीच आज भी अनुत्तरित हैं उनमें से एक प्रश्न का जबाव आम जनता जरूर चाहती है कि गाँधी जी ने पहले सुभाष चंद्र बोस और बाद में सरदार पटेल को छोड़कर जवाहरलाल नेहरू को चुना, किसी भी प्रकार उन दो महान नेताओं की महिमा को कम नहीं करता है। भारतीय राष्ट्रीय सेना बनाने और स्वतंत्रता आंदोलन में नई क्रांतिकारी भावना भरने में नेताजी की वीरतापूर्ण भूमिका को सदैव गर्व से याद किया जाएगा। जहाँ तक सरदार पटेल का संबंध है तो आपने ऐसा कार्य किया जिसे विश्व के इतिहास में पहले कभी भी करने की कोशिश ही नहीं की गई थी। उन्होंने हैदराबाद और जूनागढ़ के प्रकरणों के अलावा सामंतों की स्वयं की सहमति और सहयोग से अनेक राज्यों और रियासतों को एक संयुक्त भारत के रूप एकीकृत करने में सफलता हासिल की। सामंतवाद से लोकतंत्र में शांतिपूर्ण संक्रमण ने भारतीय एकता की सुदृढ़ बुनियाद रखी और यह ऐसी उपलब्धि है जिसके लिए समूचा राष्ट्र सदैव सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रति ऋणी रहेगा। सरदार बल्लभ भाई पटेल को भारत का लौह पुरुष कहना उचित ही है क्योंकि सरदार पटेल ही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने वर्तमान आधुनिक भारत की नींव रखी है।

चाणक्य के समान सरदार बल्लभ भाई पटेल मजबूत चरित्र, अत्यन्त दूरदर्शी, दृष्टि सम्पन्न व्यक्तित्व के ध ानी कार्यशील व्यक्ति थे जो केवल काम में विश्वास करते थे । इतिहास बनाने वाले व्यक्ति थे जिसका आधार उनके अतिविशिष्ट चारित्रिक गुण थे । यह उनकी विशेषताएँ ही थी । उनकी प्रशासनिक सूझबूझ एवं निर्णय शक्ति और फिर विशेष रूप से व्यवहार करने का ढंग जो उनके चरित्र का अंग बन चुकी थी । देश को एक करने में हैदराबाद का मामला हो या काश्मीर का मामला, देश का विभाजन हो या कोई और मसला उसका हल स्वीकार करने में उनकी तीव्र व दूरदर्शी निर्णय शक्ति के इसी मुखर रूप का दर्शन होता है।

सरदार वल्लभभाई पटेल देश के महान नेता थे। महान क्रांतिकारी थे और जिस भारत में हम रह रहे हैं, वह उसके निर्माता थे, इसलिए उन्हें वो सम्मान मिलना ही चाहिए। इसे सुखद ही कहा जाएगा कि भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने सरदार वल्लभभाई पटेल को लोकप्रियता के उसी स्थान पर पहुँचा दिया है, जिस स्थान पर उन्हें होना चाहिए था। उनका नाम आज निजी से लेकर सरकारी संस्थानों विशेषकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ,टीवी, अखबार, फेसबुक, ट्वीटर, हर जगह नजर आ रहा है। युवा उन्हें गूगल पर सर्च कर रहे हैं। सरदार बल्लभ भाई पटेल के बारे में जानने का प्रयास कर रहे हैं। यह अच्छी बात ही कही जायेगी। माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का अभिप्राय सराहनीय कहा जाएगा,पर आमजन को भी सरदार वल्लभभाई पटेल को अब भूलने नहीं देना होगा।

अंत में यह कहा जा सकता है कि सरदार बल्लभ भाई पटेल यदि कुछ दिन और जिन्दा रहते या भारत के प्रथम प्रधानमंत्री हुए होते तो निश्चित तौर पर उनके कहे गए शब्द सौ प्रतिशत सत्य होते कि स्वतंत्र भारत में कोई भी भूख से नहीं मरेगा। इसके अनाज निर्यात नहीं किये जायेंगे। कपड़ों का आयात नहीं किया जाएगा। इसके नेता ना विदेशी भाषा का प्रयोग करेंगे ना किसी दूरस्थ स्थान, समुद्र स्तर से सात हजार फुट ऊपर से शाशन करेंगे। इसके सैन्य खर्च भारी नहीं होंगे । इसकी सेना अपने ही लोगों या किसी और की भूमि को अधीन नहीं करेगी। इसके सबसे अच्छे वेतन पाने वाले अधिकारी,इसके सबसे कम वेतन पाने वाले सेवकों से बहुत ज्यादा नहीं कमाएंगे। और यहाँ न्याय पाना ना खर्चीला होगा ना कठिन होगा।

सन्दर्भ : इण्टरनेट एवं सरदार बल्लभ भाई पटेल से सम्बन्धित पुस्तकों से साभार!

❑❑

21

समाजोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

डा0 निर्मल कौशिक
निर्देशक, कर्मशीला संस्कृत विकास मंच
163, आदर्श नगर, ओल्ड कैंट रोड, फरीदकोट

भारत में समय समय पर अनेक महापुरुषों, सिद्ध साधकों, ऋषि मुनियों ने जन्म लिया। इन महामानवों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए आत्म बलिदान तक दे डाला। अपने तप और त्याग से मानवता का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहास साक्षी है कि जब–2 भी मानव समाज में उच्छृंखलता और उद्दण्डता बढ़ी है तब तब मानवीय जीवन मूल्यों के संरक्षण हेतु किसी न किसी युगपुरुष का अवतरण हुआ है। भारत में प्रत्येक युग में अनेक महामानवों का उदय हुआ है। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है।

जब जब होय धरम की हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा

गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

महर्षि दयानन्द का अवतरण भी अधर्म का नाश करने और धर्म की स्थापना करने हेतु हुआ था। महर्षि दयानन्द का जन्म संवत् 1881 में गुजरात के टंकारा नामक ग्राम में एक परम्परावादी ब्राह्मण श्री कर्षण लाल जी त्रिवेदी के घर हुआ । जो कि एक बहुत बडे भूमिधर थे । उनका पहला नाम मूलशंकर था । बालक मूलशंकर आरम्भ से ही मेधावी था । चौदह वर्ष की अवस्था में ही उन्होने बहुत से शास्त्र व ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिये थे। स्वामी जी के पिता शैव धर्म के उपासक थे । उन्होने एक दिन मूलशंकर से शिवरात्रि का व्रत करने को कहा । वे अपने पिता के साथ शिवालय चले गये । उन्हे समझाया गया कि रात भर जागना होगा । सब लोग सो गये लेकिन स्वामी जी जागते रहे । उन्होने देखा कि शिवलिंग पर चूहे चढ़ आये है और मूर्ति पर चढ़ाई गई मिठाई को खा रहे है। इस घटना से स्वामी जी के मन मे अनेक शंकाये उत्पन्न हुई। पिता ने अनेक युक्तियों से समाधान करना चाहा लेकिन बालक का समाधान न हो सका।

कुछ दिन बाद उनकी 14 वर्षीय बहन तथा उनके पूज्य चाचा की मृत्यु ने मूलशंकर के हृदय में सच्चे वैराग्य को पैदा कर दिया । उन्होने अमरत्व को प्राप्त करने के लिये योग धर्म का मार्ग अवलम्बन करने तथा आजीवन विवाह न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और 22 वर्ष की आयु में विवाह के उत्सव से सुशोभित घर से निकल पड़े। दो वर्ष निरन्तर भ्रमण के पश्चात चाड़ोद गाँव के समीप दक्षिण के दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से इनकी भेंट हुई। उन्होने इनको विधिपूर्वक संन्यास की दीक्षा दी। अब ये मूलशंकर से दयानन्द 'सरस्वती' बन गये।

संन्यास लेने के बाद अनेक साधु संन्यासियों के दर्शन करने के बाद मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी से इनकी भेंट हुई । दयानन्द का विरजानन्द जी से मिलना 'रत्न समागच्छ काञ्चनेन' के अनुसार रत्न और सुवर्ण के मेल के समान था । ढाई वर्ष तक स्वामी जी शास्त्रों का अध्ययन करते रहे । शिक्षा समाप्ति पर वे शिष्यों से लौंग भेट लिया करते थे किन्तु उन्होने दयानन्द जी से भेंट के रुप में मांगा कि 'तुम संसार में फैले अन्धकार को मिटाकर सच्चे

ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित करो।

1924 में आपने हरिद्वार के कुम्भ के मेले मे गये और वहाँ पाखण्ड खंडिनी पताका स्थापित कर वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ किया। उन्होने अनेक स्थानो पर जा कर मूर्ति पूजा का खण्डन कर जनता को ईश्वर का वास्तविक रुप समझाया। उनके विचार में ईश्वर विश्वात्मा है, सत् चित आनन्द है वह असीम अमर निराकार व सर्वव्यापक है । वह संसार का जनक और रक्षक है । उन्होने बाल विवाह, अनमेल विवाह, जाति, पाति और छूआ छूत का विरोध किया। अन्ध विश्वासों और मिथ्या धारणाओं का खण्डन किया । लोगो को यज्ञोपवीत धारण करवाया, सन्ध या सिखाई एवं गायत्री का जप बताया और लाखो को अपने सदुपदेश से सन्मार्ग बताया । उन्होने बताया कि वर्ण गुण और कर्म से होते है जन्म से नही । उन्होने हजारो हिन्दुओं को मुस्लमान और ईसाई बनने से बचाया।

स्वामी दयानन्द जी के अनुसार जीवन में सदव्यवहार ही धर्म है। यह प्यार भ्रातृभाव, निर्धनो तथा दीन दुखियों के प्रति दया पर आधारित है। उससे मुक्ति प्राप्ति में सहायता मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार करते हुये स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया। उन्होने कहा कि जिस क्षेत्र में सदगुरुओं का अभाव हो जाता है ईमानदार श्रोता नही मिलते, वहाँ अन्धविश्वास फैल जाता है। उन्होने कहा कि गुरु और शिष्य सदगुणो को ग्रहण करें । गुरु अपने शिष्यों को मन वचन और कर्म से सच्चा बनाने का यत्न करें। शिष्य आत्मसंयमी, शान्त, गुरु भक्त, विचार शील और परिश्रमी बने। स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया और कहा (भला जो पुरुष विद्वान और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान हो तो नित्य प्रति देवासुर संग्राम मचा रहेगा। उन्होने घोषणा की कि यह एक बडा अन्याय है कि स्त्रियों को घरों के भीतर कैदी की भाँति रखा जाये और पुरुष स्वतन्त्र आते जाते रहे। उन्होने सहशिक्षा का घोर विरोध किया और कहा कि लडको लडकियों के स्कूल दो कोस की दूरी पर होने चाहिए।

शारीरिक शिक्षा के विकास की ओर ध्यान देते हुये उन्होने कहा कि शारीरिक बल और स्फूर्ति की वृद्धि से बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह अत्यन्त जटिल और गहन और गम्भीर विषयों को भी ग्रहण कर सकती है। अतः लडको और लडकियों को प्राणायाम करना चाहिए । स्वामी दयानन्द जी ने राष्ट्रीय एकता के लिये जो अपील की थी हमारे युग में उसका एक विशेष महत्व है । उन्होने कहा भाषायी मतभेदों, सांस्कृतिक हदों और रीति रिवाजों से उत्पन्न अलगावों को छोडना कठिन प्रतीत होता है । जब तक यह काम नही किया जायेगा तब तक पूरा लाभ लेना और लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। उन्होने विदेशी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम अपनाने का विरोध किया । उन्होने कहा कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये भारतीय भाषाओं तथा संस्कृत को देश के लोगो द्वारा अपनाया जाना चाहिए।

महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना करके इनके द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार, समाज सुधार, दलितोंद्वार आर्य भाषा (हिन्दी) का प्रसार आदि का सूत्रपात किया । प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति का वास्तविक स्वरुप दिखा कर सच्ची देश भक्ति की भावना उन लोगो में पुनः भरी जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बहे जा रहे थे ।

इस प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार करके समाज सुधार करते हुए वे कई स्वार्थप्रिय व्यक्तियों के कोपभाजन बने । उन्हे कई बार मारने का प्रयत्न किया गया, गंगा में फेंकने और तलवार से मारने का प्रयत्न किया गया । उनपर पत्थर फैके गये और विष दिया गया । अन्त में उनके धन के लोभी रसोईये जगन्नाथ द्वारा दूध में पारा दिये जाने से सम्वत् 1940 में दीपावली के दिन उन्होने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया ।

महर्षि दयानन्द आधुनिक भारत के धर्म सुधारक, क्रान्तिकारी, संन्यासी, आध्यात्मिक नेता, योगी, दार्शनिक तथा देशभक्त थे । मानव जाति के हितैषी के रुप में उनका जन्म हुआ । वे राष्ट्रीय स्थिरता, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं विश्व बन्धुत्व के पक्षधर थे। सच्चे अर्थो में वे एक समाजोद्धारक थे।

❑❑

गाँधी की प्रिय हिन्दी आज भी बंदी

डॉ0 सुरंगमा यादव
असि0 प्रो0 हिन्दी
महामाया राजकीय महाविद्यालय महोना, लखनऊ

हमारी प्यारी हिन्दी जिसके प्रचार–प्रसार के लिए स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी ने अथक प्रयास किये। पूरे देश में जिसके प्रति राष्ट्रभाषा जैसा सम्मान–भाव पैदा किया,आज वही हिन्दी संकीर्ण मानसिकता, क्षेत्रवाद और क्षुद्र राजनीति की गुलाम बनकर रह गयी है। जिस हिन्दी के बल पर हमने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी, उसी हिन्दी को उसका अधिकार देने में हम संकोच क्यों कर रहे हैं? महात्मा गाँधी ने हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के रूप में प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देखा था।उनका मानना था कि 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।' गाँधी जी भाषा के प्रश्न को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रश्नों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनका विचार था ''पराधीनता चाहे राजनीतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषा क्षेत्र की, दोनों ही एक–दूसरे की पूरक और पीढ़ी दर पीढ़ी सदा परामुखापेक्षी बनाये रखने वाली हैं।''

स्वाधीनता संग्राम के दौरान तत्कालीन नेताओं और स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की महत्ता को पहचाना और उसका प्रचार–प्रसार किया। महात्मा गाँधी के अनुसार ''बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था और मेरा विश्वास तब से अनुभव द्वारा पुष्ट हुआ है कि यदि कोई भारतीय भाषा कभी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो किसी न किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना ही चाहिए तो वह भाषा केवल हिन्दी है और मैं हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ।'' गाँधी जी का यह कथन राष्ट्रभाषा बनाये जाने की आवश्यकता एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का समर्थन करता है। गाँधी जी की उक्त दोनों बातों में से हमने आज तक किसी भी बात का पालन नहीं किया। आजादी के 71 वर्षों बाद भी हमारे देश की कोई घोषित राष्ट्रभाषा न होना भारी खेद का विषय है। विडम्बना तो यह है कि हम अपने सबसे प्रबल दावेदार को ही कमजोर बना रहे हैं। सन 1909 में 'हिन्द स्वराज' में गाँधी जी ने एक भाषा–नीति की घोषणा की तथा लोगों से संपूर्ण भारत के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने की अपील की। राष्ट्रभाषा के प्रति गाँधी जी के मन में सम्मान और गौरव का भाव निरन्तर बना रहा। भाषा उनके लिए राष्ट्रीय अस्मिता थी। गाँधी जी ने स्वयं हिन्दी सीखी। दिसम्बर 1916 में लखनऊ में अखिल भारतीय एक भाषा व एक लिपि सम्मेलन हुआ। जिसकी अध्यक्षता गाँधी जी ने की थी। इसमें उन्होंने कहा ''मैं गुजरात से आता हूँ, मेरी हिन्दी टूटी–फूटी है। मैं आप सब भाइयों से टूटी–फूटी हिन्दी में ही बोलता हूँ। क्योंकि थोड़ी अंग्रेजी बोलने में भी मुझे ऐसा मालूम होता है मानों मुझे पाप लगता है।'' अपने हिन्दी सीखने के बारे में उन्होंने बताया ''मैं हिन्दी सीखना चाहता था। अहमदाबाद में हिन्दी सिखाने वाला नहीं था। एक गुजराती सज्जन से, जो टूटी–फूटी हिन्दी जानते थे और काशी में 15–20 वर्ष रहे थे, मैंने हिन्दी सीखी।'' बोलचाल की हिन्दी गाँधी जी प्रारम्भ से ही जानते थे। परन्तु केवल बोलचाल की हिन्दी से गाँधी जी संतुष्ट नहीं थे, इसीलिए वे लिखित हिन्दी का भी अभ्यास करना चाहते थे। हिन्दी के साथ–साथ उर्दू, तमिल और संस्कृत में भी उनकी गहरी रुचि थी। उन्होंने लिखा है ''1894 के बाद से मुझे जमकर पढ़ने का समय दक्षिण अफ्रीका की जेलों में ही मिला। मुझे न केवल पढ़ने का शौक उत्पन्न हुआ बल्कि संस्कृत का अपना ज्ञान पूरा करने और तमिल, उर्दू का अभ्यास करने की रुचि भी जागी। तमिल इसलिए कि दक्षिण अफ्रीका में अनेक तमिल भारतीयों से मेरा संपर्क था और उर्दू इसलिए कि बहुत से मुसलमानों से मुझे काम पड़ता था।'' 1918 में गाँधी जी वायसराय के सामने हिन्दी में बोले। अपने एक भाषण में उन्होंने बताया ''जब

बहुत ज्यादा चर्चा के बाद मैंने युद्ध परिषद में भाग लेना मंजूर किया और वायसराय से प्रार्थना की थी कि परिषद में मुझे हिन्दी या हिन्दुस्तानी में बोलने की छूट दी जाय। मैं जानता हूँ कि इस तरह की प्रार्थना करने की कोई जरूरत न थी। फिर भी शिष्टता की दृष्टि से यह आवश्यक था।''

भारत बहु भाषा–भाषी देश है, परन्तु हिन्दी सबसे बड़े जनसमुदाय के द्वारा बोली जाती है। हिन्दी की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि आर्य परिवार की भाषाएँ बोलने वाले लोगों को हिन्दी आसानी से समझ में आ जाती है। गाँधी जी ने मई 1917 में अंग्रेजी का विरोध और हिन्दी का समर्थन करते हुए कहा था ''हिन्दी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो सकता है, केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को आजकल अंग्रेजी भाषा लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असंभव है, वही स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिन्दी का उस पर पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेजी को नहीं मिल सकता। क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिए बड़ी कठिन है। अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी सीखना बहुत सरल है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या प्रायः 6 करोड़ है। बंगला, बिहारी, उड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और सिंधी सब हिन्दी की बहने हैं। उक्त भाषाओं को बोलने वाले थोड़ी बहुत हिन्दी समझ तथा बोल लेते हैं। इन सबको मिलाने से संख्या प्रायः 22 करोड़ हो जाती है। जिस भाषा का इतना प्रचार है, उसकी बराबरी करने के लिए अंग्रेजी, जिसे एक लाख हिन्दुस्तानी भी ठीक–ठीक नहीं बोल सकते, कैसे समर्थ हो सकती है? आज तक हमारा देशी काम और व्यवहार हिन्दी में प्रारम्भ नहीं हो पाया। इसका कारण हमारी भीरुता, अश्रद्धा और हिन्दी भाषा के गौरव का अज्ञान है। यदि हम भीरुता छोड़ दें, श्रद्धालु बनें, हिन्दी का गौरव समझें तो हमारी राष्ट्रीय और प्रान्तीय परिषदों तथा सरकारी व्यवस्था सभाओं का भी व्यापार हिन्दी में चलने लगेगा।''

6 फरवरी 1916 को गाँधी जी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के एक कार्यक्रम में अपना प्रथम सार्वजनिक भाषण हिन्दी में देकर सबको न केवल चमत्कृत कर दिया बल्कि अंग्रेजी में कार्यक्रम का संचालन किये जाने पर आपत्ति और खेद भी प्रकट किया। सन 1916 में ही राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधी जी सम्मिलित हुए। अब तक कांग्रेस अधिवेशन की समस्त कार्यवाही और भाषण अंग्रेजी में हुआ करते थे। गाँधी जी ने इस परम्परा को तोड़ा और सभा के विरोध करने पर भी अपना भाषण हिन्दी में दिया। हिन्दी प्रचार पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना 01 मई 1910 में हुई। इसका मुख्यालय प्रयाग में है। इसकी स्थापना हिन्दी के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से की गयी। हिन्दी के प्रति महात्मा गाँधी के लगाव को देखकर सन 1918 में इन्दौर में होने वाले सम्मेलन के अधिवेशन का सभापति गाँधी जी को बनाया गया। यहाँ गाँधी जी ने आह्वान किया कि ''आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्त्तव्य–पालन करना चाहिए।'' इस अधिवेशन में गाँधी जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ भाषी प्रदेशों में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया। यहाँ डॉ0 रामविलास शर्मा का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है ''दक्षिण भारत में गाँधी और उनके अनुयायियों–सहयोगियों ने जितना हिन्दी प्रचार किया, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया।'' गाँधी जी ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए धन एकत्रित करने की माँग भी उठाई। इस अधिवेशन में यह भी तय किया गया कि दक्षिण भारत के छः युवक हिन्दी सीखने के लिए प्रयाग भेजे जायें और उत्तर भारत के छः युवा दक्षिण की भाषाएँ सीखने तथा हिन्दी का प्रचार करने दक्षिण भारत जायें।

सन् 1918 में गाँधी जी ने मद्रास के 'भारत सेवा संघ' के अनुरोध पर वहाँ के युवकों को हिन्दी सिखाने के लिए अपने पुत्र श्री देवदास गाँधी, जो उस समय मात्र 18 वर्ष के थे, उन्हें हिन्दी प्रचार के लिए मद्रास भेजा। महात्मा गाँधी जैसा व्यावहारिक राजनीतिज्ञ, सच्चा देशभक्त, समदर्शी एवं दूरदर्शी नेता दूसरा नहीं हुआ। 19 जून 1920 को 'यंग इण्डिया' में उन्होंने कहा ''मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन हमारे द्रविड़ भाई–बहन गम्भीर भाव से

हिन्दी का अध्ययन करने लगेंगे। आज अंग्रेजी भाषा पर अधिकार करने के लिए वे जितनी मेहनत करते हैं उसका आठवाँ हिस्सा भी हिन्दी सीखने में करें, तो बाकी हिन्दुस्तान, जो उनके लिए बन्द किताब की तरह है, उससे वे परिचित हो जायेंगे और उनके साथ हमारा ऐसा तादात्म्य हो जायेगा जैसा पहले कभी न था। ''गाँधी जी का मानना था कि हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका का निर्वाह कर सकती है। उन्होंने व्यक्तियों, संस्थाओं, पत्र–पत्रिकाओं को हिन्दी प्रयोग के लिए आश्चर्यजनक रूप से प्रेरित किया। वे हिन्दी को राष्ट्रीय एकता तथा स्वतंत्रता प्राप्ति का माध्यम मानते थे। निश्चय ही हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महात्मा गाँधी की भूमिका अग्रगण्य है। सन् 1927 तक मद्रास हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालय के नाम से ही हिन्दी के प्रचार–प्रसार कार्य में संलग्न रहा। तदनन्तर महात्मा गाँधी के सुझाव पर इस प्रचार कार्यालय का नाम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास कर दिया गया। सन् 1927 से सम्मेलन का उक्त कार्यालय स्वतंत्र रूप से एक नयी संस्था बन गया। सन् 1936 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 25 वाँ अधिवेशन नागपुर में डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुआ। उसी अधिवेशन में गाँधी जी की सलाह पर हिन्दी प्रचार समिति वर्धा का गठन किया गया। जिसके अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद थे तथा महात्मा गाँधी, पं0 जवाहर लाल नेहरू, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य नरेन्द्र देव, काका कालेलकर, पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, सेठ जमनालाल बजाज आदि गणमान्य नेता शामिल थे। हिन्दी प्रचार की यह संस्था भारतवासियों के मन में एकता की भावना जाग्रत करने तथा राष्ट्रीयता का भाव तीव्रतम करने का उद्देश्य लेकर स्थापित हुई। संस्था ने 'एक हृदय हो भारत जननी' को अपना उद्घोष बनाया। हिन्दी प्रचार समिति वर्धा ने दक्षिण भारत के उन चार प्रदेशों को छोड़कर जिनका प्रचार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास कर रही थी, शेष अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार–प्रसार करना सुनिश्चित किया। 1938 में इसका नाम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा कर दिया गया। इसकी शाखाएँ भारत के पूर्वी–पश्चिमी सभी अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हैं और संस्था अब भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का अंग है। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से दक्षिण भारत में हिन्दी की सेवा और प्रचार के लिए अनेक विद्वान तत्पर हुए और आज भी तल्लीन हैं।

गाँधी जी ने जिस हिन्दी को स्थापित करने के लिए अभूतपूर्व प्रयास किये, आज उसी हिन्दी को उसके ऐतिहासिक गौरव से वंचित किया जा रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् से ही हमारे देश में हिन्दी को लेकर तरह–तरह की भ्रान्तियाँ फैलायी जा रही हैं। उन्हीं का दुष्परिणाम है कि हिन्दी आज तक राष्ट्रभाषा का गौरवशाली पद प्राप्त नहीं कर सकी। राष्ट्र के सभी शीर्षस्थ नेता जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, उनके सामने यह बड़ा प्रश्न था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सम्पूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा तथा राजकाज की भाषा कौन–सी होगी? सबका एक स्वर में यही उत्तर था–हिन्दी। अतः हिन्दी के प्रति पूरे देश में, विशेषकर दक्षिण भारत में जो आकर्षण पैदा हुआ, उसके मूल में राष्ट्रीय भावना व्याप्त थी। उस समय लोगों के मन में यह भाव पैदा हो गया था कि हिन्दी सीखना और सिखाना दोनों ही राष्ट्रीय कर्त्तव्य का पालन है। आजादी के 71 वर्षों बाद भी हमारे देश की कोई घोषित राष्ट्रभाषा का न होना बहुत ही दुखःद है। उससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस भाषा के माध्यम से हमने स्वाधीनता संग्राम लड़ा और जो राष्ट्रभाषा के सर्वथा योग्य है हम उसी हिन्दी को कमजोर बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। आज तथाकथित और पढ़े–लिखे लोगों की मानसिकता इतनी दूषित हो चुकी है कि राष्ट्रभाषा का प्रश्न उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। भाषा किसी भी देश के स्वाभिमान और आत्मविश्वास को प्रकट करती है। वह देश की एकता और अखंडता का प्रतीक होती है। पूरे देश के लिए एक भाषा का होना अति आवश्यक है। 14 सितम्बर 1949 को स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने संघ की राजभाषा के रूप में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को स्वीकृति दी।

यह सर्वविदित है कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दी ने सफलता पूर्वक देश को एक सूत्र में बाँधने का का कार्य किया। तत्कालीन नेताओं और समाज सुधारकों ने राष्ट्रभाषा की महत्ता को समझते हुए हिन्दी का

राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग किया। भारत जैसे विशाल देश के विभिन्न भाषा–भाषी लोगों को आपस में जोड़ने का पुनीत कार्य हिन्दी ने किया और आज भी कर रही है। जो भाषा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय जनमानस को एकजुट करने की सामर्थ्य रखती है, उसके साथ अपने ही देश में अपने ही लोगों द्वारा परायों जैसा बर्ताव क्यों किया जा रहा, यह प्रश्न हर देशप्रेमी के लिए विचारणीय है। राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी का स्थान सर्वोपरि है। इसमें साहित्य, दर्शन, कला और ज्ञान–विज्ञान का अथाह भण्डार है। इतने व्यापक स्तर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार को देखते हुए इसे यथाशीघ्र राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल जाना चाहिए और यही हमारा कर्त्तव्य भी है। हिन्दी को उसका अधिकार न मिल पाने के पीछे देसी अंग्रेजों की चालें, अहिन्दी भाषी प्रदेशों का असहयोग, भ्रामक प्रचार एवं मूल्यों का विघटन प्रमुख कारण हैं। जब तक हम हिन्दी के प्रश्न को महात्मा गाँधी की तरह स्वाभिमान और आत्मगौरव से नहीं जोड़ेंगे तब तक हम हिन्दी को व्यावहारिक रूप से राष्ट्रभाषा और राजभाषा का गौरव नहीं दे पायेंगे। हिन्दी जहाँ एक ओर पूरे विश्व में अपना स्थान बना रही है, वहीं उसे अपने ही घर में उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। आज हिन्दी की बोलियों को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कराने की होड़–सी चल पड़ी है। यदि आठवीं अनुसूची में ऐसे ही एक के बाद एक बोली को शामिल किया जाता रहा, तो संपर्क भाषा हिन्दी के द्वारा पूरे देश को एकसूत्र में बाँधने का स्वप्न कैसे पूरा हो सकेगा। हिन्दी की बोलियाँ ही उसकी शक्ति हैं। जैसे अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनायी, उसी प्रकार वैसा ही व्यवहार हिन्दी और उसकी बोलियों के साथ किया जा रहा है।

स्वाधीनता के प्रारम्भिक दौर में संविधान लागू करते समय उदारता या भावुकता में हिन्दी के साथ 15 वर्षों तक अंग्रेजी प्रयोग करने का निर्णय हिन्दी को अपदस्थ करने की पूर्व पीठिका साबित हुआ। इस अंतराल में भारतीय भाषाओं तथा क्षेत्रवाद की आड़ लेकर एक ऐसी रणनीति तैयार की गयी, जिससे हिन्दी कभी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन न हो सके। आज आवश्यकता दस बात की है कि सभी हिन्दी प्रेमी जागरूक होकर हिन्दी को उसका गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के लिए सार्थक प्रयास करें और गाँधी जी के सपने को साकार करें। यदि राष्ट्र का एक ध्वज, एक राष्ट्रगीत तथा एक राष्ट्रगान हो सकता है, तो राष्ट्रभाषा पर इतना बखेड़ा क्यों? वास्तव में यह हमारी मानसिक गुलामी का परिचायक है,जिसने हिन्दी को बंदी बना रखा है। सुरंगमा यादव के अनुसार–

हिन्दी की रोटी
खाकर नोचें बोटी
देसी अंग्रेज

❑❑

23

भारतीय समाज की संरचना के सृजन में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका

राकेश कुमार दुबे
पत्रकारिता व जनसंचार विभाग
उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, ओडिशा

डॉ. अम्बेडकर का भारतीय समाज की संरचना एवं पुनर्निर्माण में महान योगदान है, इनका विचार था कि मानव जीवन निरर्थक नहीं अर्थपूर्ण है। वे प्रो. ड्यूम्बी के मानवतावादी एवं उदारवादी विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थे, जिसमें यह कहा जाता था कि हमें अपनी पुरानी संस्कृति में से केवल उन्हीं बातों का चयन करना चाहिए जो उपयोगी हो। डॉ. अम्बेडकर ने ड्यूम्बी से उपयोगितावादी व्यवहारिकता का सिद्धान्त सीखा तथा उनकी गतिशील पद्धति एवं सिद्धान्तों का अनुकरण भी किया। जिसका सीधा सम्बन्ध नैतिकता, मनुष्य एवं समाज से था। इनका दर्शन कोरी कल्पना से दूर तथा वास्तविक जीवन से सम्बन्धित था। वे स्वर्ग–नरक जैसी पारलौकिकता में विश्वास नहीं करते थे। इनका मानना था कि प्रत्येक समाज को एक व्यवहारिक नैतिकता व सामाजिक धर्म का पालन करना चाहिए तथा इसका मूल्यांकन आधुनिकता एवं उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए। बाबा साहेब कोई धार्मिक नेता या महापुरुष नहीं थे फिर भी वे मानते थे कि धर्म व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति धर्म के लिए नहीं। धर्म, नैतिकता, विवेक एवं मानवीय सम्बन्धों पर आधारित होना चाहिए। ऐसा धर्म ही समाज को स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के आदर्शों की तरफ ले जाता है।

डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक न्याय की अवधारणा – सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत ही व्यापक अवधारणा है। इसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकारों के साथ ही सामाजिक (भारत के परिप्रक्ष्य में जाति एवं अल्पसंख्यक) समानता के अर्थ भी निहित हैं। भारत में सामाजिक न्याय के प्रेरक दलितों के मसीहा एवं संविधान के प्रमुख शिल्पकार डॉ0 भीमराव अम्बेडकर 20वीं सदी के उन आधुनिक विचारकों में से एक हैं जिन्होंने विश्व समाज को एक नई दिशा दी। अम्बेडकर ने भारतीय समाज जीवन का गहन अध्ययन किया। भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण, धर्म, जाती के आधार पर छुआछूत, असमानता एवं शोषण की स्थिति के खिलाफ सामाजिक न्याय की अवधारणा को संविधान की मूल पृष्ठभूमि में स्थान दिलाया। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य अभिप्राय यह है कि नागरिक–नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेद न हो। भारत के प्रत्येक नागरिक को विकास के समान अवसर उपलब्ध हों। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य, समाज के कमजोर एवं बहिष्कृत वर्ग को भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ना, जिससे विकास में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो। जैसे–विकलांग, अनाथ, दलित, अल्पसंख्यक, गरीब, महिलाएं अपने आपको असुरक्षित न महसूस करे। संसार की सभी आधुनिक न्याय प्रणाली प्राकृतिक न्याय की कसौटी पर खरा उतरने की चेष्टा करती है, जिनका अंतिम लक्ष्य समाज के सबसे कमजोर तबके का हित सुरक्षित करना है। यदि वर्तमान भारतीय न्याय प्रणाली पर गौर करे तो यह कई विभागों में बांटी गई है, जैसे फौजदारी, दीवानी, कुटुम्ब, उपभोक्ता आदि आदि। लेकिन इन सभी का किसी न किसी रूप में सामाजिक न्याय से सरोकार होता है। अर्थात यह वंचित वर्ग के सशक्तिकरण की अवधारणा है। यह सामाजिक लाभो के वितरण के माध्यम से समाज में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, समानता स्थापित करना चाहती है। इस प्रकार यह समानता का दर्शन है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के मुख्य आधार स्तम्भ ये हैं–

धार्मिक भेदभाव को समाप्त करना

जातीय ऊंच–नीच की भावना को मिटाना

लैंगिक असमानता को खत्म करना

क्षेत्रीयता के भेदभाव को खत्म करना

डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्धांत को समझने से पहले परंपरागत सामाजिक न्याय व्यवस्था को जानना आवश्यक है। भारत की सामाजिक न्याय प्रणाली में मनुस्मृति के नियम कड़ाई से लागू होते हैं। आज भी खाप पंचायतों द्वारा दिये जाने वाले निर्णयों का आधार मनुस्मृति ही है। खाप पंचायत ही क्यों समस्त जातीय पंचायतें अपने सामाजिक फैसलों में मनु के नियमों का पालन करते देखी जाती है। उदाहरण देखें– पुत्री को पिता की सम्पत्ति में अधिकार का फैसला जाति पंचायतों के अनुसार कोई सोचनीय विषय ही नहीं है। अर्थात पिता की सम्पत्ति में केवल पुत्रों का अधिकार होता है। प्रश्न ये है कि ऐसे फैसले जिनको हमारा भारतीय संविधान दूसरे नजरिये से देखता है का आइडिया इन पंचायतों को कहां से प्राप्त होता है, दरअसल ये आइडिया इन्हें मनुस्मृति से मिलता है जो भारतीय जनमानस में समाया हुआ है। वास्तव में भारत में परंपरागत सामाजिक न्याय प्रणाली निम्न तीन बिंदुओं पर आधारित होती है।

परम्परागत नियमों मूल्यों के प्रति अंधविश्वास –

जाति भेद (जातिय श्रेष्ठता एवं नीचता)

लैंगिक भेद (महिलाओं का मानवीय अधिकार से बेदखल करना)

इस प्रणाली पर विश्वास या श्रद्धा का मुख्य आधार एवं वाहक धार्मिक ग्रंथ हैं। जो इन विश्वासों की पुष्टि करने के साथ ही साथ स्थापित एवं जनमानस तक प्रमाणित भी करते हैं। इन ग्रंथों पर प्रश्न न उठे इसलिए इन्हें अपौरुषेय (ईश्वर द्वारा लिखित) कहा गया। ऐसा करने का एकमात्र लक्ष्य यही था, किसी खास जाति विशेष, लिंग विशेष को बिना मेहनत सुख–सुविधा मुहैया कराया जा सके। गौरतलब है कि ऐसा विश्व के अन्य समुदाय में भी ऐसा होता था। ये ग्रन्थ ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ और अन्य को मुक्त गुलाम बनाने की ओर प्रेरित करते हैं। गौरतलब है कि भारत में जातीय श्रेष्ठता का आधार जन्म है न कि कर्म। (मनुस्मृति अध्याय 10 श्लोक क्रमांक 129 देखें)

किसी भी शूद्र को संपत्ति का संग्रह नहीं करना चाहिए चाहे वह इसके लिए कितना भी समर्थ क्यों न हो, क्योंकि जो शूद्र धन का संग्रह कर लेता है, वह ब्राह्मणों को कष्ट देता है। (मनुस्मृति अध्याय 1 श्लोक 87 से 91 देखें)

ब्राह्मणों के लिए उसके अध्ययन–अध्यापन, यज्ञ करने दूसरों से यज्ञ कराने दान लेने एवं देने का आदेश दिया। लोगों कि रक्षा करने, दान देने यज्ञ करने पढने एवं वासनामयी वस्तुओं से उदासीन रहने का आदेश क्षत्रियों को दिया। मवेशी पालन, दान देने यज्ञ कराने पढने व्यापार करने धन उधार देने तथा खेती का काम करने की जिम्मेदारी वेश्यों की दी गई। भगवान ने शूद्र को एक कार्य दिया है उन पूर्व लिखित वर्गों की बिना दुर्भाव से सेवा करना।

भारत समाज को अग्रेजी उपनिवेश से आजादी मिलने के बाद सामाजिक असमानता और संघर्ष को दूर करने हेतु आधुनिक भारत में दो सामाजिक न्याय की अवधारणाएँ उभर कर सामने आयी –

गांधीवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा

अंबेडकरवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा

गांधीवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा – महात्मा गांधी अपने आपको प्रगतिशील एवं आधुनिक मानते थे। वे आधुनिक न्याय प्रणाली को तो मानते थे लेकिन जातीय और धार्मिक ऊंच–नीच को भी मान्यता देते थे। वे ये तो मानते थे कि सभी जातियों को आपस में मिलने–बैठने का अधिकार होना चाहिए, छुआछूत की भावना का खात्मा होना चाहिए, लेकिन वे जाति आधारित कार्य प्रणाली का समर्थन करते थे। इस परिप्रेक्ष्य में वे कहते कि यदि तुम अपनी जाति में निर्धारित जातिगत गंदे कामों को मन लगाकर करते हो तो तुम्हारा अगला जन्म ऊंची जाति में होगा। इस प्रकार वे पूर्नजन्म में विश्वास करते थे। एक खास वर्ग के नेता गांधी के इस सिद्धांत को मानते हैं। अब इस सिद्धांत को दक्षिणपंथी विचारधारा के नाम से भी जाना जाता है।

अंबेडकरवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा– डॉ. अंबेडकर का सामाजिक न्याय का सिद्धांत प्राकृतिक न्याय के अवधारणा के ज्यादा नजदीक है। डॉ. अंबेडकर गांधीवादी न्याय के सिद्धांत को एक छल कहते थे। वे मानते हैं कि जिस सामाजिक न्याय के सिद्धांत में जातिगत ऊंच–नीच, धार्मिक कट्टरता, लिंग भेद, पूर्वजन्म की कल्पना को मान्यता दी जाती है। वह सामाजिक न्याय हो ही नहीं समता। वे इसे ब्राह्मणवादी न्याय का सिद्धांत कहते हैं क्योंकि इस सिद्धांत में किसी जाति विशेष, लिंग विशेष का हित सुरक्षित है। इसलिए डॉ. अंबेडकर जिस सामाजिक न्याय की अवधारणा का प्रतिपादन करते है वे नस्ल भेद, लिंग भेद और क्षेत्रीयता के भेद से मुक्त है। इस अवधारणा में समाज के कमजोर वर्ग के साथ न केवल न्याय हो, बल्कि उनके अधिकार और हित सुरक्षित हो। संविधान निर्माण में उनके इस सिद्धांत की भूमिका स्पष्ट देखी जा सकती है। डॉ. अंबेडकर का सामाजिक न्याय सिद्धांत निम्न सामाजिक तथ्यों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रहार करता है–

जाति आधारित श्रम विभाजन के खिलाफ
सामाजिक बहिष्कार
समाज में पुरुष सत्ता को खत्म करने के लिए
भूमि या संपत्तियों का असमान वितरण के खिलाफ
महिलाओं को पिता एवं पति की संपत्ति में अधिकार

भारतीय संविधान इस मामले में सर्वोच्च और उत्कृष्ट है। इसमें सामाजिक न्याय की पूर्ति में लिए इन बाध ााओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक न्याय पाने की दिशा में विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया सहित तमाम केंद्रों के प्रयास कहीं न कहीं गलत कार्यान्वयन और असंतुलन के कारण फलीभूत नहीं हो पा रहे हैं। जरूरत और समय की मांग है कि उचित और संतुलित नीतियों–व्यवहारों को लागू किया जाए जिससे कि सामाजिक न्याय को सामाजिक प्रगति का हिस्सा बनाया जा सके। अरस्तु के अनुसार व्यक्ति समाज का सदस्य तो हो सकता है लेकिन नागरिक वह तभी कहलायेगा, जबकि वह राज्य की राजनीति में सक्रिय रूप से योगदान करता है और इसी संदर्भ में सक्रिय रूप से योगदान करता है और इसी संदर्भ में अरस्तु कहते हैं कि किसी भी राज्य या समाज में किसी व्यक्ति का जो सक्रिय योगदान होता है उसके समानुपात में समाज की सम्पत्ति का उचित वितरण वितरणात्मक न्याय कहलाता है और इसका निषेध वितरणात्मक सामाजिक अन्याय कहलाता है। लेकिन यह एक आदर्श स्थिति है। व्यवहार में यह कहीं पर भी लागू नहीं है क्योंकि व्यक्ति सदस्य के योगदान का ठीक–ठीक आंकलन संभव नहीं है। इसका कोई पैमाना नहीं है। सीमा रेखा नहीं है! इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक न्याय के नारे ने विभिन्न समाजों में विभिन्न तबकों को अपने लिए गरिमामय जिंदगी की मांग करने और उसके लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। इन संघर्षों के फलस्वरूप समाजों में बुनियादी बदलाव हुए हैं।

आज भी भारतीय जेलों में विचाराधीन कैदी, भारी संख्या में अनुसूचित जाति जनजाति और अल्पसंख्यक वर्ग से आते हैं, तमाम आंकड़ों के अनुसार वे अपनी आबादी में बहुत बड़ी प्रतिशतता रखते हैं। भारतीय शासन के आरक्षित पदों को या तो बैकलाग में छोड़ दिया जाता है या फिर योग्य उम्मीदवार नहीं मिला कहकर उच्च वर्ग के सक्षम वर्ग द्वारा भर दिया जाता है, भारतीय जनमानस द्वारा एक बलात्कार पीडित महिला को ही इसके लिए दोषी ठहराया जाता है, जिस देश के 40 प्रतिशत गरीब बच्चों से आज भी बाल श्रम लिया जाता है, उस देश में लगता है सामाजिक न्याय आज भी कोसो दूर है। लेकिन इसका सुखद पहलू यह है कि आज की मीडिया, साहित्य और प्रगतिशील जगत इस मुद्दे को बार–बार सामने लाता रहा है। इससे सामाजिक न्याय के पक्ष में माहौल बना है। और जब यह माहौल सही मायनों में व्यावहारिक धारतल पर कार्य रूप में परिणित हो जाय तब जाकर यह भारतीय समाज एक विकसित समाज कहलायेगा।

डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय और दलितोद्धार – हिन्दू धर्म में व्याप्त जाति व्यवस्था के घोर विरोध ी थे। भारतीय हिन्दू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों और व्यर्थ के कर्मकाण्डां से समाज को मुक्ति दिलाने

साथ ही समाज के वंचित वर्गो को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए आपने जीवन पर्यन्त वैचारिक संधर्ष किया। आपने हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता और कर्मकाण्डीय जाति व्यवस्था के उपर अनेकों प्रश्न उठाये साथ ही उनका उत्तर भी दिया। हिन्दू धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता के लिए अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को जिम्मेदार माना। वे कहते हैं कि ''हिन्दू धर्म अपने ही समाज के एक वर्ग के व्यक्तियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार करने का आदेश देने के साथ–साथ अस्पृश्य व्यक्तियों को इस स्थापित व्यवस्था के विरोध में न केवल विद्रोह करने से रोकता है, अपितु उन्हें यह आदेश देता है कि उनका यह कर्तव्य है कि वे इस दैवीय एवं पवित्र व्यवस्था को बनायें रखें।''

डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि ''जाति प्रथा से लड़ने के लिए चारों तरफ से प्रहार करना होगा। जाति ईंट की दीवार जैसी कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह एक विचार है, एक मनःस्थिति है जिसकी नींव धर्म शास्त्रों की पवित्रता में है। वास्तविक उपाय यह है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष को शास्त्रों के बन्धन से मुक्त किया जाय, उनकी पवित्रता को नष्ट किया जाय, इसका सही उपाय है, 'अन्तर्जातीय विवाह' तभी वे जात–पांति का भेदभाव बन्द करेंगे। जब जाति का धार्मिक आधार समाप्त हो जायेगा, तो इसके लिए रास्ता खुल जायेगा। खून के मिलने से ही अपनेपन की भावना पैदा होगी और जब तक यह अपनत्व की बन्धुत्व की भावना पैदा नहीं होगी, तब तक जाति प्रथा द्वारा पैदा की गई अलगाव की भावना समाप्त नहीं होगी।अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए अम्बेडकर ने मार्क्सवादी समाजशास्त्र का सहारा लेते हुए लिखा है कि ''अस्पृश्यता की समस्या वर्ग–संघर्ष का एक मामला है।अपने इन प्रयासों के द्वारा डॉ0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यों में जनजागृति लाने के साथ हिन्दू समाज में क्रांति लाने और उसके हृदय में परिवर्तन करने के लिए भी अनेक सत्याग्रह आन्दोलन को संगठित किया और महार आनुवांशिक कार्यभार कानून (वेतन प्रणाली, बंधुआ मजदूरी और दासता प्रणाली) को समाप्त करने का भी प्रयास किया। डॉ0 अम्बेडकर द्वारा संगठित सत्याग्रह आन्दोलन कानूनो पर अमल कराने के लिए आयोजित किये गये थे। उदाहरणतः 1927 में महाड़ तालाब सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों के सार्वजनिक तालाबों से पानी पीने के मानवीय अधिकार को लागू करवाया था। 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश का उद्देश्य अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश दिलाना था। मार्च 1928 में मुम्बई विधान सभा में महार आनुवांशिक कार्य–भार विधेयक का उद्देश्य महारों को खानदानी पेशे से मुक्ति दिलाना था।

डॉ0 अम्बेडकर ने अपने समाज दर्शन की स्थापना में सर्वप्रथम अस्पृश्यता की जड़ वर्ण व्यवस्था पर ऐतिहासिक, नैतिक व तार्किक रूप से प्रहार किया तथा वह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वर्ण व्यवस्था पूर्णतः अवैज्ञानिक, अन्यायपूर्ण, अमानवीय एवं शोषणकारी सामाजिक योजना है। यही वर्ण व्यवस्था कालान्तर में जाति व्यवस्था में परिवर्तित होकर अपिरवर्तनीय हो गयी। अतः जाति व्यवस्था हिन्दू संस्कृति एवं धर्म का ही देन है जिसने समाज एवं देश की सांस्कृतिक व राजनीतिक एकता को खण्डित कर दिया। इन सभी असमानताओं एवं शोषण की मुक्ति के रूप में वे बौद्ध धर्म का समर्थन करते थे। इनका मानान था कि भारतीय धर्मों में केवल बौद्ध धर्म ही धर्म के सच्चे आदर्शों के अनुकूल है। बौद्ध धर्म न केवल मानव एवं मानव के मध्य समानता थी, अपितु स्त्री एवं पुरुष में भी समानता का समर्थन करता है। इसलिए बाबा साहेब हिन्दू धर्म को छोड़ने व बौद्ध धर्म को अपनाने की बात करते थे। इनका कहना था कि अपने ऊपर हो रहे अन्यायों, अत्याचारों व शोषण से मुक्ति पाने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बौद्ध धर्म की शरण में जाना है। डॉ. अम्बेडकर ऐसे प्रथम भारतीय चिन्तक, समाज सुधारक एवं विचारक थे, जिन्होंने समतावादी सामाजिक व्यवस्था अर्थात् स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के आदर्शों पर आधारित समाज व देश की कल्पना करते थे तथा ऐसी व्यवस्था की स्थापना के लिए वे जीवन भर संघर्ष भी करते रहे।

डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय और लैंगिक जेण्डर न्याय–दर्शन – डॉ0 भीमराव अम्बेडकर न केवल भारतीय समाज के दलितों एवं कमजोर वर्गों के उत्थान कर्ता थे बल्कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं के प्रति हो रहे जेण्डर असमानता के विरुद्ध जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। उनका प्रमुख उद्देश्य था भारतीय समाज व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना। उनका मानना था कि लैंगिक असमानता कृत्रिम रुप से भारतीय सामाजिक व्यवस्था द्वारा बनायी गयी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को न केवल पुरुषों के अधीन माना गया है, बल्कि

उन्हें हमेशा के लिए ऐसे साँचे में ढाला जाता है, जिससे वे जीवन पर्यन्त पुरुषों के नियंत्रण में रहे। हिन्दू समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति से चिंतित डॉ0 अम्बेडकर ने न केवल समाज में महिलाओं को निम्न प्रस्थिति को ऊँचा उठाने के लिए जमीनी स्तर पर प्रयास किया, बल्कि भारतीय धर्मग्रन्थों, वेदों, स्मृतियों एवं परम्पराओं में महिलाओं के प्रति होने वाले जेण्डर असमानता को बढ़ावा देने वाले विचारों का जमकर विरोध किया।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि भारतीय महिलाओं को निम्न प्रस्थिति के लिए हिन्दू धर्म ग्रंथ, और स्मृतियाँ जिम्मेदार है। उन्होंने भारतीय इतिहास का गहराई से अध्ययन किया और पाया कि मनु के पूर्व महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति काफी उच्च थी। महिलाओं को पुरुषों के समान सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त थी। लेकिन मनु के समय महिलाओं को शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, आर्थिक स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। महिलाओं को तलाक का अधिकार नहीं था, जब कि पुरुषों को तलाक का अधिकार था। मनुस्मृति में कहा गया है कि ''महिलाओं को कभी भी स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहिए, महिलाओं को बचपन में अपने पिता, युवावस्था में अपने पति तथा वृद्धावस्था में अपने पुत्र के नियंत्रण में रहना चाहिए। मनुस्मृती महिलाओं को किसी भी तरह की आजादी नहीं देती थी। इसलिए डॉ बाबासाहेब आंबेडकर ने महिला सशक्तिकरण के लिए कई कदम उठाए। महिलाओं को और अधिक अधिकार देने तथा उन्हें सशक्त बनाने के लिए सन 1951 में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' संसद में पेश किया। जिसके तहत स्त्रियों को विवाह विच्छेद (तलाक) का अधिकार, हिंदू कानून के अनुसार विवाहित व्यक्ति के लिए एकाधिक पत्नी रखने पर प्रतिबंध और विधवाओं तथा अविवाहित कन्याओं को बिना शर्त पिता या पति की संपत्ति का उत्तराधिकारी बनने का हक, हिन्दू विवाह और विशेष विवाह का अधिकार प्राप्त हो सके। डा. अंबेडकर का मानना था कि सही मायने में प्रजातंत्र तब आयेगा जब महिलाओं को पैतृक संपत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिए जाएंगे। डॉ. अंबेडकर का दृढ. विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी संभव होगी जब उन्हें घर परिवार और समाज में सामाजिक बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक उन्नति उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि जेण्डर असमानता का विरोध करने के लिए महिलाओं को शिक्षित करना अति आवश्यक है, इससे महिलाओं में आत्मनिर्भरता आयेगी और उनकी सामाजिक प्रस्थिति भी ऊँची होगी। आपने महिलाओं को कहा कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजे और उन्हें महत्वाकांक्षी बनाये। साथ ही साथ भारतीय सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण आधुनिक लोकतंत्र के स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर होना चहिए ताकि भारत में जेण्डर न्याय पर आधारित समाज की स्थापना हो सके।

डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय और भारतीय संविधान – भारत में सामाजिक न्याय के प्रेरक अम्बेडकर ने भारतीय समाज जीवन का गहन अध्ययन किया। भारतीय समाज में जाति, वर्ण, धर्म, के आधार पर छुआछूत, असमानता एवं शोषण विद्यमान था। हिन्दू धर्म में विद्यमान वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, इन्हें अछूत माना जाता था तथा ये आर्थिक रूप से दरिद्र, राजनीतिक रूप से दबे हुए, धार्मिक रूप से बहिष्कृ त रहे, उन्हें दास बनाकर दण्डित किया जाता था और सभी मानवाधिकारों से वंचित रखा जाता था। अम्बेडकर ने हिन्दू व्यवस्थापन पर अधिक जोर दिया, उन्होंने प्रचलित अस्पृश्यता, धर्म द्वारा बनाई गई दुर्भावनाओं, असहनीय प्रथाओं, परम्पराओं तथा प्रचलित वर्ण व्यवस्था की जोरदार आलोचना कर समाज के पिछड़ों व दलितों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान, समानता और स्वतंत्रता की भावना भरकर समाज में एक नये युग की शुरूआत की।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का आधार सभी मानव के बीच समानता, उदारता तथा भाईचारे की भावना है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य, जाति, रंग, लिंग, शक्ति, स्थिति तथा धन–दौलत आदि पर आधारित सभी असमानता को दूर करना है। अम्बेडकर के अनुसार मनुष्य द्वारा बनाई गई असमानताओं को कानून, नैतिकता तथा जागरूकता के द्वारा समाप्त कर सामाजिक न्याय की स्थापना की जानी चाहिए। परिणाम स्वरूप भारतीय संविधान पर अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचारों का दोहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। संविधान की

प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता जैसे शब्दों का प्रयोग सामाजिक न्याय पर अम्बेडकर की धारणा के अनुरूप है। उनके प्रयासों से ही संविधान में अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। समानता (अनु0 14), अस्पृश्यता (अनु0 17), शोषण की समाप्ति (अनु0 23–24) आदि के साथ ही अनुच्छेद 39, 39 क, 46, 330, 332, 338 एवं 340 आदि अनुच्छेदों पर डा0 अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के विचारों का गहरा प्रभाव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, बी. एम. शर्मा, राम कृष्ण दत्त, 2005,रू भारतीय राजनीतिक विचार, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली
2. शास्त्री, शंकरानंद, 2011, पूना पैक्ट बनाम गाँधी, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
3. गुप्ता, विश्व प्रकाश एवं गुप्ता, मोहिनी, 2001, भीमराव अम्बेडकरःव्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
4. मेघवाल, कुसुम , 1994,रू भारतीय नारी के उद्धारक बाबा साहेब डॉ0 बी0 आर0 आम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. जाटव, डी0 आर., 1933, डॉ0 अम्बेडकर रूव्यक्तित्व एवम् कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर
6. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर 1946, हू वर दि शूद्रज ? हाऊ दे केम टू बी दि फोरथ वर्ण इन दि इण्डो आर्यन सोसायटी ?
7. भीमराव अम्बेडकर, 1948, दि अनटचेबल्स, हू आर दे ? एण्ड वाई दे बीकेम अनटचेबल्स
8. कुबेर, डब्लूएन., 1973, डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक समालोचनात्मक अध्ययन, पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
9. अवस्थी एण्ड अवस्थी, 2012, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्चपब्लिकेशन्स, जयपुर
10. बेसन्तरी, देवेन्द्र कुमार, 2010, भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी, दलितसाहित्य प्रकाशन संस्था, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
11. Ambedkar, B.R., Caste in India. their Mechanism. Genesis and Development, BheemPatrika: Jalandhar, 1977
12. Ambedkar, B.R., Federation versus Freedom, R.K. Tatnis : Bombay, 1939
13. Imbedkar, B.R., Gandhi and Gandhism, BheemPatrika : Jalandhar, 1970
14. Ambedkar] B-R-] History of Indian Currency and Banking: Vol I-:
15. Thacker and Co. Ltd. : Bombay, 1947
16. Ambedkar, B.R. Mr. Gandhi and Emancipation of Untouchables, First issued as the Untouchables and the Indian Constitution, Thacker and Co. Ltd.: Bombay, 1943
17. Keer, Dhananjay (Ed) 1962 : Dr- Ambedkar & Life and Mission Bharil, Chandra 1977 : Social and political Ideas of B.R. Ambedkar, Alekh Publishers, Jaipur
18. Gore, MS 1993 : The Social contect of an ideology : Ambedkar*s Political and Social thought, Sage Publications, New Delhi
19. Shah, Ghanshyam (ed) 2001: Dalit Identity and Politics, Sage Publications, New Delhi
20. Bazaz, P.N., Democracy Through Intimidation and Terror, Heritage Publishers : New Delhi, 1978
21. Beteille, Andre-, Backward Class in Contemporary India- Oxford University Press : New Delhi, 1992
22. Begot, Walter-, The English Constitution Oxford University Press, London, 1942
23. Bharathi, K. S., Foundations of Ambedkar Thought, Datt & Sons Publications : Nagpur, 1990
24. Bharill, Chandra, Social and Political Ideas of B-R- Ambedkar- Aelekh : Jaipur, 1977
25. Bhatia, K.L. et. al (Eds) Dr. B.R.Ambedkar : Social Justice and The Indian Constitution, Deep and Deep : New Delhi, 1995
26. Bhattacharya, Ajit, Social justice and the Constitution, Indian Institute of Advanced Study, Rashtarpati Niwas : Shimla] 1997
27. Bose, S.N., Indian Labour Code, Eastern Law House : Calcutta, 1950

❑❑

24

संचार प्रौद्योगिकी में हिन्दी

डॉ. हेमलता सुमन
(एसो.प्रो.)
नारायन पी.जी. कॉलेज, शिकोहाबाद (उ.प्र.)

भाषा किसी भी देश या समाज की अस्मिता की परिचायक तथा भाव–प्रभाव की संवाहिका होती है। विश्व की सभी भाषाओं में हिन्दी का विशेष स्थान है तथा हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा होने का गौरव रखती है। यह सरलता, सहजता, बोधगम्यता एवं लिपि की दृष्टि से सर्वाधिक वैज्ञानिक है। हिन्दी विश्व के प्रथम ग्रन्थ–वेद के सूत्रों को वेद भाषा संस्कृत द्वारा प्रवाहित करते हुए असंख्य लोगों के बीच बोलती, समझती और सीखती जाती पीढ़ी–दर–पीढ़ी सहज और सरल होती जा रही भाषा है। शास्त्रों के पत्रों से निकलकर हिन्दी जन–जन की भाषा हो गयी है। भारत में हिन्दी के बहुरूप हैं–क्योंकि भारत विविधताओं का देश है। अनेक संस्कृतियों का सम्मेलन यहाँ हुआ है, इसीलिए बोलियाँ भी भिन्न–भिन्न हैं भाषा की वास्तविक शक्ति उसकी बोलियाँ ही होती हैं। हिन्दी एक अक्षयवत है, जिसके अन्तर्गत अनेक बोलियाँ संरक्षित हैं। कलकतिया हिन्दी पर प्रसिद्ध भाषा शास्त्री प्रो. सुनीति कुमार चटर्जी ने आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व अपना शोध–आलेख लिखकर यह बताना चाहा था कि–'हिन्दी की व्यापकता और महत्ता उसकी अन्तक्षेत्रीयता में है।[1] इसी प्रकार मदरासी हिन्दी, हैदराबादी हिन्दी, पंजाबी हिन्दी आदि हिन्दी के कितने ही रूप विकसित हो चुके हैं।

हिन्दी की बोलियों की समृद्ध साहित्यिक परम्परा है, उनकी शब्द सम्पदा विशाल है। हिन्दी का अर्थ मात्र खड़ी बोली नहीं है। हिन्दी एक भाषा–समष्टि का नाम है जिसके अन्तर्गत वह समस्त भाषा रूप आते हैं जो इस क्षेत्र में बोले जाते हैं। ये आधुनिक भारतीय आर्य भाषा है जो अन्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में रायपुर और खड़वा तक, पूर्व में मिथिला और भागलपुर के जिलों से लेकर पश्चिम में बाड़मेर और जैसलमेर तक बोली जाती है। हिन्दी क्षेत्र की सीमावर्ती भाषाएँ पश्चिम में सिंधी और गुजराती, उत्तर में पंजाबी और नेपाली, पूर्व में बंगला और उड़िया तथा दक्षिण में मराठी और तेलगु हैं। इन भाषाओं से आवर्तित क्षेत्र हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं, और इस क्षेत्र के अन्तर्गत भारतीय जनसंख्या सर्वेक्षण 1991 के अनुसार 48 मातृ भाषाओं की गणना की गयी है, जिन्हें हिन्दी के अन्तर्गत रखा गया है।[2] यह हिन्दी भाषा क्षेत्र देश का एक बड़ा भूभाग है और इसमें देश के कई बड़े प्रदेश–उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, हिमाचल, हरियाणा तथा दिल्ली, तो हैं ही अंडमान निकोबार तथा अरुणाचल जैसे दूरस्थ क्षेत्र भी हैं जहाँ की प्रधान भाषा हिन्दी है।

नागार्जुन ने अपनी कविता 'भारतेन्दु' में कहा–

"हिन्दी की है असली रीढ़, गवारूँ बोली
वह उत्तम भावना तुम्हीं ने हम में घोली
है जनकवि सिरमौर सरल भाषा लिखबइया।
तुमको क्या समझेंगे ये बाबू भइया।।"

कहने का आशय ये है कि भाषा की असली शक्ति उसकी प्राण–बोलियाँ होती हैं। जिन्हें प्रायः गवाँरू कह दिया जाता है। बोली राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक प्रभुता को प्राप्त कर बोली से भाषा बन जाती है। बोलियाँ अपनी समृद्ध शब्द–सम्पदा से भाषा के अभिव्यक्ति वैशिष्ट्य में सक्षम बनाती हैं तो लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा को अनूठा रूप देते हैं। तुलसी, बिहारी, जायसी, कबीर, भारतेन्दु, हरिऔध, रत्नाकर आदि अनेकों कवियों ने बोलियों में अपनी साहित्य रचना की। जैसे–तुलसी ने रामचरित मानस और जायसी ने पद्मावत् अवधी में लिखे जो किसी साहित्य की अक्षुण्य निधि है।

विदेशों में प्रवासी भारतीयों ने अपने–अपने देशों में प्रवास के दौरान देश की शब्दावली लेकर अपनी हिन्दी विकास किया जिसमें आज वे साहित्यिक रचनाएँ कर रहे हैं। फीजी में गिरमिटियों द्वारा बोली जाने वाली फीजी हिन्दी नैताली नाम दिया गया। फीजी बात में अपना उपन्यास लिखने वाले प्रो. सुब्रमणी को भारत सरकार ने 'डउका पुराण' पर हिन्दी पुरस्कार से सम्मानित किया।[3] सूरीनाम, प्रो. रेमण्ड पिल्लैयी, प्रो. ब्रज. वी.लाल, महेनद्र चन्द्र शर्मा विनोद, 'डॉ. जीत नाराइन, हरिदेव सहतू, सूर्यप्रकाश वीरे आदि अनेक लेखक हिन्दी में लिखकर विदेशों में हिन्दी का परचम लहरा रहे हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारानुसार–''भेदों में अभेद–दृष्टि ही सच्ची तत्व दृष्टि है।'' कहने का आशय है कि हिन्दी रूप रचना की दृष्टि से भले ही विश्लेषात्मक भाषा हो किन्तु व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से संश्लिष्ट और समावेशी है। 19वीं शताब्दी के छठे दशक में केशवचन्द्र सेन ने भारतवर्ष की एकता और शक्ति के उपाय स्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को देखा था, साथ ही महर्षि दयानन्द सरस्वती को भी हिन्दी में लिखने और प्रचार की प्रेरणा दी थी जबकि इनकी मातृभाषा बंगला थी और दयानन्द की गुजराती। महात्मा गांधी भी गुजराती थे तथापि गांधी जी ने समझा कि पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के लिए हिन्दी भाषा ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

महात्मा गाँधी ने 1918 में दक्षिण में – 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की उन्होंने कहा था–''राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।[4]

हिन्दी के प्रमुख प्रचार–प्रसारक केन्द्र–

- नागरी प्रचारिणी सभी–काशी, स्थापना वर्ष 1893 के मुख्य गोपालदास खत्री, श्रीराम नारायण मिश्र हैं और श्यामसुन्दर दास आदि थे।
- हिन्दी साहित्य सम्मेलन–प्रयाग, की स्थापना सन् 1910 में मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में की गयी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन प्रमुख बनाये गये थे।
- हिन्दी विद्यापीठ–देवधर, की स्थापना–1929 में गाँधी जी की प्रेरणा से की गयी। इसका प्रमुख कार्य देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा का विकास करना था।
- गुजरात विद्यापीठ–अहमदाबाद, ये सन् 1920 में राष्ट्रीय शिक्षण संस्था के रूप में स्थापित की गयी जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को देवनागरी एवं उर्दू लिपि के माध्यम में प्रचारित किया।
- हिन्दुस्तान प्रचार सभा–वर्धा, इसकी स्थापना गाँधी जी ने 1942 में वर्धा में की, इनकी सत्प्रेरणा से 1944 में हिन्दुस्तानी प्रचार–प्रसार का कार्य गुजरात ने किया।
- महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा–पुणे, की स्थापना आचार्य कालेलकर की अध्यक्षता में 1973 में पूना में की गई इसका कार्य भी सराहनीय रहा।
- बम्बई विद्यापीठ–मुम्बई, सन् 1938 में स्थापित विद्यापीठ ने हिन्दी का प्रचार–प्रसार किया।

इसके अतिरिक्त असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गोहाटी हिन्दी प्रचार सभा–हैदराबाद, मणिपुर हिन्दी परिषद–इम्फाल, सौराष्ट्र हिन्दी प्रचार समिति–राजकोट, मैसूर हिन्दी प्रचार सभा–बंगलौर, मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति बंगलौर, केरल हिन्दी प्रचार सभा–त्रिवेन्द्रम, उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद–पुरी आदि अनेक संस्थाओं ने हिन्दी के गौरव को बढ़ाया। आज हिन्दी की स्थिति विश्वव्यापी है, वह संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने के लिए प्रयासरत है।[5]

भाषा सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों और भावों द्वारा निर्मित है।, समाज, संस्कृति और भाषा का अटूट सम्बन्ध होता है। मानव जीवन और उसका विकास भाषा के विकास की गाथा है। हिन्दी भी अनेक मोड़ों से मुड़ते हुए तमाम उतार–चढ़ाव को देखते हुए उनसे गुजरते हुए एक नये रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। यही विशेषता इसको जीवन्तता प्रदान करती है, चिंतनहीनता तथा परिवर्तनशीलता हिन्दी भाषा को गति तथा नई ऊर्जा देते हैं।

भूमण्डलीकरण के दौर में अन्य संस्कृतियों और भाषाओं के संयोग से हिन्दी की एक अनुपम छवि उभर कर आई है। हिन्दी के इस नये स्वरूप को सामने लाने और विकसित करने में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका

रही है। प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा सूचना क्रान्ति आने के बाद सम्पूर्ण विश्व एक ''वैश्विक ग्राम'' में परिवर्वित हो रहा है, जिसका मुख्य प्रभाव हिन्दी भाषा पर दिखाई दे रहा है। परन्तु जो दुनिया इतनी सुन्दर दिख रही है उसके पीछे एक बेहद दिलचस्प कहानी है।

फर्न्सवर्थ ने सन् 1922 में एक सर्किट डिजायन कर अपनी विज्ञान की शिक्षिका को दिखाकर आश्चर्यचकित कर दिया था। 1927 में फर्न्सवर्थ ने अपने मित्रों के बीच स्वनिर्मित यन्त्रों के माध्यम से स्थिर और चलचित्रों को प्रसारित करने का करिश्मा कर दिखाया था। तमाम कानूनी लड़ाईयों को लड़ने के बाद फर्न्सवर्थ ने यह खोज अपने नाम पेटेंट कराई और इस प्रकार टेलीविजन सर्वप्रथम अमरिका के न्यूयार्क सिटी के एम्पायर स्टेटभवन में स्थापित हुआ। लगभग सात दशक बाद, आज हर घर में टेलीविजन जा पहुँचा है।

भारत में साठ के दशक में टेलीविजन के आगमन के पहले रेडियो का ही बोलवाला था। आकाशवाणी का प्रसारण मुम्बई और कोलकाता में दो निजी स्वामित्व में ट्रांसमीटरों के साथ 1927 में प्रारम्भ हुआ था। 1930 में इन्हें 'इण्डियन ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' के नाम से संचालित किया जाने लगा। 1936 में इसका नामकरण 'आल इण्डिया रेडियो' और 1957 में पुनः आकाशवाणी हो गया। स्वाधीनता प्राप्ति के समय देश में आकाशवाणी के कुल 16 रेडियो स्टेशन कार्यरत थे। सन् 2000 में इनकी संख्या 184 पूर्ण विकसित केन्द्रों के रूप में हो गई। देश की भाषा हिन्दी में आकाशवाणी के सभी कार्यक्रम जैसे–संगीत, मनोरंजन, नाटक, समाचार खेलकूद, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य, कृषि जैसे अनेक घरेलू विषय हिन्दी में ही प्रसारित किये जाते हैं।

भारत में पहला दूरदर्शन प्रसारण केन्द्र नई दिल्ली के 'आकाशवाणी' भवन में स्थित अस्थाई स्टूडियो से 15 सित. 1959 को किया गया था। 1965 में समाचार बुलेटिन की नियमित सेवा प्रारम्भ की गई। 1975 में कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई, श्रीनगर, अमृतसर और लखनऊ में भी दूरदर्शन केन्द्र स्थापित किये गये। भारत में सैटेलाइट इन्स्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट) के रूप में प्रचलित उपग्रह प्रौद्योगिकी के साथ प्रथम प्रयोग सन् 1975–76 में किया गया। सामाजिक शिक्षा के लिए उपग्रह–प्रसारण की परिष्कृत प्रौद्योगिकी का उपयोग किये जाने वाला यह विश्व का प्रथम प्रयास था।[6]

भारत में लगभग 36 करोड़ से भी अधिक दर्शकों द्वारा अपने घरों में दूरदर्शन कार्यक्रम देखे जाते हैं। अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी में कार्यक्रम देखने वालों की संख्या बहुत है। यही कारण है कि डिस्कवरी चैनल को हिन्दी में डब कराया गया।

भारत में कम्प्यूटर के प्रयोग में वृद्धि वर्ष 1997 में चार महानगरों में इण्टरनेट सेवा प्रारम्भ होने के बाद से मीडिया का परिदृश्य तेजी से बदला। मोबाइल फोन, स्मार्ट फोन पर इन्टरनेट सेवा उपलब्ध हो जाने से एक नई क्रान्ति हुई। मोबाइल पर नेट के माध्यम से मिनट–दर मिनट की खबर तथा सूचनाएँ मिलती हैं। नित नये फीचर्स हिन्दी में ही जोड़े जा रहे हैं। समस्त विश्व– 'विश्वग्राम' में इस 'सूचना क्रान्ति' के कारण ही बदला है। व्यापार, व्यवसाय, लेन–देन, खरीद–फरोख्त, बैंकिंग, बुकिंग जैसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य सहज हो गये हैं। भाषान्तरण तथा लिप्यान्तरण की सुविधाएँ लेखन, श्रवण एवं संवाद आदि में उपलब्ध होना बहुत आसान बात है।

देश में ही नहीं विदेशों में भी हिन्दी के स्वैच्छिक पठन–पाठन हेतु विशेष व्यवस्था, कार्यशालाएँ आयोजित की जा रही हैं। इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने तो ऐसा सॉफ्टवेयर विकसित कर लिया है कि अब इग्नू के छात्र सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा की हिन्दी में हासिल कर सकेंगे।[7]

विज्ञान और तकनीकी हमारे समय में व्यवहार में आने वाली सबसे महत्वपूर्ण विधा, माध्यम और कहें कि भाषा है तो हमें उसे अपने लिए ''अपनी भाषा'' में ढालना होगा तो हिन्दी में ही सम्भव है, विज्ञान की पढ़ाई अपनी भाषा हिन्दी में ही होनी चाहिए। आज भी हमारी पढ़ाई अंग्रेजी भाषा की मोहताज बनी हुई है। आयोगों को चाहिये कि वे दूसरी भाषा के शब्दों के बदले नये शब्द गढ़ने की कवायद से बचें और उनके लिए हमारे देश की दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं में प्रचलित निकटतम अर्थ देने वाले शब्दों को कोश में और व्यवहार में जगह दें।[8]

राहुल सांस्कृत्यायन जी ने ठीक ही कहा था कि–''हमारे देश के पढ़े लिखे लोग मेहनत नहीं करना चाहते

और यह भी सोचते हैं कि शब्द स्वयं उड़–उड़ कर उनके मुँह के पास आ जायें। उन्होंने लिखा–''मैंने 'विश्व की रूपरेखा में साढ़े चार सौ पृष्ठों में आधुनिक ज्योतिष, फिजिक्स, रसायन, प्राणिशास्त्र और मनोविज्ञान के कितने ही गम्भीर विषयों का विवेचन किया है। मुझे तो परिभाषिक शब्दों की कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई, हाँ कुछ नये शब्द गढ़ने की जरूरत पड़े तो वह तो सभी भाषाओं को पड़ती है और इसमें कुछ हर्ज भी नहीं है।''[9]

जर्मनी, फ्रांस, रूस, चीन और जापान में सारी पढ़ाई और अनुसंधान अपने देश की भाषा में ही होते हैं। इसलिए वे आज नई–नई खोजों के सिरमौर बने हुए हैं, सोचने की बात है कि न्यूटन, पैथागोरस, आर्किमिडीज, मार्क्स, डारविन, आईन्टीन जैसे महान वैज्ञानिकों एवं विचारकों में से किसी की भी भाषा अंग्रेजी नहीं थी। कहने का आशय यह है कि वैज्ञानिक और अनुसंधानकर्ता के लिए अपनी भाषा ही सर्वोपरि और सुविधाजन होती है न कि माँगी या थोपी हुई, मातृभाषा–अपनी भाषा में जिसमें हम सोचते हैं, मनन करते हैं। उसी में प्रस्तुतीकरण भी सौ प्रतिशत दे सकते हैं, जो नितान्त व्यावहारिक और मजबूत होगा। साथ ही आत्मविश्वास राष्ट्रभक्ति का हृदय को और अधिक मजबूत करेगा। यहाँ चिंतक विचारक डॉ. राममनोहर लोहिया जी का एक प्रसंग चर्चा करना समीचीन है–उन्होंने लिखा कि जब वे डाक्टरेट की डिग्री के लिए जर्मनी गये तो इस निश्चय के साथ गये कि वे अपना कार्य उस समय के सबसे बड़े विद्वान प्रो. जोम्बार्ट के साथ पूरा करेंगे। मिलने पर जोम्बार्ट ने कहा–बेटे मुझे अंग्रेजी नहीं आती है इसलिए मैं तुम्हें काम नहीं करा पाऊँगा। डॉ. लोहिया आगे लिखते हैं कि उसके बाद मैंने वही किया जो एक हयादार आदमी को करना चाहिये। मैं अपने कमरे में लौट आया और जर्मन सीखी, छः महीने बाद में जब प्रो. जोम्बार्ट से मिला तो इतनी जर्मन सीख ली थी कि अपनी पूरी बात जर्मन में रख सकता था। डॉ. लोहिया का मानना था कि–''मैं अपने विषय का असली विद्वान ही साहस के साथ यह कह सकता है कि उसे अंग्रेजी नहीं आती है और अपनी भाषा में पढ़ लिख कर ही कोई अपने विषय का सबसे बड़ा विद्वान हो सकता है। अपनी भाषा के सम्बन्ध में डॉ. लोहिया का यह कथन अत्यन्त मार्मिक, प्रेरक और अर्थपूर्ण है जो हमारी राष्ट्रभक्ति को भी दर्शाता है।

आज नये भारत के निर्माण में तकनीकी क्षेत्र में, वैज्ञानिक क्षेत्र में तथा उच्च शिक्षा में हिन्दी भाषा को ही माध्यम बनाया जाये ताकि अपने देश की जरूरत के अनुसार नई खोजें, आविष्कार तथा शोध हो सकें–इससे करोड़ों लोगों की जरूरत को, उनकी पीड़ा को समझा जा सकेगा। ये अपनी भाषा–हिन्दी में ही सम्भव हो सकता है। माँगे की भाषा या थोपी गई भाषा में नहीं। हालांकि परिश्रम अधिक करना होगा तथापि जब अनुसंधान हमारे तरुण वैज्ञानिक अपनी भाषा में करेंगे तो देश की जरूरतों को वो तथा हम साथ–साथ समझ सकेंगे। शोध परियोजनाओं को देश की जरूरतों के अनुसार व्यवस्थित कर सकेंगे। सच्चे अर्थों में देश में लोकतन्त्र, स्वाधीनता और समानता कायम करने के लिए हिन्दी को उच्च शिक्षा और विज्ञान शिक्षण तथा अनुसंधान का माध्यम बनाना ही पड़ेगा। यदि हम सही विकल्प की ओर अग्रसर होना चाहते हैं तो जीवन के सभी अंगों, अवयवों को प्रभावित और संचालित करने वाले विज्ञान तथा तकनीकी को अपनी महान भारत–भूमि की जरूरतों के अनुसार अपनी राजभाषा, जो जन–भावनाओं में राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मानित है से विज्ञान को जोड़ना होगा।

सोशल नेटवर्किंग या सोशल मीडिया जैसे–फेसबुक, ट्विटर एवं यू–ट्यूब आदि सभी इंटरनेट आधारित कम्यूनिटी से हैं जहाँ उपयोगकर्ता जनित सामग्री को साथ–साथ तैयार किया जा सकता है। उसे साझा कर चर्चा की जा सकती है। कम्प्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी में नये–नये प्लेटफार्म शिक्षा के विकास को सामाजिक गति दे रहे हैं। इन साइट्स ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है। शिक्षा के क्षेत्र में इंटरनेट ने तथा कम्प्यूटर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। निःसन्देह पिछला दशक हिन्दी के तकनीकी विकास की दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। दस वर्ष पूर्व हिन्दी में डिजिटल युक्तियों पर काम करने के इच्छुक लोगों को अनेक उलझन और बेचारगी का सामना करना पड़ता था। किन्तु आज बहुत सुधार हुआ है स्थिति में, नये कम्प्यूटर आपरेटिंग सिस्टम, विंडोज मैंकिस्टोस लिंक्स आदि में यूनिककोड को सफलतम् प्रक्रिया से हिन्दी हम सभी के लिए उपयोगी और सहज हो गयी है। अधिकांश हैड हेल्ड डिवाइसिस (टेबलेट स्मार्ट फोन) आदि में हिन्दी लिखना और हिन्दी को अन्य बेवसाइटों को देखना, पढ़ना,

समझना, आसान हो गया।

गूगल हिन्दी इनपुट के रूप में बेहतर आई.एम.ई. मौजूद है जो रोमन पद्धति से हिन्दी में लिखना सम्भव बनाता है। हिन्दी समर्पित वेब सर्विसेस– ई–मेल, अनुवाद, टेक्स्ट टू स्पीच, ई–कॉमर्स क्लाउड आधारित सर्विसेस का उपयोग कठिन नहीं रहा है। ह्वाट्स–एप, फेसबुक, सोशल प्लानिंग आदि द्वारा हम सन्देश–जानकारियाँ, सूचनाएँ एक–दूसरे तक आसानी से तथा तुरन्त ही भेज सकते हैं और पढ़ सकते हैं। ये बाधारहित जीवन हमें तकनीकी ने ही दिया है, जो हमारी पहचान हिन्दी भाषा को आसान तरीके से सिखा रहा है।

आज हिन्दी सारी दुनिया में बड़ी तेजी से बढ़ रही है, पिछड़ और विकासशील देशों में ही नहीं बल्कि विकसित देशों में भी हिन्दी भाषा की शिक्षा पुरजोर तरीके से चल रही है। सोचनीय बात बस यह है कि जब रूस, जर्मनी, जापान और फ्रांस जैसे देश यदि विज्ञान और तकनीकी में अपनी भाषाओं का उपयोग कर रहे हैं तो हमें हिन्दी को इस क्षेत्र में विकसित करने में क्या कठिनाई है, यदि अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे अंग्रेजी देशों में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर तैयार करने में हिन्दुस्तानी इंजीनियर सबसे अग्रणी हैं तो भारत में कम्प्यूटर का उपयोग हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में क्यों न हो। चीन में मातृभाषा के प्रयोग के परिणाम सामने हैं उन्हें उपयोग का नया क्षितिज मिला है, जापान भी इसी दिशा में अग्रसर है।

अपने विचारों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति अपनी भाषा में ही सम्भव है। अतीत में हमारे गणित, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, खगोल शास्त्र के विद्वानों ने अपनी भाषा में ही यह ज्ञान सारे विश्व के सामने परोसा था। वर्तमान में जब पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति और योग–विज्ञान के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। तथा हिन्दी के शब्द भी अंग्रेजी शब्दकोश में सम्मिलित हो रहे हैं तब हमारी युवा पीढ़ी हिन्दी के प्रति अनासक्त क्यों है। प्रतियोगिता परीक्षाओं, मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों, वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्रों, तकनीकी तथा प्रबंधन संस्थानों में अंग्रेजी माध्यम की अनिवार्यता इसे समाप्त कर हिन्दी में पाठ्यक्रम तैयार कर युवाओं की राह को आसान बनाने की आवश्यकता है। अपनी मातृभाषा में तैयार पाठ्यक्रम अधिक प्रभावी और श्रेष्ठ रहता है।

अन्त में निःसन्देह कहा जा सकता है कि हमारी हिन्दी हमारी पहचान तथा देश की प्राण है, नई तकनीकी तथा सूचना प्रौद्योगिकी में हमें हिन्दी को और अधिक प्रभावी और उपयोगी बनाना है। सूचनाओं के आदान–प्रदान की पद्धति जितनी अधिक सरल, सहज और सुगम होगी वह उतनी ही अधिक प्रभावी होगी, साथ ही विज्ञान के साथ चलना है। अतः मातृभाषा हिन्दी और सूचना के नवीनतम स्वरूप दोनों का ही सुन्दर समन्वय हो–तभी हम उन्नति एवं विकास और सफल तरीके से कर पायेंगे। आज स्वर्णिम युग में हैं हम, हमारे चारों ओर सुन्दर संसार है जो सूचना और जनसंचार माध्यमों के कारण मुट्ठी में है। हमें इनका सदुपयोग करते हुए देश की उन्नति में सहायक बनना है और समस्त विश्व में एक नई पहचान के साथ छा जाना है।

सन्दर्भ

1. गगनांचल – दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक जु.–अक्टू. 2015, पृ. 31
2. हिन्दी है एक भाषा समस्टि – प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा – पृ. 31
3. गगनांचल – दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक जु.–अक्टू. 2015, पृ. 200
4. हिन्दी हम सबकी – श्याम सिंह शशि – संस्करण 1990, पृ. 200
5. गगनांचल – 30 अक्टू. 2015, पृ. 80
6. हिन्दी की खुश्बू – दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन – पृ. 134
7. समाचार पत्र – 'आज' – 12 फरवरी 2010, पृ. सं. 12
8. प्रो. चिन्तरंजन मिश्र – अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी वि. विद्यालय वर्धा के प्रति कुलपति के विचार।
9. 10वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 10–12 सित. 2015, पृ. 177

❑❑

25

स्त्री आत्मकथाओं में नारी पराधीनता के विद्रोही स्वर

डॉ0 निशा भदौरिया
असि0 प्रो0–हिन्दी विभाग
चौ0 चरण सिंह पी0 जी0 कालेज, हेंवरा, इटावा

प्रत्येक 'आत्मकथा' एक स्वर है जो नारी पराधीनता के प्रति विद्रोह में उठाया गया है। आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री ने अपनी पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने की कोशिश की है, जिसमें बहुत हद तक ये 'लेखिकाएँ' सफल भी हुई हैं।

चन्द्रकिरण सौनरिक्शा ने इन बेड़ियों को अनुभव किया। उन्होंने इन बेड़ियों को समय–समय पर अपनी लेखनी के द्वारा कमजोर किया और तोड़ दिया। आर्थिक रूप से सशक्त होने पर ही स्त्री अपनी दासता की जंजीरों को तोड़ सकती है, सौनरिक्शा ने सदैव अपना तो आर्थिक भार उठाया ही। साथ ही साथ अपने पति बच्चे और परिवार की भी जिम्मेदारियों को निर्वहन किया। सभी उपन्यास और कहानियाँ जो किरण सौनरिक्शा के द्वारा लिखी गई हैं, उनमें स्त्री संघर्षरत है और अन्ततः सफल होती हुई दिखाई देती है। उनकी इसी प्रतिभा से प्रभावित हो हिन्दी साहित्य अकादमी 'बीसवीं शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ महिला कथाकार' के रूप में उनका सम्मान करती है। 'पिजरें की मैना' समय के साथ विशाल आसमान का परिंदा बन जाती है। उड़ने के लिए सारा आसमान था, छा जाने के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी थी। अपने स्वयं के प्रयत्नों से एक सफल और सशक्त जीवन जीती हैं। किरण जीवन से पूर्ण सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं। वो लिखती है, "मैंने जीवन को आधे भरे गिलास की तरह, हमेशा सकारात्मक दृष्टि से देखा। मेरी साधना, तपस्या चाहे, एक साहित्यकार के रूप में, मेरी अपनी वजहों से, यश के कगार तक न पहुँची हों, पर एक माँ के रूप में फलीभूत हुई हैं।[1] मन्नु भण्डारी की आत्मकथा का मूल स्वर ही है विद्रोह वह कभी परिवार तो कभी समाज से असन्तुष्ट हो विद्रोही हो जाती है। भारतीय सामाजिक ढाँचा कहीं न कहीं उन्हें निरन्तर पीड़ा देता है उनका साहित्य भी इसी भाव की पुष्टि करता हुआ प्रतीत होता है, "उसके कुछ समय बाद पति के वर्चस्व को, उसके 'पति परमेश्वर' को चुनौती देते हुए अपनी पत्नी ने अपनी आवाज बुलन्द की तो इन सम्बन्धों में भी दरारें पड़ने का सिलसिला शुरू हुआ– टूटने का सिलसिला शुरू हुआ। ऐसा नहीं कि इस टूटने ने स्त्री को कहीं से नहीं तोड़ा वह टूटने भी झेली उसने और कई स्तरों पर झेली, लेकिन एक सीमा तक बर्दाश्त करने के बाद जब स्थिति असहनीय हो गई तो आखिर स्टैण्ड लिया और अपने को मुक्त कर लिया।"[2] मन्नू की ये पंक्तियाँ मन्नू के सम्पूर्ण जीवन को व्यक्त करती हैं। राजेन्द्र यादव के साथ रहने की मन्नू ने हर सम्भव कोशिश की। हर प्रयत्न किया कि उनका दाम्पत्य जीवन बिखरने न पाये, पर राजेन्द्र यादव का व्यवहार, लापरवाही सभी कुछ असहनीय हो गया, तब मन्नू ने इस सम्बन्ध को समाप्त कर दिया।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी माँ का वर्णन किया है, 'कस्तूरी देवी' मैत्रेयी की माँ हैं। कस्तूरी बचपन से ही स्त्री स्वतंत्रता की पक्षधर थी, वह विवाह ही नहीं करना चाहती, क्योंकि विवाह उसे सबसे बड़ी बेड़ी लगती, जो उसे हमेशा के लिए अपने में जकड़ लेगी, कस्तूरी को अपनी स्वतंत्रता सबसे अधिक प्रिय है वह कहती है,"मैं ब्याह नहीं करूँगी, इस पर कस्तूरी की माँ ने कहा, "लड़कियों से ऐसे दुःस्साहस की उम्मीद कौन कर सकता है? वे तो माँ–बाप के सामने सिर उठाकर बाता तक नहीं कर सकतीं, मरने का शाप हँसकर झेलती हैं और गालियाँ चुपचाप सहन करती हुई अपने शील का परिचय देती हैं, तू मर्यादा तोड़ने पर आमादा क्यों हुई?"[3] कस्तूरी किसी

भी कीमत पर विवाह नहीं करना चाहती, लेकिन परिस्थितिवश उसे झुकना पड़ता है और उसका विवाह हो जाता है, एक बेटी की माँ बनती है, पर शीघ्र ही विधवा हो जाती है। वह यह अच्छी तरह समझ लेती है कि स्वतंत्रता का रास्ता स्त्री स्वाबलम्बन पर जाकर ही खुलता है। अतः वह पढ़ाई करती है और सरकारी नौकरी भी प्राप्त कर लेती है। कस्तूरी को लगता है कि उसकी बेटी के लिए पढ़ाई–लिखाई बहुत आवश्यक है, पर मैत्रेयी का रुझान बनाव, श्रृंगार में अधिक है। कस्तूरी मैत्रेयी की चोटी ही काट देती हैं और मैत्रेयी को समझाती हैं, "जो तुझे आज बुरा लग रहा है मैत्रेयी, वहीं से तेरा भला होनेवाला है। स्त्री के लिए बाल–श्रृंगार बताए गए हैं, मगर श्रृंगार ही उसका जंजाल है'' ।[4] कस्तूरी मैत्रेयी को समझाती है, "तू मुझे गलत समझ रही है। मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी चीज है। यह औरत के लिए ऐसे बन्धन पैदा करता है, जो जीवनभर कसे रहते हैं, पति के रहने पर भी और न रहने पर भी।"[5]

जो भी जागरूक महिलाएँ हुई हैं, वे सभी इस सामाजिक व्यवस्था में अपनी दोयम दर्जे की स्थिति को लेकर चिंतित रही हैं और इस पराधीनता के विरोध में आवाज भी उठाई है। अमृता–प्रीतम भी इस स्थिति के प्रति सजग थी और विद्रोही भी वह स्वयं को हमेशा एक इंसान की तरह सोचती थी स्त्री या पुरुष नहीं। वह लिखती हैं, "मैंने अपने आपको हमेशा इंसान सोचा है। शुरू से जानती थीं, मैं हर चीज के काबिल हूँ। कोई समस्या हो, मर्दों से ज्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हूँ, सिवाय इसके कि जिस्मानी तौर पर बहुत वजन नहीं उठा सकती, और हर बात में हर तरह काबिल हूँ। इसीलिए मैंने अपने औरत होने को कभी किसी कमी के पहलू से नहीं सोचा जिन्होंने शुरू में मुझे सिर्फ औरत समझा था, मेरी ताकत को नहीं पहचाना था, उनका समझना था, मेरा नहीं" ।[6]

अमृता–प्रीतम हर तरह से एक सक्षम महिला थीं, उन्होंने हमेशा स्त्री की शोचनीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, जहाँ मन्दिरों में स्त्री–निषेध था वह उस मंदिर को देखने गई, पर वहाँ उन्हें पुजारी ने अन्दर नहीं जाने दिया इस स्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने संसद में कई प्रश्न उठाए, लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

प्रभा स्वतंत्र होकर भी स्वतंत्र नहीं थी, कारण डॉक्टर सर्राफ हर तरह से उन पर नजर रखते थे, कौन आता है?कौन जाता है? प्रभा किससे मिलती है? आदि बातों का पूरा–पूरा ध्यान रखते! प्रभा चिढ़ती हैं और कहती हैं, "मुझे यह बन्दीखाना अच्छा नहीं लगता, आप हर बात की खोज–खबरें रखते हैं, कौन आया, कौन गया।" डॉक्टर साहब चिढ़ गए थे, "तो तुम रंडीखाना खोल लो।" मैं भी चीख रही थी, "स्वतंत्र स्त्री का क्या यही अर्थ हुआ कि उसे वेश्या का दर्जा दे दिया जाए? मुझे आपसे और आपकी गार्जियनशिप से मुक्ति चाहिए।"[7]

प्रभा भारतीय स्त्री की नीयति को अच्छी तरह से जानती थीं, तुम्हें यह अच्छे से पता था कि वह चाहकर भी अब डॉक्टर सर्राफ से मुक्त नहीं हो सकतीं, इसीलिए वह स्वंय को सशक्त और सबल बनाने की दिशा में लग जाती हैं, "कभी–कभी लगता मेरी सारी ऊर्जा छोटे–छोटे विद्रोह करने तथा अपने और तपने को सँभालने में ही खत्म हो जाएगी।"[8] अपनी सारी शक्ति समेटकर प्रभा निरन्तर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं, सफलता के इस सफर में प्रभा अकेली नहीं थीं साथ थी उनकी लगन और साहस जो उन्हें एक स्वतंत्र जिन्दगी जीने की दिशा की ओर अग्रसर कर रहा था।

कुसुम अंसल भी नारी पराधीनता की विरोधी हैं, वह भारतीय नारी की दोयम स्थिति से परेशान हो उठती हैं, "जीवन सभी के लिए इतना कठोर क्यों है? इतना निर्मम कि नार्मल जिन्दगी जीने का हद तक आख्तियार नहीं कर पाता। हर स्त्री इस समाज के बनाए सिद्धान्तों की दीवारों में कैद क्यों है, क्यों? यदि कैद है भी तो हमें अनुभव ही नहीं होता कि यह एक कैद है, कारागार हैं क्यों? शायद इसलिए कि हम सब अपनी स्थितियों के इतने आदी हो गए हैं कि बिना सोचे अपने बड़ों का आधिपत्य या dominance बर्दाश्त करते हैं और वही मजबूरी हमें उनकी

अधीनता या dependence से बाँधकर कभी कब्रिस्तान तक पहुँचाती है कभी घर या नाम बदलने की स्थिति तक ले जाती है।"[9]

सामान्यतः स्त्री को अपनी इस दयनीय सामाजिक स्थिति के बारे में आभास भी नहीं है। ऐसी जागरूक स्त्रियों का प्रतिशत भारतीय समाज में बहुत कम रहा है, जो अपना जीवन अपने सिद्धान्तों पर जीती हैं, साधारण औरत तो अपने अधिकार जानती ही नहीं। भारतीय स्त्री अपना अवमूल्यन स्वयं करती है। अपनी प्राथमिकताएँ बदल देती हैं, घर–परिवार बच्चे ही उसकी प्राथमिकता हो जाते हैं और उसका अवदान, समाज तो छोड़ो, परिवार तक भूल जाता है। यही भारतीय नारी की नियति है, जिसको कुसुम अंसल से प्रतिक्षण तोड़ने का, बदलने का प्रयास किया है।

कुसुम स्त्री की शक्ति को अनुभव करती हैं तब उन्हें लगता है, "मुझे लगने लगा था कि मुझे पूरे व्यक्तित्व की मलकियत हाथ लग गई, पूरे व्यक्तित्व को समग्रता से देख पाई हूँ और जैसे यह मेरा द्वीप है, मेरे भीतर एक मजबूत बाँध बाँधता हुआ द्वीप।"

सन्दर्भ

1. चन्द्रकिरण सौनरिक्शा, पिंजरे की मैना, पृष्ठ– 415
2. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृष्ठ – 119
3. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ–9
4. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ–49
5. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ–64
6. अमृता प्रीतम, रसीदी टिकट, पृष्ठ–130
7. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ–180
8. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ–261
9. कुसुम अंसल, जो कहा नहीं गया, पृष्ठ – 23
10. कुसुम अंसल, जो कहा नहीं गया, पृष्ठ – 23

❑❑

परमानन्द दास और अष्टछाप

डॉ. जय सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला – आजमगढ़ (उ0प्र0)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्ययुग अथवा भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है। भक्ति साहित्य की जैसी अपूर्व धारा इस युग में बही और जन मानस में मान्य भी हुई वैसी फिर किसी भी युग में नहीं हो सकी। ''इस युग में सगुण भक्ति को लेकर जिस उच्चकोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अनुपम थी। साहचर्य और सौन्दर्य से उत्पन्न प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियों के समाधिमय क्षणों में जिन चिरन्तन मानवीय रहस्यों का उद्‌घाटन और उनकी वर्णनमय अभिव्यक्ति जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पायी थी और न आगे चलकर फिर सम्भव हो सकी। श्रृंगार–भावना और उसकी अभिव्यक्ति को सगुण शक्ति के प्राचीर में सुरक्षित रखने का श्रेय जितना कृष्ण–भक्त कवियों को है उतना अन्य भक्त कवियों को नहीं। इस युग के 'कवि अष्टकाव्य बारे' आठों सखा तथा 'अष्टछाप' के नाम से साहित्य जगत में प्रसिद्ध हुए।''[1] ''अष्टछाप'' कवियों के काव्य का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की लीलाओं का भावात्मक चित्रण है।

अष्टछाप के कवियों में परमानन्द दास जी उच्च कोटि के कवि हैं, जिन्हें बल्लभाचार्य के समय से ही प्राथमिकता प्राप्त हो गई थी। वार्ता के अनुसार 'मकर संक्रांति' पर्व पर परमानन्द दास जी प्रयाग गये, उस समय बल्लभाचार्य जी प्रयाग के पास अड़ैल नामक स्थान में स्थित थे। कीर्तनियाँ के रूप में परमानन्द दास की प्रशंसा बल्लभाचार्य ने सुनी। तब वहाँ उन्हें कपूर खत्री द्वारा आचार्य बल्लभ से मिलने का अवसर मिला। परमानन्द दास आचार्य बल्लभ से बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने विरह का एक पद गाकर आचार्य जी को सुनाया जिसे सुनकर आचार्य जी अत्यंत ही प्रसन्न हुए, तथा अपना देहानुसंधान भी खो बैठे थे, इसके पश्चात् आचार्य जी ने बाल लीला के पद गाने को कहा जिसमें परमानन्द दास जी ने असमर्थता प्रकट की। अतः बल्लभाचार्य की प्रेरणा से उन्होंने बाल लीला के पद गाना प्रारम्भ किया और तभी से ये बल्लभाचार्य की शरण में गये। उसी समय बल्लभाचार्य जी ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में शरण देकर दीक्षा दी। इस प्रकार परमानन्द जी आजीवन आचार्य के साथ रहकर कीर्तिन सेवा की। परमानन्द दास का सम्प्रदाय में प्रवेश का समय 1576–77 ही ठहरती है।'[2] परमानन्द जी का सम्पूर्ण काव्य पुष्टि सम्प्रदाय की परम मर्यादा लिये हुए है।

परमानन्द दास जी बल्लभ सम्प्रदाय से पूर्णतया प्रभावित थे क्योंकि न तो इससे पूर्व और न ही इसके पश्चात् ऐसी शुद्ध परम्परा के दर्शन उन्हें प्राप्त हो सके। इस काल में भक्ति की तन्मयता, भावों की विभोरता, साकार भावनाओं की दृढ़ता और संगीत की सरसता के साथ–साथ अभिव्यक्ति की गंभीरता और भगवत्सेवा की निश्छल परायणता मिलती है। इस काल में जीवन का दर्शन तो मिलता है परन्तु भगवान के चरणों में पूर्ण विनियोग के साथ।

बल्लभाचार्य जी से दीक्षा लेने के उपरान्त परमानन्द जी इस सम्प्रदाय से इतने अधिक अभिभूत हो गये थे कि उसके राजमार्ग को छोड़कर एक पल को भी इधर उधर नहीं भटके हैं। बल्लभ सम्प्रदाय का मुख्य आधार श्रीमद्‌भागवत था और अष्टछाप के सभी कवियों की भक्ति में आधार श्रीमद्‌भागवत् ही रहा है। परमानन्द दास जी भी इसी भावना से ओत–प्रोत थे, इनके सम्पूर्ण काव्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि बल्लभ सम्प्रदाय और भागवत् ही इनके मुख्य प्रेरणा स्रोत हैं। हाँ कहीं कहीं पर अवश्य इनके काव्य में दृष्टिगत हुआ है कि इन्होंने तत्परता से भागवत् का अनुसरण किया है और कहीं पर बिल्कुल ही स्वतन्त्र हो गये हैं, उद्धव प्रसंगादि में तथा मथुरागमन प्रसंग में कुछ पद ऐसे भी हैं जो भागवत् निरपेक्ष हैं 'कंस ने नन्द के नाम एक गुप्त पत्र भेजा, जिसमें कृष्ण के विषय में पूँछा है, कि यह बालक जिसका कृष्ण नाम रखा है, कौन है कहाँ से आया है, सभी का उत्तर तुरन्त ही भेजो।'[3]

तैं यह बालक सुतकरि पाल्यो।
यह हम सुनी कान्हर धार्‌यो धाइ जसोदा उर धरि लाल्यो।
राजा कंस सुहथ लिखि पठई गुपत ही नंद गोप को पाती।
यह न बूझिये पैनी कीनी राखी प्रगट सान धरि काती।
याको प्रति उत्तर लिखि पठवहु को यह आहि कहाँ तै आयो।
याको फल पावहिगो आगे मरम–'दास परमानन्द' गायो।

परमानन्द दास जी का पुष्टि सम्प्रदाय में अपना विशिष्ट महत्त्व है। परमानन्द जी अष्टछाप के उच्चकोटि के भक्त कवि हैं जिनकी समता सूर से की जा सकती है भक्तमाल के टीकाकार ने एक स्थान पर लिखा है –

परमानन्द और सूर मिलि गाई सब ब्रजरीति।
भूलि जाति बिधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।

उपर्युक्त पद से परमानन्द जी का महत्त्व स्पष्ट होता है। परमानन्द जी अपने जीवन काल में ही 'सागर' कहलाने लगे थे, अष्टसखान की वार्ता में स्पष्ट लिखा है– 'तासौं वैष्णव तौ अनेक श्री आचार्य जी के कृपापात्र हैं परन्तु सूरदास और परमानन्द ये दोऊ सागर कह भयें।' इसी के आगे आया है 'पुष्टि मार्ग में दोई सागर भये एक तौ सूरदास और दूसरे परमानन्द दास जी सो तिनको हृदय अगाध रस भगवत्‌लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।'[4]

परमानन्द दास जी 'सागर' इसलिये नहीं कहलाये कि उन्होंने सहस्राविधि रचनायें कीं क्योंकि इनके समकालीन भी अन्य कई कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने सहस्राविधि रचनायें की परन्तु उन्हें 'सागर' की उपाधि नहीं मिल सकी। इसका मूल तात्पर्य यही होगा कि इन्होंने भागवत् स्वरूप भक्ति अपने काव्य में की है। सागर शब्द भागवत् से सम्बन्धित है। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भागवत् को सागर कहा है। इसीलिये महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने सूर और परमानन्द दास जी को 'सागर' की उपाधि से अलंकृत किया था तथा इनकी रचनायें 'भागवत् भक्ति' के ही अनुरूप हैं अतः इनकी रचनाओं को भी सागर कहा जाता है।

परमानन्द दास जी ने उन सभी तत्त्वों को अपने काव्य में समाहित किया है जो कि भागवत् में भक्ति के लिए मान्य हैं। बल्लभाचार्य जी ने भी अपने सिद्धान्तों में भागवत् को मूल प्रेरणा स्रोत माना है अतः परमानन्द दास जी ने साम्प्रदायिक मान्यतानुसार कृष्ण, राधा, गोपी, रास, मुरली आदि के द्वारा अपनी भक्ति भावना को उच्च शिखर पर स्थिर किया है।

कृष्ण :

परमानन्द दास जी ने कृष्ण सम्प्रदाय की मान्यतानुसार कृष्ण को ही परब्रह्म, रसात्मा, रसेस, भावनिधि माना है, इनके अनुसार कृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम, रसरूप, अखण्ड हैं, जब कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित होकर धरा धाम पर अनेक प्रकार की लीलायें करते हैं तब उनकी क्रीड़ा स्थली गोलोक भी धन्य हो जाती है।

'वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुण्ठ निवासी'

'जिन श्रीकृष्ण का वर्णन ब्रह्मादि देवता करके अपने को धन्य मानते हैं वही गोपाल रूप में अब ब्रज में प्रकट हुए हैं।'[5]

जाको ईस सेस ब्रह्मादिक नेति नेति गावत स्रुति छन्द।
सो गोपाल अब श्री गोकुल में आनन्द प्रगटे 'परमानन्द'।

राधा :

अष्टछाप के श्रेष्ठ एवं प्रतिभाशाली भक्त कवि परमानन्द दास जी ने बल्लभ अनुसरण द्वारा ही राधा तत्त्व को अपने काव्य में अत्यन्त ही आदर एवं भक्ति से ग्रहण किया है। भागवत् में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, भागवत् को छोड़कर अन्य सभी पुराणों में राधा की चर्चा हुई है चूँकि बल्लभाचार्य जी ने पुराणों को भी आधार माना और अपने काव्य एवं सिद्धान्त में राधा को महत्त्व दिया। परमानन्द जी ने भी राधा को कृष्ण की भाँति रसेश्वरी एवं रासेश्वरी माना है। परमानन्द जी के काव्य में राधा कृष्ण युगल के काफी संख्या में पद उपलब्ध हुए हैं। इनके काव्य में राधा साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। वे अतिशय कष्ट सहिष्णु मौन, रूपमुग्धा, मानवती एवं स्वकीया रूप में चित्रित

हुई हैं। जिस प्रकार कृष्ण जन्म में सभी ब्रजवासी प्रसन्न होकर मंगल गीत गाते हैं 'उसी प्रकार की प्रसन्नता राधा जन्म में भी परमानन्द जी ने दिखाई है।'

आज रावल में जय जयकार।
प्रगट भयौ वृखभान गोपकैं श्रीराधा अवतार।

राधा के जन्म से लेकर बधाई पलना आदि के कई पद इन्होंने अपने काव्य में समाहित किये हैं। 'राधा–कृष्ण की जोड़ी का आभास इन्हें राधा जन्म से ही हो गया है।'[6]

प्रगट्यो नव कुंज कौ सिंगार।
कीरीति कूखि औतरि कन्यासुन्दरता कौ सार।
नख शिख रूप कहाँ लौ बरनौं कोटि मदन बलिहार।
'परमानन्द' बृखभान नन्दिनी जोरी नन्द दुलार।

गोपी :

परमानन्द जी ने गोपी भाव भागवत् एवं बल्लभ सम्प्रदाय से ग्रहण करके अपने काव्य में गोपी तत्त्व अथवा गोपीभाव को स्वीकार किया है। यह गोपी भाव भागवतोक्त भक्ति का लक्ष्य है। परमानन्द जी ने गोपियों को 'गोपी प्रेम की धुजा' कहकर गोपी भाव के महत्त्व को बढ़ाया है। 'गोपी भाव' एक भाव है, यह प्रेम की उच्चतम स्थिति का ही नाम है जो लोक–वेद मर्यादा से परे है। इन्होंने अपने काव्य में विभिन्न प्रकार की गोपियों की चर्चा की है, वैसे मुख्यतः इनका 'गोपी भाव' का मूल भाव सहज प्रेम अथवा अटूट भक्ति ही है। परमानन्द जी को विश्वास है कि 'गोपियों के प्रेम की समता कोई भी नहीं कर सकता है। गोपियों के अडिग प्रेम से उद्धव भी प्रभावित हुए।'[7]

गोपिन की सरभर कौन करै।
जिनके चरन कमल रज पावन उधौ सीस धरै।

मुरली :

अष्टछाप में बल्लभ सम्प्रदायानुसार मुरली का वर्णन रस स्वरूप में किया गया है, परमानन्द दास जी ने मुरली का वर्ण वेणु के आधार पर अथवा श्रीमद्भागवत् का वेणु गीत ही इनकी मुरली में चित्रित हुआ है। वेणु प्रेम लक्षणा भक्ति की प्रतीक है और उसी के अनुरूप परमानन्द जी ने भी मुरली के द्वारा भक्ति को दर्शाया है। परमानन्द दास जी ने मुरली को दिव्य शक्ति माना है, भक्त का इसके द्वारा निरोध होता है। इस अलौकिक गुणों से युक्त मुरली का प्रभाव समस्त चराचर पर व्याप्त है।'परमानन्द जी ने प्रभु प्रेम का मुरली के माध्यम से बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। गोपियाँ कहती हैं मैं तो सिर्फ कृष्ण की हूँ अर्थात् दिनरात कृष्ण की मुरली की ही गूँज मेरे कानों में पड़ती है।'[8]

हों तो या बनेऊ की चेरी।
नंदनंदन के अधरन लागति रहत है बाढ़ी प्रीति घनेरी।
'परमानन्द' गुपालहि भावै लाख बार हित मेरी।

राधा तो कृष्ण के साथ इस तरह से जुड़ना चाहती हैं जैसे मुरली। 'मुरली को श्रीकृष्ण प्रत्येक पल अपने ही साथ रखते हैं। कभी–कभी राधा कृष्ण से मुरली के ही बहाने चली आती हैं।'

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुन जसुमति संग छाँड़ि आपनों कुंवर जगाय देन हौं आई।

यमुना :

परमानन्द जी के काव्य में यमुना के पद अनेक हैं क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में यमुना का बहुत ही महत्त्व दिया गया है उसी के अनुरूप परमानन्द जी ने भी यमुना के महत्त्व को स्वीकारा है। अष्टछाप के समय यमुना को कृष्ण की प्रिया रूप में मानकर इनके दो रूप चित्रित किये हैं। प्रथम रूप में वे स्त्री रूप हैं, दूसरा उनका जल प्रवाह रूप है। परमानन्द जी ने दोनों रूपों से यमुना का चित्रण किया है। परमानन्द जी ने 'यमुना की महिमा के साथ–साथ यमुना कृष्ण के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, साथ ही परमानन्द जी स्वयं भी उन्हीं के चरणों में रहने की अभिलाषा करते हैं।'

श्री जमुना की आस अब करत है दास।
मन क्रम बचन कर जोरि के माँगत निसि दिन राखिये अपने जुपास।
जहाँ पिय रसिक वर रसिकनी राधिका दोउ जन संग मिलिकरत है रास।
'दास परमानन्द' पाय अब ब्रज चंद देखि सिराने नयनमन्द हास।

परमानन्द जी ने 'यमुना वर्णन में कृष्ण की प्रिया के रूप में भी चित्रण किया है, श्रीकृष्ण यमुना के ही पास–पास प्रत्येक क्षण रहते हैं।'[9]

श्री यमुना के साथ अब फिरत है नाथ।
भगत के मन के मनोरथ पूरत सबै कहाँ लौ कहिये अब इनकी जो बात।

रास :

रास वर्णन में परमानन्द जी ने भागवत् रास लीला के आधार पर ही अपने काव्य में रास चित्रण किया है। इस चारू क्रीड़ा का आध्यात्मिक रहस्य है, इस रास में परमानन्द दास जी ने आत्मा रूपी गोपियों को परमात्मा रूपी कृष्ण का मिलन दर्शाया है। इन्होंने रास चित्रण का अलौकिकता तत्व महत्त्व स्वीकारा है। इस चारू क्रीड़ा में उन्होंने भागवत् का पूर्णतः अनुसरण किया है।'श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध के पाँच अध्यायों (29, 30, 31, 32 एवं 33) को, रास पंचाध्यायी कहा जाता है। इन अध्यायों में वेणु वादन, अनुराग, मान, कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, गोपियों की विरहावस्था, कृष्ण का प्रकट होना, गोपियों के प्रश्न, महारास बन विहार एवं जल विहार का वर्णन है।'[10] परमानन्द दास जी ने रास क्रीड़ा का वर्णन इसी रास पंचाध्यायी के अनुसार ही किया है। कृष्ण का रास वर्णन इतनी तल्लीनता के साथ प्रस्तुत किया है कि 'जिसे देखकर देवता भी स्थिर होकर रास लीला का अवलोकन करके प्रसन्न हो रहे हैं।'[11]

बाहु कंध परिरम्भन चुम्बन महा महोच्छब रास विलास।
सुर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि 'परमानन्द दास'।

ब्रज :

बल्लभ सम्प्रदाय में ब्रज का भी महत्त्व स्वीकारा गया है। अतः अष्टछाप के सभी कवियों ने ब्रज का चित्रण पवित्रता एवं भक्ति से किया है। परमानन्द दास जी को तो ब्रज के अलावा और कहीं भी रहना व्यर्थ लगता है। परमानन्द जी का विश्वास है कि 'ब्रज में ही श्रीकृष्ण की लीलायें होती हैं वहीं कृष्ण के दर्शन सुलभ हैं, कृष्ण के साथ–साथ कृष्णप्रिय प्रत्येक वस्तु ब्रज में ही है, अतः अन्यत्र स्थान पर रहकर जीवन–यापन व्यर्थ ही है, यहाँ तक कि बैकुण्ठ भी उन्हें (परमानन्द दास को) व्यर्थ प्रतीत हो रहा है।'[12]

कहा करूँ बैकुंठहि जाय।
जहाँ नहि नन्द जहाँ जसोदा नहिं गोपि ग्वाल नहि गाय।
जहाँ न जल यमुना को निरमल और नहीं कदमन की छाय।
'परमानन्द प्रभु' चतुर ग्वालिन ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

परमानन्द दास जी ने उन सभी तत्त्वों को अपने काव्य में समाविष्ट किया जो कि बल्लभ सम्प्रदाय में मान्य हुए तथा अष्टछाप के समय प्रचलित थे। अष्टछाप काव्य को परमानन्द जी ने अपनी काव्य प्रतिभा के द्वारा अत्यन्त ही गौरवपूर्ण बना कर उच्च स्थिति पर स्थापित किया जो कि हिन्दी साहित्य की अमर निधि बन गई। अष्टछाप के मुख्य भक्त कवि परमानन्द दास जी ने 'अष्टछाप' काव्य को अमर बना कर 'अष्टछाप' के महत्त्व को प्रगाढ़ता एवं प्रौढ़ता की स्थिति में पहुँचा दिया। अष्टछाप युग की कृति 'परमानन्दसागर' का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि परमानन्द जी मुख्य रूप से भक्त, कवि, संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे, इन्होंने भगवत्लीलागान को अपना लक्ष्य मानकर भगवत्प्रेम की शाश्वत भावना में निश्चिन्त एक ऐसे दिव्य लोक में विचरण किया जो केवल अनुभव गम्य है।

अतः अष्टछाप में भक्ति कवियों की भावमयी भक्ति की प्रेरणा ही कार्य कर रही है। उन्होंने कृष्ण चरित्र के केवल उन भावनात्मक स्थलों को ही चुना है जिनमें उनकी अन्तरात्मा की अनुभूति गहरी उतर सकी है। 'अष्टछाप

के आठों कवियों ने बाह्य विषयात्मक शैली का अनुकरण न करके आत्म विषयात्मक शैली का प्रयोग किया है। इसीलिए अष्टछाप काव्य में हृदय को स्पर्श करने वाली द्रावक शक्ति है।'[13] अष्टछाप के आठों कवियों ने भक्ति द्वारा श्रीकृष्ण की प्रेम भाव से चर्चा की है। इनके काव्य में आत्म तुष्टि और लोक रंजनकारिणी शक्ति की अवश्य ही आतुरता है, साथ ही श्रृंगार वर्णन भी इन भक्तों की भक्ति का एक मार्ग है। 'सिद्धान्त की दृष्टि से इन भक्त कवियों का मार्ग ही लोक मर्यादा को पीछे छोड़ने वाला हैं, इनके काव्य का वर्णन सब लोकानुभूत भावों का ही है, परन्तु इन्होंने लौकिक भावों को चाहे लोक दृष्टि से वे भाव सद् हो चाहे असद्, लोकातीत रस–रूप, भगवान श्रीकृष्ण के साथ जोड़कर अग्नि में तपाई हुई अथवा भस्म की हुई वस्तु के समान शुद्ध या परिष्कृत किया है।'[14] परमानन्द जी ने इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए एक पद में लिखा है, 'यह काव्य प्रेमकाव्य है। इसमें लोक मर्यादा पीछे छूटी हुई है इस प्रेम काव्य को लोकहित की तराजू पर तौलने वाले समालोचक व्यभिचार समझकर इसकी निन्दा कर सकते हैं। प्रेम की लौकिक अनुभूतियों की अभ्यस्त मानसिक वृत्तियों को लोक से हटाकर उन्हीं वृत्तियों की ईश्वर की ओर मोड़ने के आध्यात्मिक साधन मार्ग को समझने वाले सज्जन अथवा इसकी केवल कला की दृष्टि से परखने वाले कलाकोविद, इसकी प्रशंसा कर सकते हैं।''[15]

मैं तो प्रीति श्याम सों कीनी।
कोउ निदौ कोउ बदौ, अब तो यह धरिदीनी।
जो पतिव्रता तो या छोटा सो इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार तो नन्दनन्दन सों बाढ्यो अधिक सनेह।
जो व्रत गह्यो सो और न भायो, मर्यादा को भंग।
'परमानन्द' लाल गिरधर को पायो मोटो संग।

अतः अष्टछाप काव्य में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियों का सजीव, स्वाभाविक और रस पूर्ण चित्रण है। साथ ही इसमें अलौकिक नायक श्रीकृष्ण के संसर्ग से लोक की वृत्तियों को समेट कर ईश्वरोन्मुख होने वाली इन कवियों की आध्यात्मिक अभिव्यंजना भी है जिसकी सिद्धि ही इन भक्त कवियों का चरम लक्ष्य था।

सन्दर्भ सूची

1. परमानन्द सागर पद संग्रह, पृ. 1 (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
2. 'या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्द दास ने किये'
3. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पृ. नं. 480
4. अष्टसखान की वार्ता तथा भाव प्रकाश, पृ.824
5. परमानन्द सागर पदसंग्रह , पद नं. 594, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
6. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पद नं. 163,168, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
7. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पद नं. 823, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
8. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पद नं 221, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
9. परमानन्द सागर पदसंग्रह क्रमशः पद 222, 580,582, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
10. साहित्यकोश, पृ. 603, भाग–1
11. परमानन्द दास पदसंग्रह, पद नं. 233, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्लद्ध
12. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पद नं. 851, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)
13. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय भाग – 2 पृ. 695, (डॉ. दीनदयाल गुप्तद्ध
14. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय भाग 2, पृ. 695, (डॉ. दीनदयाल गुप्त)
15. परमानन्द सागर पदसंग्रह, पद नं. 470, (डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल)

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

27

स्वामी रामानन्द की भक्ति विषयक अवधारणा

मनोज तिवारी
शोध छात्र, दर्शन शास्त्र
डी०ए–वी० (पी०जी०) कॉलेज, कानपुर

भक्ति, कर्म तथा ज्ञान तीनो एक दूसरे के पूरक होते है तथा मानव जीवन में निरन्तर प्रवाहमान रहते है। कर्म एवं ज्ञान साधन सापेक्ष होता है किन्तु भक्ति का मार्ग साधन सापेक्ष के साथ–साथ निरपेक्ष भी होता है। भक्ति का क्षेत्र असीमित होता है, अनुपमेय होता है तथा सरल, सुलभ एवं सकल सुखकारी होता है। निष्कपट हृदय में भक्ति का शाश्वत निवास होता है। श्रुति भगवती में नमस्कारात्मक एवं स्तुति परक मन्त्रों का तात्पर्य भक्ति शास्त्र से ही होता है। श्रुति कहती है कि–

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पिरिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
त्वं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्।।[1]

दिव्यो = दिव्यगुण विशिष्टो, गन्धर्वो = गोः पृथिव्याः धारयिता यस्त्वं, भुवनस्य = त्रिभुवनस्यैक एव सर्वतो, नमस्यो = नमस्करणीयो, विक्षु = प्रजासु सर्वथेड्यः पतिरसि, तं त्वा =त्वां, ब्रह्मणा =वेद वाचा, यौमि = प्राप्नोमि वेदं द्वारीकृत्य त्वामुपासनादिभिः प्राप्नोमीत्यर्थः। हे दिव्य देव! ते नमस्तुभ्यं नमोऽस्तु, दिवि = द्युलोके दिव्यभावनावन्मनुश्ये ते सधस्थं निवासस्थानाम्।

रामानन्द सम्प्रदाय में यौमि का अर्थ उपासना या भक्ति से किया जाता है। शास्त्रों के मन्त्र आत्मनिवेदन रूपी भक्ति का गान करते हुए प्रस्तुत होते है। यथा–

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाह्य।[2]
तेजोसि तेजो मयि धेहि
वीर्यमसि वीर्य मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेहि
ओजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युमसि धेहि
सहोऽसि सहो मयि धेहि। (शुक्ल यजुर्वेद)
तस्य ते भक्तिवाँसः स्याम्।[3]

रामानन्दी सम्प्रदाय में आसक्ति विशेष को भक्ति के रुप में स्वीकारा जाता है। ममत्व, राग का हेतु होता है। राग दो प्रकार का होता है– 1. संसार के प्रति, 2. भगवत् परक। भगवत् परक राग कल्याणकारी होता है जबकि संसारपरक राग पतन का कारण बनता है। हृदय में प्रसन्नता, राग और मोह का संबंध संसार से न होकर भगवान से होना चाहिए।

भक्ति शास्त्र की कालजयी रचना नारद–भक्ति–सूत्र में 11 बार आसक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है–

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणाक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्त्यात्म निवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति रूपा एकधाप्येकादशधा भवति।[4]

धा का तात्पर्य प्रकार से होता है। इस प्रकार भक्ति एकदशधा रूप में प्रतिष्ठित होती है। भक्ति के 11 प्रकार

निम्न है– 1. गुणमाहात्म्यासक्ति, 2. रूपासक्ति, 3. पूजासक्ति, 4. स्मरणासक्ति, 5. दास्यासक्ति, 6. सख्यासक्ति, 7. कान्तासक्ति, 8. वात्सलयासक्ति, 9. आत्मनिवेदनासक्ति, 10. तन्मयतासक्ति, 11. परमविरहासक्ति। नारद जी ने इसके समर्थक भक्तों का उल्लेख करते हुए कहा है कि–

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमार व्यास शुकशाण्डिल्य गर्ग– विशणुकौण्डिन्य शेशोद्धवारुणि बलि हनुक द्विभीशणादयो भक्त्याचार्याः।[5]

कुमार (सनत्कुमारादि), वेदव्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विशणु, कौण्डिन्य, शेश, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान, विभीशण आदि भक्ति तत्व के आचार्यगण लोकों की निन्दा स्तुति का कुछ भी भय न कर एकमत से भक्ति को ही सर्वश्रेश्ठ बतलाते है।

श्रुति भगवती कहती है कि–

वतोपजूत इषितोवशाँ अनुतृषु यदन्नावेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रश्योयथा पृथक् शर्धास्यग्ने अजरस्य धक्षतः।।[6]

परमात्मा सच्चे भक्तों के वश में होता है। उन पर आर्द्र होता है, उसके हृदय में निवास करने लगता है।

ईशावास्य श्रुति कहती है कि–

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम।।[7]

अर्थात हे सर्वशरण्य अग्निरूप श्रीराम जी, अनन्य गति वाले हम सभी को जीवात्मा के एकमात्र धन श्रीरघुनाथ जी के कैंकर्य में पहुचाने हेतु अर्चिरादि मार्ग से ले जाये, मेरे अन्तःकरण में प्रकाशमान सर्वपूज्य हे श्रीरामजी आप हमारे समस्त कर्मों या बुद्धि वैभव के ज्ञाता हो अतः किये गये निषेध कर्मों तथा विहित कर्मों के न करने सम्बन्धी कुटिल बन्धन रुप पापों को हमसे दूर कर दें तदर्थ आपकी बहुत स्तुति प्रार्थना हम करते है। श्रुतियों में अनेक भक्तिपरक मन्त्र प्राप्त होते है। समस्त वेद मन्त्रों में सूत्र रुप में उपासना का रहस्य अनुस्यूत होता है।

स्वामी रामानन्दाचार्य जी के अनुसार–

स्वीयप्रवृत्तेस्तु निवृत्तिरिष्टो न्यासोऽथ वेद्योऽपि बुधैः सदैव।
ऐकान्तिकैस्तत्वविचारदक्षैः परात्मनिष्ठैः परमास्तिकैस्तैः।।[8]

भगवत्प्राप्ति के लिये शास्त्रप्रोक्त भक्ति आदि साधनों में उपायबुद्धि से प्रवृत्ति नहीं करना ही न्यासविद्या – प्रपत्ति या शरणागति कहलाती है। अपने भरणपोषण के लिये प्रवृत्ति नहीं करना मात्र ही न्यास नहीं है, इसमें आत्मकल्याणार्थ कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग जैसे मुक्ति के साधनों में भी उपायबुद्धि का सर्वथा परित्याग कर केवल भगवान् में ही सुस्थिर उपायबुद्धि की जाती है। इस प्रकार अन्य अवलम्बन का त्यागकर 'भगवान् मेरा रक्षण अवश्य करेगें' इस महाविश्वाश के साथ पूर्णतः भगवदाश्रित हो अपनी रक्षा की याचना ही न्यास होती है। अतः अपना सर्वस्व समर्पण श्री ईश में कर उन्हीं का यजन भजन करना चाहिये– 'न्यासो आत्मनिवेदनम्'। इस प्रकार स्वच्छ हृदय में भक्ति का उदय होता है।

'जीवस्य तत्व जिज्ञासा'[9] जीव का यह परम पुरुषार्थ है कि श्री राम तत्व विषयक प्रेम, जिज्ञासा, सेवा, यजन, भजनपूर्वक उन्हीं को अपने हृदय मन्दिर में स्थापित करें।

भक्ति का आनन्द लोकोत्तर होता है। भगवान का अवतार भक्तपरक होता है। मानव जीवन के प्रत्येक पद में सुस्वाद होता है– 'स्वादु स्वादु पदेपदे'[10]। वेदान्तवेद्य पूर्णतम पुरुषोत्तम श्री राम 'आदिकर्त्ता स्वयंप्रभुः' है, उनके चरणों में अविरल प्रीति हो जाना भक्ति का उदय होता है। भक्तों के हृदय में भगवान का प्रवेश कर्णरन्ध्र से होता है– 'प्रवृष्टः कर्णरन्ध्रेण'[11]। अतः श्रवण भक्ति का विधान पहले किया जाता है। जिस काल में भक्त के हृदय में श्रवण

की इच्छा होती है उसी क्षण भगवान का स्फुरण हृदय में हो जाता है। श्रवण भक्ति के द्वारा हृदय में भगवान का प्राकट्य होता है और वो भक्त के हृदय में बंध जाते है– सद्योहृद्यवरुध्यतेऽत्रकृतिभिः शुश्रूशुभिस्तत्क्षणात्।'[12]

स्वामी रामानन्द जी ने श्रीमद्भगवदगीता की भक्तिमय व्याख्या की है। श्रीमद्भगवदगीता में भगवान कहते है कि–

'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।[13]

अर्थात् मेरे स्वरूप का दर्शन न वेदाध्ययन से, न तप से, न दान से एवं न यज्ञ से ही हो सकता है। आगे पुनः भगवान की वाणी है कि–

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।[14]

हे अर्जुन! मेरे स्वरूप को अनन्य भक्ति से भक्त यथार्थतः जान सकता है। अतः स्पष्ट होता है कि भगवान भक्ति के द्वारा ही दृश्य होता है।

स्वामी जी के मतानुसार सब कुछ भगवान का है, व्यक्ति का कुछ भी नही होता है। व्यक्ति अज्ञान के कारण झूठे अहंकार में जीवन पर्यन्त लगा रहता है और वासना के कारण आवागमन के चक्र में फसा रहता है। भगवान गीता में अनुग्रह करते है कि–

यत्करोशि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।[15]

हे अर्जुन्! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर। भक्त का अपना कुछ भी नही होता। भगवान को छोड़ अन्य कोई भक्त के हृदय में नही होता– 'अन्याश्रणणां त्यागोऽनन्यता'[16]।

गोस्वामी जी अपनी रचना दोहावली में कहते है कि–

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गए बस सून हैं अंक रहे दस गून।।

भगवान का नाम परम मंगलमय होता है और जीवन के समग्र साधन शून्य होते है। जिस प्रकार अंक न रहे तो शून्य का कोई महत्व नहीं होता ठीक इसी प्रकार जीवन में चाहे जितना कर्म करो, पूजा करो, हवन करो, दान दो, विद्या पढ़ो पर राम नाम रूप अंक को कभी भी विस्मरण नही करना चाहिए नही तो सब शून्य हो जायेगा। ज्ञान हो, कर्म हो पर भक्ति का अनुगामी होना चाहिए। ज्ञान का परम उपयोग भगवत्स्वरूप का परिज्ञान और कर्म का प्रयोजन भगवदाराधन होता है।

स्वामी रामानन्द जी के प्रशिष्य गोस्वामी जी ने मानस में कहा है कि–

जानें बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।
बिनु गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु
गावहिं वेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।[17]

मुण्डक श्रुति कहती है कि–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्याम्।।[18]

अर्थात वह परमात्मा प्रवचन, मेधा तथा बहुत श्रवण करने से प्राप्त होने योग्य नही है किन्तु यह परमात्मा जिस उपासक पुरुष को स्वीकार करता है, उसी को प्राप्त होने योग्य होता है। उसी के निज स्वरूप को प्रकाशित करता हैं।

भक्ति से ही भगवान की प्राप्ति होती है यह निर्विवाद है।

रामानन्दी परम्परा के विद्वानों को स्वीकार्य है कि–

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा। पापं तापं तथा दैन्यं, हरति श्रीपति रतिः।।

जिस प्रकार गंगाजी पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दैन्य का हरण करता है उसी प्रकार श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम में होने वाली रति पाप, ताप और दैन्य को हरण करती है। भगवान की भक्ति ही परम कल्याणकारी और श्रेयसकर मार्ग होता है। भगवान के माहात्म्य का सुदृढ़ ज्ञान हो जाने पर जब उनसे सर्वाधिक स्नेह हो जाता है उसी को भक्ति कहते है। भक्ति से ही मुक्ति होती है। प्रायः मनुष्यों का स्नेह गृह, धन, पुत्र पत्नी एवं अपने पर हुआ करता है। ठीक उसी तरह का प्रेम जब भगवान में होता है तो वह भक्ति कहलाता भगवान् में सुदृढ़ प्रेमा भक्ति जीव के लिए कल्याणकारी तथा मुक्ति का हेतु होती है।

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि– 'न ह्यन्योऽस्ति शिवः पन्था विशतः संसृताविह। वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः'[19] भगवान वासुदेव की भक्ति को छोड़कर संसार में भटकने वाले जीवों के लिए दूसरा कोई सुखद मार्ग नहीं है। जैसे समस्त लोगों का जीवन जल है उसी प्रकार समस्त सिद्धियों का जीवन भगवान की भक्ति है।

वेद व्यास जी ने श्रीमद्भागवतम् में कहा है कि– 'यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वै र्गुणै; तत्र समासते सुराः'[20] जिस पुरुष की भगवान में निश्काम भक्ति है उसके हृदय में समस्त देवता धर्मज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणों के सहित सदा निवास करते है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान अनुग्रह करते है कि– 'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।'[21] मैं जो हूँ जैसा हूँ और जितना हूँ इसको भक्ति के द्वारा मेरा भक्त तत्वतः जान लेता है तत्पश्चात मुझको तत्वतः जानकर तत्काल ही मेरे में प्रवेश कर जाता है।

श्रीमद्भागवतम् में उद्धृत है– 'धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसाऽन्विता। मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि।'[22] धर्म, सत्य, दया, विद्या एवं तपस्या से युक्त होते हुये भी जो मेरी भक्ति से विहीन है, वह सद्गति को प्राप्त नहीं होता।

सामान्यतः भक्ति को दो प्रकार से विभाजित किया जाता है– 1. सगुण भक्ति, 2. निर्गुण भक्ति। जिसमें स्वार्थ परक गुणों का संसर्ग होता है अर्थात् यश की कामना (लोकैशणा), वित्तैशणा (धन की कामना), पुत्रैशणा (पुत्रादि की कामना), सुखैशणा (सुख की कामना) इन कामनाओं के साथ स्वार्थ लाभ के लिये ही जीव भक्ति या भजन करता है, उसे सगुणा भक्ति कहते है।

जहाँ लौकिक या अलौकिक सुखों की कोई कामना नहीं रहती, केवल भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये उनसे प्रेम करने के लिये सुदृढ़ स्नेह रूपा भक्ति हो वह निर्गुणा भक्ति होती है। उसमें निश्कामता की प्रधानता होती है भगवान का अनुरंजन ही मुख्य लक्ष्य होता है। यही परम सुदृढ़ स्नेहरूपा भक्ति प्रेमा भक्ति कहलाती है। वह प्रेमा भक्ति कहीं निश्काम एवं वात्सल्य रूपा होती है जैसे श्री यशोदा जी की भक्ति। कहीं प्रिया या दासी के रूप में ईश्वर की आराधना होती है उसे प्रेमात्मिका भक्ति कहते है जैसे गोपिका मण्डल में भक्ति। इस प्रकार से अधिकारी भेद से भक्ति के बहुत से भेद हो जाते है। गुण धर्म के मिश्रण से भक्ति के भेद बढ़ जाते है। जैसे तामसी भक्ति, राजसी भक्ति, सात्विकी भक्ति। अपने शान्ति लाभ तथा अनर्थोपशमन हेतु नेत्र, वाणी, हाथ और पैरों का निरोध सर्वश्रेष्ठ होता है जो एक दूसरे के देखने से प्रकट होती है और अपनी कामना के अनुकूल जब वह स्वीकृत होती है तब वह मुनीन्द्रों के द्वारा प्रावाहिकी भक्ति कहलाती है। शास्त्रोक्त विधि से समयानुसार लोक प्रसिद्ध राज उपचार आदि विधि से एवं विविध उत्सवों के द्वारा नव प्रकार की भक्ति मर्यादिकी भक्ति कहलाती है जो भुक्ति एवं मुक्ति

दोनों प्रदान करती है। साधन साध्य क्रियाकलाप अनुग्रह सेव्य, सेवक और सेवा सब कुछ भगवान् ही है मैं भी उनसे अन्य नहीं हूँ यही पुश्टि भक्ति कहलाती है, भगवान जो जो कार्य कराना चाहते है अपने सेवक का वैसी ही प्रेरणा देते हैं, सर्वस्व को उद्भावित करते हैं और अपनी सेवा को सम्पादित करते हैं क्योंकि वह जीवसाध्य है ही नहीं वह तो केवल कृपा साध्य है। जैसे वृत्तासुर पुश्टिभक्त हुए और गोपिका ये सब भगवत्कृपाभाजन हुए है।

सगुण भक्ति गुणों के भेद से तीन प्रकार की बतायी गयी है– तामसी, राजसी, सात्विकी। श्रीमद्भगवद्गीता में इनके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए भगवान अनुग्रह करते है कि–

'अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भमात्सर्यमेव वा। संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः।'

'विषयानभिसन्धाय यदा ऐश्वर्यमव वा। अर्चादावर्ययेद् यो मां पृथग्भावः स राजसः।।'

'कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्। यजेद् यष्टव्य–मिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः।।'

जो हिंसा का अभिसन्धान करके अथवा दम्भ और मात्सर्य का अनुसन्धान करके भेद बुद्धि से मेरे लिए जो कार्यारम्भ करता है वह तामस भक्त होता है। जो विषयों का चिन्तन करके यश, ऐश्वर्य की कामना से अपने को मुझसे पृथक् समझकर मूर्ति आदि में जो हमारी पूजा करता है वह राज भक्त होता है। कर्म से मुक्ति की कामना करके और भगवान के प्रति समर्पण की भावना से अपने को मुझसे पृथक् समझकर भजन के योग्य का यजन करता है वह सात्विक भक्त होता है।

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन। आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्शभ।।'[23]

हे अर्जुन! चार प्रकार के सुकृति लोग मेरा भजन करते है– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। आर्त भक्त सगुण तमोगुणी होता है। धनार्थी भक्त सगुण रजोगुणी होता है। जिज्ञासु भक्त सगुण सतोगुणी होता है। ज्ञानी भक्त निर्गुण भक्ति वाला होता है और सगुण भक्तों में श्रेश्ठ होता है। सगुण भक्ति से ही भक्ति क्षेत्र का विकास होता है अतः सगुणा भक्ति नितान्त उपयोगी एवं परमावश्यक होती है।

श्रीमद्भागवतम् में नवधा भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि–

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।'[24]

भक्ति के साधन या स्वरूप नौ प्रकार के होते है– भगवान विष्णु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन इन साधनों के अभाव में भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि यह मर्यादा स्वरूपा है। इन साधनो में किसी एक की सहायता से भी सुगमतापूर्वक भगवत्कृपा की उपलब्धि सिद्ध हो सकती है।

सांसारिक प्रयत्नों से मुक्त, मायाकृत सत, रज, तम गुणों से रहित, केवल निर्गुण ब्रह्म में लीन ही निर्गुण भक्ति का अधिकारी हुआ करता है। यह भक्ति विशय वासना से रहित एवं सुख की भावना से रहित, निमित्त रहित केवल मुक्ति देने वाली होती है, जो मुमुक्षओं द्वारा सेवित होती है। इसमें अन्य कोई निमित्त या प्रयोजन नहीं होता। इस भक्ति के फल एकमात्र भगवान होते है, वही उपास्य होते है एवं वही सब कुछ होते है।

श्रीमद्भागवतम् में भगवान अनुग्रह करते है कि–

'मय्यर्पितात्मनः सम्यङ् निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम्।।'[25]

जो सभी ओर से निरपेक्ष होगा, किसी भी कर्म या फल की आवश्यकता नही समझता और अपने अन्तःकरण को सब प्रकार से मुझे ही समर्पित कर चुका है, परमानन्द स्वरूप मैं उसकी आत्मा के रूप में स्फुरित होने लगता हूँ। उससे जो सुख होता है वो विशयी लोगों को भी नहीं हो सकता।

अतः जीव मात्र के स्वयं कल्याण के लिये भगवद्भक्ति के अतिरिक्त इस संसार में अन्य कोई सुलभ सुगम साधन नहीं है। भक्ति किसी भी प्रकार की हो, सगुण या निर्गुण अपनी–अपनी प्रवृत्ति प्रकृति के अनुसार यदि उसकी

उपासना की जाय तो उससे भगवत् प्राप्ति हो जाती है। वह परम पुरुशार्थ रूप है। सभी के लिये भक्ति का द्वारा खुला हुआ है। भक्ति का पथ निश्कंटक होता है। मुक्ति या मुक्ति चाहने वालों के लिये सुगम एवं सुलभ कर्म भक्ति ही है। 'सर्वं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्' सब छोड़कर भगवद् भजन करना चाहिये।

भक्तिरूप हेतु से अर्चिरादि मार्ग द्वारा प्राप्त होने के योग्य अप्राकृतलोक को नित्यधाम कहते है। स्वामी रामानन्द के शिश्य श्री अनन्तानन्दाचार्य ने स्वरचित श्रुतिसिद्धान्तभास्कर में लिखा है–

'शुद्धसत्वाश्रयो द्रव्यं शुद्धसत्वं प्रकीर्त्तितम्।
प्रमाणं तु श्रुतिस्तत्र 'त्रिपादस्यामृतं दिवि'।।68।।
नित्यं तद्जडं प्रोक्तं नित्यधामादिसंज्ञकम्।
भक्त्वा तद् रामसम्प्रीत्या प्राप्यते चार्चिरादिना।।69।।'

स्वामी रामानन्द के शिश्य श्रीयोगानन्दाचार्य जी ने योगांगभास्कर में लिखा है–

'गच्छति दुःखयोगो न श्रीरामयोगमन्तरा।
रामस्य ब्रह्मणो योगो भक्तियोगेन लभ्यते।।2।।'

श्री कीलद्वारपीठसंस्थापक श्री कीलदेवाचार्य ने साधनभक्तिनिर्णय में कहा है कि–

'रामस्य तैलधारावद् विज्छेदरहिता स्मृतिः।
पुरुषार्थात्मिका भक्तिस्तत्साधिका मता नव।।2।।'

श्रीहठीनारायणद्वारपीठ संस्थापक श्री हठीनारायणाचार्य ने वैराग्यपचीसी में कहा है कि–

'रामब्रह्म की प्राप्ति ही बुध जन जानत मुक्ति।
श्राम–प्राप्ति–साधन 'हठी' एक राम की भक्ति।।

श्रीजंगीद्वारपीठ संस्थापक श्री अर्जुनाचार्य (जंगीदेवाचार्य) जी ने शिक्षापचीसी में कहा है–

'भक्ति बिना नहिं कोउ महँ 'जंगी' मुक्तिदान को शक्ति।
अर्चिरादिपथ से ही पावै भक्तिमान् जन मुक्ति।।19।।'

श्रीश्रियानन्दाचार्य जी ने भक्ति तत्व का वर्णन करते हुए कहा है–

अप्राकृतं नित्यधाम प्राप्यं भक्त्याऽर्चिरादिना।
जायते तैलधारावद् विवेकाद्यैश्च सप्तभिः।।[26]

विवेक विमोक आदि सात साधनों से उत्पन्न तैलधारा के सदृश भगवान् श्रीराम जी की अविच्छिन्न (विच्छेदरहित) स्मृति को भक्ति कहते है।

श्रीपुरुषोतमाचार्य जी बोधायन द्वारा विशाल श्री बोधायनवृत्ति में कथित भक्ति के विवेकविमोकादि सप्त साधनों को महर्षि श्रीबोधायन जी के शिश्य श्रीगंगाधराचार्य जी ने साधनदीपिका में वर्णन करते हुए कहा है–

रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते।
शक्तिर्ध्रुवा स्मृतिः सा च विवेकादिसप्तकात्।।

जो अन्न जाति, आश्रय और निमित्त इन दोशों से दुश्ट न हो उससे देह की संशुद्धि को 'विवेक' नामवाला भक्ति का प्रथम साधन है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक पाँच विशयों का अनादर ही 'विमोक' नामक दूसरा साधन है। श्रीराम जी के दिव्य विग्रह का बारंबार सम्यक् चिन्तन ही योगध्यानोपकारक 'अभ्यास' नामक तीसरा भक्ति का साधन है। शक्ति के अनुसार पाँच महायज्ञों और अन्य आश्रमों के धर्मों के करने को 'क्रिया' नामक चौथा भक्ति का साधन है। अहिंसा (मन, वचन और काया से किसी को पीड़ा न देना) परायी वस्तु के लेने को संकल्प

नहीं करना, सत्य बोलना, सरलता, दया तथा दान इनको 'कल्याण' नामक भक्ति का पाँचवा साधन है। शोक और भय से होने वाली चित्त की दीनता को अवसाद् कहते हैं। अवसाद के अभाव को अर्थात चित्त की दीनता के अभाव को 'अनवसाद' नामक भक्ति का छठा साधन है। अतिसन्तोश को उद्धर्श कहते हैं। उद्धर्श के अभाव को 'अनुद्धर्श' नामक भक्ति का सातवाँ साधन कहते है। इस प्रकार भक्ति के सप्त साधन– विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्श है।[27]

प्रपत्ति (शरणागति) भक्ति की सिद्धावस्था है। अपने उपास्य में पूरी तरह सर्वस्व समर्पण करते हुये अपने आपको उन उपास्य देव के आधीन कर देना ही प्रपत्ति है। सभी प्रकार की एषणाओं (इच्छाओं) का भगवान में समर्पण कर देना ही प्रपत्ति है। यही भक्तों का चरम साधन है। प्रपत्ति में श्रवणादि नौ भक्ति प्रकारों का विशेष विधान नही होता है और ना ही नियमोपनियमों के पालन एवं साधन का झंझट ही होता है। यहाँ केवल प्रभु कृ पा ही सब कुछ होती है। वही ईश्वर साध्य, साधन और फल है।

बाल्मीकीय रामायण में वर्णन आता है–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।

हे प्रभु! मैं आपका हूँ इस प्रकार मात्र एक बार कहकर शरण में आने वाले व्यक्ति को भगवान सभी प्राणियों से निर्भय कर देते हैं– यह उनका व्रत है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान अनुग्रह करते है कि–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[28]

हे अर्जुन! तू सभी धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

शरणागति की छः विधाये होती है– 'आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षश्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये शड्विधा शरणागतिः।'[29] अनुकूल कर्मो का संकल्प, प्रतिकूल कर्मों का त्याग, भगवान हमारी रक्षा करेंगे यह विश्वास, भगवान हमारे रक्षक हैं यह वरण, आत्मसमर्पण और दैन्य।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने स्वयं कहा है–

दैवी ह्येशा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।[30]

हे अर्जुन! मेरी गुणमयी माया बड़ी ही दुरत्यय है जो मेरी शरण में आ जाता है वे ही इस माया को पार कर पाता है। अतः अज्ञानी जीवात्मा माया के पराधीन होकर कुछ भी करने में समर्थ नही हो पाता। एकमात्र प्रभु का आश्रय ही माया का अपहारक और जीव का उद्धारक है। यही कारण है कि जीवों के लिये एकमात्र भगवत् शरणागति ही कल्याणकारिणी होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भक्ति की सहायता से कोई भी व्यक्ति बिना किसी भेद भाव के मोक्ष मार्ग का पथिक बन सकता है तथा अपनी श्रद्धा, विश्वाश, समर्पण और प्रपत्ति से संसार के त्रितापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से मुक्त हो सकता है। स्वामी रामानन्द जी ने संसारियों के लिऐ श्री राम जी के आदर्श चरित्र को प्रतिदर्श बनाकर भक्ति का सहज, सरल, सुगम मार्ग का प्रशस्त किया। मध्यकालीन सामाजिक परिस्थितियों के समान वर्तमान में भी मनुष्य विभिन्न प्रकार के पंथ संप्रदायों के बीच किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में स्वयं को पाता है। क्लेश, तनाव, अवसाद, भय से व्यक्ति भक्ति मार्ग पर चलकर सरलता से मुक्त हो सकता है। परमपिता परमेश्वर श्री राम जी के प्रति आस्तिकता ही मनुश्य को विपरीत परिस्थितियों में संबल प्रदान करती है तथा उसमें जीवन के प्रति एक नवीन

ऊर्जा का संचार करती है। अतः दुःख, क्लेश व विकारों से मुक्त होने के लिए स्वामी रामानन्द जी की भक्ति विशयक अवधारणा का अवबोध करके उसे जीवन में धारण करना वर्तमान में भी प्रासंगिक सिद्ध होता है।

संदर्भ सूची

1. अथर्व वेद 2/2/1
2. अथर्व वेद 2/16/5
3. अथर्व वेद 6/79/3
4. गीता प्रेस, नारद–भक्ति–सूत्र, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2016 ई०, पृ०सं० 18
5. वही पृ०सं० 19
6. सामवेद 26
7. ईशावास्य उपनिशद 18
8. स्वामी रामानन्द, श्रीवैशणवमताब्जभास्करः, श्रीअग्रपीठाधीश्वर स्वामी राघवाचार्य, जानकीनाथ बड़ा मंदिर ट्रस्ट, रैवासधाम (सीकर) राजस्थान, 2001 ई०, पृ०सं० 15
9. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 1/2/10
10. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 1/1/19
11. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 2/8/5
12. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 1/1/2
13. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 11/53
14. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 11/54
15. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 9/27
16. गीता प्रेस, नारद–भक्ति–सूत्र, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2016 ई०, पृ०सं० 5
17. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस 7/89क
18. मुण्डक उपनिशद 3/2/3
19. स्कन्द पुराण 2/2/33
20. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 5/18/32
21. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 18/55
22. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 11/14/22
23. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 7/16
24. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 7/5/23
25. वेद व्यास, श्रीमद्भागवतम् 11/14/12
26. श्रीश्रियानन्दाचार्य, श्रौतप्रमेयचन्द्रिका, श्रीवैशणवाचार्य, वैशणवाचार्यनिवास कालूपुरदरवाजा अन्दर, अहमदाबाद–1, 1971 ई०, पृ०सं० 61
27. श्रीवैशणवाचार्य, अर्थपंचकम्, पण्डितसम्राट स्वामी श्रीवैशणवाचार्य, त्रणदेवड़ी–श्रीराम मन्दिर, शारंगपुर दरवाजा, बाहर–अहमदाबाद, 1963 ई०, पृ०सं० 57–59
28. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 18/66
29. अहिर्बुध्न्य संहिता, अ० 37/28
30. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता 7/14

❑❑

मुक्ति बोध : एक साहित्यिक की डायरी में यथार्थ का निरूपण

डॉ. सविता मसीह
एसोसिएट प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी

सारांश गजानन माधव मुक्तिबोध का व्यक्तित्व एवं महान चितंक के रूप में उनकी रचना सामान्य् जन की वेदना, पीड़ा, घुटन और आधुनिक साहित्यक की विसंगतियों पर गहरा व्यंग्य करती है। उनकी जनसंवेदना आत्म संघर्ष की अभिव्यक्ति है। मुक्तिबोध की सृजन प्रकिया मार्क्सवाद का आधार लेकर चली है, वही उनका सौन्दर्यशास्त्र है। उनके लेखक व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में सर्वाधिक योगदान उनकी चर्चित कृति 'एक साहित्यिक की डायरी ने किया है–जैसा कि इसकी भूमिका में श्रीकांत वर्मा ने लिखा है ''ये सारी डायरियॉ 57, 58 और 60 में वसुधा (जबलपुर) में प्रकाशित हुई थी।'' मुक्तिबोध की डायरी में अभिव्यक्ता यथार्थ का निरूपण लेखकीय काव्य, तथ्य और सत्य की स्थापना संबंधी विचार का समावेश है।

एक प्रबुद्ध चिंतक के रूप में उनकी समीक्षा दृष्टि का धरातल पृष्ट वैचारिकता लिए हुए है। उनका सौन्दर्यशास्त्र सामाजिक चेतना, मानवीय क्रिया व्यापार और वस्तुजगत से समृद्ध है। संवेदना ज्ञान से और ज्ञान संवेदना से जुड़ा है। यही कारण है कि वे जनता के पक्षधर और संघर्ष के हिस्सेदार बने। ''जनता जहॉ कहीं भी पीड़ित है। मुक्तिबोध की सहचर है और मुक्तिबोध अपना पहला जन्म अपने आत्म परक सृजन में जीकर अपना पुनर्जन्म जनकाव्य' में जीने की प्रतिश्रुत है।''

व्यंग्य् शैली यथार्थ प्रेषण का सबल माध्यमम है, जो स्वयं में आंतरिक सुनियोजित धारण करके चलती है। वसुधा में 'एक साहित्यि की डायरी एक स्तम्भ था, जिसमें मुक्तिबोध ने समय–समय पर अपने स्वतंत्र विचारों को प्रस्तुत किया. ''यह डायरी शब्द' भ्रम पैदा करता है और यह गलतफहमी भी हो सकती है कि मुक्तिबोध की डायरियॉ होगी. लेकिन वास्तविकता यह है कि 'एक साहित्यि की डायरी केवल उस स्तंभ का नाम था। जिसके अन्तर्गत समय–समय पर मुक्तिबोध को अनेक प्रश्नों पर विचार करने की छूट न केवल संपादक की और से बल्कि स्वयं अपनी ओर से भी होती थी।'

मुक्तिबोध की डायरी के विविध पक्ष मूलरूप से मानव अस्तित्व के प्रश्न को जीवंत करते है इन प्रश्नों में व्यक्ति निज उदासीनता जुड़ी है वे एक दार्शनिक चिंतक की भॉति 'स्वयं' के प्रति जागरूक होने की एक अस्तित्ववादी विचारधारा को उद्भूत करते हैं यह उनका अन्तर्ज्ञान है जो 'स्वव' की स्वतंत्रता और सजगता के प्रति प्रकट होता है।

'एक साहित्य की डायरी' किसी साहित्य' विधा का स्वतरूप नहीं है वरन वह मुक्तिबोध के चिंतन और मनोविश्लेषण का विविध पक्षमय प्रकटीकरण है जहॉ प्रश्न भी है और समाधान भी है, पीड़ा भी है और पीड़ाकारक पक्षों का उद्घाटन भी यहॉ उनका व्यक्ति एक साहित्यकार आलोचक, कवि, दार्शनिक, मनोविश्लेषक और मानव विज्ञानी के साथ–साथ अस्तित्ववादी की यथार्थ दृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है मनुष्य के व्यक्तित्व का गहरा रहस्य उन्होंने समझा। जहॉ मनुष्य 'स्वी' का यथार्थ विस्मृति कर जाता है, उसका व्यक्तित्व स्वयं से पृथक होकर एक विच्छिन्न अवस्था को प्राप्त हो जाता है, उसकी आत्मतगत स्थिति बाह्य जीवन की स्थिति से अलगाव निर्मित कर लेती है मनुष्यों का स्व से पार्थक्यन उसके अस्तित्व से निर्वासन है, जो उसकी मनःस्थिति को विकृत चेतना अवस्था

तक पहुँचा देता है, इससे मुक्त होने के प्रयासों में प्राप्त असफलता से वह जीवन की तिक्तता और निरर्थकता को अनुभव करता है वह अस्तित्व की खोज में एक रहस्य बनाता जाता है।

मुक्तिबोध की मानवीय क्रियात्मकता इसी आत्मएपीड़न और विवेकशून्य की स्थिति से उत्पन्न है, जहाँ उनकी अभिव्यक्ति कला दर्शन की भूमि से जीवंत होकर मानव का यथार्थ बोध बन गयी।

वे रूमानी आवेग और कल्पमनाशीलता से युक्तो एक यर्थाथवादी कवि थे, इसलिए साधारण जीवन का यथार्थ्द्ध चित्रण ही कविता में उनका मुख्य लक्षण था, कहा– असली चीज जीवन यथार्थ है, इस यथार्थ को वे सरल, और स्पष्ट, रूप से नही, बल्कि उसकी समग्र जटिलता में अनेक बार उसके परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले पहलुओं के साथ देखने और चिन्हित करने के पक्ष में थे। उनकी कविता में यथार्थ के पहलू एक–दूसरे से उलझे दिखाई देते हैं।

बदरंग यथार्थ, विद्रूप अर्थ आ,
छाती में जाग तू भी सही है।

वे यथार्थ के चित्रांकन के लिए यथार्थ रंगों की खोज की बात ही नही करते वे विभिन्न रंगों के मिश्रण से और नए रंग बनाने की बात भी कहते हैं इसे विविध रंगी यथार्थ के सृजन हेतु एक कलाकार की नहीं वैज्ञानिक की भॉति सोच धारण करने की आवश्यकता है। यथार्थ चित्रण में मात्र कलाकार की ही भूमिका नहीं होती बल्कि एक वैज्ञानिक की भॉति यथार्थ की परख की जाये।

वैज्ञानिक की तरह यथार्थ को समझा जाये, और कलाकार की तरह उसे चित्रित किया जाये। उनके इस यथार्थ प्रक्षेपण में उदात्त और अनुदात्त भाव रंगों का अनूठा संयोजन हुआ है।

मेरा मन,
अंधकार प्रतिरूप, प्रदान वह करता है ।
आकाश अवकाश – प्रभास व रेखाएं
रश्मियों को, रश्मि–चरित्र को, सत्य को।।

मुक्तिबोध की यह डायरी मानवीय चेतना और अंतरमंथन की यर्थाथवादी अभिव्यमक्ति है. जिसमें सृजन के विभिन्न पक्ष व्यक्ति के यथार्थ से प्रत्यक्षीकरण का जीवंत जीवनानुभव प्रस्तुत करते हैं, यह लेखक का निजत्व व्यक्त करते युगीन यथार्थ है।

कला के तीन–क्षण रचना प्रकिया का विश्लेषण सिद्धांत है ''कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैण्टैसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैण्टैंसी अपनी ऑखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैण्टैंसी के शब्दो बद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रकिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता''

तीसरा क्षण– मनुष्य् के व्यक्तित्व में छिपे रहस्यो को खोजने का प्रयास है जिसमें मानव मन की अंधेरी रहस्यमयी भाव स्थली का दर्शन करते है'" मुझे लगता है कि मन एक रहस्यमय लोक है, उसमें अंधेरा है सीढियाँ गीली है सबसे नीची सीढ़ी पानी में डूबी हुई है, वहाँ अथाह काला जल है, उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है, इस अथाह काले जल में कोई बैठा है, वह शायद मैं ही हूँ।''

मुक्ति बोध रचना की प्रकिया में अनुभव को मूल स्वीकार करते है यही अनुभव अंतर में आवेग मनोभूमि को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है।

''फैण्टेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से पृथक होकर अर्थात् उनसे तटस्थ होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी। एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी दूसरे अर्थ में नितांत निव्योक्तिक

होगी। इसी बीच फैण्टेसी कुछ ग्रहण करके वास्तविक पृथक स्वतंत्र बन बैठी।

''फैण्टेसी अनुभव की कन्या है और यह कन्या का अपना स्वतंत्र विकास समान व्यक्तित्व है वह अनुभव से प्रसूत है इसलिए वह उससे स्वतंत्र है''

सौन्दर्य प्रतीति इन्हीं कला के तीन क्षणों से होती है '' सौन्दर्य क्या है, अथवा सौन्दर्य प्रतीति क्या है, सौन्दर्यानुभव क्या है और वह किस प्रकार वास्तविक अनुभव से भिन्न है तो तुम्हें कला के इन तीन क्षणों के मनोविज्ञान का ही अध्ययन करना होगा'' इसमें सृजनशील कल्पना का संवेदय रूप ही प्रधान है।

''फैण्टेसी में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्म संवेदना है जब वह शब्दबद्ध होती है तो उसमें नये तत्व आ जाते है जिसमें अनुभव के बिंब भावनात्मक उदेश्य संवेदनात्मक दिशा और मर्म प्राण उद्देश्य बन जाता है यह मर्म एक उद्देश्य बन जाता है यह मर्म एक उद्देश्य पीड़ा दिशा है।

एक लंबी कविता का अंत :

कविता के सुदीर्घ रूप में विद्यमान उसकी अन्तर अभिव्यक्ति उसकी समस्या और उलझने लगती है ये जीवन के परस्पर गुंफित यथार्थ है जिन्हें कही भी छोड़कर कविता का रूप लघु नहीं किया जा सकता। लेखक की आस्थ अर्थ प्रेरित नहीं होनी चाहिए। ''अनास्था का जन्म आस्था से ही होता है अनास्था 'आस्था' की पुत्री है''

मुक्तिबोध भीड़ के प्रति व्यक्त कवि अभिव्यक्तियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति देते है।

''कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है कि एक स्थान में एकल असंगठित जनता भीड़ नहीं है क्योंकि वह संगठित है जहॉ संगठन है वहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य भी है, जहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य है वहाँ एक स्फीत और सक्रिय चेतना है।''

''जनता समूह है वह अज्ञ है, अंधकार ग्रस्त है वह जल्दी ही भीड़ बन जाता है उसका साथ मत दो तुम सचेत व्यक्तिशाली प्राण केन्द्र हो उसमें अपने आपको विलीन मत करो''

इस प्रतिक्रिया में जन के प्रति घृणा है और वह बुद्धिजीवियों को जनता से अलग करके रखने का एक उपाय है।

एक सच्चे लेखक की लेखकीय क्षमता उसकी अंतःशक्ति और सत्यता में होती है वह अपनी दुर्बलता से स्वयं परिचित होता है वह अपनी अभिव्यक्ति में कहाँ सफल और कहाँ असफल है वह जानता है यह उसका लेखन के प्रति सचेष्ट भाव है लेखक स्वयं एक आलोचक है।

''उसे अपनी अक्षमता और आत्मसीमा का साक्षात बोध होता रहता है ऐसा क्यों ? इसलिए कि वह अपनी अभिव्यक्ति की तुलना, जी में धड़कने वाले केवल वस्तु सत्य से ही नहीं करता, वरन अपने स्वयं के साक्षात्कार सामर्थ्य की तुलना उस वस्तु की विशालता से करता है।''

जिंदगी क्या है बस एक घुटन है जिसमें हर समय काल और युग में कोई न कोई कुंठा व्याप्ति रही है।

वे कुंठा को मनोविज्ञान से प्रसूत मानते हैं उसे फ्रायडवाद और मार्क्सवाद की संकर संतान कहते हैं वे स्वयं को एक सच्चे कलाकार को वक्र मार्गी संघर्षगामी व्यक्ति मानते हैं जो अपने अंदर संपूर्ण वस्तु सत्य धारण करके चलता है तभी तो वह डबरे का सूरज है जो सूरज का संपूर्ण् प्रतिबिंब धारण करके रखता है। वे वर्तमान की सत्यता का सबसे बड़ा शत्रु सत्य और उसकी दुर्बलता को मानते हैं।

लेखन की विवषता और उसमें प्रकटीकरण की छटपटाहट विचारों को अवरूद्ध करती है वे एक आलोचक की तटस्थ दृष्टि और लेखक के स्नेहिल सहज विश्वासपूर्ण श्रृद्धामयी जीवन की वास्तविक कला का प्रश्न लेकर एक भावना और एक सूक्ष्म दृष्टि की खोज करते हैं।

उनकी दृष्टि में आलोचक सदैव तटस्थ और निष्पक्ष नहीं होता।

''अंधी दृष्टि से अंधी आलोचना एक भंयकर चीज है''

आलोचना बुद्धि का क्षेत्र है और श्रद्धा हृदय का।

''किसी भी व्यक्ति पर एकात्म। श्रद्धा गलत है, चाहे वे अपने माता हो या पिता पहले वे मनुष्य है इस चरित्र को देखने के लिए आवश्यक निर्मल तटस्थ भाव हममें चाहिए''

मानव मन की स्थिति विचारों की प्रतिक्रियात्मकता है।

''मन की उग्र प्रतिक्रिया ही आजकल विचार कहलाती है, विचार को कसने की कोई कसौटी Objectivity नहीं है, हम आत्मो बाहय् किसी भी तत्व के प्रति विद्रोही हैं तो हमारी बुद्धि विश्वास चाहती है लेकिन विश्वास कर नहीं सकती''

उस अंतरात्मा का प्रत्येक भाव उचित व संगतपूर्ण हो यह भी आवश्यक नहीं।

जीवन में सफलता का महत्व प्रतिपादन उसके गौरवपूर्ण औचित्य पर निर्भर है मनुष्य को अपने जीवन के कुछ ऐसे सिद्धांत आदर्श धारण करना चाहिए जो उसे आत्म पतन से बचायें।

जीवन के अनुभव और संवेदना यथार्थ में सदैव वैसा ही प्रक्षेपण नहीं करते अनुभवों की संवेदना अपना पृथक कार्य करती है और अनुभवों का प्रक्षेपण उसके साथ नहीं चलता वे जिंदगी की निरर्थकता को भी रूपांकित करते हैं।

''जिंदगी की निरर्थकता के बारे में यही कहा – ''खत्म हमारी जिंदगी खत्म जिंदगी में दिलचस्पी खत्म दिलचस्पी में दिलचस्पी खत्म''

इस प्रकार इस डायरी में मुक्तिबोध ने अपनी प्रखर व पैनी दृष्टि से लेखक के जीवन का सूक्ष्म संश्लिष्ट प्रस्तुतीकरण किया है जिन्हें एक बौद्धिक व संवेदनशील रचनाकार के अति गहन भावों विचारों का मनन कह सकते है।

लेखक के जीवन मूल्य यथार्थ जीवन से संपृक्त होते हैं।

''जीवन मूल्य और कलात्मक साहित्य तक मूल्य में आवयविक संबंध है, यह न भूलना चाहिए इन्हें विकसित करने के लिए केवल साहस स्पष्ट दृष्टि, स्पष्ट लक्ष्य और स्पष्ट विचारधारा के लिए कोशिश आवश्यक है।

''यह डायरी साहित्यकार के युगबोध को संपूर्ण यथार्थ और विविध संदर्भो के साथ उद्‌धारित करती है मुक्तिबोध की जीवन मान्यता जीवन दृष्टि एक दीप स्तंभ बनकर भविष्य का मार्ग निर्दिष्ट करती है यह डायरी एक अदभुत साहित्यकार का विलक्षण व्यक्तित्व प्रस्तुत करती है।

विभिन्न विद्वान के मत :

डॉ. शिवकुमार मिश्र ''यह कृति अपनी विचार संपति में अपने कनटैन्ट में आज की जटिल जीवंत परिस्थितियों में सृजन करने वाले एक साहित्यिक के प्रखर यर्थाथबोध तथा अनुभूत जीवन वास्तव का बड़ा साफ सच्चा चित्र है, अपने रचनाकार, विचारक चिंतक की मूलभूत ईमानदारी तथा दायित्व चेतना की साहसपूर्ण खरी अभिव्यिक्ति है, युग के किन ज्वलंत संदर्भो में आज का सृजन सॉसे ले रहा हैं, सृजन के दौरान आज के ईमानदार रचनाकार की उन संदर्भो के प्रति क्या प्रतिक्रिया हो सकती है, इन संदर्भो के सामने आने वाले सृजन का रूप क्या है, आज के रचनाकार के युगबोध तथा दायित्व चेतना के कौन से स्तर हैं और वे कहाँ तक एक युग संतृप्त का परिचय देते है, आदि न जाने कितनी बातें मुक्तिबोध की प्रखर दृष्टि, गहन अनुभूति तथा पैनी लेखनी का विषय बनकर इस डायरी कही जाने वाली गद्य कृति में बडे बेलौस ढ़ग से सामने आयी है, मुक्तिबोध का साहित्यिक व्यक्तित्व एक साथ कितना संवेदनशील तथा कितना बौद्धिक था, साहित्यकार की आस्था उनमें कितनी अधिक जीवित तथा बलवती थी, इसका यह कृति अद्‌भुत प्रमाण है।

डॉ. नामवर सिंह ''एक साहित्यिक की डायरी एक व्यापक अर्थ में रचना प्रक्रिया का ग्राफ चित्र भले ही हो, वस्तुतः वह उत्तरशती की जटिल प्रक्रिया का जीवंत दस्तावेज है ..... जिसकी दिलचस्पी आज के परिवेश के बीच अपने को समझने में है, उनके लिए मुक्तिबोध ''एक साहित्यिक की डायरी'' निश्चय ही एक सार्थक वैचारिक मानचित्र का काम देगी क्योकि यह शुद्ध साहित्यिक' डायरी नहीं बल्कि डायरी है एक साहित्यिक की संपूर्ण साहित्यिकी''

श्रीकांत वर्मा के अनुसार ''एक साहित्यिक की डायरी' एक नये सौन्दर्यशास्त्र की तलाश है वे उस समय नये सौन्दर्यशास्त्र की तलाश कर रहे थे। यह हिंदी का अपना अनोखा ढ़ग है।''

शमशेर बहादुर के अनुसार ''मुक्तिबोध जी में गहरी ईमानदारी के साथ समस्या को सहज ढ़ग से प्रस्तुत करने की अदभुत क्षमता थी, वे अपने बचाव या किसी के भी बचाव की बात नहीं करते थे।

इस डायरी में लेखक की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि निश्चित रूप से सामान्य बौद्धिक धरातल से समन्वय नहीं बना सकी। उसे समझने और आत्मसात करने में एक असफलता का आभास आरम्भ में होता है। यह जीवन के अप्रिय प्रसंगों और भयावह अनुभवों का प्रतिफलन है कि वह सब उनके लेखन में दुखद भाव लेकर व्यक्त हुआ। यह उनकी जीवंतता का अदभुत प्रमाण है, जहाँ वे मन से टूटे नहीं और लेखन से परास्त नहीं हुए।

एक निर्वासित व्यक्तित्व के रूप में उनका अस्तित्ववादी दर्शन उनके जीवन और अति विलक्षण बौद्धिक धरातल पर उदभूत संवेगों का संचार करता रहता है। वे अंधेरे गहन तल में निज आत्मावलोकन कर विश्लेषण की मानसिक प्रक्रिया से संघर्ष करते है, वे यथार्थ और मिथ्या जीवन में रेखांकन करने का प्रयास करते है। मुक्तिबोध की व्यक्तिगत ईमानदारी उन्हें उनके निज संवेग सूत्रों से बंधनकारी बनाकर रखती है वे इसी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करने ईमानदारीपूर्ण प्रयास करते हैं। अपने निरर्थक जीवन अंशों के साथ उन्होंने जीवन की वास्तविक भूमि को प्रत्यक्ष किया है जहॉ सारी मान्यता और नियम क्रमशः टूट जाते है यहॉ कहीं न कहीं विखण्डन की पीड़ा का जन्म होता है वे मानव मन से जुड़कर उसमें अस्तित्व की बाह्य सतही स्थिति से पृथक अनंत गहराई में उसके यथार्थ की खोज करते दिखाई देते हैं। वे मानव की भौतिक स्थिति के प्रति अति सजग हैं पर मनुष्य अपनी मौलिकता से पृथक नैतिकता के पाप–पुण्य में भ्रमित रहता है। यही नैतिकता का अस्थिर भाव उसे दुर्बल बनाकर उसे विषाद और दुख से जोड़ता है, यह विषाद जीवन की सार्वभौम सत्ताक बन सारे सुख आनंद का तिरोधाव कर देता है।

संदर्भ

1. मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी – मुक्तिबोध।
2. मुक्तिबोध की आत्मकथा – विष्णुदत्ता शर्मा।
3. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना – नंदकिशोर नवल.
4. नये कवि एक अध्ययन – डॉ. संतोष तिवारी।
5. प्रगतिवादी काव्य साहित्य – कृष्णनलाल हंस।
6. मुक्तिबोध का रचना संसार – डॉ. गंगा प्रसाद विमल।

❑❑

ममता कालिया के उपन्यासों में वर्ग चित्रण
(विशेष सन्दर्भ–मध्यम वर्ग)

डॉ0 नीतू सिंह
प्रवक्ता–हिन्दी
कुँ0 महेश सिंह जगरूपसिंह स्मारक महाविद्यालय, वत्तूखेड़ा अजगैन, उन्नाव, उ.प्र.

भारत में वर्ग का विभाजन तीन रुपों में किया गया है उच्चवर्ग (पूँजीपति), मध्यम वर्ग सरकारी कर्मचारी, क्लर्क, शिक्षक, वकील आदि, निम्न वर्ग मजदूर, श्रमिक, फेरी वाला, छोटा कृषक या भूमिहीन कृषक आदि। इन तीनो वर्गो मे दो पाटों के बीच पिसता हुआ स्वम् को बचाता हुआ मध्यम वर्ग है जो वर्तमान को नही भविष्य को बचाने के लिए जी रहा है। ममता कालिया का वर्ग चित्रण–मध्यम वर्ग के रूप मे निम्नवत है –

ममता कालिया के उपन्यासों में मध्यवर्ग–स्त्री–पुरूष – वर्ग का आधार जाति कदापि नही है। वर्ग का आध ाार तो धन है । सबसे धनी समस्त सुख सुविधाओं से सम्पन्न उच्च वर्ग है उसमें कार्यरत मध्यम वर्ग है सबसे कम निम्नवर्ग है। उन सभी वर्गों में सबसे अधिक देखा जाए तो संघर्षमय स्थिति मध्यवर्ग की है । सामाजिक प्रतिष्ठा, प्रतियोगिता, दैनिक आवश्यकता के साथ भविष्य के लिए निधि संचय करने में वह वर्तमान दाँव पर लगाये हैं।

मैकाइवर और पेज – एक सामाजिक वर्ग सामाजिक स्थिति के आधार पर अन्य लोगों से पृथक किया गया समुदाय का भाग है।

आगवर्न और निमकाफ – समाजिक वर्ग उन व्यक्तियो के समुच्च को कहते हैं ,जिनकी किसी समाज में एक सदृश्य सामाजिक स्थिति हो।

वास्तव में वर्ग की अवधारणा का आधार आर्थिक है। यह खुला वर्ग है । किसी एक वर्ग से दूसरे वर्ग में प्रवेश के लिए धन महत्व रखता है। जैसे जैसे आर्थिक स्तर उँचा होता है व्यक्ति उँचे या आगे के वर्ग मे प्रवेश कर जाता है।

ममता कालिया ने अपने उपन्यासों कहानियों के लेखन का विषय मध्यवर्ग को विशेषरूप से चुना है जिसका विवेचन निम्नवत है।

मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन की विसंगतियाँ – स्त्री पुरुष – मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन की विसंगतियाँ को सच्चाई के साथ दिखाता है– बेघर, उपन्यास । अरविन्द जैन ने ममता कालिया के बेघर उपन्यास के संदर्भ में लिखा है 'ममता कालिया का उपन्यास वेघर (1971) अपने रजत जयन्ती वर्ष (1986) तक निरन्तर प्रासंगिक और चर्चा का विषय रहा है 1971 के बाद राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रिय स्तर पर नारी मुक्ति आन्दोलन, यौन क्रान्ति, गर्भपात के कानूनी अधिकार, शिक्षा, सामाजिक मूल्यों में भारी बदलाव स्त्री चेतना का विकास मीडिया में स्त्रियों की हिस्सेदारी और हस्तक्षेप, आर्थिक आत्मनिर्भरता, टूटते बनते नये नैतिक मापण्ड और चौतरफा दबाव के कारण महा नगरों के उच्च मध्यम और नव धनाद्य वर्ग में कहीं कुछ–कुछ बदलाव सा लगता है। लेकिन अभी अधिकांश मध्य वर्गीय परिवारों की मानसिक बनावट मध्ययुगीन परम्परा और संस्कारों की यथास्थित बनाये हुए हैं।

परमजीत जब दिल्ली में था उसका जीवन बहुत ही सामान्य था लेकिन जैसे ही वह मुम्बई आया उसका जीवन बदलने लगा। उसके जीवन मे संजीवनी (नायिका) का प्रवेश होता है संजीवनी मध्यम वर्गीय परिवार की आधुनिक युवती है जो अपने पहले प्रेम विपिन द्वारा छली जा चुकी है। लेकिन वह परमजीत के प्रति पूर्ण समर्पित

है। परमजीत भी स्वयं को आधुनिक ही बताता है। एक दिन संजीवनी उसे सच्चाई बताती है तो वह उससे कटने लगता है संजीवनी परमजीत के व्यवहार को देखकर, भावी विवाह परिवार के स्वप्न को तिलाजंलि दे देती है, उधर परमजीत माँ–बाप के द्वारा तय किये हुए रिश्ते को स्वीकार कर रमा से विवाह कर लेता है रमा अल्पशिक्षित, फूहड़ लड़की थी जिसने अपना दाम्पत्य जीवन ही अस्त व्यस्त कर लिया। अन्ततः त्रस्त बीमार परमजीत की मौत हो जाती है।

परमजीत के चरित्र के माध्यम से ममता कालिया ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो मध्य वर्गीय दकियानूसी विचारधारा का प्रतीक है। एक पत्नी के नोट्स उपन्यास मे नायक अपनी पत्नी की काव्य प्रतिभा को सहन नही कर पाता तथा उसका अपमान भी कर बैठता है। प्रेम कहानी उपन्यास मे जया अपने डाक्टर पति से जब अपने लिए घर मे समय नही पाता तब बह कहती है– काश मैं तुम्हारी मरीज होती, तो दिन मे कम से कम दो बार तुम मेरा हाल तो पूछते मेरी चिन्ता तो करते । मध्यम वर्गीय पुरूष पैसा कमाने में इस तरह व्यस्त रहते हैं कि वह भूल जाते हैं कि उनका अपना एक परिवार भी है, पत्नी भी है । जो अपना और उसका सानिध्य चाहती है।

1– सामाजिक प्रतिष्ठा–स्त्री पुरुष – ममता कालिया के कई उपन्यासों कहानियों में इस समस्या का चित्रण किया गया है –नरक दर नरक उपन्यास में नायक जगन एक कॉलेज में प्रवक्ता पद पर कार्य करता है। टूटी सीढ़ियों वाले कृष्ण लॉज को वह हर नहीने नब्बे रुपये देता था उसकी तनख्वाह इतनी कम भी कि अच्छे प्लैट में रहना उसे सपना लगता था। ममता कालिया की कहानियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा के संदर्भ में पुरूष की क्षुद्र मानसिकता को भी दिखाती है । मनोविज्ञान कहानी का पुरूष पात्र पत्नी अर्थात नायक स्त्री पात्र अर्थात नायिका का आधुनिकरण तो करता है वह चाहता है जब उसकी मा आये तो पत्नी सारे कार्य छोड़कर रिसीव करने जाये उसे भी दूसरो की तरह व्रत उपवास करने चाहिए । पत्नी की कोई अन्य व्यक्ति प्रशंसा करे तो उसे पसंद नहीं । वह पत्नी से झूठ बुलवाता है कि वह घर पर नही है और स्वयं दोस्तों से मिलने घर चला जाता है इस कहानी का पति पत्नी पर रौब जताते हुए दिखाया गया है।

दर्पण कहानी का पात्र शादी के बाद अपनी पत्नी की नौकरी छुड़वा देता है–उसे स्त्रियों में बड़बोलापन, निर्भीकता और सक्रियता से बेहद चिढ़ थी । वह चाहता था कि घर की हर बात मे उसकी अनुमति अनिवार्य रुप से ली जाये। सामाजिक प्रतिष्ठा स्त्री पुरूष दोनो के सहयोग से श्रेष्ठ और उच्च बनती है। पुरूष का झूठा अहम् स्त्रियों को सदैव खलता है।

(1) मध्य वर्गीय स्त्री पुरूषो का अविवाहित जीवन एवं पारिवारिक यथार्थ – मध्यवर्गीय अविवाहित स्त्री पुरूष का एक बडा समूह परिवारिक दायित्व पूर्ति के कारण है। परिवार का बोझ उठाते उठाते वह स्वयं के विवाह के बारे मे सोच तक नही पाते । जिन्दगी सात घण्टे बाद की कहानी की नायिका ऐसी प्रौढ़ है जो दफ्तर के बाद बाकी समय मे क्या करे यह उसकी समझ में नही आता। मित्रो की मित्रता में वह उदासीन हो चुका है। आफिस के बाद का समय उसके लिए काटना मुश्किल हो जाता है।

स्त्रियों का जीवन पुरूषों की अपेक्षा अधिक संघर्षमय है उनमें एक द्वन्द्व है। उनका अविवाहित होना परिवारिक दायित्व की पूर्ति या धनाभाव के कारण है। अब जब वे कमा रही है तो बाकी का एकान्त समय उन्हें भारी लगता है।

पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों का अविवाहित होना दफ्तरों मे शक की निगाह से देखा जाता है जबकि कारण क्या है। कोई नही जानता, उन्हें सभी के प्रश्नों का उत्तर देना होता है। पुरुषों का कोई सुहाग चिन्ह न होने के कारण वे इस समस्या से मुक्त तो है।

2– मध्यवर्ग में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या–स्त्री पुरूष – लगभग नब्बे प्रतिशत अन्तर्जातीय या प्रेम विवाह

असफल क्यों होते हैं। इस समस्या को गौर से विस्तार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमी पहले तो एक दूसरे के प्रेम मे, स्वप्न लोक की दुनिया में खोये रहते हैं परन्तु विवाह के पश्चात उनका हकीकत से सामना होता है। विवाह उनके जिम्मेदारियों का निर्वाह होता है। मात्र पति पत्नी से ही रिश्ते पूर्ण नही हो पाते। उनके रिस्ते उस बंधन से जुड़ जाते हैं जिनके प्रति वैवाहिक जोड़े के कुछ दायित्व होते हैं।

बेघर का पुरुष पात्र (नायक) परमजीत संजीवनी स्त्री पात्र (नायिका) से अन्तर्जातीय प्रेम विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है । परन्तु मध्यमवर्गीय पुरूष की तुच्छ धारणा को ग्रहण किये दिए वह यह बरदाश्त नही कर पाता कि संजीवनी पहले विपिन नामक पुरूष को चाहती थी । दोनों बाद में अलग– अलग हो जाते हैं ।

ममता कालिया की कहानी जितना तुम्हारा हूँ । नायिका का पति जो विदेश से लौटा है प्रेम विवाह होने के कारण घर के लोगों ने जो उसे (नायिका) यातनाँ, दी हैं उन्हें वह याद करती है वह अपने पति से यह अपेक्षा रखती है कि वह उससे दुःख सुख पूछे। लेकिन उसका पति अब अति आधुनिक बन चुका था,वह उसकी ओर बिलकुल भी ध्यान नही देता । वह अन्य महिलाओं के बारे में चर्चा करता रहता । इस तरह अन्तर्जातीय विवाह के बाद मध्य वर्ग की स्त्रियों की क्या दुर्दशा होती है एवं पुरूषों की व्यस्तता, उनकी पूर्व प्रेयसी वर्तमान पत्नी के प्रति बदला हुआ व्यवहार, यह सोचने पर विवश कर देता है कि उनसे विवाह करके गलती हुई है।

3– मध्यवर्ग की आर्थिक विपन्नता समबन्धी समस्यायें (स्त्री पुरुष) – मध्यवर्ग की आर्थिकि विपन्नता सम्बन्धी समस्याओ का ममता कालिया ने अपने कथा साहित्य में विस्तार से वर्णन किया है । नरक पर नरक उपन्यास इसी समस्या पर आधारित है। शादी की साल गिरह पर जगन (नायक) काफी व्यस्त रहकर खाना बनाकर इन्तजार करती ऊषा (नायिका) आते ही उस पर बरस पड़ी। बाद मे उसे पता चला उसकी गलती नही थी तो ऊषा ने उससे क्षमा माँग ली दूसरी घटना देखिए–फैन्सी ड्रेस कॉम्पटिशन मे गये ऊषा जगन के बेटे बबलू का चमडे का सूट उतार नही पाती। थकी ऊषा सो जाती है। जगन बबलू को चमड़े का सूट पहने देख गुस्सा करने लगता। एक तो पहले ही बैंक किस्त, कर्मचारियों का वेतन बाजार का खर्चा इनसे वह तंग है। उस पर ऊषा का बात बात पर उससे झगड़ा करना मध्यवर्गीय जीवन की नरकीय स्थिति को दर्शाता है। व्यस्तता अधिक हो तो परिवार उपेक्षित हो जाता है। यदि कोई कार्य ही न करोगे तो खाओगे क्या? दोनों के बीच तालमेल बिठाना स्त्री पुरुष दोनों के लिए कठिन हो जाता है।

ममता कालिया ने अपने कथा साहित्य मे आर्थिक व्यवसाय से संघर्ष करते मध्यम वर्ग की पीड़ा का वर्णन किया है । महानगरीय व्यवस्था से जूझते व्यस्त आदमी के भय का चित्रण किया है– जैसे– देर से दफ्तर पहुँचने का भय, देर से घर वापस ,अच्छी आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर है जिसके लिए वे समय समझाये जा रहे हैं। कहीं कहीं तो यह स्थिति स्वयं को भूल जाने तक आ जाती है।

संदर्भ

1. बेघर (उपन्यास) ममता कालिया– पृष्ठ – 38, 40, 44, 46, 55, 58, 92
2. प्रेम कहानी (उपन्यास) ममता कालिया– पृष्ठ – 23, 28, 32, 34, 56, 60
3. नरक दर नरक (उपन्यास) ममता कालिया– पृष्ठ – 55, 62, 78, 89
4. दर्पण (कहानी) ममता कालिया– पृष्ठ – 35, 38, 40, 45
5. जिन्दगी सात घण्टे बाद की (कहानी)– पृष्ठ – 55, 56, 58
6. आधुनिक भारत में जाति–एस0एन0 श्री निवास– पृष्ठ – 32, 33
7. समाजवाद धर्म निर्पेक्षता और सामाजिक न्यास– सुरेन्द्र मोहन– पृष्ठ – 18, 19, 20
8. आधुनिक भारत–सुमित सरकार– पृष्ठ – 48, 49

❑❑

30

'आदिम राग सुहाग का' : उजियारे का पर्व

डॉ. सविता मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
आर.बी.डी. पी.जी. कालेज, बिजनौर

गीत नवगीत के निष्ठावान साधक कुमार रवीन्द्र की सद्य प्रकाशित कृति 'आदिम राग सुहाग का' में प्रेम और श्रृंगार के 126 गीत संग्रह हैं। कवि का संवेदनशील सर्जक हृदय बड़े ही जीवंत ओर रसवंत गीत रचता रहा है। सहज सरल अनुभूतियों का उद्वेलन उनके गीतों का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है।

उनके गीतो के मूल में आदिम संवेदना का उत्स है। साथ ही उनका मानना रहा है, ''हमारे भीतर अवस्थित दैवी भाव जो नाद–ब्रह्म के रूप में सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हैं, गीत के माध्यम से ही अपनी सहज अभिव्यक्ति पाता है।''

भारतीय संस्कृति में परिवार हमारे जीवन का महत्वपूर्ण स्तम्भ रहा है। कुमार रवीन्द्र की अनवरत रचनाधर्मिता भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को सदैव महत्व देती रही है। परिवर्तित हो रहे समय के साथ समाज में नये मूल्यों की स्थापना हुई, फलस्वरूप पारिवारिक संरचना व आदर्शो में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स भी परिवारों में बिखराव का कारण बन रही है। अपनी दुनिया में खोया मन पारिवारिक संबंधों की सतत उपेक्षा करता जा रहा है। वर्चुअल दुनिया से लगाव, नये से जुड़ना और पुरानों को छोड़ते चले जाने से भावनात्मक असंतुलन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। मूल्यों की संक्राति–बेला में कुमार रवीन्द्र ने अपने गीतों के माध्यम से उन मूल्यों की स्थापना के लिए अप्रितम प्रयास किया है जो संबंधो को बचाने के लिए आवश्यक हैं। सदियों के संस्कार छिन्न भिन्न हो रहे हैं। ऐसे में कवि अपने दायित्व के प्रति पूर्णतः सजग हो कर सांस्कृतिक चेतना के संरक्षण में प्रयासरत है। उनका मानना है कि गीत की रागात्मकता मनुष्य को रससिक्त करने की आखिरी कोशिश है। संग्रह के सभी गीत उन्होंने अपनी पत्नी सरला को समर्पित किए हैं। आत्मीय, स्नेहपूर्ण संबोधन की गरिमा ने गीतों में मर्यादा के जिस सौन्दर्य की स्थाना की है, वह वरेण्य है।

इन गीतों के बहाने से कवि ने वर्तमान विखंडित दाम्पत्य की जगह समर्पित और एकनिष्ठ दाम्पत्य–भाव की अभूतपूर्व प्रतिष्ठा की है।

इन नवगीतों में वासंती दिनों में प्रिया की फागुनी हंसी है। 'नेह–घाट पर जलजात हुए मन है'। मन के भीतर अनकही कथाओं के कहने का असीम उछाह है। 'दिन बसंत के' गीत में कुमार रवीन्द्र की रागात्मकता का वैभव चरमोत्कर्ष पर है–दिन बंसत के/और तुम्हारी हँसी फागुनी/दोनों ने है मंतर मारा... ... .../धूप वसंती सांसो की है/कथा कह रही/आओ, हम तुम मिल कर बाँचे/गाथा जो है रही अनकही (पृष्ठ 19)

कवि का कहना है इस संग्रह के गीत इस मिथ को तोड़ते हैं कि नवगीतों में रागात्मक संवाद की गुजांइश कम रह गयी है। दाम्पत्य जीवन के ऐसे उदात्त प्रेमसिक्त संवादों की सहजता अन्यत्र दुर्लभ है। 'जाने कब सांझा आ जाये', नवगीत में जीवन की संध्या बेला की आशंका कवि को हतोत्साहित करने की जगह उछाह से भर देती है। फागुनमय होने की ललक, मन के बंद द्वार खोलने की उत्कंठा और बरसों पहले युवा–दिवसों में बाँचे गयी नेह मन्त्रों को बोलने की उमंग कवि मन में कसमसाती रहती है। प्रेमी हृदय के बीच पल्लवित राग के आध्यात्मिक धरातल की भाव भूमि का औदात्य 'देह को वृंदावन' कर डालता है। कवि कह उठता है – भीतर/जब फागुन होते हैं/देह तभी होती वृंदावन/भर जाती है साँस–साँस में/मीठी महकन' (पृष्ठ 31)

'दुनिया–हाठ के ठगी मेलों से दूर' परस्पर बतियाने की चाह में डूबा सरल मन झूठे मसीहों की इस दुनिया

से उकता चुका है। वर्तमान परिदृश्य में संवेदन शून्य लोगों की भीड़ से दूर कवि प्रकृति के साहचर्य में फुर्सत के पलों को जीना चाहता है। 'चलो बैठें कहीं चल कर' नवगीत में वे कहते हैं– सुने चलकर वह कथा/जो पत्तियाँ हैं रोज़ कहतीं/जब हवायें उन्हें छूकर/नेह से भरकर उमगतीं/नदी–तट पर/सीपियों में गूँजते हैं/सुनो, अब भी ढाई आखर। (पृष्ठ 36)

भाव और शिल्प के स्तर पर प्रेम का अक्षुण प्रवाह उनके नवगीतों को सम्मोहक बना देता है। तकनीक के इस दौर में एक ओर मोबाइल ने एक ही छत के नीचे पनप रहे अजनबी संबंधों में कुंठा को जन्म दिया है, वहीं दूसरी ओर नदी तट पर प्रेम के ढाई आखर बाँचता कवि–मन, मन के भीतर गूँजती ऋतुराज की मीठी दुआ पढ़ता है। इन नवगीतों में घर की जो परिकल्पना है, वहाँ तकनीकी व्यस्तताओं का अभिशाप नहीं है। घर में ढाई आँखर की हँसी गूंजती रहती है। यह घर कवि को निरन्तर टेरता हैः– चलो घर की ओर/सजनी/चाँद शायद वहाँ हो छत पर... ... .../मिलेंगे घर में/हमें हंसते/पुराने ढाई आखर (पृष्ठ 38)

कवि की यह प्रेममूल संवेदना जीवन को सुखद बनाये रखती है। मन नाना कामनाओं से युक्त हो उठता है। अनगिनत सपने जन्म लेते रहते हैं। यहाँ सपनों की किरचियाँ नहीं हैं वरन् बरसों बीत जाने के बाद भी कुँवारे नेह की ताजी–टटकी अनुभूतियाँ हैं। 'सखि, ये हैं गीत वे ही' का शब्द–शब्द अप्रितम नेह–छोह से जगमगाता हुआ यह महसूस कराता है कि जीवन में आज भी 'सांसों के दिये' जगमग–जगमग कर रहे हैं। मन के भीतर मंदिर की घंटियों की गूंज व्याप्त होने के साथ देह के इतिहास का बरसों पुराना स्वर्णयुग आज भी रचा–बसा है। सम्मोहक स्मृतियों की कारा में बँधा मन 'बाँहों में ऋतुराज कसे' रहता है। फागुन के आने पर अनबूझे गीतों की नदी फूट पड़ती है– फाग और रसिया की तानें/बजतीं भीतर/देह हमारी हो जाती/रंगों का निर्झर/उभ–चूभ उसमें/हम होते/मीठी लगतीं वे साँसें भी जो हैं खारी। (पृश्ठ 42)

पुस्तक के समर्पण में पत्नी सरला के चित्र के साथ लिखी पंक्तियाँ हृदय में आरती की लौ बन कर जगमगाती रहती हैं। पत्नी के साहचर्य के दिनों को 'मिठ बोले पर्व' और रात 'नेह भिगोई आरती' कहना ही इस बात का प्रमाण है कि कवि के दाम्पत्य जीवन में पर्व–सा उल्लास और आरती–सी पवित्रता की व्याप्ति रही है। आधी सदी की दाम्पत्य–यात्रा में प्रिया की साँसों में उगे सूरज और उसकी कनखियों की धूप में नहाया कवि–मन अपनी कविताओं का श्रेय 'देह–क्षितिज पर घटित फागुनी घटनाओं को देता है।'

हम दोनों के देह क्षितिज पर/हुई फागुनी जो घटनाएँ है/उनसे ही तो उपजी हैं/हमने लो लिक्खी/वे कवितायें।

जीवन की ढलती साँझ में विगत की स्मृतियाँ कवि के मन को बार–बार दुलराती हैं। प्रिया का संतोषी मन, कभी कुछ न मांगने की इच्छा रखने वाला मन...परिणाम यह हुआ कि दोनों का साहचर्य सदैव सुखद रहा। महत्वाकांक्षा से परे, अल्प साधनों के प्रेम को भरपूर जिया। सुख–दुःख के संगी होकर, बिना किसी कटु उलाहने के दोनों झूठों सुख के प्रति कभी आकर्षित हुए ही नहीं। घर हमेशा देवालय बना रहा। कवि के मन में भी कोई कटु स्मृति नहीं। 'सुख–दुःख' के संगी हम, कविता में कवि कहता हैं–सखी, तुम्हारे संग जीना/आसान रहा/तुमने मांगे नही/हाट–बाजार कभी/हम दोनों के सपने/साँझे रहे सभी/सुख–दुःख के संगी हम/तुम को ध्यान रहा।

कवि के ये गीत आज भी अत्यन्त प्रांसगिक हैं। इन गीतों का उद्देश्य केवल निजी प्रेमानुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है वरन् वर्तमान पीढ़ी के दाम्पत्य जीवन को विघटन से बचाकर सुखद, संतुष्ट जीवन का मूल–मंत्र देना है। सुख–दुःख के संगी हम' गीत प्रकारान्तर से दाम्पत्य जीवन में सुख–दुःख को मिलकर बाँटने, साँझे सपने रखने, सामर्थ्य से परे कभी कुछ न चाहने की ओर प्रेरित करता है कवि का मानना है कि अगर इन बातों का ध्यान रखा जाए तो जीवन के आंगन में कभी सूर्यास्त होगा ही नहीं। यह साहचर्य कवि को प्रभु का वरदान महसूस होता है और सचमुच वरदान है भी।

जीवन–संध्या की ढलान में भी नैराश्य की किंचित मात्र अनुभूति नहीं है। अतीत इतना सुखद रहा है कि वर्तमान में उसकी स्मृतियों को दंश नहीं है। वही जिंदादिल मन, वही हवाओं के गीत सुनने की उमंग, वही सुबह के पर्व की तरह महसूस करना, कुल मिलाकर वही आनन्द, वही औत्सुक्य! कवि के उछाह भरे शब्दों का जादू 'अरे देखो तो/हवायें फिर गाने लगी हैं। मत कहो, उंगलियाँ अपनी, सखी, पथराने लगीं' प्रिया के मन को भी उल्लास से भर देता है–घास पर जो छन्द बिखरे/उन्हें आओं, हम चुनें/झुर्रियों में बसी छुअनों से/नया सूरज बुनें। (पृष्ठ 104)

ऐसे न जाने कितने संदेश इन गीतों में बिखरे पड़े हैं। कवि ने गीतों में कई जगह 'मिठबोले पर्व' शब्दों का प्रयोग किया है जबकि आज हर घर–परिवार में अबोला है। पति–पत्नी के पास एक–दूसरे के लिए समय ही नहीं है। मिल–बैठ कर आपस में अतीत की स्मृतियों को सहेजना तो दूर, वर्तमान में भी बात करने का समय नहीं हैं। लेकिन इन गीतों में अतीत की मादक स्मृतियाँ है जिन्हें दुलरा कर, कवि बीते दिनों की छुवनों को याद कर अब भी देह में मुधमास जगाना चाहता है। दाम्पत्य जीवन में हर पल बसंत, फूलों से झोली भरता रहे और फिर भीतर–बाहर मन वासंती बना रहे तो न कभी तनाव जन्म लेगा और डिप्रेशन। संबंधों में न कमी होगी, न असंतोष। मन कभी भटकेगा नहीं। ये गीत पारस्परिक सम्बन्धों की अंतरंगता और प्रगाढ़ता का संदेश देने के लिए ऐसे सम्मोहक मृदुल बिंबरचते हैं जिनसे पाठकों के मन में भी प्रेम का उत्सव जगमगा उठता है।

जीवन में यांत्रिकता की घुसपैठ, अवांछित व्यस्तताओं का घिराव, अनावश्यक कामों का दबाव, आभासी दुनिया के प्रति आकर्षण की पराकाष्ठा आदि न जाने कितने कारण है कि एक–दूसरे के लिए समय ही नहीं है। भौतिक आकर्षणों की गिरफ्त में फँसे मन के लिए प्रकृति के प्रति कोई आकर्षण शेष नहीं है। किन्तु कवि का मन अब भी छत पर जाकर चाँद देखने के लिये ललक उठता है और मन फिर बसंत हो उठता है। आज हंसी गायब हो चुकी हैं। मुक्त हँसी के लिए समय ही कहाँ देता है आज का समय और जीवन। एक–दूसरे के माथे पर तनाव की रेखायें, अपने–अपने कमरों में बंद अकेलेपन को भोगती जिंदगियाँ और ऐसे में कवि का यह गीत 'बहुत कठिन है' एक भरोसा रच देता है कुंठित जीवन में–बहुत कठिन है/पतझर में वसंत का होना

फिर भी वह होता है/तुम हँसती हो /बूढ़ी साँसें कोमल हो जाती हैं/झुर्री–झुर्री हुए पेड़ की/शाखाएँ गाती हैं। (पृष्ठ 96)

कवि श्रृंगारिक चेतना और सात्विक आस्था उनके गीतों का प्राण तत्व है। मोहक मृदुल बिंब, गृहरति की मनोरम छवियाँ, पर्व–से उल्लसित दिन और प्रिया की साँसों से खुशबू–घर बना घर का कोना–कोना आदि न जाने कितने बिंब है जो इन गीतों का अद्भुत सौंदर्य की आभा से मंडित करते हैं।

आजकल दाम्पत्य जीवन से हास–परिहास, धर्म, सहिश्णुता, शालीनता पूर्णतः लुप्त हो चुकी है। भौतिक संसाधनों के आधिक्य ने मन को संवेदनशून्य बना डाला है। सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है आज! लेकिन 'सुनना सजनी' गीत में मध्यवर्गीय जीवन की कुछ छवियाँ हैं जैसे रोजमर्रा से हटकर 'लजीज' में खाने के लिए चलने के लिए कहना, कमीज में बटन टाँकने के लिए कहना आदि। ये सहज क्रियाकलाप जरूरी हैं जीवन में आपसी स्नेह को बनाये रखने के लिए।

पतझर में प्रभु से फागुनी बने रहने की प्रार्थना, कामना करता कवि का मन कितनी सहजता से अपने 'गीत सम्राट' होने का श्रेय अपनी सजनी को दे देता है– पायी लय तमसे/हुए हम/गीत के सम्राट सजनी (पृष्ठ 72)

बंद कमरे की टी0वी0, सीरियल की दुनिया से निकल, आंगन में बैठकर ताजे' टटके तितली–फूल वालों पलों के आनंद में डूब जाने की इच्छा यदि मन के भीतर शेश है तो मन स्वतः ही फूलो सा खिल उठता है। 'तुम्हीं तुम हो' गीत में कवि कहता है– खुशबूओं का एक टापू/उसी पर हम तुम खड़े हैं/देह में भी सुनो सजनी/नेह–वन के आंकड़े हैं। (पृष्ठ 76)

वैश्वीकरण के इस दौर में एक ओर जहाँ भौतिक सुख सुविधाओं का वरदान हमें प्राप्त हुआ है, वहीं दूसरी

और उनके विशमताओं ने जीवन त्रासद और अभिशप्त बना दिया है। बहुमंजली इमारतों में धूप, हवा, बारिश, चाँद, सूरज तो दूर आँगन और छत का सुख भी नहीं मिल जाता हैं। बंद–बंद से इन कमरों में जिंदगी जैसे कुंठित और कुंद सी होकर रह जाती है। अपनी ही धुन में खोये हम आत्मीय ऊष्मा को बिल्कुल ही भूलते चले जा रहे हैं हर पल भागा दौड़ी और हड़बड़ी में ही बीत जाता है। ऐसा लगता है कि एक कप चाय पीने के लिए भी तसल्ली भरा समय नही हैं। अशांत मन, आत्म केन्द्रितता, असंतोष और एक अंतहीन दौड़ आज के जीवन का पर्याय बन कर रह गयी है। कवि इस भयावह समय को देख रहा है और पूर्ण निष्ठा से उसके विरोध में खड़े हो कर अपनो गीत रच रहा है–राख झरती / फूल की पगडंडियों पर / यह समय है कठिन / सूखे नेह–पोखर / आयेगा जो कल / उसे दें, सुनो, सजनी / साँझ–बिरिया की दुआएँ।

पति–पत्नी के बीच प्यार में जो साहिशणुता, शालीनता, गरिमा और त्याग की भावना होनी चाहिए, वह वो सर्वथा लुप्त ही हो गयी है। आजकल फेंगशुई टिप्स का सहारा लिया जा रहा है। हम चीन के वास्तु की तरफ आकर्षित होकर घर में लाफिंग बुद्धा तो रख रहे हैं पर खुद हंसना भूल रहे हैं। अनेक संस्कृतियों के बिंब इन गीतों में हैं अतः गीतों से गुजरते हुए मन के भीतर एक ऐसा सात्विक–लोक रच जाता है जिसमें सारे तापों का शमन हो जाता है। 'चौरे का दिया', 'चिरी–चिरौटे', 'साँकल', 'आंगन का बरगद', 'चिड़ियों का चहकना', 'पूजा घर में गौर–पुरारी', 'आरती का स्वर', आदि शब्दों का प्रयोग आज भी सफेद–कलई वाले उन आँगनों में पहुंचा देता है जहाँ प्रेम ही प्रेम था अथाह प्रेम। मायानगरी के छल–छदम से दूर नदी के गीत सुनने की ललक, मीठी धूप में बैठने का उछाह, बरखा में भीगना, प्रिया का कनखियों से बात करना और होठों ही होठों में सबसे छिपकर ढाई आखर बाँचना। संयुक्त परिवारों में भी शोख कनखियाेां का जादू बहुत चलता था और स्मृतियों में छुवन का इतिहास बसा रहता था। कवि बार–बार यौवन के उन दिनों की याद करता है– सच में सजनी / छूमंतर हो गये इन दिनों / खुशियों वाले दिन।

आज संयुक्त परिवार हैं नहीं । निपट अकेलापन...थरथरता सन्नाटा... एक ही छत के नीचे अजनबीपन. ..अबोला...आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व.. अव्यक्त उदासी...संबंधों में टूटन, तनाव, डिप्रेशन!

सांस्कृतिक मर्यादा, संबंधों की गरिमा से संघर्षों के बीच भी 'मिठबोले पर्व' की तरह दाम्पत्य–जीवन बना रहे, यही कवि की भावना है। कवि ने स्वयं लिखा है–'सुधी पाठकों' के सामने इन्हें प्रस्तुत करते समय मेरा यह आग्रह है कि उन्हें वे आज के जटिल जीवन संदर्भों के बरअक्स जांचे–परखें।'' कवि आस्थावान है। उसे विश्वास है कि ऐसा ही होगा। सहज जीवन, वासंती साहचर्य, आत्मीय संबोधन आजकल के धुप अंधियारे को अवश्य नष्ट करेगा। रिमझिम राग बरसेंगें, इच्छा वृक्ष फूला रहेगा, हवायें गीत गाती रहेंगी, प्रिया सुहाग के फूल खिलाती रहेगी, आंगन में पर्व का उजियारा फूटता रहेगा।

कवि का मानना है कि आज की संपूर्ण कविता एलियट के 'वेस्टलेंड' यानी बंजर भूमि के वासियों की पानी के स्रोतों, बरखा के मेघों की खोज के मानिंद है। ऐसे में गीत की रागात्मकता मनुष्य को रससिक्त करने–रखने की आखिरी कोशिश है।

❑❑

31

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : भाषा और साहित्य

डॉ. सुरेश कानडे
एसोसिएट प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
एस.एम.आर.के.–बी.के.–ए.के. महिला महाविद्यालय नाशिक, महाराष्ट्र (भारत)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव विकास और समाज विकास के साथ संचार का गहरा प्रभाव रहा है। संचार का विकास मानव के साथ तब से है। जब वह आदि मानव था। अर्थात जब भाषा का विकास नहीं हुआ था, तब भी एक दूसरे के साथ संचार स्थापित करने के लिए संकेत या ध्वनि का प्रयोग कर संचार स्थापित करता रहा होगा। इसे परिभाषित करते हुए चार्ल्स ई.आसगुड ने लिखा है– "आम तौर पर सम्वाद तब होता है जब कोई ढांचा या श्रोत किसी अन्य को प्रभावित करे, कुशलतापूर्वक विभिन्न संकेतों का प्रयोग करके उन साधनों जोड़ते हों।" जिस गति से मानव जीवन परिवर्तित हो रहा है, उसमे संचार माध्यमों का बड़ा योगदान है। वर्तमान समय में विकास का सीधा सम्बन्ध वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा सम्भव हुआ है। वैदिक काल से लेकर आज तक मानव जीवन का सफर संचार के साथ ही बीता है। वर्तमान परिदृश्य को देखकर भी यही लगता है। इसीलिए जनसंचार माध्यम भी निरंतर विकसित हुए हैं। पहले प्रदर्शनात्मक और मुद्रण कला के विकास के बाद समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ही आज के युग की पहचान बन गया है।

इलेक्ट्रॉनिकमीडिया : "इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से जो संचार होता है वह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया है।"

मीडिया शब्द संचार माध्यमों के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जनसंचार प्रचलित शब्द है। जैसे–समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आदि। यद्यपि इंटरनेट जैसे नये माध्यमों के उद्भव और तीव्र विकास के कारण मीडिया के पारम्परिक के सवरुप में परिवर्तन आया है। नये माध्यम जन माध्यम बन रहे हैं। नए प्रौद्योगिकी के प्रभाव से सामजिक सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में निरंतर परिवर्तन आ रहा है। मीडिया के प्रचार के कारण सामाजिक इच्छाओं, आकांक्षाओं, आदतों और मानवीय व्यवहारों को बदल दिया है। जिससे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मीडिया एक बड़े उद्योग के रूप में उभरा है। जिसने बाजार को अपने कब्जे में ले लिया है। आर्थिक क्षेत्र में मीडिया की सार्थकता निरंतर बढ़ रही है। मीडिया के इस बहुआयामी भूमिका के कारण इसके नियमन और सैद्धांतिकरण के सदैव प्रयत्न होते रहे हैं। आज समाज से सम्बन्धित कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसमे मीडिया का हस्तक्षेप नहीं है। इसलिए मीडिया की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रासंगिकता और समाज के साथ उसके सम्बन्धों को लेकर हमारे मन में अनेक प्रश्न निर्माण होते हैं जैसे – निष्पक्षता, हिंसा, जीवन मूल्य, सेक्स, देहवाद, विज्ञापनों का अतिरेक, उपभोक्तावाद आदि। ये सभी प्रश्न भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के समाज को प्रभावित कर रहे हैं।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है। किसी भी लोकतान्त्रिक देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की स्थिति की जांच भी मीडिया की स्वतंत्रता के आधार पर ही की जाती है। वैसे भी मीडिया के सरोकारों का दायरा बहुत विस्तृत है. मीडिया के सरोकारों व उद्देश्यों की चर्चा सर्वत्र की जाती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मीडिया की भूमिका समाज को सूचना देना, शिक्षित करना और मनोरंजन करना (To inform, To Educate and To Entertain) है। इसमें मीडिया के सभी पक्ष समाहित है। लेकिन इन तीनों की विवेचना समय के साथ आवश्यक है। इससे ही मीडिया को समझने में मदद मिल सकेगी। मीडिया जब स्वार्थ से प्रेरित होगा तो जनसरोकारों पर इसका प्रभाव पड़ेगा.ये सरोकार सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में परिवर्तन लाते हैं।

मनोरंजन के क्षेत्र में मीडिया ने सभी पारम्परिक एवं सांस्कृतिक साधनों को विस्थापित कर दिया है. भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के इस दौर में आर्थिक सुधारों के साथ ही अधिक सूचना, अधिक मनोरंजन, अधिक संगीत, और अधिक फिल्में इन सबकी मांग अचानक बढ़ गयी है। सैटेलाईट के आगमन के कारण सैकड़ों चैनल टी. आर. पी. की दौड़ में शामिल हो चुके हैं। जिनका मुख्य उद्देश्य केवल नफा कमाना है। चैनलों और कार्यक्रमों की विभिन्नता ने दर्शकों की पसंद को बदल दिया है, उसमें श्रेणियां बनने लगी हैं। उदारीकरण और मीडिया ने पूरे विश्व में अपना रंग दिखाया है। शॉपिंग मॉल्स, मल्टीप्लेक्स, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, क्रेडिट कार्ड व आसान ऋण सुविधाओं के कारण लोगों की जीवन शैली बदल गयी है इतना ही नहीं प्रवृत्तियां व आकांक्षायें भी बदल गयी है। अर्थात सांस्कृतिक सपाटिकरण हो रहा है। इसके अलावा भारत में अब तक वर्जित माने जाने वाले विषयों को भी मीडिया ने छेड़ा है.सेक्स और विवाहेत्तर सम्बन्धो पर चैट शो आयोजित होने लगे हैं। पारम्परिक जीवन शैली के बदलाव को प्रेरित करने वाले कार्यक्रमों की तादात बढने लगी है। भ्रमण, बाहरी खान–पान, फैशन और दिखावा मीडिया की विषय वस्तु का मुख्य भाग बन गया है। फैशन डिजाइन और मॉडलों को प्रदर्शित करनेवाले कार्यक्रमों व दर्शकों की संख्या बढ़ रही है और जनता से जुड़े प्रश्नों व मुदों को गौण समझा जाने लगा है। मनोरंजन एवं लाभ को प्राथमिता दी जा रही है. चमक–दमक और ब्रांड को लोकप्रिय बनाकर मीडिया सांस्कृतिक विरासतों को व्यवसाय के माध्यम से बाजार का रूप दे रहा है। रियलिटी शो, गेम शो, इंडियन आयडियल, कौन बनेगा करोडपति जैसे अनगिनत शोज आज प्रसारित हो रहे हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से सामजिक भावनाओं और आकांक्षाओं से खेल कर मुनाफा कमाया जा रहा है। इस मुनाफे को विज्ञापन उद्योग निरंतर बढ़ा रहा है। विज्ञापन उद्योग भ्रामक यथार्थ को दर्शाकर समाज और संस्कृति को प्रभावित कर रहा है। दर्शकों में उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के विकास की दृष्टि से टेलीविजन धारावाहिकों का निर्माण भारत में मनोरंजन जगत की अभूतपूर्व घटना है। यह आर्थिक से ज्यादा सांस्कृतिक है। वर्तमान भारतीय टेलीविजन के मुख्य धारावाहिकों की सामान्य विशेषताओं को देखा जाय तो सुंदर कपड़ों, गहनों से लकदक महिलाएं, भावनाओं के प्रतिरूपण में पात्रों के स्लोमोशन भंगिमाएं, अवैध सम्बन्धों का विरोध एवं समर्थन, शोक या उत्सव का सजावटी प्रदर्शन, देवी–देवताओं की पूजा, यज्ञ, हवन का अति यथार्थ रूप देखने को मिलता है। जिसके कारण धर्म भीरू महिलाएं व पुरुष इसका अंधानुकरण करते नजर आते हैं। भारतीय सांस्कृति से जुड़े कुछ तीज–त्यौहार, उत्सवों ने आज बाजार का रूप ले लिया है। जैसे – करवा–चौथ, नवरात्री होली, गणेशोत्सव, दुर्गा पूजा, लोहड़ी पोंगल, क्रिसमस आदि।

भारत में आधुनिक मीडिया ने सामजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक चेतना का विकास किया है। परन्तु सामजिक रूढ़ियों अंधविश्वासों, धार्मिक कट्टरता, ज्योतिष, भविष्यवाणियां, भूत–प्रेतों की सत्य कथा, पाप–पुण्य, पुनर्जन्म, धर्मगुरुओं के प्रवचन व उपदेश, तंत्र–मन्त्र, व्रत और भाग्यफल आदि सभी आज के मीडिया के अभिन्न अंग हैं। इन सबका उपयोग रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रसार के लिए हो रहा है। इससे यह पता चलता है कि मीडिया के लिए अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का अर्थ लोगों को मूर्ख बनाने की छूट है। तर्क यह है कि धार्मिक विश्वास और आस्था लोगों की भावनाओं जुड़ा मुद्दा है। इसलिए यह बहस नहीं हो सकती। लेकिन यह मुद्दा बाजार में अधिकतम मुनाफा कमाने के लिए उपयोग किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में कार्ल मार्क्स ने कहा है – "विज्ञान जब तक पूंजीवाद के अधिपत्य से मुक्त नहीं होगा, तब तक मानव के दमन और शोषण का यंत्र बना रहेगा। "मीडिया केवल उपभोक्ता पर ही दुष्प्रभाव नहीं डाल रहा है बल्कि हमारी अभिव्यक्ति की काल्पनिकता और लाक्षणिकता को भी दुष्प्रभावित कर रहा है। उसने सब कुछ अपने उपभोक्तावादी निर्दयी भुजपाश में समेट लिया है। यहाँ वही सफल है जो सर्वाधिक लोकप्रिय और बिकाऊ है।

वर्तमान समय में भारत में में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व मीडिया हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, और राजनितिक सूचनाओं का जखीरा बन गया है। जिसमें कला, साहित्य, संस्कृति को जगह नहीं

रह गयी है। राजनितिक हलचलों का भ्रष्ट अराजक, और दोगले चरित्रों को तलाशने और उभारने में पूरी ताकत से विश्व मीडिया जुड़ा हुआ है। लेकिन इससे दुनिया को क्या मिलेगा? समाज क्या सीखेगा? अपनी हिंसात्मक और वारदाती सूचनाओं के कारण विश्व मीडिया सिर्फ क्रूर और निर्दयी ही नहीं बल्कि अविश्वसनीय और असंवेदनशील भी हो गया है। यद्यपि वर्तमान समय में मीडिया भूमंडलीकरण और वसुधैव–कुटुम्बकम के निर्माण में एक हद तक आधारभूत भूमिका भी निभा रहा है परन्तु सभ्यता और संस्कृति के संवर्धन के लिए इतना पर्याप्त नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिंदी साहित्य कोष भाग–1, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. कृतिका अर्द्धवार्षिकी – जनवरी–दिसम्बर (संयुक्तांक 11–12)
3. भारत में सामजिक स्तरीकरण–परशुराम शुक्ल
4. सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण – ज्योति वर्मा
5. मीडिया के सामाजिक सरोकार – कालू राम परिहार
6. विश्व मीडिया – डॉ.विष्णु पंकज
7. बहुवचन (त्रैमासिक) जुलाई–सितम्बर 2013
8. बहुवचन (त्रैमासिक) मीडिया विशेषांक – अप्रैल–जून 2016
9. मीडिया विमर्श (Indian Media&Vision–2020) जून 2015

❑❑

आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य में वीरेन्द्र मेहरीरत्ता

डॉ0 रत्ना सिंह
हिन्दी विभाग
राम मनोहर लाहिया पी0जी0 कॉलेज, कल्यानपुर, कानपुर नगर

ड्रायडन महोदय की दृष्टि में किसी कार्य को बिगाड़ कर मूर्खतापूर्ण व्यवहार करने वाले तथा कुछ समस्या निर्मित करने वालों को सुधारना व्यंग्य का काम है। वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य व्यंग्यकार जेम्स नें कहा है :

“The flashing lighting terri fies the evil do eres. While purifies the air such as satire when great and earnest” [1]

(आसमान की बिजली कड़ककर अनाचारी को डराती है तथा वायु को शुद्ध भी करती है उसी प्रकार पूरी ईमानदारी के साथ लिखे गये व्यंग्य साहित्य का स्वरूप है)

पाश्चात्य व्यंग्कार बायरन व्यंग्य के ध्येय के सन्दर्भ में कहते हैं :

“Fool are my theme, let satire by my song”[2]

बायरन केवल मनुष्य समाज की मूर्खताओं की खाल उधेड़ना ही व्यंग्य का कार्य समझते हैं।

डा0 वीरेन्द्र मेहदीरत्ता नें तो व्यंग्य में प्राप्त आक्रोश को लेकर उसके स्वरूप को उद्घाटित करते हुए लिखा है : ''व्यंग्य मानव तथा जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप में आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। व्यापक दृष्टि से देखा जाये तो सम्पूर्ण साहित्यिक आक्रोश को व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है''[3]

शीर्षस्थ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई तो व्यंग्य साहित्य का सृजन सुधार की अपेक्षा बदलाव मानते है, जिसमें व्यंग्य में चिन्तन, समद्ध देने की क्षमता है। वह आहत तो करता है लेकिन विचलित नहीं करता है। इसलिए व्यंग्य मेरी दृष्टि में केवल साहित्य विशेष की विद्या नहीं है, नीति की विद्या है। व्यंग्य एक ऐसा उद्देश्य पूर्ण साहित्य है जो समस्त विश्व में व्याप्त अभि व्याचारों, बाह्यचारों एवं पाप को मूल से नश्ट करने की इच्छा रखता है।

व्यंग्य विद्या सफेदपोश व्यक्तियों की पक्षपात पूर्णकार्य, रिश्वतखोरी, सिफारिश, समयकी अपव्यता आदि कारनामों का पर्दाफाश करता है। व्यंग्य वर्तमान समय की विद्रपुता का राज खोलने का कार्य कर रहा है। व्यंग्य में निराश व्यक्ति को संजीवनी देने की सामवर्य है। आज प्राण जाय पर वचन न जाये की परम्परा में अब असंगति आ गई है। आज प्राण तो बच जाये भले जी वचन कितने बार टूटने वाली परम्परा अपने वजूद को कायम किये हुए हैं। इसी कारण व्यंग्य विधा की सार्थकता और भी बढ़ गई है। और तभी व्यंग्य विद्या नें अपना मूलभूत स्वरूप प्रदर्शित किया है। आज बाजार में खरीदने से खून व रिश्ते दोनों ही उपलब्ध हो जाते हैं, ऐसी लालची, आराजकतापूर्ण स्थिति में व्यंग्य ही विध्वंस बनकर परिवर्तन कर सकता है।

व्यंग्य केवल आलोचना ही नहीं करता बल्कि वह साथ में नई सोच समद्ध ही दृष्टि को उत्पन्न करता है ताकि सही निर्णय कर मानव अपने जीवन को सार्थक बना सके। व्यंग्य की समीक्षक डा0 छविनाथ मिश्र नें इस सन्दर्भ में लिखा है :—

''व्यंग्य नें न केवल लोग जीवन के दाँव पेंच को समझने की नई दृष्टि और व्यवहार की कुशलता दी है, अपितु वस्तुस्थिति की प्रखर और सूक्ष्म अनुभूति द्वारा जीवन को नई दिशा में दी है। यह परिणाम उसी का है कि हम अब अधिक समझदार हैं।''[4]

व्यंग्य में किसी विषय की प्रशंसा अथवा सुख के लिए कोई स्थान नहीं होता है। व्यंग्य तो साहित्य में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के लिए प्रयत्नशील है। यह अपने रास्ते में आने वाले लोगों की अपने विचारों द्वारा उघेड़ कर रख देता है। व्यंग्य प्रतिदिन की घटनाओं के मुखौटे को वास्तव में लेकर समाज को क्रांति करने के लिए प्रेरणा देने वाली विद्या है। कुछ समीक्षक फिर भी कहते हैं कि व्यंग्य विद्या का स्वरूप ता केवल गुण–दोष का बयान करने वाली अनुकृति है। आलम्बन पर व्यंग्य करने के बाद पाठक केवल पढ़कर आगे नहीं बढ़ता या भूलता भी नही ंतो वह अपने दिल में, मन अन्दर की अन्दर तिलमिला उठता है। जो गलती उससे हुई होती है उसका उसे एहसास होना ही व्यंग्य का असी स्वरूप है। जहाँ वह कारगर हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास, डा0 बापूराव–देसाई, पृ0 33, सन 1990
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, वीरेन्द्र मेहरीस्ता, पृ0 14, सन 1976
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, डा0 वीरेन्द्र मेहरीत्ता, पृ 15, सन 1976
4. आधुनिक व्यंग्य का श्रोत और स्वरूप डा0 छविनाथ मिश्र, पृ 11, सन 1979

❑❑

33

शिव का विश्वरूपत्व, निष्फलत्व एवं ब्रह्मस्वरूपता एवं ईश्वरीय ज्ञान

डॉ. पूजा दीक्षित
प्राचार्या
अभिनव सेवा संस्थान महाविद्यालय, राजीवपुरम्, कानपुर

शिव ही निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हीं के किसी अंश में प्रकृति है। उस प्रकृति को ही लोग माया, शक्ति आदि नामों से पुकारते हैं। उसे कोई अनादि–अनन्त कहते हैं, कोई अनादि–शान्त मानते हैं, कोई उस ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं। कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः माया के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है। क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिए नहीं कह सकते कि उसी का विकृतरूप यह संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। और सत् इसलिए नहीं कह सकते हैं कि जड़ दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होने से उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती।

शिव स्वभाव से ही निर्गुण होते हुए भी संसार की रचना, स्थिति एवं प्रलय के लिए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीनों रूपों में विभक्त हुए हैं। भेद ही बन्धन का कारण है। फिर भी शिव के इस रूप को नित्य सनातन एवं सबका मूल कारण कहा गया है। यही सत्य ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म :

नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण रूप, सर्वव्यापी सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप – ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पंचवक्त्र हैं।

शिव ही सनातन, सर्वात्मा तथा संसार की रचना करने वाले त्रिलोकों के रक्षक तथा संहारक हैं। आदि तथा अंत भी शिव ही हैं। शिव ही सर्वत्र सर्वव्यापी हैं।

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्महं सनातनः।।
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम्।
मध्ये चान्तः स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः।।

परमेष्ठी ईश अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत को प्रेरित करते हैं। ईश्वर अपने एक अंश से सम्पूर्ण संसार की रचना करते हैं और दूसरे से संहार। सम्पूर्ण सृष्टि तथा विश्व इन्हीं महादेव से उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण संसार के कालचक्र को चलाने वाले सूर्य भी महादेव के ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं।

एकांशेन जगत् कृत्सनं करोमि मुनिपुंगवाः
सहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु।।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्व प्रवर्तकः
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधान पुरुषाबुभौ।।
ताम्यां संजायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्
महादादि क्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते।।
यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः
हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः।।

सभी देवताओं को हव्य देने वाले तथा सब कुछ पचा लेने में समर्थ अग्निदेव उन्हीं ईश की शक्ति से प्रेरित

होकर कार्य करते हैं।

आदित्य, वसुगण, रुद्र, मयद्गण, अश्विनी कुमार आदि देवता तथा गन्धर्व, गरुड़, सिद्ध, साध्य, चारण पक्ष, राक्षस तथा पिशाच ये सभी ईश्वर की आज्ञा से ही स्थित हैं। स्वदेदज, अण्डज, अद्भिज्ज तथा जरायुज ये चार प्रकार के प्राणी और स्थावर तथा जंगमात्क जगत् परमात्मा देव के निर्देश से ही प्रवर्तित होते हैं। सम्पूर्ण संसार की योनि और सभी देहधारियों को मोहित करने वाली माया भी ईश्वर के निर्देश से ही नित्य विवर्तित होती रही है। यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर महादेव की शक्ति से ही शक्तिमान् है और सम्पूर्ण जगत् भी इन्हीं से ही प्रेरित होता है और उसी में लय भी हो जाता है। भगवान् ईश स्वयं प्रकाश सनातन और परमात्मा परब्रह्म है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

याशेषजगतां योनिमोहिनी सर्वदेहिनाम्।
माया विवर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः।।
यो वै देहभूतां देवः पुरुषः पठ्यते परः।
आत्मासौ वर्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः।।
विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत् पदम्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत्।।
अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातन्।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यान्यन्न विद्यते।।

यह ब्रह्मा अस्थूल अर्थात् अदृश्य होने के कारण किसी भी इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं होता है, अतः वह अदृष्ट है। उसे किसी भी व्यवहार में नहीं लाया जा सकता इसलिए वह अव्यवहार्य है। जो ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह अग्राह्य है। शिव ही अचिन्त्य है। यही कारण है कि शब्दों में अव्यपदेश्य है अर्थात् वह वाणी का विषय नहीं है। जाग्रत, स्वप्नादि अवस्थाओं से परे होने के कारण एकात्म प्रत्ययसार है। प्रपंच का उपशम, शान्त, शिव और सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदशून्य केवल एक अद्वैत स्वरूप है। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यम लक्षणम् अचिन्त्यमव्यपदेश्य मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थ मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः।

शेते जगदस्मिन्निति शिवः व्युत्पत्ति से भी शिव का जगत् का अधिष्ठान होना सिद्ध होता है। वही परम् तत्व शिव अपनी दिव्य शक्तियों से युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डों का सर्जन, पालन तथा संहार करता है। मुण्डक श्रुति में सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म का पृथक–पृथक विशेषणों से कथन किया गया है।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यभगोत्रवर्णमचक्षुः श्रोतत्रं पद्पाणिपादम्।

यहाँ पर निर्विशेष ब्रह्म का कथन किया गया है जो अदृश्य अग्रह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षुश्रोत्रादि से रहित है।

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिंग परिपश्यन्ति धीराः।

यहाँ सविशेष ब्रह्म का कथन है इसलिए ब्रह्मा को नित्य, विभु, सर्वव्यापक, सूक्ष्म, अव्यय तथा सम्पूर्ण भूतों का कारण बताया गया है।

ब्रह्म एक ही है पर माया विशिष्ट हो जाने पर वही ईश्वर–संज्ञक भी बन जाता है। इसी हेतु से सविशेष और निर्विशेष ब्रह्मा का कथन किया गया है।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का मूल तत्व अनेक नहीं किन्तु एक ही माना गया है। ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व की बात कही गई है।

''नासदासीन्नों सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योम परो यत्।

इस मंत्र में स्पष्अ है कि सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व यह परिदृश्यमान जड़–चेतनात्मक जगत् नहीं था, कुछ भी नहीं था, एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही विद्यमान था।

''एकमेवद्वितीयं ब्रह्म''।

इसी ब्रह्मतत्व से अखिल ब्रह्माण्ड का सर्जन हुआ।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते .....।
"जन्माद्यस्य यतः"।

अर्थात् ये सभी प्रत्यक्ष दिखने वाले प्राणिजगत् जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें प्रवेश करते हैं, वही ब्रह्म है। यह सम्पूर्ण परिदृश्यमान जगत् जब उत्पन्न नहीं हुआ था, उस काल में सत् असत् कुछ भी नहीं था, प्रत्युत अव्यक्त रूप में ब्रह्म ही था।

इदं दृश्यं यदा नासीत् सदसदात्मकं च यत्।
तदा ब्रह्ममयं तेजो व्याप्तिरूपं च संततम्।।
न स्थूलं न च सूक्ष्मं च शीतं नोष्णं तु पुत्रक।
आद्यन्तरहितं दिव्यं सत्यं मनन्तकम्।।
योगिनोऽन्तरदृष्टया हि यद्धयायन्ति निरन्तरम्।
तद्रूपं सकलं ह्यासीज्जानं विज्ञानदं महत्।।

ईश्वर ही शिव और शक्ति के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। कूर्मपुराण में साक्षात महादेव अपने स्वरूप का वर्णन तथा ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि–

मैं विश्व भी नहीं हूँ और मुझसे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है। सम्पूर्ण संसार माया के निमित्त है। आदि और अंत से रहित यह माया परमात्मा के आश्रित है, अधीन है। इसी माया के कारण ही यह संसार उत्पन्न हुआ। अव्यक्त के कारण ही शिव को प्रकाशरूप, अक्षर तथा परमब्रह्म कहा जाता है। शिव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। विवर्त विश्व की सृष्टि से महादेव के अनेक रूप हैं तथा परमार्थतः एक होने से एक रूप है। संसार की दुष्कर्मता का कारण स्वयं मनुष्य है न कि ईश्वर। ईश्वर तो सामान्य कारण है, अतः वह दोषरहित है।

अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्त समाश्रया।
तन्निमित्तः प्रपंचोऽयमव्यक्तादभवत् खलु।।

साक्षात् अव्यक्त ही सम्पूर्ण शक्तियों से प्रतिष्ठित माया है। और यह अव्यक्त ही शब्द तन्मात्रा रूप आकाशतत्व में स्थित होकर सदैव दैदीप्यमान रहता है। वस्तुतः वह अव्यक्त तत्व जो अनेक रूपों में प्रकाशित होता है, वह आदि और अन्त रहित मेरी शक्ति से सायुज्य प्राप्त होता है। पुरुष की दूसरी शक्ति से ऐश्वर्य की उत्पत्ति होती है। और अन्य शक्ति से उसका लोप होता है। अव्यक्त ही परम् व्यक्त, अक्षर, परम ज्योतिरूप है और वह विष्णु का परमपद है। उसमें ही सारा जगत ओतप्रोत है। वही सम्पूर्ण जगत है और इस ज्ञान से मुक्ति होती है।

मन के साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है, उस परब्रह्म को जानने वाला कभी भयभीत नहीं होता। इसे जानकर विद्वान मुक्त हो जाता है और नित्य आनन्दस्वरूप तथा ब्रह्ममय हो जाता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
तद् विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान
नित्यानन्दी भवति ब्रह्म भूतः।।

जिससे परे और भिन्न कुछ भी नहीं है और जो तीनों लोकों में स्थित सभी ज्योतियों का एकमात्र प्रकाशक है, उसी को आत्मा मानने वाला विद्वान आनन्दस्वरूप होकर ब्रह्ममय हो जाता है। वहाँ पहुँचकर पुनः वापसी नहीं होती।

आकाश में तेजस्वरूप जो प्रकाशित होता है, आत्मस्थ उस प्रकाशयुक्त ब्रह्म का दर्शन करते हैं। वस्तुतः अपनी आत्मा में आत्मा का अनुभव करके उस परम् ब्रह्म तत्व का दर्शन करते हैं। और वही आत्मतत्व स्वयं प्रकाशित परमेष्ठी, साक्षात् ईश के स्वरूप हैं।

जो आत्मस्य परमब्रह्म परमात्मा तथा सभी प्राणियों के अन्तरात्मा सर्वव्यापी एकमेव और अद्वितीय प्रकाश का दर्शन करते हैं, उन्हें ही चिर और शाश्वत् शांति प्रप्ति होती है। वह परमब्रह्म परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथा उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

❑❑

हिंदी मीडिया और भाषा : एक अवलोकन

रूद्र प्रताप सिंह
पत्रकारिता व जन संचार विभाग
उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट ओडिशा

इन दिनों समाज में पत्रकारिता की विश्वसनीयता चर्चा में है। आमतौर पर पत्रकारिता या मीडिया के लिए टिप्पणी की जाती है कि अब उसकी विश्वसनीयता घट गई है। इस वाक्य को संजीदा होकर समझने की कोशिश किया जाए तो पता चलेगा कि मीडिया पर अविश्वास करते हुए भी कहा जा रहा है कि भरोसा घटा है, समाप्त नहीं हुआ है। दरअसल, मीडिया पर समाज का विश्वास कभी खत्म नहीं होता है, क्योंकि लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की मान्यता प्राप्त इस संस्था की पहली जिम्मेदारी सामाजिक सरोकार की होती है। सत्ता, शासन और अदालत तक आम आदमी की तकलीफ को ले जाना और अवगत कराना मीडिया की जवाबदेही है। जब मीडिया अपनी जवाबदेही से पीछे नहीं हटता है तो समाज का उस पर भरोसा घट नहीं सकता है। हां, मीडिया पर समाज का भरोसा समाप्त हो सकता है। शून्य के स्तर पर जा सकता है, जब मीडिया अपनी जवाबदेही को भूल जाए। इस पर समाज के भरोसे को किसी तराजू में नहीं तौल सकते हैं, क्योंकि भरोसे का कोई मोल नहीं है।

समाचार पत्रों को राष्ट्र का चतुर्थ स्तंभ माना गया है।अखबारों की संबंधित भाषा के विकास या विकार में अहम भूमिका होती है। अखबार भाषा के उत्थान या पतन उत्थान में खाद का काम करते हैं। अखबारों की पहुंच जन–जन तक होती है। अखबार ही जनमानस में भाषा के प्रति विशेष धारणा वितरित करते हैं ।अखबारों में भाषा के भावी स्वरूप की जड़े होती है। भाषा के विकास और विनाश में समाचार पत्रों की भूमिका प्रमुख होती है, क्योंकि जनता का सर्वाधिक और सीधा संपर्क इनसे होता है।सामान्यतः मनुष्य की प्रकृति अनुकरण करने की होती है। समाचार पत्रों में हम जैसा सुनते हैं, पढ़ते हैं और देखते हैं वैसा ही लिखते हैं, उच्चारण करते हैं और भाषिक प्रयोग करते हैं।यदि सामान्यजन को भाषा का सही और मानक रूप सुनने और पढ़ने को मिलेगा तो जनता की भाषा में भी सुधार आता जाएगा।यदि समाचार–पत्र का सही और शुद्धता से प्रयोग करेंगे तो पाठकों की भाषा विकृत नहीं होगी।लोग भाषा का प्रयोग ध्यानपूर्वक करेंगे और भाषा के साथ उनका अटूट रिश्ता बना रहेगा।इसके विपरीत यदि समाचार–पत्र भाषा का अशुद्ध प्रयोग करेंगे, अनावश्यक शब्दों का प्रयोग करेंगे, तो वह भाषा को बोझिल ही बनाएंगे और यह बोझिलपन भाषा के संप्रेषण में बाधक बनता है।

हिंदी समाचार पत्रों की भाषा हिंदी की दशा और दिशा को दर्शाती है ।आज समाचार पत्रों में आवश्यक रूप से विदेशी शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है की हिंदी विदेशियों द्वारा लिखी जा रही है । वस्तुतः कोई भी भाषा समाज अपनी भाषा का विदेशीकरण स्वीकार नहीं करता ।दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण कर सामान्यतः विशिष्ट संज्ञाओं में नगण्य होता है ।यह हिंदी का दुर्भाग्य है कि आज के समाचार पत्रों में न व्याकरण का उचित प्रयोग दिखाई देता है, न शब्दों के सार्थक अर्थ की प्रतीति होती है और ना ही स्वाभाविकता का ध्यान रखा जाता है।यदि स्पष्ट रूप से कहा जाए तो आज के हिंदी समाचार पत्रों में जहां अप्रचलित. अप्रासंगिक और गलत वर्तनी वाले शब्दों का तथा अधूरे और अस्पष्ट वाक्यों का प्रयोग किया जा रहा है, वही इन में अंग्रेजी के शब्दों की बहुलता भी देखी जा सकती है।

शब्द हमारी भावनाओं के प्रकटीकरण का उचित माध्यम है।कहने को तो हर मनुष्य का शब्दों से गहरा रिश्ता होता है, परंतु पत्रकार का शब्दों से और भी गहरा रिश्ता होता है।प्रत्येक शब्द का अपना विशिष्ट महत्व और वजूद होता है।कोई भी शब्द किसी भी अन्य शब्द के स्थान पर प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।एक अदद शब्द ही अपने नियत स्थान को अपने अर्थ के साथ रूपायित करता है।मनुष्य सामाजिक प्राणी है और उसके पास भावनाएं हैं।जब हम अपने मन की बात किसी से कहना चाहते हैं, मन की बात कहने को जुबान व्याकुल हो जाती है अर्थात शब्द गले तक आना ही चाहते हैं और अचानक शब्द गले तक पहुंचकर फिसल जाए, परंतु उन्हें प्रकट करने के लिए उचित शब्द ना मिले, उस वक्त मन गहरी खीज और क्षोभ से भर जाता है।उसी वक्त शब्द का महत्व याद आता है।जो शब्दों का शिल्पी होता है, वह व्यक्ति महत्व पाता है।पत्रकार भी शब्दों का शिल्पी और भाषा का जादूगर माना जाता है।साफ है, जिस पत्रकार की भाषा जितनी पैनी होगी, वह उतना ही सफल और सक्षम पत्रकार होगा।

किसी भी अखबार की पहचान का आधार या तो खबरें हैं या फिर उसकी अपनी विशिष्ट भाषागत शैली। हिंदी अखबारों में भाषागत शुद्धता को लेकर बहुत सारा विरोधाभास है। आज जब अंग्रेजी सुधारने की बात आती है तो लोग कह देते हैं कि 'द हिंदू' या फला समाचार पत्र पढ़ो, लेकिन जब हिंदी की शुद्धता की बात करें तो उसके लिए किसी भी अखबार का नाम ध्यान नहीं आता। हिंदी पत्रकारिता में भी एक युग ऐसा था, जब समाचार पत्रों को भाषा के लिए पढ़ा जता था। समाचार पत्र पढ़ना अनिवार्य लगता था।उद्देश्य सामान्य ज्ञान बढ़ाने से अधिक शुद्ध भाषा का ज्ञान प्राप्त करना था।

समाचार पत्र ही वह माध्यम है, जिसमें बच्चों से लेकर वृद्धों तक की पठनीय सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध ा होती है, चाहे वह राजनीति हो, खेलकूद या सिनेमा हो या फिर व्यवसाय संबंधी समाचार हो ।हर उम्र, हर वर्ग का व्यक्ति इन्हें पढ़ता है।इसलिए एक औसत भारतीय की समझ में आने वाली भाषा का विचार निरंतर चलता रहता है।समाचार पत्र के पाठकों में एक मंत्री व अधिकारी से लेकर मामूली भाषा ज्ञान वाले व्यक्ति, मजदूर, रिक्शाचालक भी होते हैं।समाचार प्रायः जल्दी में भी पढ़ा जा सकता है– दफ्तर जाते जाते या अन्य कार्यों के बीच बीच में, जाहिर है ,कठिन भाषा होने पर कोई शब्दकोश उठाकर उसका अर्थ जानने की कोशिश नहीं करेगा, इसलिए समाचार पत्रों में सरल एवं आसानी से समझ में आने वाली भाषा का प्रयोग करने की बात की जाती रही है।समाचार पत्रों की भाषा की विशेषताओं में कहां गया है की भाषा एकदम सहज, सरल और बोधगम्य होनी चाहिए, जिससे सामान्य पाठक भी खबर के उद्देश्य को आत्मसात कर सके।

खबर की भाषा का उद्देश्य सूचना को ऐसी भाषा से संप्रेषित करना होता है, जो पाठकों को सहजता से समझ में आ जाए।संवाददाता को ध्यान रखना चाहिए की भाषा का जादू चलाने के लिए वह खबर को उसकी बोधगम्यता से झटका तो नहीं रहा है, क्योंकि खबर का मूल उद्देश्य भाषा ज्ञान का प्रदर्शन नहीं, बल्कि अधिक–से–अधिक पाठकों तक पहुंचाना है।पत्रकारिता की वही भाषा अच्छी मानी जाती है, जिसमें प्रस्तुत सूचना सरल तरीके से पाठक को समझ में आ जाए। " समाचार पत्र पत्रिका की भाषा (चाहे वह किसी भी भाषा में प्रकाशित हो) शुद्ध, सरल और आसानी से समझ में आने वाली होनी चाहिए।समाचार–पत्र पत्रिका की भाषा कठिन होने पर आम आदमी उसे पढ़ने में कठिनाई अनुभव करने लगता है।

हिंदी भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में मुख्यतः वर्तनी, लिंग, कारक – विभक्ति और वचन संबंधी अशुद्धियां बहुतायत में मिलती हैं। कई समाचार पत्रों में शब्दों का अस्वाभाविक प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। हिंदी समाचार पत्रों में अंग्रेजी के ऐसे शब्दों का प्रयोग हो रहा है, जिनके लिए हिंदी में भी शब्द सहज रूप से उपलब्ध हैं और साधारण पाठक भी इन शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग करता है।इस प्रकार अंग्रेजी के शब्दों की

जबरन घुसपैठ से न केवल वाक्य विन्यास बिगड़ता है अपितु भाषा शिल्प और भाषा का संस्कार भी बिगड़ता है और सबसे बड़ी बात यह है कि पाठक जिन शब्दों का दैनिक जीवन में स्वाभाविक प्रयोग करता है, वह उन शब्दों से भी दूर हो जाता है।

कभी–कभी समाचार पत्रों में प्रमाद के कारण भी वर्तनी संबंधी अशुद्धियां रह जाती है। जैसे 'वह भगवान के भोग लगा कर ही भोजन करता है। डॉक्टरों ने महिला के पेट की शल्यक्रिया कर 5 किलो की गांठ निकली। तेंदुआ तड़पता रहा परंतु उसकी दहाड़ के बाद भी कोई वनकर्मी झांकने तक नहीं आया।

हिंदी व्याकरण के नियमानुसार शब्द के अंत की 'ई' बहुवचन में 'इ' बन जाती है लेकिन समाचार पत्रों में सामान्यतः यह परिवर्तन नहीं किया जाता है। जैसे भाइयों की लड़ाई में पिता की मौत। आखों की झाइयों की समस्या के लिए इस नुस्खे का प्रयोग करें।' कभी–कभी समाचार पत्रों में कारक चिन्ह और विभक्तियों का लोप कर दिया जाता है। जिससे पाठक समाचार को समझ ही नहीं पाता और अर्थ का अनर्थ हो जाता है, जैसे– बालिका बालश्रम से मुक्त करवाया।

अंग्रेजी शब्द का हिंदी विभक्ति के अनुसार प्रयोग देखा गया है कि समाचार पत्र की भाषा में बहुत सारे शब्द अंग्रेजी के प्रयोग किए जाते हैं। लेकिन वाक्य बनाते समय उसमें विभक्ति लिंग और वचन के प्रयोग पर ध्यान नहीं देते । समाचार पत्रों की भाषा शैली में भी निरंतर परिवर्तन आता गया है । पहले वर्तनी में नासकिय ध्वनियों, अनुस्वार की बजाए पंचाक्षर का प्रयोग दिखाई देता था। जैसे– पंच, परंतु आजकल ध्वनियों एवं अनुस्वारों का प्रयोग किया जाता है। आज समाचार पत्रों की भाषा में जनसामान्य द्वारा बोले जाने वाले शब्द भी धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे हैं, जैसे पहनने की जगह 'पहरने' में खाने की जगह 'खावें' आदि।

समाचार पत्रों की भाषा मुख्यतः बोलचाल की भाषा है जिसमें मेट्रो शहर की भाषा भी है जो मुख्यता हिंदी नहीं है, 'हिंग्लिश' है। इसमें अंग्रेजी, भाषाओं के शब्द भी समाहित हैं। यह शब्द लोगों में मानक होकर प्रचलित भी हैं, परंतु प्रचलित किए किसने ? आज सभी समाचार–पत्र ज्यादा मुनाफा कमाने के चक्कर में और अधिक बिकने की अंधी दौड़ में हिंग्लिश का प्रयोग भी करते हैं जो हमारी गुलामी की मानसिकता, को इंगित करती है। आज अखबारों की सुर्खियां चुटीली, मुहावरेदार और अंग्रेजी की छौंक लिए होती है। जिसके कारण कई बार तो शीर्षक और खबर में तालमेल बैठाना भी कठिन हो जाता है। भाषा का यह प्रयोग अनायास रुप से नहीं आया है अपितु एक खास उभर रहे उपभोक्ता वर्ग को केंद्र में रखकर इस तरह की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया जा रहा है।

उदारीकरण, बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के इस वर्ग की आय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है । यही वर्ग खुद को इस भाषा में अभिव्यक्त कर रहा है। इस प्रकार आज समाचार–पत्रों से भाषा का संप्रेषण जिस तीव्र गति से हमारे तक पहुंच रहा है, वह बहुत ही भयावह है।एक प्रकार ये हमारी भाषाई अस्मिता का प्रश्न है कि भाषा अपनी जड़ों से निरंतर विलग होती ज रही है ।और यह बिगाड़ का सिलसिला इतना गंभीर एवं भयावाह हो गया है कि यदि आने वाले वर्षों में इस समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं कि विश्व की पूर्णतया वैज्ञानिक और नंबर एक भाषा अपने मानकीकरण रूप को खो चुकी होगी।भाषा के इस बदलते हुए स्वरुप का कोई एक कारण नहीं है, अपितु विदेशी भाषा के प्रति हमारी मानसिक गुलामी, भाषा के मानकीकरण, स्वरूप एवं व्याकरण के अल्पज्ञान और उदारवाद के बढ़ते प्रभाव ,सूचना प्रौद्योगिकी एवं भूमंडलीकरण जैसे कई कारण है।आज हमें जो भाषा सुनाई देती है, वह आदमी को अपने साथ जोड़ नहीं पाती।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी समाचार– पत्रों के पाठकों, लेखकों, संपादकों और समाचार

पत्र–पत्रिकाओं को मिल बैठकर अपनी भाषा और उसकी पत्रकारिता के सामने आ रहे संकटों पर बातचीत करनी चाहिए।इन समाचारपत्रों के मालिकों और संचालकों को सोचना चाहिए कि उनकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी हिंदी पाठकों में रुचि जागृत कर और भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर उसके व्याकरणिक स्वरूप को सुनिश्चित करने की है, जिससे भाषा अपने शुद्ध रूप में हमारे सामने आ सके।

संदर्भ ग्रंथ

- जगदीश्वर चतुर्वेदी, मीडिया समग्र, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
- धूलिया, सुभाष, सूचना क्रान्ति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली
- हरमन, एडवर्ड एस और मैकचेस्नी, रोवर्ट डब्ल्यू, (अनु.), चंद्रभूषण, भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूजींवाद के नए प्रचारक, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली
- जगदीश्वर चतुर्वेदी, माध्यम साम्राज्यवाद, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जगदीश्वर चतुर्वेदी, टेलीविजन संस्कृति और राजनीति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जोड, सी.ई.एम., इंट्रोंडकशन टु मॉडर्न पोलिटिकल थ्योरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई
- भारतीय विज्ञापन में नैतिकता – मधु अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
- आऊट लुक साप्ताहिक – 16 अक्तूबर 2006
- भूमंडलीय ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990
- कुमुद शर्मा, विज्ञापन की दुनिया – नटराज प्रकाशन, 2006
- जमाल, अनवर, चटर्जी, साइबल, हॉलीवुड बॉलीवुड वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

❑❑

35

'यशोधरा' : प्रवृत्तिमार्ग की स्वस्थ विचारणा का प्रतीक

डॉ0 सुजाता चतुर्वेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर

''आदि पुरुष, आदि नारी– एक दूसरे को अनिमेष देख रहे थे। नारी ने सहास्य पूछा, ''यों क्या देखते हो मेरी ओर?'' पुरुष ने कहा, ''तुम्हारे भीतर नारीत्व खोज रहा हूँ। और तुम'' ''मैं भी तुम मे। पुरुषत्व ढूँढ़ रही हूँ।'' काल विहंग अपने कृष्ण और शुक्ल पंखों को फड़फड़ा कर हँसा। ''कितने भोले हो। कौन किसमें किसको खोजता है। वस्तुतः एक दूसरे में तुम अपने को ही खोज रहे हो।''

निस्संदेह नारी और पुरुष की यह पारस्परिक खोज सनातन है, शाश्वत और चिरन्तन है और इस पर भी नित नवीन है, चिर ज्ञेय है क्योंकि यह खोज उनकी स्वयं की आत्मसत्ता की खोज है, अपने अहम् के साक्षात्कार की चेष्टा है। युगों से नारी और पुरुष एक तराजू के दो पलड़ों की तरह कभी ऊपर कभी नीचे होते रहे किन्तु इनकी सत्ता सदैव एक दूसरे से ही पूर्ण रही। इस तराजू में पुरुष का पलड़ा जहाँ युग–युगान्तर से भारी से भारी होता चला गया। वहीं नारी का पलड़ा भारी से कम और कम से न्यून होता चला गया। वैदिक युग की सहचरी नारी रामायण में ''छायेव अनुगता सदा'' और महाभारत में चल सम्पत्ति बनकर रह गई।

नारी की इसी हीन, कुंठित और लुंठित स्थिति का अवलोकन कर सुकोमल अनुभूतिपूर्ण कवि का हृदय द्रवित हो उठा और उसने नारी को पुनः सम्मान व आदर के स्थान पर प्रस्थापित करने का निश्चय किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अद्भुत लेखनी ने अदम्य साहस और निर्भीकता से समाज की जर्जर तथा म्रियमाण श्रृंखलाओं के पाश से नारी को मुक्त करने का प्रयास किया और सफल भी हुआ। उन्होंने 'साकेत' की उर्मिला, 'यशोधरा' की गोपा और 'द्वापर' की विष्णुप्रिया के माध्यम से नारी को विस्मृति के घने तमसपूर्ण कोहरे से बाहर निकालकर उसे पुनः प्रेम, करुणा, आदर, सम्मान और स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति बनाया। भारतीय पुनरुत्थान के वैचारिक आंदोलन का एक प्रमुख आयाम नारी–गौरव के रूप में प्रकट हुआ। गुप्त जी की चेतना पर पुनर्जागरण की नारी–संबंधी विचारधारा का बहुत गहरा एवं व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। उनके संस्कारी वैष्णव हृदय में नारी के संबंध में मनु की निम्न उक्ति का भाव सहज ही रहा होगा– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।''

'साकेत' की उर्मिला ने कपिलवस्तु की यशोधरा के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। अन्य कवियों द्वारा उपेक्षिता एवं भारतवासियों की स्मृति में व्यक्तित्व विहीन होकर जीती चली आ रही यशोधरा के चरित्र का चिंतन करने के क्रम में उसके नारीत्व की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता का भाव गुप्त जी की चेतना में प्रबल हो उठा। 'यशोधरा' की भूमिका में अपनी इसी मनःस्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है–

''हाय! यहाँ भी वही उदासीनता! अमिताभ की आभा में ही उनके भक्तों की आँखे। चौंधिया गई और उन्होंने इधर देखकर भी न देखा। सुगत का गीत तो देश–विदेश के कितने ही कवि–कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतंत्र–सत्ता और महत्ता देखकर मुझे शुद्धोदन के शब्दों में यही कहना पड़ता है कि ''गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।''

यशोधरा उर्मिला के चरित्र का ही स्वाभाविक विकास है। यशोधरा के माध्यम से कवि ने नारी–समस्या पर अनेक ऐसे संकेत देने तथा अनेक ऐसी बातें कहने का सुयोग निकाल किया है जिनके लिए उपयुक्त अवसर उसे 'साकेत' में नहीं मिले थे। नारी का महिमामय रूप गुप्त जी ने यशोधरा के आत्मदर्पमय रूप द्वारा प्रस्तुत किया है।

जीवन की उत्थानशील प्रवृत्तियों से उसे अनुप्राणित किया है। त्याग और सहिष्णुता ने यशोधरा की प्रेममयी करुण प्रतिमा में भारतीय नारीत्व के सांस्कृतिक आदर्श की प्राण–प्रतिष्ठा की।

पत्नी के रूप में यशोधरा गौतम के महान् लक्ष्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते हुए भी अपने नारीत्व को इस बात से तिरस्कृत और अपमानित अनुभव करती है कि उसके पति चोरी–चोरी गए, उन्होंने उसे सहधर्मितापूर्ण सहयोग प्रदान करने का अवसर ही न दिया–

''सिद्धि–हेतु, स्वामी गये, यह गौरव की बात;
पर चोरी–चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ–बाधा ही पाते?''

यशोधरा के नारीत्व के प्रति, उसकी स्वतंत्र विवेकशीलता के प्रति गौतम की आस्थाहीनता में उसके मन में एक तनाव पैदा कर दिया। गौतम ने उसके दैहिक अस्तित्व को ही नहीं ठुकराया वरन् उसके आत्मिक अस्तित्व को भी उपेक्षणीय माना। इस आघात से व्यथित हो वह पूछ उठी कि'–

''किंतु अन्तरात्मा भी मेरा था क्या विकृत–विकारी'' गर्विणी यशोधरा गंभीरतापूर्वक गौतम के महामिनिष्क्रमण के सभी पहलुओं पर विचार करती है–

''मैं अबला! पर वे तो विश्रुत वीर–बली थे मेरे,
मैं इंद्रियासिक्त! पर वे कब थे विषयों के चेरे?''

यशोधरा ने अपने विरह को बड़ी वीरता से झेला। विरह के उमड़ते हुए असीम सागर में असह्य वेदना को सहन करते हुए भी यशोधरा का हृदय दीन नहीं है, उसमें नारी सुलभ दौर्बल्य नहीं अपितु दृढ़–स्वाभिमान है, जातीय गौरव है। किन्तु विरहाकुल होकर यशोधरा अपने सुंदर केशों को भी काट डालती है–

''जाओ मेरे सिर के बाल।''

गुप्त जी का संवेदनशील हृदय नारी की इस विवश अवस्था से द्रवीभूत हुआ था–

अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

सभी ऋतुओं में यशोधरा को प्रिय का आभास मिलता था। कहीं वर्षाकालीन धारा में से प्रियतम दृष्टि बरसती दिखाई देती थी–

''अरी वृष्टि ऐसी ही उनकी दया–दृष्टि रोती थी।'' तो कहीं पतझड़ देखकर वह सोचती थी कि उसके स्वामी का त्याग देखकर ही पेड़ों ने पत्ते त्याग दिए–

''पेड़ों ने पत्ते तक उनका त्याग देखकर त्यागे।''

वियोगिनी यशोधरा के जीवन में आद्यंत दो भावनाएँ साथ–साथ चलती हैं– अनुराग और मान। प्रिय वियोग में उसके नेत्रों से प्रवाहित होने वाली तरल अश्रु–धारा के नीचे स्वाभिमान की सुदृढ़ चट्टान भी है – श्री गिरिजादत्त शुक्ल के शब्दों में–

''यशोधरा के हृदय में पीड़ा के प्रबल झोंके आते हैं किन्तु उनमें इतना बल नहीं कि उसके पैर उखाड़ सके, प्रियतम जो उसकी उपेक्षा करके चले गये हैं, यह बात उसके कलेजे में काँटे की तरह खटकती रही।''

किन्तु पत्नीत्व के आधार पर यशोधरा अपने पति की उद्देश्य सिद्धि में परित्यक्ता होने की वेदना सहकर भी हृदय से पूरी तरह उनके साथ है। वह उनके सिद्धि लाभ की कामना ही नहीं करती, अपितु अपने महान् आध यात्मिक पुरुषार्थ के लक्ष्य के कारण गौतम उसके लिए अधिक प्रिय बन जाते हैं–

''जाएँ सिद्धि पाएँ वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से
उपालंभ दूँ मैं किस मुख से, आज अधिक वे भाते।''

यदि एक ओर यशोधरा विरहिणी पत्नी है तो दूसरी ओर राहुल की वात्सल्यमयी माँ भी है। यदि पति वियोग से पीड़ित उसके हृदय में मृत्यु की आकांक्षा है तो पुत्र प्रेम के लिए जीवित रहने की विवशता भी–

''स्वामी मुझको मरने का भी न दे गए अधिकार,
छोड़ गए मुझ पर अपने राहुल का सब भार।''

दूसरी आँख से पुत्र–संयोग में हँसती है–

''गोपा गलती है पर राहुल तो पलता है।''

नारी का मातृत्व उसके पत्नीत्व की अपेक्षा कहीं अधिक सात्विक, उदात्त व उज्ज्वल होता है। गौतम नारी के पत्नीत्व का तिरस्कार करके भले ही चले गए हों, किन्तु उसके मातृत्व का तिरस्कार करने की सामर्थ्य उनमें नहीं। यशोधरा में उदार पातिव्रत्य के साथ उदात्त मातृत्व और प्रदीप्त नारीत्व एकत्र समन्वित हैं।

यशोधरा के व्यक्तित्व के गांभीर्य का एक कारण उसकी चिंतनशीलता भी है। कवि ने यशोधरा के दार्शनिक चिंतन के भीतर से हिंदुत्व के प्रवृत्तिमार्गी रूप के दर्शन करवाए हैं। यशोधरा के मत में जीवन की उपेक्षा करके मुक्ति खोजने का प्रयास व्यर्थ है। जब तक बीज (आत्मा) का अस्तित्व है, हम सार्थक हैं। निरर्थक तो हम तभी होते हैं जब हम बीज में विश्वास करना छोड़ देते हैं (अनात्मवाद पर चोट)। प्रवृत्ति मार्ग की लोककल्याण साधना निवृत्तिमूलक मोक्ष–साधना से कहीं श्रेष्ठ है–

''है नारीत्व मुक्ति में भी तो अहो विरक्ति विहारी।''

यशोधरा के चरित्र द्वारा गुप्त जी ने अपनी नारी–भावना को आधुनिकता से अनुप्राणित किया है। यशोधरा द्वारा उन्होंने जीवनास्था का आशावादी स्वर और स्वस्थ विचारणा अभिव्यक्त की है। नारी की सत्ता और महत्ता का उद्घोष करके उससे दूर भागने को जीवन की एकांगिता माना गया है। गुप्त जी ने जीवन की सुख–साधना को ही महत्व न देकर दुख–भोग द्वारा ही उसकी पूर्णता लक्षित की है–

''होता सुख का क्या मूल्य जो न दुख रहता।''

'भव भावे और उसे मैं भाऊँ' का आदर्श और 'नर से नारायण' होकर करुणामृत वितरित करने का लक्ष्य गुप्त जी के मानवतावाद के ही उपकरण हैं। बीसवीं शती की नारी जो अपनी सामाजिक महत्ता के प्रति पूर्णतः सचेत है और वह जानती है कि समाज की इकाई का वह भी सचेष्ट एवं महत्वपूर्ण अर्द्धांग है, गुप्त जी की यशोधरा के स्वर में स्वर मिलाकर कहेगी–

''उसमें मेरा भी कुछ होगा।
जो कुछ तुम पाओगे।''

यशोधरा का अत्यंत स्वाभिमानपूर्ण रूप गुप्त जी ने प्रस्तुत किया है और स्वाभिमान भी ऐसा जिससे बुद्ध के प्रति उसकी श्रद्धा को कोई आँच नहीं पहुँचती। शुद्धोदन ने जब मगध जाकर बुद्ध से मिलने का प्रस्ताव यशोधरा के सामने रखा तो उसका आत्माभिमान जाग उठा–

''किंतु तात् उनका निदेश बिना पाए मैं,
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी।''

कुल–ललना का यह शील गुप्त जी ने विष्णुप्रिया में भी प्रकट किया है–

''कुल छोड़ा, ब्रज क्यों न छोड़ती, पर था कौन उपाय
उनका पीछा कर क्या उनकी हँसी कराती हाय!''

यह भाषा कुल–ललना की भाषा है किन्तु यशोधरा के भीतर लौह–सी दृढ़ता भी थी– अपने विरह के आरंभ में ही यशोधरा मन ही मन एक व्रत ठान चुकी थी–

''भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ हैं अब भी यह अभिमान।''

उस व्रत का आलोक पूर्ण रूप से उस समय प्रस्फुटित हुआ जब तथागत कपिलवस्तु पधार कर अपने पिता के घर गए। क्षण भर में सारा नगर उनके चरणों में जा गिरा– पर यशोधरा नहीं गई–

''गोपा वहीं है, छोड़कर उसको गए थे वे जहाँ।''

अंततः गोपा का मान रखने के लिए बुद्ध स्वयं उसके भवन में गए–

''मानिनि! मान तज लो, रही तुम्हारी बान।
दानिनि! आया स्वयं द्वार पर तव यह तत्रभवान।''

यह सुन सब मान त्याग शीघ्र यशोधरा प्रभु के स्वागतार्थ अधीर हो उठी–

''पधारो भव भव के भगवान,
रख ली मेरी लज्जा तुमने, आओ तत्र भवान।''

बुद्ध ने अपनी सिद्धि का समस्त श्रेय भी यशोधरा को ही दिया क्योंकि सिद्धि मार्ग में आने वाली बाधाओं का सामना करने के लिए वही उनकी प्रेरक शक्ति बनी थी। यहाँ गोपा को गौतम से ही उच्च स्थान की पदाधिकारिणी बनाया गया है। अन्त में यशोधरा भिक्षार्थ आए पति को अपने जीवन की संचित अमूल्य निधि 'राहुल' की भेंट देकर कृतार्थ होती है–

''तुम भिक्षुक बनकर आए थे, गोपा क्या देती स्वामी?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी।
मेरे दुख में भरा, विश्व सुख, क्यों न भरूँ मैं हामी
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।''

वस्तुतः अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति पूर्णतः सजग इस पौराणिक पात्र में गुप्त जी ने अपने युग की नवीनता का सुंदर समावेश कर एक पूर्ण नारी व्यक्तित्व के निर्माण का सफल प्रयास किया है। यशोधरा के भीतर मातृत्व की उज्ज्वलता गृहवधू की विनयशीलता और प्रबंधकुशलता एवं पत्नी की एकाग्र पतिपरायणता का अद्भुत संयोग है। किन्तु इन सबके ऊपर उसका कोमल–उज्ज्वल स्वाभिमान है जो समस्त नारी–जाति का मस्तक ऊँचा करता है। कवि दिनकर के शब्दों–''गोपा प्रशंसनीय ही नहीं पूर्ण रूप से श्रद्धेय है।'' पुरुष की एकांतिक साधना को सामाजिक जीवन की दृष्टि से अपूर्ण मानते हुए कवि ने नारी के महत्व की सशक्त व्यंजना की है। इस प्रकार यशोधरा के चरित्र द्वारा नारी की उच्चता व्यंजित करना ही गुप्त जी का काव्योद्देश्य था तथा इसी के माध्यम से उनकी नारी–भावना को सार्थक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है– यथा–

''दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी
भूत–दया–मूर्ति वह मन से, शरीर से''

❑❑

भारतीय संस्कृति के बदलाव व विकास में विष्णु प्रभाकर का अवदान

डॉ. दमयन्ती देवी
असि. प्रो.
उदय प्रताप सिंह महाविद्यालय, फतेहपुर

नाट्य साहित्य दृश्य काव्य है अतः इसकी प्रभविष्णुता श्रव्य काव्य की अपेक्षा अधिक होती है। नाट्य इस प्रकार का काव्य उपादान है, जिसके अन्तर्गत रचनाकार जीवन–जगत की जिन विविधताओं का चित्रण प्रस्तुत करता है। वे अभिजात वर्ग के साथ–साथ सामान्य वर्ग को भी रंग मंचीय प्रस्तुतीकरण द्वारा प्रभावित करता है, उनका मार्ग दर्शन करती है, उनमें जीवन के प्रति आस्था, विश्वास जगाती है। नाट्य साहित्य की इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया में अतीत एवं वर्तमान दोनों के स्वरूपांकन का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। रचनाकार इसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए पौराणिक एवं सांस्कृतिक चेतना के गौरवशाली पक्ष को सामने रखकर अपने अभीष्ट की पूर्ति करता है। इस प्रकार की संवेदनात्मक प्रस्तुति में अनेक तत्व क्रियाशील रहते हैं। इनमें प्राचीन सांस्कृतिक गौरव सर्वप्रमुख है।

विष्णु प्रभाकर जी अपने पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित रचनाकारों की भॉति बौद्ध–संस्कृति की विशेषताओं से आकृष्ट हुए। उन्होंने अपने 'नव–प्रभात' नाटक का मूलाधार 'अशोक' को बनाया। यह चयन नितान्त आकस्मिक नहीं था, इसके लिए उन्होंने 'नवप्रभात' नाटक के आमुख में पुष्ट कारण का उल्लेख स्वयं इस प्रकार किया हैं – कुछ वर्ष पूर्व आकाशवाणी के दिल्ली स्टेशन के नारी विभाग रेडियो रूपकों का एक क्रम शुरू किया गया था। उसका शीर्ष था – 'मैं भी मानव हूँ' और उसका उद्देश्य पुरातन इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवन–झांकी देते हुए यह बताना था कि उन्होंने कुछ भी क्यों न किया हो` थे मानव। अशोक उन व्यक्तियों में सर्वप्रथम था और उस पर मुझे लिखना था।

नाटककार ने अपने पात्रों के माध्यम से दान देने की प्रथा को दर्शाया है, जो प्राचीन संस्कृति की चर्चा हुई है। इस नाटक की कथावस्तु इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। बालादित्य और फिर यशोधर्मन के प्रयत्नों के बावजूद देश में स्थाई शक्ति स्थापित न हो सकी, बल्कि कुछ ऐसी राजनैतिक और सामाजिक कुरीतियाँ पनप उठीं, जिन्होंने आगे चलकर देश की न केवल राजनैतिक शक्ति को दुर्बल किया बल्कि सभ्यता और संस्कृति को भी विकृत कर दिया – हिन्दू संस्कृति में संकोच का आरम्भ हो गया था। यद्यपि हूणों को आर्यों ने अपने में मिलाकर क्षत्रियों का पद दिया पर साथ ही रक्त–शुद्धि की भावना बलवती हो उठी। इसलिए अन्तर्जातीय विवाह और दूसरे पारस्परिक संबंधों की बात पीछे छूटने लगी। यह सब जाति भेद के दोष के कारण हुआ।

कला–साहित्य की भी नाटक में चर्चा आई है। वाकाटक– गुप्त युग की सभ्यता और संस्कृति भारत के स्वर्ण–युग की सभ्यता और संस्कृति है। इस युग में कला और साहित्य ने जो उन्नति की वह भारत के इतिहास में अद्वितीय है। इस नाटक का कवि बार–बार सांस्कृतिक दिग्विजय का दावा पेश करके भी विलासिता का विरोध करता है। वह जितनी कुशलता से कविता कर सकता है, उतनी खूबी से तलवार भी चला लेता है।

इसके बाद विष्णु जी ने अपने ऐतिहासिक व सांस्कृतिक नाटक 'गंगा की गाथा' में प्राचीन संस्कृति व उसके गौरव को दर्शाया है। विष्णु जी ने स्वयं गंगा के माध्यम से हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्त किया है – मुस्लिम सम्राट तुगलक, अकबर और औरंगजेब मेरे पास रहते हों या दूर मेरा जल बराबर पीते थे। मेरे किनारे पर ही शेरशाह ने माल बन्दोबस्त का क्रम चलाया था और सौन्दर्य की रानी नूरजहाँ तो मेरे किनारे पर ही आकर रहा करती थी। बड़े–बड़े विद्वान मेरे तट पर प्रेरणा प्राप्त करने आया करते थे। प्रतिभा पुंज शंकर सारे भारत में

डंका बजाते हुए घूमे, पर शान्ति उन्हें मेरे ही तट पर मिली। रामानन्द, कबीर, रैदास की वाणी आज भी मेरी तरंगों को तरंगित करती रहती है।

फिर एक नई संस्कृति इस देश में आई। मैंने अपने किनारे पर कलकत्ता की महानगरी को धीरे–धीरे उठते देखा। उसी के साथ देखा अंग्रेजों के साम्राज्य को पनपते। मेरे काण्ठे में एक नई रोशनी फैलने लगी। राम मोहन राय से लेकर दयानन्द तक को मैंने अपने किनारे नए सुधारों का उद्घोष करते देखा। मैंने हरिश्चन्द्र को हिन्दी भाषा का निर्माण करते देखा। मैंने सदा से भारत को राष्ट्भाषा दी। मेरे ही अंचल में रवीन्द्र की कविता और अवनीन्द्र की कला जागृत हुई। मैंने स्वतंत्रता–संग्राम के रोमांचक दृश्य देखे। मैंने विज्ञान को अपनी छाती चीरते देखा और अब देख रही हूँ नए भारत का निर्माण, जो ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वय का नया रूप है। जो व्यक्ति इस युग में विषाक्त बमों से त्रस्त विश्व को अंहिसा और प्रेम का पाठ पढ़ा गया है वह भी मेरी ही गोद में पल्लवित हुआ।

स्वतंत्रता के बाद कई क्षेत्रों में बदलाव हुए हैं। नई संस्कृति व सभ्यता ने समाज को नए आयाम दिए हैं। नारी की पारिवारिक स्थिति में भी परिवर्तन हुए हैं। जीवन मूल्य बदले जरूर हैं, भले ही वह बदलाव हमें रसातल की ओर ले गया हो। बदलाव किसी दबाव के कारण आता है। कुछ दबाव ऐसे भी हैं जिनके कारण नारी मुक्ति के इस युग में भी वह असहाय बनकर रह गई है। उन दबावों में एक दबाव अधिक भी है। अभी कुछ दिन पहले तक बेटी पर परिवार के पोषण का दायित्व होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। पिता के बाद पुत्र को यह कर्त्तव्य था, पर आज परिस्थिति बदल गई है।

विष्णु जी ने अपने नाटक 'टूटते परिवेश' में संयुक्त परिवार को एकांकी परिवार में हुए बदलाव को दर्शाया हैं। आधुनिक युग का प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग दुनिया बसाना चाहता है। बड़े–बुजुर्गों का साथ उन्हें पसन्द नहीं, प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को वह ढकोसला व अंध विश्वास मानते हैं। टूटते परिवेश की दीप्ति कहती है – 'यह सब बुर्जुआई भाषा है। इसका युग अब बीत गया है। भला राजनीति का सिद्धान्तों से, धन का परिश्रम से, आनन्द का आत्मा से, ज्ञान का चरित्र से, व्यापार का नैतिकता से, विज्ञान का मानवीयता से और पूजा का त्याग से क्या सम्बन्ध है'।

वर्तमान पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी से प्रतिशोध की भावना से अपने विचारों को रखते हैं। उन्हें बुजुर्गों की भावनाओं की कोई आवश्यकता नहीं वे स्वयं सारे अधिकार पाना चाहते हैं, किसी का हस्तक्षेप उन्हें पसन्द नहीं। आधुनिक युग का व्यक्ति अपनी ही परेशानियों में इतना उलझा रहता है कि उसे परिवार के किसी भी सदस्य की परेशानियों के लिए जरा भी समय नहीं मिलता है। यही है युग की संस्कृति।

प्रत्येक सदस्य अपनी जिन्दगी के बारे में सोचता है उसे किसी और की परवाह नहीं रहती है। इस नाटक की दीप्ति कहती है – 'अपनी जिन्दगी तबाह हो गई तो क्या दूसरा दे देगा। जिन्दगी किसी के लिए नहीं होती। वह सिर्फ अपने लिए होती है, होनी चाहिए।' आज के युग में पैसों की महत्ता अधिक है। पैसों के पीछे व्यक्ति अन्धे हो जाते हैं। पैसे ही सारी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। अतः आधुनिक युवा वर्ग को परिवार की अपेक्षा पैसों की अधिक आवश्यकता है। पैसों के लिए वे कहीं भी जा सकते हैं कुछ भी कर सकते हैं।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपने नाटक 'लिपस्टिक की मुस्कान' में हास्य–व्यंग्य प्रधान शैली में एक ऐसी आधुनिक नारी का चित्र खींचा है, जो भारतीय संस्कृति को पुरानी परिपाटी और रिश्ते–नातों को दकियानूसी समझती है और झूठे भुलावे में डूबी रहती है। इस नाटक की रीता के लिए पति व बच्चा एक मजबूरी बन जाती है, जिससे वह छुटकारा पाकर स्वतंत्र जीवन यापन करना चाहती है। वह अपने बच्चे को इस प्रकार डॉटती है जैसे कोई नौकर हो। वह अपने पति राकेश से कहती है– 'सारी ड्रेस खराब कर दी। आज मेकअप पर सचित्र भाषण था। आया इतना भी नहीं समझती कि बेबी किस वक्त मेरे पास आना चाहिए। इस वक्त उसे छोड़ दिया और वह आकर मुझसे

चिपक गया।' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वातंत्रोत्तर नव्य संस्कृति में पूर्व संस्कृति की अपेक्षा कई क्षेत्रों में बदलाव आया है भले ही यह बदलाव अच्छाई के लिए आया हो या बुराई की ओर।

पहले के संयुक्त परिवार अब एकांकी परिवार के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। कारण कि जीविकोपार्जन हेतु लोगों को गाँवों से शहर की ओर और शहर से महानगरों की ओर पलायन करना पड़ता है। अतः उसका परिवार भी साथ आ जाता है। अतः संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। टूटते परिवेश इसका अच्छा उदाहरण हैं। दूसरे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में भी परिवर्तन हुए हैं। यहाँ के रीति–रिवाज परम्पराओं आदि में कमी आई है क्योंकि इस भागदौड़ व एकाकी परिवार में यह सब सम्भव हो पाना कठिन प्रतीत होता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की समस्या जड़ पकड़ती जा रही है, इसका उदाहरण कितना गहरा कितना सतही में भली प्रकार हो जाता है। 'कमल और कैक्टस' में भी इसी समस्या को दर्शाया गया है।

आधुनिक युग के युवा वर्ग में बुजुर्गो के प्रति आदर व सम्मान की भावना लुप्त होती जा रही है उनके अन्दर एक प्रकार की विद्रोह की भावना पनपती जा रही है। जैसे उनके अभिभावक उनके दुश्मन हों 'टूटते परिवेश' के विवेक व दीप्ति इसी भावना के शिकार हैं। वे सारे अधिकार सारे निर्णय स्वयं करना चाहते हैं। किसी का भी हस्तक्षेप उन्हें स्वीकार नहीं।

समाज में गन्दी राजनीति व भ्रष्टाचार प्रचुर मात्रा में फैल चुका है एक दूसरे के प्रति अपनत्व की भावना समाप्त होती जा रही है। एक दूसरे के सुख–दुख में शामिल होना मात्र औपचारिकता होती जा रही है। हर कोई अपने में ही व्यस्त है। किसी दूसरे की परवाह किसी को नहीं है। भारतीय संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति के प्रलोभन में स्वयं को ढालना ही आज की पीढ़ी का मुख्य उद्देश्य रह गया है। 'लिपस्टिक की मुस्कान' इसका प्रमुख उदाहरण है।

साहित्यकार का यहाँ निरन्तर नया बने रहना और समाज की धड़कनों को पहचानना और समझना उसे जीवन्तता और सार्थकता प्रदान करता है। नयी पीढ़ी और समकालीन रचना–संसार से विष्णु जी की इस सम्बद्धता ने जहाँ उन्हें पवित्र उज्ज्वल एवं 'मंगलमयी मूर्ति' के रूप में लोकप्रिय बनाया, वहीं सत्ता – प्रतिष्ठानों से दूर रहकर वे अपने संघर्षशील चरित्र एवं शील को सुरक्षित रखने में सफल हुए। उनके इस व्यक्तित्व ने उनके साहित्य को भी उसी रूप में संघर्षशील तथा मंगलमय बनाकर महिमामण्डित कर दिया है। समाज के प्रति चिंता पर दुःख कातरता उन्हें एक महान स्मरणीय एवं जीवन्त साहित्यकार कर दिया है। समाज के प्रति चिंता पर दुःख कातरता उन्हें एक महान स्मरणीय एवं जीवन्त साहित्यकार बनाने के लिए पर्याप्त है। विष्णु जी का व्यक्तित्व ही हमारे समाज की एक जीवन्त निधि की साकार सृष्टि है। हमारे वर्तमान और भविष्य में भी, हमें पूर्ण विश्वास है, यह सृष्टि हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय निधि बनी रहेगी।

❑❑

श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म की संकल्पना

डॉ0 प्रीति राठौर
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मविद्या या ज्ञानकाण्ड तथा योगशास्त्र या कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग यां सांख्ययोग का विवेचन किया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस योगशास्त्र को कर्मयोग शास्त्र के रूप में परिभाषित किया है, वह कर्म शब्द परमार्थिक रूप से धर्म का वाचक है अथवा श्रीमद्भगवद्गीता में आये कर्म एवं धर्म शब्द परस्पर समानार्थी या एक ही अर्थ को बताने वाले हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म शब्द को कर्म या कर्त्तव्य का वाचक माना है, जैसा कि स्पष्ट होता है –

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।[1]
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।[2]

धर्म मानवजाति का पथ प्रदर्शक है। धर्म अपने मौलिक कर्मकाण्ड के द्वारा पाशविक प्रवृत्ति के मनुष्य को मानवी पुरुष के रूप में विकसित करने का प्रयत्न करते हैं। धर्म के विशय में कहा गया है –

यतोऽभ्युदयानिश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।[3]

धर्म शब्द अंग्रेजी भाषा का रिलीजन मात्र नहीं है। इस शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुयी है जिसका अर्थ है – धारण करना। इस प्रकार धर्म शब्द का अर्थ हुआ – जिसके द्वारा कोई वस्तु पूर्णरूप से धारण की हुयी रहती है। – ''धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजा।'' उदाहरणार्थ – अग्नि का धर्म उश्णता है तथा सूर्य का धर्म प्रकाश है। उश्णता के बिना अग्नि का अस्तित्व एवं प्रकाश के बिना सूर्य का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है। धर्म वह साधन या कला है जिसके द्वारा मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ बौद्धिक योग्यता प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व की रचना एवं उसमें स्वयं के निश्चित स्थान को समझ सकता है। मीमांसा दर्शन के अनुसार शास्त्र सम्मत कर्म ही धर्म कहलाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता धर्म को दो रूपों में प्रस्तुत करती है। प्रथम धर्म सामान्य के रूप में एवं द्वितीय धर्म विशेश के रूप में। सामान्य धर्म उन धर्मों को कहते हैं, जो मानव मात्र को करने चाहिये। आचार्य मनु ने चारो वर्णों के लिये जो सामान्य धर्म बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं :–

क्षमा दमो दया दानम्, अलोभत्याग एव च।
आर्जवं चानसूपा च, तीर्थानुसरणं तथा।।
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यं, श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः।
देवताभ्यर्चनं पूजा, ब्राह्मणानां विशेशतः।।
अहिंसा प्रियवादित्वं अपैशुन्यमकल्कता।
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ष्येऽब्रवीन्मनुः।।[4]

उपर्युक्त सामान्य धर्म आचार्य मनु ने प्रतिपादित किये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इनको तीन वर्गों में बाँट कर यज्ञ, दान एवं तप कहा गया है। इन सामान्य धर्मों का पालन करने से व्यक्ति एवं समाज दोनों का हित होता है तथा व्यक्ति का समाज के साथ अच्छा सामंजस्य भी रहता है। मनुष्य शरीर से निरोग एवं स्वस्थ रहता है और

अपने मन को शान्त एवं सन्तुलित रखकर आनन्द प्राप्त कर सकता है। उसकी बुद्धि इतनी विकसित हो सकती है कि वह इन धार्मिक कर्मों को करके आध्यात्मिक विकास की प्राप्ति कर सकता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित प्रयोग श्रीमद्भगवद्गीता में धर्मसामान्य के परिप्रेक्ष्य में किये गये हैं :–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[5]
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।[6]
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।[7]

'स्वभावज' कर्म स्वधर्म या विशेष धर्म ही है, क्योंकि मनुष्य के धर्म उसके अपने स्वभाव से निर्धारित होते हैं। स्वधर्म को 'कर्त्तव्य कर्म'[8], 'सहज कर्म'[9] एवं 'नियत कर्म'[10] कहा गया है। स्वधर्म का निर्धारण मनुष्य के वर्ण एवं आश्रम के आधार पर होता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने गुण–स्वभाव के कारण वह जिस वर्ण का है उसे अपने वर्ण के अनुसार ही कर्म करना चाहिये। वही उसका स्वधर्म है। उसी का पालन करने से ही उसकी वासनायें क्षय होंगी और उसका आत्मविकास हो सकेगा। एक शूद्र भी अपने स्वधर्म के अनुसार कर्म करता हुआ अपना आत्मविश्वास कर एक दिन परमात्मस्वरूप हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। चारो वर्णों के स्वाभाविक कर्म इस प्रकार हैं:–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्य वैश्वकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।[11]

उपर्युक्त श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वभावज् शब्द का प्रयोग चारो वर्णों के कर्म को बताने के लिये किया है। उनका कथन है कि मैनें ही गुण एवं कर्म के आधार पर चारो वर्णों का विभाजन किया है। अतः हम मनुश्यों को शास्त्र का आश्रय लेकर अपना स्वधर्म पहचानना चाहिये –

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।[12]

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि किसी को अपने वर्ण का कर्म दोषयुक्त प्रतीत हो, तो भी उसे अपना स्वधर्म ही करना चाहिये। व्यक्ति को अपने धर्म में दृढ़ता यहाँ तक होनी चाहिये कि यदि उसे युद्ध में मरना पड़े, तो भी उसके लिये उसे तैयार रहना चाहिये–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिशम्।।[13]

सम्यक् प्रकार से अनुष्ठित परधर्म की अपेक्षा गुणरहित स्वधर्म का पालन श्रेयष्कर है। स्वधर्म में मरण भी कल्याणकारक है, परन्तु परधर्म भय देने वाला है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तुम वनों में जाकर ध्यानाभ्यास करोगे, तो तुम कदापि सफल नहीं होगे, क्योंकि तुम क्षत्रिय हो। अतः तुम्हारा एकमात्र धर्म युद्ध करना है। युद्ध कर्म करने पर ही तुम कीर्ति को प्राप्त करोगे। जिस प्रकार धुयें से अग्नि आतृप्त रहती है, उसी प्रकार सभी कर्म दोश से आवृत्त रहते हैं। अतः मनुष्य को स्वकर्म या स्वधर्म नहीं त्यागना चाहिये –

सहजं कर्म कौनतेय सदोषमपि न त्यजेत।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।[14]

इससे स्पष्ट होता है कर्त्तव्य कर्म, सहज कर्म, नियत कर्म, करणीय कर्म श्रीमदभगवद्‌गीता में धर्म नाम से अनेक स्थानों पर व्यवहृत किया गया है। जैसा कि स्पष्ट होता है। श्रीमदभगवद्‌गीता का प्रारम्भ ही धर्म से होता है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[15]
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।[16]
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।[17]
धर्मविरुद्धों भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ्।[18]
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।[19]

अर्थात् युद्ध रूप कर्त्तव्य का क्षेत्र कुरुक्षेत्र ही धर्मक्षेत्र है। अतएव श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में आये धर्म के अधिकांश प्रयोग करणीय कर्म या कर्त्तव्य के अर्थ में प्रयुक्त हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता धर्म की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ है। जिस समय अर्जुन युद्ध क्षेत्र में अपने स्वजनों को देखता है, उस समय वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसी किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को धर्म में लगाने हेतु श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का पावन उद्‌घोष दिया गया है। इस उपदेश के प्रभाव से अर्जुन की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता दूर हो जाती है और वह कर्त्तव्य में या स्वधर्म के आचरण में संलग्न हो जाता है, जो श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का प्रयोजन है –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिश्ये वचनं तव।।[20]

अतः कहा जा सकता है कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता एक प्रवृत्तिपरक ग्रन्थ है, जिसका आरम्भ धर्म या कर्त्तव्य से होता है, जिसकी पराकाष्ठा धर्म, अधर्म एवं स्वधर्म की व्याख्या में या कर्म, अकर्म और स्वकर्म की व्याख्या में दिखायी देती है तथा जिसकी पूर्णता कर्त्तव्य या धर्म में प्रवृत्ति हो जाने से होती है। इसी प्रयोजन से ग्रन्थ में धर्म का बहुशः उल्लेख हुआ है और उसकी व्याख्या भी की गयी है। सम्पूर्ण कर्त्तव्य क्षेत्र का कोई भी व्यवहार तभी या उसी स्थिति में ही उचित माना जा सकता है जब वह धर्माविरुद्ध हो। दूसरे शब्दों में धर्म या कर्त्तव्य से अविरुद्ध कर्म ही उपादेय होता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृश्ण कहते हैं –

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।[21]

अर्थात् हे अर्जुन! मैं प्राणियों में धर्मानुकूल काम हूँ। इस प्रकार धर्मानुकूल या कर्त्तव्यानुकूल प्रत्येक कर्म उपादेय होता है। कर्त्तव्यानुकूल प्रत्येक वस्तु या क्रिया जब धर्म के क्षेत्र में आ जाती है तब वह मान भय से भी मनुष्य की रक्षा करती है। जैसा कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है –

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।[22]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि धर्म का मर्म समझना गीता का अभीष्ट है, जिसे धर्मसामान्य, धर्म विशेष, स्वधर्म, धर्म, स्वकर्म, कर्म विशेष आदि के व्याख्यान के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इन सभी धर्म के रूपों का पर्यावसान स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण में होता है। इसलिये समस्त धर्मों को भगवान् श्रीकृष्ण में समर्पित कर या उनका परित्याग कर परमात्मा के शरण में जाना चाहिये। इसलिये भगवान् श्रीकृश्ण कहते हैं –

सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[23]

श्रीमद्भगवद्गीता में आये धर्म के इन सभी प्रसंगों एवं विवेचनों से स्पष्ट होता है कि देश–काल एवं परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य सुनिश्चित या निर्धारित होता है, जो उसका धर्म कहलाता है। यह सामान्य रूप से धर्म कहलाता है एवं व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में स्वधर्म कहलाता है, जिसमें सबको अधिकृत किया गया है अर्थात् स्वधर्म पालन या कर्त्तव्य पालन सबको अधिकार के रूप में प्राप्त होता है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते या फलेषु कदाचन।
या कर्मफलहेतुर्भर्मा ते संड्गाऽस्त्वकर्मणि।।[24]

अस्तु श्रीमद्भगवद्गीता निश्काम कर्त्तव्य को धर्म या स्वधर्म के रूप में प्रतिपादित करती है, जिसमें फलासक्ति के लिये कोई स्थान नहीं होता है। निश्कर्शतः श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित धर्म से अभिप्राय प्रत्येक मनुश्य के अपने–अपने कर्त्तव्य से है जो कर्ताभाव, अहंकार एवं फल की भावना से रहित होता है तथा जिसमें स्वधर्मपालन या स्वकर्त्तव्यपालन में ही अधिकार भावना पायी जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित धर्म की यह व्याख्या सम्पूर्ण मानवजाति को मान्य है। यही कारण है कि यह ग्रन्थ देश, काल, जाति धर्म एवं सम्प्रदाय तथा वर्ग–विशेश से ऊपर उठकर सर्वस्वीकार्य बना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/35
2. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/35
3. वैशेषिक सूत्र – 1/2
4. सुभाषित रत्नसागर – 4/71, 72
5. श्रीमद्भगवद्गीता – 4/7
6. श्रीमद्भगवद्गीता – 4/8
7. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/40
8. श्रीमद्भगवद्गीता –18/9
9. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/48
10. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/8
11. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/42, 43, 44
12. श्रीमद्भगवद्गीता – 16/23
13. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/47
14. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/48
15. श्रीमद्भगवद्गीता – 4/7
16. श्रीमद्भगवद्गीता – 4/8
17. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/40
18. श्रीमद्भगवद्गीता – 7/11
19. श्रीमद्भगवद्गीता – 1/1

20. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/73
21. श्रीमद्भगवद्गीता – 7/11
22. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/40
23. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/66
24. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/47

सन्दर्भ

1. ध्वन्यालोक – प्रथम उद्योत–4
2. ध्वनि सिद्धान्त – लेखक – डॉ0 नगेन्द्र (भूमिका ध्वन्यालोक, सम्पादक – आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, पृ0–19)
3. काव्यप्रकाश – प्रथम उल्लास–2
4. ध्वन्यालोकलोचन – आचार्य आनन्दवर्धन एवं अभिनव गुप्त
5. पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्त और विविधवाद – डॉ0 ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़, पृ0–100
6. वही, पृ0सं0 – 101
7. ध्वन्यालोक – चतुर्थ उद्योत/15 कारिका
8. वक्रोक्तिजीवितम् – 1–7
9. काव्यप्रकाश/प्रथम उल्लास/3
10. काव्यालंकार – 2/5

❑❑

शेखर जोशी के साहित्य में पर्वतीय ग्रामीण जीवन

प्रज्ञा परम
शोधार्थी–हिन्दी
दयालबाग़ एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा

स्वतन्त्रता बाद की बिखरी सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को समेटने, सहेजने और उन्हे दिशा देने का कार्य 'नई कहानी आन्दोलन' ने बड़े प्रभावी ढंग से किया जिसके शेखर जोशी प्रमुख व सशक्त हस्ताक्षर रहे। उन्होने 'नई कहानी' के स्वरूप पर अपने ढंग से असर डालने का प्रयास किया।

पहाड़ी सौन्दर्य से परिपूर्ण अल्मोड़ा के शेखर जोशी की कहानियों का मुख्य विषय पहाड़ी जीवन से प्रभावित रहा। पहाड़ी जीवन संघर्ष गरीबी, श्रमशील बाल जीवन, मजदूर श्रम शोषण, अपना बचपन खोते बच्चे, वृद्ध, स्त्रियाँ, नीति और धर्म के आधार पर बनी रूढ़ियाँ, पलायन करते लोग, प्रतिरोध और यातना भरे औद्योगिक वर्ग के जीवन से उभरे चरित्र, सभी सदैव उनकी कहानियों के विषय बनते रहे। शेखर जोशी उन कथाकारों में से एक है, जिन्होने अपनी जमीन और परिवेश से जुड़कर ऐसी बेहतरीन कहानियाँ लिखीं जो हिन्दी कथा साहित्य के हर युग में सार्थक सिद्ध होती हैं।

शेखर जोशी ने अपने समकालीन रचनाकारों की अपेक्षा कम लिखा परन्तु गुणात्मक रूप से उनकी कहानियाँ कालजयी साबित हुई। उन्होनें जितना भी लिखा उससे कहानी साहित्य में नयापन आया। वह सदैव तत्पर रहते कि उनकी रचनायें ताजा व जनसंवेदी बनी रहें शेखर जोशी ने लगभग 70–80 कहानियाँ लिखीं परन्तु इन कहानियों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को नवीनता और मौलिकता दी। शेखर जोशी बहुत कम शब्दों में बहुत कुछ कह जाते हैं। उनकी और उनकी कहानियों की यही सादगी पाठको को प्रभावित करती हैं। उन्होंने जीवन के यथार्थ की अपने ही बुद्धिवादी तरीके से व्याख्या की।

शेखर जोशी ने लगभग 'नई कहानी' के समय में लेखन की शुरूआत की। पहाड़ी पृष्ठभूमि का होने के कारण उनकी कहानियों में बहुआयामी प्रकृति के विविधतापूर्ण रंग देखने को मिलते हैं। वहीं आम परिवेश का सामान्य जन–जीवन जो उपेक्षित रहा, उनकी पीड़ाये व संघर्ष भी उनकी कहानियों में मुख्य स्थान रखते हैं। शेखर जोशी ने इन्ही आमजनों की आवाज को अपनी कहानियों में बुलन्द किया हैं। शेखर जोशी मुख्य रूप से कथाकार हैं और उन्होंने पर्वतीय जीवन पर आधारित कई दिलचस्प कहानियाँ लिखीं परन्तु अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत उन्होंने कविताओं से की।

पहाड़ी ग्रामीण जीवन संगीतमय होता है। शेखर जोशी को भी बचपन से यही संगीतमय माहौल मिला। बुजुर्ग महिलाओं के पास प्रत्येक पर्व के लिए गीत होते है जैसे विवाह, छठी, यज्ञ, नामकरण, जन्मदिन आदि। खेतों में गुड़ाई, धानरोपाई के दिनों में भी पर्व जैसी रौनक रहती है। अपने परिवेश के सम्बन्ध में बात करते हुये शेखर जोशी कहते है–

''जन्मदिन, छठी, नामकरण, अन्नप्रासन से लेकर यज्ञोपवीत और विवाह संस्कार के गीतों का अक्षम भण्डार था। यह सुमधुर ही नही कर्कश या घेघायुक्त घर्घर कण्डों की भागीदारी भी इनमें रहती थी। जिससे एक मनोरंजन का अनुभव होता था। खेती के सामूहिक गीतों के लिये तो हमारा अंचल विख्यात है ही। गोड़ाई, धानरोपाई के दिन तो किसी त्यौहार–पर्व की सी रौनक रहती थी। हुड़के की थाप पर कमकर स्त्रियाँ अपने रंगबिरंगें परिधानों में गले में मूगे व चाँदी के सिक्कों की मालायें पहनकर, गीतो की लय पर गोड़ाइकरती और पूरी घाटी उनके गीतों

से गूज उठती। चीड तनों की सॉय–सॉय के बीच, भरी दुपहरी में, कहीं दूर बंसी का स्वर उठता और कही दूसरी पहाडी से कोई चरवाहा या घसमारिन गीत की एक पंक्ति उठा देती। कुछ झणों के लिये वनप्रान्तर में निस्तब्धता रहती और फिर प्रत्युत्तर में दूसरी ओर से पूरक पंक्ति का आलाप उठता। ये मार्मिक और सारगार्भित तुकबंदियाँ हुआ करती थी।''[1]

ऐसा संगीतमय वातावरण मिलने के कारण शेखर जोशी को भी संगीत से सदैव प्रेम रहा। उन्हें ब्रह्मानन्द स्रोत नामक गुटके के भजन बेहद पसन्द थे और वह अक्सर इन भजनों को गाया करते थे। अपने बेटे को गीतों में इतना मगन देखकर अक्सर इनकी माँ कहा करती थी कि–

''यह जोगी हो जायेगा .... नबजिया वैद्य क्या देखें, मुझे दिल की बीमारी हैं ....।''[2]

काव्य का प्रथम परिचय शेखर जोशी को अपने परिवेश के इन्हीं गीतों से हुआ। अपनी एक कविता में शेखर जोशी ने पहाड़ी जीवन के एकाकीपन को बड़े ही खूबसूरत ढंग से पेश किया हैं–

''चुप्प सोयाताल
दूर तक फैला नीला आइना
हमवार।
देख अपना बिम्ब
मैं मगन
पर गहरे
और गहरे
मुझे अपने में समेटे
पहाड़ो का वह गहन विस्तार''[3]

शेखर जोशी ने पहाड़ और उसके जीवन को व्यक्त करने वाली कई कहानियाँ लिखीं। जैसे – सर्मपण, हलवाहा, गलता लोहा, कोसी का घटवार, बोझ, गोपुली बहू आदि। इन कहानियों में पहाड़ी जनजीवन में मौजूद जाति व्यवस्था के दंश, आम जन–मानस के रोजमर्रा के संघर्षो और उनकी पीड़ाओं के कथ्य मौजूद हैं, साथ ही परिवारों पर पड़ने वाले विघटनकारी प्रभावों को बड़ी सूक्ष्म संवेदना के साथा चित्रित किया है।

शेखर जोशी की पहली कहानी 'दाज्यू' पहाड़ी जीवन पर आधारित चर्चित कहानियों में से एक है, इसका कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। दाज्यू कहानी पर चिल्ड्रेन फिल्म सोसाइटी ने 'बिग ब्रदर' नाम से फिल्म का निर्माण भी किया। शेखर जोशी दाज्यू कहानी में जगदीश बाबू का परिचय देते हुये कहते हैं कि वह दूर देश से आये हैं, अकेले हैं, चौक की चहलपहल में भी उन्हें लगता है सब अपनत्वहीन है। वह कैफे में बैठ जाते हैं। होटल का ब्वाय जिसका नाम मदन हैं उनसे चाय का आर्डर लेता है और उसी दौरान बातचीत मे पता चलता है कि वह उन्ही के गॉव का है और अपनों से दूर है, दोनों को एकदूसरे से अपनापन मिलता हैं। मदन उन्हे अपनेपन से दाज्यू (बड़ा भाई) बुलाता है। परन्तु बदलती परिस्थिति में जगदीश बाबू सहसा वास्तविक स्थिति के प्रति जागरूक हो उठते हैं, उन्हे पसन्द नही आता कि होटल का ब्वाय उन्हें दाज्यू कहे और मदन अवाक् सा रह जाता है, आहत होता है। जगदीश बाबू के साथ बैठा उनका साथी जब उस लडके का नाम जानना चाहता है तो लडका छोटा सा उत्तर देता है–

''ब्वाय कहते है शाब मुझे''[4]

दाज्यू के बारे मे शेखर जोशी बात करते हुये बताते है कि–

''दाज्यू कहानी लिखी तो उसका नायक मेरा ही प्रतिरूप था जो अपने परिवेश से विस्थापित होकर अपरिचितों

की भीड़ में किसी आत्मीय को खोज रहा था, लेकिन सामाजिक यथार्थ ने उसे एहसास करा दिया था कि आत्मीय सम्बन्धों के मूल में भी वर्ग स्वार्थ होते है, जो मानवीय सम्बंधों में दरार डाल देते हैं।''[5]

कोसी का घटवार भी शेखर जोशी की एक और बेहद चर्चित, सहज प्रेम कहानी है, जो पहाड़ के दुरूह जीवन व ग्रामीणों के संघर्षो का संवेदनशील वर्णन करती है। इसे पढ़ते हुये गुलेरी की 'उसने कहा था' की याद आती है। गुसाई जो फौज से रिटायर होकर कोसी नदी के किनारे अपने खेती बाड़ी देखते हुये गेहूँ पीसने का काम करता है। चूकि वह नितान्त अकेला है तो शायद इसी बहाने जीवन की नीरसता कुछ कम हो सके। एक दिन अचानक एक स्त्री की झलक देखकर उसका सन्देह विश्वास में बदल जाता है, वह पूर्ण आवेग से पुकारता है–

''लछमा ....''[6]

उसे याद आता है –

''गाँव की सीमा से बहुत दूर, काफल के पेड़ के नीचे गुसाई के घुटने पर सर रखकर, लेती–लेटी लछमा काफल खा रही थी........ खेल–खेल में काफलों की छीना छपटी करते गुसाई ने लछमा की मुठ्ठी भींच दी थी।''[7]

इस स्मृतियों मे प्रेम का निश्छल झरना बहता है। देर से ही सही लछमा गुसाई को पहचान लेती है। उसका पति अब नही रहा, एक बच्चे के साथ वह मायके आ गई है। उसका यह जीवन कष्टप्रद है। गुसाई मदद करना चाहता है, परन्तु लछमा का स्वाभिमानी मन गुसाई की मदद नही स्वीकारता।

गुसाई की कहानी के साथ पाठक आसानी से जुड़ जाता है। शेखर जोशी मनुष्य के अकेलेपन और मानसिक संत्रास को एक कुशल शिल्पी की तरह उभार देते हैं। जिस तरह के आम परिवेश की ताजगीं व छोटे–छोटे कस्बों, गॉवों की देसी गंध उनकी कहानियों में महसूस होती हैं, वैसे किसी अन्य लेखक की रचनाओं में यह कम देखने को मिलता है। शेखर जोशी ने अपने पर्वतीय ग्रामीण जीवन के कुछ अनछुयें, पहलुओं, पीड़ाओं व संघर्षो को पूरी व्यापकता से प्रस्तुत किया, वह वास्तव में साहस का काम है, अन्य कहानीकारों की कहानियों मे जहा अंसतोष और शिकायत है और समाज के राजनीतिक धरातल का रेखांकन है परन्तु परिस्थितियों को सूक्ष्म दृष्टि से व धैर्य से समझने की प्रवृत्ति नही। वही शेखर जोशी सीधे तौर पर परिवेश की सामान्यता को समझने का प्रसास करते है। वे अपने समाज से मिलने वाले अनुभवों की विशेषता को स्वीकार करते हुये उसकी सहजता को प्रतिष्ठित करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. जोशी, शेखर– डांगरी वाले, आधार प्रकाशन, पंचकूला–1994, पृ.–8
2. डांगरी वाले– शेखर जोशी, आधार प्रकाशन, 372 सेक्टर–17, पंचकूला हरियाणा, पृ.–8
3. न रोको उन्हे शुभा– शेखर जोशी, प्रकाशन– पृ.–25
4. प्रतिनिधि कहानियाँ : शेखर जोशी, दाज्यू, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण–2018, पृ.–10
5. जोशी, शेखर, डांगरी वाले, आधार प्रकाशन पंचकूला 1954, पृ.–10
6. प्रतिनिधि कहानियाँ– शेखर जोशी– कोसी का घटवार, तीसरा संस्करण 2018, राजकमल प्रकाशन– नई दिल्ली–110002, पृ.–19
7. प्रतिनिधि कहानियाँ– शेखर जोशी– कोसी का घटवार, तीसरा संस्करण 2018, राजकमल प्रकाशन– नई दिल्ली–110002, पृ.–22

❑❑

शिवानी के उपन्यासों में आधुनिक बोध : संदर्भ (चौदह फेरे)

डॉ0 सुषमा पुरवार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डी0एस0एन0 कालेज, उन्नाव

भाषा शब्द कोष में आधुनिक शब्द कोष का अर्थ है–''वर्तमान समय का, हाल ही का, आजकल का''[1]

आधुनिक शब्द अंग्रेजी के Modernity (मॉडरर्निटी) का पर्याय है। किन्तु हिन्दी के विद्वान आधुनिकता के स्वरूप में विषय में एक मत नहीं है। ''आधुनिकता में सबसे पहले यह निर्णय लेना आवश्यक है कि आधुनिकता किसी सामयिक तथ्य का नाम नहीं है वरन् आधुनिकता एक तरह की रचनात्मक स्थिति है जिसका अपना दर्शन है और जिसकी अपनी वैचारिकता है। मनुष्य ने आत्म साक्षात्कार के क्रम में स्वतंत्र होकर जिस दर्शन का प्रत्यक्षीकरण किया है, उसे ही मिले जुले रूप में आधुनिकता कहा जाता है।''[2]

डॉ0 इन्द्रनाथ मदान का अभिमत है–''आधुनिकता एक प्रक्रिया है, इसलिए यह एक से अधिक दौरों से गुजरी है और आज भी यह जारी है। इसलिए उसके किसी एक दौर पर उंगली रखकर यह कहना कठिन है कि आधुनिकता यह है। कभी इसे अपरम्परागत परम्परा कहा गया है। कभी ऐतिहासिक निरन्तरता तो कभी–कभी इसे अन्त में बोध की दृष्टि से पहचानने की कोशिश की गई है।''[3]

पाश्चात्य देशों के मुकाबले हमारे देश भारत वर्ष में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विकास त्वरित गति से नहीं हुआ। हमारे देश में परम्परा व संस्कृति की जड़े इतनी व्यापक रूप से फैली है कि उनका आधुनिकीकरण होने में समय लगेगा।''[4]

यदि हिन्द साहित्य में आधुनिक भावबोध पर दृष्टि डाले तो ज्ञात होगा कि ''अगर कहीं हिन्दी साहित्य में विदेशी साहित्य के आधुनिकता की झलक मिलती है तो केवल धारणा मात्र ही रहती है। आधुनिकता, नवीनता एवं विविधता के कारण प्रत्येक साहित्य में अपने सन्दर्भ से जुड़ी होती है। इसे नकल, फैशन या परिवर्तन की झलक से सम्बद्ध नहीं करना चाहिए।''[5]

हिन्दी उपन्यास जगत् में प्रेमचन्द्र के समय से ही आधुनिकता के दर्शन होते है। वर्तमान समय में मानव की जीवन व्यवस्तता, उसे व्याकुल पीड़ा देने वाली, संगास–दायिनी होती जा रही है। संघर्ष व अभावों के बीच वह जीवन को जी रहा है। वह द्वन्द्व युक्त जीवन जीने को विवश है। इन्हीं सब स्थितियों का चित्रण उपन्यासों में हुआ है। इन स्थितियों का संजीव चित्रण प्रस्तुत करने में शिवानी का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है, अस्तु आधुनिक भाव बोध की दृष्टि से ''चौदह फेरे'' की समीक्षा करना प्रस्तुत शोधालेख का अभिप्रेत है।

श्रीमती गौरापन्त शिवानी उपन्यास जगत् की दीप्तिवती रचनाकार है। उनकी सशक्त, सरस लेखनी ने अनेकानेक उपन्यासों की सर्जना करके अपनी प्रतिभा को पाठकों के समक्ष सिद्ध कर दिया है। वर्ण्य विषयों की नवीनता, घटनाओं की नाटकीयता, भाषा की सजीवता एवं लालित्य उनके उपन्यासों की विशेषता रही है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों की नायिकाएं असीम सौन्दर्य की स्वामिनी है वे समाज में अपनी कार्यकुशलता को सिद्ध करना चाहती है किन्तु न तो समाज उसे सहयोग देता है, न ही शान्ति से उसे स्वतंत्र जीवन व्यापन करने देता है, फलतः वह द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता में जीने लगती। वह सुशिक्षित और आधुनिक होने के कारण आधुनिकता के प्रभावों से प्रभावित है।

शिवानी ने प्रायः नारी प्रधान उपन्यासों की रचना की है। सन् साठ के बाद शिवानी के उपन्यासों ने साहित्य

जगत् को आकृष्ट किया। ''नारी जीवन की विसंगतियों, बदलते संदर्भों और नवीन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न स्थितियों का चित्रण करने में शिवानी का उल्लेख आवश्यक है।''[6]

नई पीढ़ी में पाश्चात्य सभ्यता एवं रहन–सहन का जो प्रचलन चला है उसे शिवानी ने अपने उपन्यासों में बखूबी दर्शाया है।

आधुनिकता के प्रादुर्भाव ने महानगरों को विकसित किया, उद्योग धन्धे विकसित हुए और आधुनिकता के फलस्वरूप ही परिवार विघटित होते गये, धन प्राप्ति की होड़ में मानव सौहार्द्र की भावना भूलने लगा, उसमें एक दूसरे से प्रतिद्वन्द्वता के भाव जन्म लेने लगे। सहजता का स्थान प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने लिया, नीतिगत प्रवृत्ति अनैतिक मार्गगामिनी होने लगी। समाज में हो रही इस प्रकार की वृत्तियों में मानव समूह फंसता चला गया। आधुनिकता सम्बन्धी इन विशेषताओं को हम शिवानी के उपन्यासों में देख सकते है। आधुनिकता सम्बन्धी इन विशेषताओं पर दृष्टिपात करने के लिये लेखिका के ''चौदह फेरे'' उपन्यास का चयन किया गया है–

स्वयं से अपने प्रेम पात्र का चयन आधुनिकता की मुख्य विशेषता रही है। 'चौदह फेरे' की अहिल्या अपने पिता कर्नल के साथ यद्यपि कलकत्ता के उच्च प्रासाद 'नन्हीं' में जीवन व्यतीत करती है किन्तु ग्राम्य परिवेश के राजू नामक व्यक्ति से निःस्वार्थ प्रेम करने लगती है।

भारतीय आधुनिक युग में स्त्री पुरुषों के पाश्चात्य प्रभाव ने जो परिवर्तन किया है उनके फलस्वरूप स्त्री पुरुष विवाहित होकर भी अन्य स्त्री, पुरुषों से सम्बन्ध रखते हैं। शिवानी के कई उपन्यासों में इस प्रकार के विवाहोत्तर सम्बन्ध चित्रित है। 'चौदह फेरे' में कर्नल शिवदत्त विवाहित होते हुए भी मल्लिका से प्रेम करता है जिसका चित्रन लेखिका ने बड़ी सजीवता से अंकित किया है–''इकहरे बदन की मल्लिका के चेहरे पर, सिवाय दो बड़ी–बड़ी धनुष सी खिंची रसीली आँखों ने उसके मादक यौवन की बागडोर सम्भाल ली थी।''[7]

आज के समय में अधिकांशतः परिवार एकल व्यवस्था चाहते है। संयुक्त परिवार को आधुनिक रंग में रंगे पारिवारिक सदस्य भार स्वरूप समझते है। फलतः कभी–कभी स्थिति अत्यन्त विकट हो जाती है। 'चौदह फेरे' का कर्नल स्वयं अपनी पत्नी नन्दी के साथ नहीं रह पाता और उसका असंयमित आचरण नन्दी के मनमस्तिष्क को कभी भी आहलादित नहीं कर पाता–''दिन में जिसके गम्भीर चेहरे के आवरण को चीरकर हंसी की विद्युत्छटा सी भी नहीं दिखती थी, रात को वही संयमी पति असंयमी आचरण कर बैठता था।''[8]

ग्रामीण नन्दी पति के सम्मुख सकुचाई रहती वह सद्गृहस्थिन थी, उन्मुक्त सहचरी नहीं, अतः कर्नल धीरे–धीरे नन्दी से विमुख हो गया। वह अपनी पुत्री अहल्या के जन्म पर भी गाँव नहीं आया। पति–पत्नी के मध्य सामंजस्य का न हो पाना ही इस विघटन का कारण हो जाता है। अपनी गंवार पत्नी के अचानक आगमन से कर्नल हतप्रभ हो उठे उन्होंने नन्दी से साफ कह दिया–''कि आई हो तो रहो पर तुम किसी बात में यहाँ दखल न दे पाओगी।''[9]

''धनाड्य कर्नल की पुत्री अभावों में पलकर बिल्कुल गंवार और लालची हो गई थी'' कर्नल ने उसे मिशनरी स्कूल में भर्ती करा दिया था। नन्दी का एक मात्र सुख का सहारा उससे छिन गया। उसके लिए यह करारी चोट थी उसने संन्यास ले लिया। कर्नल के सम्बन्ध अपने सेक्रेटरी राखाल सरकार की पत्नी मल्लिका से थे। मल्लिका कर्नल का मन जीत चुकी थी धीरे–धीरे अहिल्या भी मल्लिका का वात्सल्य पा आपनी माँ को भूल चुकी थी।

'चौदह फेरे' उपन्यास की नन्दी वैचारिक व स्वभावगत भिन्नता के कारण अपने पति कर्नल के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती है। नन्दी अनपढ़ गंवार जरूर है, साथ–साथ वह स्वाभिमानी भी है। पति के तिरस्कार का जवाब नहीं दे पाने के कारण उसका मन विक्षोभ से भर जाता है। उसका खानपान, रहन–सहन पति के प्रतिकूल होता है। वह विवश होकर उसके साथ जीने से अच्छा संन्यास लेना उचित समझती है और वह बिना बताये घर छोड़ देती है।

पति–पत्नी के मध्य सामंजस्य का न हो पाना ही इस विघटन का कारण हो जाता है। लेखिका विघटित सम्बन्धों का कारूणिक चित्र प्रस्तुत करती है, आधुनिक समाज की विकृत पारिवारिक व्यवस्था का सजीव अंकन करती है।

आधुनिक युग अर्थ प्रधान युग है। आज 'सर्वे गुणः कांचनमाश्रयन्ति', की अवधारणा समाज में पूरी तरह व्याप्त हो चुकी है। धनलिप्सा ने अन्य हर भाव को आज बहुत पीछे छोड़ दिया है। गुणवान को आदर न देकर धनाड्य को आदर सम्मान देना एक रीति बन चुकी है। शिवानी कृत 'चौदह फेरे' में कर्नल शिवदत्त के चरित्र से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है–

''जहाँ एक ओर कर्नल के राज्य में अशर्फियों की लूट थी वहीं दूसरी ओर नन्दी के लिए कोयलों तक में सील लगी रहती। पति का रत्नकोष उस बेचारी के लिए बन्द ही रहता।''[11]

सच ही, अर्थ की अधिकता ने कर्नल और नन्दी के दाम्पत्य जीवन में दरार पैदा कर दी थी।

समाज में शिक्षा के बढ़ते हुए स्तर के कारण नारी भी शिक्षित और आधुनिक दृष्टिकोण से समन्वित होती जा रही है। 'चौदह फेरे' की अहिल्या हो अथवा मल्लिका, सभी आधुनिक विचारों से पूर्ण महिलाएं है। आधुनिक मल्लिका कलात्मक रूचि का प्रदर्शन करती है–''कानों में आरक्त अग्रभाग में दमकते उसके मद्रासी हीरों के कर्णफूल, गले में झूलता नवरत्न पैडेंट या लम्बी अंगुलियों में पड़ी नीलम की अंगूठी, प्रत्येक आभूषण में मल्लिका की कलात्मक रूचि का प्रदर्शन होता है।''[12]

शिवानी के उपन्यास नारी प्रधान उपन्यास है। प्रत्येक उपन्यास की नायिका मानसिक द्वन्द्वमें फंसी रहती है और उचित निर्णय लेने में असमर्थता अनुभव करती है। 'चौदह फेरे' की अहिल्या भी इसका अपवाद नहीं है। सर्वेश्वर या राजू को पति रूप में वरण किसे करना है? इसी संकल्प–विकल्प में पड़ी रहती है। तभी तो ताई कहती है–''मन का मेल न हो तो शादी जिन्दगी भर का पाप है। अपनी माँ को देख, आज अभागी होती तो क्या न चाहने पर भी जिस किसी के गले ढोल सा बांध दिया जाता। मैं तो कहती हूँ अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, तीन दिन में आदमी चाहने पर आजकल सात समुद्र पार भी उड़ सकता है। देख बिट्टो।''[13]

नारी हो आधुनिक नहीं वरन् पुरुष पात्र भी आधुनिक विचारों से मण्डित है। 'चौदह फेरे' का कर्नल जिसे सुरा सुन्दरी से परहेज नहीं, कर्नल दोहरे मापदण्ड वाले स्वार्थी पुरुषों के रूप में चित्रित किया गया है।

यौनाकर्षण का अधिक्य, नित्य वासना लोलुपता की वृद्धि आधुनिक समाज में अभिशाप की भाँति बढ़ती जा रही है। शिवानी के अन्य उपन्यासों की भाँति 'चौदह फेरे' में भी इस प्रवृत्ति की झलक मिल जाती है। कर्नल असंयमी पुरुष है, जो पत्नी नन्दी के होते हुए भी आधुनिक जीवन शैली में जीवन व्यतीत करता है और पत्नी को ग्राम्य परिवेश की गंवार, अनपढ़, असंस्कृत स्त्री मानता है तथा मल्लिका के आकर्षण में आबद्ध रहता है। नारी विषयक दुर्बलताएं पुरुष को विकृत करती है–कर्नल के चरित्र से यही तथ्य स्पष्ट होता है कि–''कामातुराणां भयं न लज्जा''।

संदर्भ संकेत

1. सम्पादक – डॉ0 रमाशंकर शुक्ल (रसाल) भाषा शब्द कोष, पृ0–204
2. डॉ0 उर्मिला मिश्र–आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0–91
3. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान–आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, पृ0–19
4. डॉ0 उर्मिला मिश्र–आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0–3
5. डॉ0 बेनी प्रसाद, हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ0–165
6. डॉ0 उर्मिला मिश्र–आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0–27–28
7. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–27
8. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–11
9. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–23
10. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–25
11. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–62
12. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–205
13. शिवानी–चौदह फेरे, पृ0–227

❑❑

40

दिनकर के काव्य में भारतीय मूल्यबोध

डॉ0 अलका मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर

प्रतीक्षा
शोधछात्रा

जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, कानपुर

भारत संस्कारों, गुणों का देश माना जाता है। भारत के नाम में मूल्यों के बीज छुपे हुए हैं। भारत वह भूमि है जो अपनी उदारता, गुणों व संस्कृति की उदात्तता के लिए जानी जाती है। निःसन्देह भारतीय साहित्यकार का साहित्य मूल्य बोध का अजस्त्र स्रोत है जिससे सम्पूर्ण भारतीय जनमानस इन गुणों से निरन्तर पोषित होता रहता है। भारत का नाम ही अपने अन्दर अमूर्त अलौकिक भावनाओं और विचारों को संजोए हुए है। भारत भाव की भूमि है। राष्ट्र कवि दिनकर भारत माँ के सच्चे सपूत है। दिनकर जी ने अपनी वाणी के माध्यम से मानस भावभूमि पर जिन मानवीय सामाजिक, राजनीतिक, मूल्यों का सृजन किया है वह अद्भुत सृजनात्मक और संवेदनशील कवि ही करने में सक्षम है। मानवीय गुणों तथा मूल्यों का स्वाभाविक वर्णन तभी सम्भव है जब ये मूल्य आपके हृदय में गहनता से अपनी जड़े जमाएं हो–

''नये और उद्दीयमान कवियों, साहित्यकारो, और लेखकों को दिनकर जी का स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन हमेशा सुलभ रहता था पुराने और असमर्थ साहित्यकारों को सहायता और सहयोग देने में भी वह यथासम्भव सहर्ष तत्पर रहते थे।''[1]

दिनकर जी पद्य और गद्य के पुरोधा साहित्यकार हैं। उन्होंने काव्य रचनाओं में भी पथभ्रमित लोगों को मूल्यों की दृष्टि से जाग्रत करने का प्रयास किया है तथा गद्य रचनाओं में भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं को निकालकर सामने रखा है। 'मिट्टी की ओर' व आधुनिक बोध अन्य गद्य रचनाओं में साहित्य की कलात्मकता व सुन्दरता में साहित्यकार के मानसिक व भावात्मक सौन्दर्य को समन्वित माना है वह कविता को विचार का नहीं अपितु अनुभूति का विषय मानते है, मस्तिष्क का नहीं अपितु हृदय का विषय मानते हैं। बुद्धि का नहीं, अपितु भावना का विषय मानते है। दिनकर जी संवेदना को काव्य का अपरिहार्य तत्व मानते है क्योंकि संवेदनशीलता ही मानव हृदय से जोड़ती है। दिनकर जी भी एक सहृदय साहित्यकार थे–

''खण्डित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के प्रयत्न में खण्डित बिम्बों की रचना करने वाले कवियों से दिनकर का मूल नहीं बैठ पाया था। इसका मूल कारण उनकी अटूट आस्था थी। वे हृदय के रस के पूर्ण विश्वासी थे और बुद्धिवादियों से बहुत दूर तक समझौता करते हुए भी वे संवेदनशीलता को त्यागने के लिए तैयार नहीं थे।''[2]

मानवीय गुणों के विशय दिनकर जी ने साहस, उदारता, क्षमा, दया सभी को स्वीकार किया है। हुंकार, रेणुका, सामधेनी, द्वन्द्व गीत जैसी रचनाएँ व्यक्ति में आत्मशक्ति, आत्मबल और अदम्य साहस का संचार करते है क्योंकि सद्गुणों को स्थायित्व देने के लिए साहस एक अपरिहार्य मूल्य है। यदि साहस रूपी मानवीय गुण का अभाव होता है तो अन्य मानवीय गुण निर्बल होकर कायरता की ओट में छिप जाते है। प्रत्येक व्यक्ति में मित्रता, सौहार्द्र व राष्ट्रप्रेम की भाव ही उसे नागरिक व व्यक्ति बनाती है।

मानव का प्रेम सिक्त होना ही उसे मानव बनाता है। प्रेम आयु, समय, काल, वर्ग, सम्पदा पर आधृत नहीं अपितु प्रेम के निःस्वार्थ सतत निष्काम होने पर दिनकर जी बल देते है–

स्नेह मिला तो मिली नहीं क्या वस्तु तुम्हें?
नहीं मिला यदि स्नेह बन्धु।
जीवन में तुमने क्या पाया।

प्रेम मानवीय मूल्यों का जनक है जो त्याग, करुणा, दया, क्षमा, साधन सभी मूल्यों को जन्म देता है। रामधारी सिंह दिनकर जी का कवि कर्म मानवीय धरातल पर सृजित हुआ है।

दिनकर जी की सम्पूर्ण रचनाओं में मानवतावादी स्वर मुखरित है। उन्होंने व्यक्ति की मुक्ति की अपेक्षा समाािजक प्रवृत्ति की उपादेयता एवं सामाजिक समता को अधिक प्राथमिकता दी है। विपदाओं, कष्टों, अभावों व विगत जीवन के कर्मों का फल मानकर हाथ पर हाथ धरने के बजाय संघर्षरत मानव को अधिक मूल्यवान माना है।[3]

दिनकर जी कल्पना लोक के प्राणी कवि नहीं है अपितु वह यथार्थ भावभूमि की उपज हैं। कर्मशीलता को दिनकर जी ने जीवन का प्राणतत्व माना है। उद्यम, पुरुषार्थ तथा शौर्य के बिना मनुष्य दीन–हीन है।

भाग्वाद आवरण पाप का।
और शास्त्र शोषण का।।
जिससे रखता दबा एक जन।
भाग्य दूसरे जन का।।[4]

दिनकर जी मानव मूल्यों की रक्षा के लिए सदैव प्रयासरत रहे। वह जीवन का संहार करने में नहीं अपितु जीवन का सृजन करने में आनन्द का अनुभव करते है।

पौरुष क्या केवल उठा खड्ग
मारने और मरने में हैं ?
तब उस गुण को क्या कहें
मनुज जिससे न मृत्यु से डरता है?
लेकनि, तब भी मारता नहीं
वह स्वयं विश्व हित मरता है।[5]

दिनकर जी ने मानव को मानव तक ही सीमित नहीं रखा अपितु मानव का प्रकृति हित, समाजहित, धार्मिक हित व राजनीतिक हित से भी रिश्ता जोड़ा है। एक सच्चे नागरिक को राष्ट्रों के प्रति कर्त्तव्य भावना व समर्पण भाव से ओत–प्रोत होना चाहिए। दिनकर जी का जीवन दर्शन कर्म की सार्थकता में है। वह गाँधीवादी भी है और मार्क्सवादी भी हैं। अहिंसा को स्वीकारते हैं पर शोषण सहने के आधार पर नहीं, हिंसा को स्वीकारते हैं पर शोषण सहने के आधार पर नहीं, हिंसा को स्वीकारते हैं किन्तु अन्याय के दमन के संयमित शस्त्र के रूप में।

पारिवारिक मूल्यों में भी पति–पत्नी के परस्पर सहयोग को अपेक्षित माना। महिला को सबला बनने व सशक्तीकरण व उसकी भूमिका में दृढ़ता को स्वीकार करते है। नारी को अपने कर्म को केवल घर तक ही नहीं अपितु प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं को आत्मविश्वास व आत्म–सम्मान की भावना से युक्त रखने पर दिनकर जी बल देते हैं–

''दिनकर जी का दृष्टिकोण निर्यात की अपेक्षा कर्मवादी जीवन दर्शन का पोशक है। मानव की कर्मशक्ति में उसकी प्रबल आस्था है। उन्होंने मुख्यतः कर्मवादी जीवन दर्शन का ही प्रतिपादन किया है।''[6]

कर्म की तत्परता रूपी मूल्य का प्रवर्तन दिनकर मानव जीवन के प्रत्येक रूप में करते हैं। संस्कृति के चार अध्याय में उन्होंने भारतीय संस्कृति को उसमें निहित मूल्यों के आधार पर विवेचना की है। वह संस्कृति को व परम्पराओं को कुत्सित करने से सहमत नहीं और परम्पराओं में निहित मूल्यों को क्षीण करने वाली प्रवृत्ति का भरसक निन्दा करते है। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति का सौन्दर्य अखण्डता व विविधता की एकता में है–

''यही विविधता ओर सहिष्णुता हमारी सबसे बड़ी ताकत है। इस विविधता में भी हमारे अन्दर एकता रही

है। हमारी संस्कृति एक जीवित संस्कृति है। हम कई तरह के जीवन को अपने अन्दर समाने की क्षमता रखते है। भारतीय संस्कृति, समन्वयात्मक रही है यह हमारी ताकत है, कमजोरी नहीं है।''[7]

वह भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मकता को उसका आधार मूल्य स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों में विश्वास व सद्भाव है। जिसे दिनकर जी अपनी रचनाओं स्वीकार करते हैं।

भारत धर्म की दृष्टि से विविधता को धारण करता है यही भारत का सौन्दर्य है। धर्मो की कट्टरता के स्थान पर सहिष्णुता व स्वीकृति भावों का मूल्यबोध कराने का प्रयास किया है।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था पर अपना विरोध व्यक्त करते हुए रामधारी सिंह जी ने समता, न्याय, अवसर की समानता, पर बल देते है ताकि परस्पर विद्वेश, घृणा का जन्म न हो।

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो
नहीं किसी को बहुत अधिक हो
नहीं किसी को कम हो (रामधारी सिंह दिनकर)

श्रेष्ठ मानव मूल्यों का विकास तभी होगा, जब मनुष्य का मनुष्य से उचित सम्बन्ध स्थापित होगा।

श्रेय होगा सुष्ठु विकसित मनुज का वह काल
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध [8]

भारतीय धर्मों की व्यवस्था दिनकर जी ने अपने ग्रन्थ ''संस्कृति के चार अध्याय'' में विषद् रूप से किया है। वह सर्वधर्म सद्भाव को महत्व देते हैं न कि अन्धानुकरण अन्धविश्वासों। सभी धर्मों के समान महत्व व उनके समान आदर पर बल देते है–

हिन्दुस्तान में अनेक धर्मों के लोग बसते है। भगवान को धन्यवाद दो कि उन्होंने तुम्हें इस देश का बादशाह बनाया है। तुम अस्मत से काम न लेना। निष्पक्ष होकर काम करना और सभी धर्मों की भावना का ख्याल रखना।[9]

दिनकर जी ने मूल्यबोध विषय पर बहुत ही गहनता से विचार किया है। राष्ट्रीय, नैतिक, मानवीय, सामाजिक, सभी मूल्यों पर विचार करते हुए उन्होंने राजनीतिक मूल्यों की अवधारणा पर विस्तृत विचार किया है। राजनीति को वह कूटनीति का विषय नहीं मानते थे वह भी एक सांसद थे कि राजनीतिक जीवन की गरिमा को धूमिल न होने दिया साथ ही साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह का पूर्ण निष्पक्षता से पालन करते है। वह राजनीतिक व प्रशासनिक दुर्बलता को अस्वीकार करते हुए उसमें ईमानदारी, सशक्तता के मूल्यों को अपनाने की बात कही। उदारता व उदात्तता दो को राजनीति में अपनाया। समाजवाद की विचारधारा पर चलते थे। वह राजनीति, शासन व विद्यार्थी सभी के लिए नियम व अनुशासन की बात को स्वीकार करते है।

अनुशासनहीनता वह रोग है जो कल पैदा हुआ और परसों खत्म हो जाएगा। जब तक शासन के कर्णधार नहीं सुधरेगें, जब तक ईमानदार कर्मचारी धक्के खाते रहेगे, बेइमानों को तरक्की मिलती रहेगी, तब तक छात्रों की अनुशासनहीनता भी कायम रहेगी।[10]

दिनकर मित्रता के मूल्य को महत्व देते हुए उसे मानव जीवन का सहायक प्रेरक बताया है। मित्रता के समक्ष उन्होंने बड़े–बड़े भाव को अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनाया है। कर्ण जो एक पौराणिक पात्र है, दिनकर जी ने अपी अधिकांश रचनाओं की पृष्ठभूमि पौराणिक बनायी। शायद इसके पीछे वह उन मूल्यों को जीवंत करना चाहते थे जो विलीन हो गए और उन ग्रन्थों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक नयी दृष्टि सेदेखना चाहते हो। क्योकि आधुनिकता

को दिनकर कोई मूल्य न मानकर एक ऐसी शाश्वत प्रक्रिया मानते है जो अन्धविश्वास से बाहर निकालकर नैतिकता में उदारता बरतने के लिए प्रेरित करती है।

कुरूक्षेत्र में भीष्म द्वारा अन्याय दमन का आवश्यक बताया है। रश्मिरथी में कर्ण के उस रूप से परिचित कराया जिसे कभी जनमानस ने देखा ही नहीं था। मित्रता का भाव तब भी था और अब भी है। किन्तु दिकर की रश्मिरथी में मित्रता के रिश्ते को उच्चतम शिखर तक पहुँचाया। कर्ण की दानशीलता को दिनकर जी ने आत्म समर्पण से जोड़ दिया। त्याग की ऐसी पराकाष्ठा शायद ही अन्यत्र देखने को मिले–

देवराज जीव में आगे और कीर्ति क्या लूँगा?
इससे बढ़कर दान भला किसे क्या दूँगा?
अब जाकर कहिए कि पुत्र! में वृथा नहीं आया हूँ,
अर्जुन! तेरे लिए कर्ण से विजय माँग लाया हूँ।[11]

निस्सन्देह दिनकर जी मूल्यबोध के प्रखर कवि है। इन्होंने अपनी रचनाओं में मूल्य वर्णन उनका बोध वर्तमान स्थिति व अनिवार्यता पर जोर दिया है। दिनकर जी संवेदना के पोषक थे। उन्होंने अपनी हर रचना में मानव जगत को मूल्य पालन व उन्हें आत्मसात करने हेतु प्रेरित किया है।

सन्दर्भ सूची

1. ''दिनकर एक सहज पुरुष'', शिवसागर मिश्र, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981 पृ0सं0–09।
2. हिन्दी साहित्य का गद्य इतिहास'', डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सप्तम संस्करण, 2009, पृ0सं0–769।
3. ''रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य में राष्ट्र चेतना'', सुनीता आजकल पत्रिका, अगस्त 2017, वरिष्ठ समपादक–राकेश रेणु, सम्पादक–जय सिंह, आजकल प्रकाशन, नई दिल्ली, विभाग, दिल्ली, पृ0सं0–33।
4. कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, चक्रवाल प्रकाशन, दिल्ली, 1971, बीसवां संस्करण, पृ0 90
5. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, पृ0 92
6. ''दिनकर के काव्य में जीवन दर्शन'', डॉ0 विनोद बाला शर्मा, सामयिक प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986, पृ0सं0–42।
7. औरंगजेब रोड का नाम बदलने पर दिनकर क्या कहते? वीर भारत तलवार हंस पत्रिका सम्पादक संजय सहाय सितम्बर 2017, अक्षर प्रकाशन लिमिटेड, दिल्ली, पृ0सं0–33।
8. ''संस्कृति के चार अध्याय'', रामधारी सिंह दिनकर, संस्करण 1999 लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0सं0–286।
9. हिन्दी साहित्य का चमकदार मोती, डॉ0 पुष्पारानी गर्ग from m-hindi.webdunia.com-d.
10. 'रश्मिरथी' रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ पेपर बैक संस्करण, 2016 पृ0सं0–75 (चतुर्थ सर्ग)
11. कुरूक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, पृ0 117–119

❑❑

41

दिनकर के काव्य में लोकतंत्र की अभिव्यक्ति

डॉ. अलका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर
पूजा
शोधाछात्रा
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, कानपुर

प्रगतिवादी धारा के प्रखर तथा ओजस्वी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी साहित्य के श्रेश्ठ साहित्यकार है। अपनी उत्कृश्ट लेखनी से हिन्दी साहित्य के गद्य–पद्य दोनों धाराओं की श्री वृद्धि की है। वे आधुनिक युग के वीर रस के श्रेश्ठ कवि के रूप में स्थापित हैं। 'दिनकर' जी स्वतंत्रता पूर्व विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतंत्रता के बाद राश्ट्र कवि के रूप में जाने गये। एक ओर उनकी कविताओं में लोकतंत्र के मूल्यों की अभिव्यक्ति है। तो दूसरी ओर शृंगारिक भावनाओं की प्रबल अभिव्यक्ति है। देश की विशम परिस्थितियों में उन्होंने राश्ट्र की आत्मा को आवाज माना और जनजागरण क्रान्ति तथा राश्ट्रीय उत्थान के गीत गाये। दिनकर जी विविध साहित्यिक आन्दोलनों के प्रबल झंझावतों से अप्रभावित रहते हुए जीवन की अनेक व्यवधानों को पार करते हुए काव्य धारा क्रान्ति और शृंगार, ओज और माधुर्य के दो कूलों के मध्य अजस्र रूप में प्रवाहमान रही।

राश्ट्रीय अभ्युत्थान के गायक ओर मानव कल्याण के चिन्तक कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' लगभग पाँच दशक तक हिन्दी साहित्यकाश पर छाये रहे। कवि की तत्वान्वेशी प्रखर जिज्ञासा आद्यंत जीवन और जगत के सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक प्रश्नों तथा समसामायिक समस्याओं के मानवतावादी निदान के संधान में निरत रही है। मानवतावादी लोकतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति दिनकर जी के काव्य की मूलभावना है। प्रजातंत्र में दिनकर जी की दृढ़ आस्था है। देश में गणतंत्र की स्थापना के अवसर पर कवि ने 'जनतंत्र का जन्म' शीर्शक कविता लिखकर प्रजातंत्र के प्रति अपनी प्रबल निश्ठा व्यक्त की। गणतंत्र की स्थापना पर दिनकर जी शोशित जनता के सत्तारूढ़ होने पर उन्मुक्त हृदय से समर्थन किया–

'रूढ़ियों की ठंड़ी–बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
हो रहा, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' (नीम के पत्ते, पृ0–15)

कवि को यह विश्वास था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पदमर्दित तथा पद्दलित शोषित जनता में नवीन जागृति एवं राजनीतिक चेतना का उन्मेश होगा। डॉ0 विनोद बाला शर्मा अपनी पुस्तक ''दिनकर के काव्य में जीवन दर्शन'' में लिखा–

''कवि को जनता की अपरिमित शक्ति में विश्वास है। उन्होंने भारतीय कर्णधारों की चेतावनी दी कि यदि प्रजातंत्र के नाम पर जनता के दमन का क्रम पूर्ण युगों की भाँति अनवरत चलता रहा तो जनता ऐसी क्रान्ति के लिए विवश हो सकती है जिससे वर्तमान शासन की नींव उखड़ने में देर न लगेगी–

लेकिन, होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है
हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है।[2] –नीलकुसुम दिनकर, पृ0–67

स्वतंत्रता के पश्चात कवि ने भारत तथा भारतीय जनता के लिए सुखद सुनहले स्वप्न देखे थे, किन्तु जब वह कल्पना साकार नहीं हुई, देश में सर्वत्र चोर बाजारी, अत्याचार, आर्थिक शोषण, उच्छृंखलता तथा स्वेच्छाचारिता का बोलबाला होने लगा। देश में प्रच्छन्न रूप में सामन्तवाद पनपने लगा। जिससे कविवर दिनकर जी का मन क्षुब्ध हो उठा। शासन तंत्र की दुर्बलता, सरकारी तंत्र की शिथिलता, देश में व्याप्त भ्रश्टाचार आदि का सजीव चित्रण किया और उनके प्रति अपनी विद्रोही भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति ओज स्वर में की। 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' पुस्तक में डॉ0 बेचन शर्मा लिखते हैं–''दिनकर के समान शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा कवि होगा जो युग के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह इतनी सजगता से कर रहा हो। समाज के असामाजिक तत्वों में बढ़ती निभर्यता शासनतंत्र की दुर्बलता तथा सरकारी तंत्र की शिथिलता से लोकतंत्र भी नौकरशाही, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, भ्रश्टाचार तथा स्वार्थलिप्सा से विक्षुब्ध है।

अजब हमारा यह तंत्र है।
नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतंत्र है।
पुलिस करे जो कुछ पाप है।
चोर का जो चाचा है, पुलिस का भी बाप है।''[4] (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ0–63)

पालक पिता कहे जाने वाले कृषकों की दीन–हीन स्थिति के विषय में भी दिनकर जी मूक नहीं हैं। जब तक हमारे कृषकों का जीवन सुखमय नहीं होगा, तब तक विकास के सभी स्वप्न अधूरे है। वह अपनी कविता में कृषक की व्यथा–कथा के विषय में लिखते हैं–

''जेठ हो कि हो पूस, हमारे
कृषकों को आराम नहीं है।
छूटे–बैल से संग, कभी
जीवन में ऐसा दाम नहीं है।
मुख में जीभ, शक्ति भुज में
जीवन में सुख का नाम नहीं है,
वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी
मिलती दोनों शाम नहीं है।''[5]

हमारे अन्नदाता स्वयं भूखे रहते है। इससे अधिक विवषता और क्या होगी? ''नई दिल्ली'' कविता में भी कवि ने कहा–

आहें उठीं दीन कृषकों की
मजदूरों की तड़प, पुकारें।
अरी, गरीबों के लोहू पर
खड़ी हुई तेरी दीवारें।[6]

दिनकर जी वर्षे तक संसद सदस्य रहने के कारण राजनीतिज्ञों में व्याप्त भ्रष्टाचार से भलीभाँति परिचित थे। अपने काव्य के माध्यम से वे उसका विरोध भी करते रहे। देश के वही नेता स्वराज्य–प्राप्ति से पूर्व अपने त्याग, देश–प्रेम एवं राष्ट्रभक्ति के कारण जनता के अपार स्नेह एवं श्रद्धा के पात्र बने थे, वही बाद में स्वार्थ लिप्सा तथा पदलोलुपता के शिकार हो गये। कवि ने दोशों का निर्भीकता से अनावरण करने के लिए जनता का उद्‌बोधन किया है–

''शासन के यंत्रों पर रखों आँख कड़ी,
छिपे अगर हो दोष, उन्हें खोलते चलो,

प्रजातंत्र को क्षीर प्रजा की वाणी है,
जो कुछ हो बोलना, उभय बोलते चलो।'' [7]

दिनकर जी किसी वाद या पंथ के पक्षधर नहीं थे। आप मानव मूल्यों के सच्चे पुजारी थे। आपने शोषण, बेकारी रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार तथा असमान सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा किया है। प्रगतिवादी विचारों के पोषक दिनकर जी शोषितों की असहनीय दुःख के विशय में लिखते हैं–श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते है, माता की छाती से लिपट–लिपट कर जाड़े की रात बिताते है। जहाँ एक वर्ग अपनी क्षुधा को शान्त नहीं कर पाता, दूसरा वर्ग भौतिक वस्तुओं का दुरूपयोग कर रहा है। समाज की प्रत्येक व्यथा, शोषण, कुरीति पर कुठाराघात करते हुए दिनकर जी सूर्य की भॉति नवीन तथा आधुनिक विचार रूपी रश्मियों का स्वागत करते है। स्वयं राजनीतिक पद पर आसीन होते हुए भी कभी राजनीति और साहित्य को नहीं मिलाया।

''राजनीतिक रूप से दिनकर जी मूलतः नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण द्वारा संचालित उसी समाजवादी आन्दोलन के करीब थे जिससे रामवृक्ष बेनी पुरी जी भी जुड़े हुए थे। बाद में नेहरू कांग्रेस सरकार ने खासकर नेहरू के पास आते थे। 19वीं सदी के नवजागरण से भारत के शिक्षित वर्ग में एक आधुनिक उदारवादी विचारधारा का विकास हुआ। लोकतंत्र, राष्ट्रवादी रूझान सहित दिनकर इसी उदार विचारधारा के मूल्यों और आदर्शों के ओजस्वी कवि थे।''[8]

सन् 1962 में चीनी आक्रमण ने पूरे देश को झकझोर दिया। दिनकर जी की प्रेम निद्रा टूटी, बुझी जवानी पुनः आग उगलने वाली ओजस्वी स्वर की रचनाओं का सृजन किया। 'दिनकर दृष्टि और सृष्टि' पुस्तक में डॉ0 छोटे लाल दीक्षित लिखते हैं–''दिनकर आधुनिक युग' की राष्ट्रीय काव्याधारा के प्रमुख कवि हैं। वे चार दशक तक राष्ट्रीय काव्य लिखते रहे। उनकी राष्ट्रीयता केवल उद्‌बोधन और प्रेरणा तक सीमित नहीं हैं, आदर्शों के प्रति आस्था, पतितों के प्रति सहानुभूति, प्रगति की कामना, सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था उनकी राष्ट्रीय भावना के अभिन्न है।''[9]

'रश्मिरथी' 'कुरूक्षेत्र' अन्य रचनाओं में कवि ने जातिगत वैमनस्य, साम्प्रदायिक दुर्भाव तथा अन्य सामाजिक विषमताओं, के प्रति स्वर बुलन्द किया है। सामाजिक विषमताओं के प्रति संकेत मात्र करना कवि का एकमात्र उद्‌देश्य नहीं है वरन् कवि ने उन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत दिया। कुरूक्षेत्र में कवि ने यही भाव व्यक्त किया है–

जब तक मनुज मनुज का,
यह सुख भाग नहीं सम होगा,
शामित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा।[10] कुरूक्षेत्र–सत्तम सर्ग पृ0 87

कवि ने एक ऐसे समाज की आवश्यकता पर बल दिया है जो स्वस्थ सुन्दर आदर्शात्मक हो। सबको समान रूप से जीने और प्रगति करने का अवसर प्राप्त हो, यही कवि को अभीष्ट है। समत्व पर आधारित सामाजिक संरचना और लोकतंत्रात्मक स्वर की अभिव्यक्ति दिनकर के काव्य की प्रमुख विशेषता है।

''सामधेनी में दिनकर जी ने जिस विश्व–बंधुत्व की भावना के साथ अपने को 'जवानी का टण्डा' कविता में जोड़ा था। उसी का विकास कुरुक्षेत्र को माना जा सकता है। कुरुक्षेत्र की मूल संवेदना युद्ध द्वारा युद्ध का शमन नहीं है, बल्कि युद्ध से उत्पन्न मानवीय त्रासदियों एवं युद्धों के मूलभूत कारण समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को उत्तरोत्तर स्थगित निकृष्ट प्रवृत्ति का प्रकाशन है।''[11]

दिनकर जी सूर्य के समान तेजोमय थे। जैसे सूर्य अपनी रश्मियों से अंधकार को तिरोहित करता है। उसी प्रकार दिनकर जी ने भी लेखनी रूपी रश्मि से अंधकार पर कुठाराघात किया है। प्रखर, निर्भीक, निश्पक्ष जनकवि

दिनकर जी जमीनी सोच वाले व्यक्ति थे। वह उच्च राजनीतिक पदों पर आसीन होते हुए भी कभी जनता से दूर नहीं हुए। व्यक्तिगत व्यथाओं को सहते हुए भी कविवर दिनकर जी जीवन–मार्ग पर अग्नि और अजेय होकर सतत् गतिमान रहे। साहित्य को युगचित तथा समसामयिक परिस्थितियों से जोड़कर कालजयी बनाया।

सच ही अपने काव्य में सागर की सी गर्जना करने वाले उर्वशी के माध्यम सुकोमल प्रेम की रस भरी सतरंगी फुहारों में स्नान करने वाले, रश्मिरथी, कुरूक्षेत्र, हिमालय, परशुराम की प्रतीक्षा अन्य रचनाओं में जाति साम्प्रदायिकता युद्ध की विभीषिका, शोषण, अत्याचार समता, न्याय और गद्य के माध्यम से चिंतन के नये आयाम रचकर काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने वाले दिनकर का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि करने वाला अनुपम चमकदार मोती है, जिसे अब सच्चे जौहरी की तलाश है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नीम के पत्ते, रामधारी दिनकर उदयांचल प्रकाशन पटना सन् 1954 प्रथम संस्करण, पृ0सं0–15
2. दिनकर के काव्य में जीवन दर्शन डॉ0 विनोद बाला शर्मा, सामायिक प्रकाशन नयी दिल्ली 1986 प्रथम संस्करण पृ0–145
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, डॉ0 बेचन शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रकाशन नयी दिल्ली, सन् 1967 प्रथम संस्करण, पृ0सं0–209
4. परशुराम की प्रतीक्षा, रामधारी सिंह दिनकर उदयाचल प्रकाशन पटना, 1963, प्रथम संस्करण पृ0सं0–63
5. दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व सं0 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली 1977, प्रथम संस्करण, पृ0 141
6. वही, पृ0 141
7. नये सुभाषित 'दिनकर उदयाचल प्रकाशन पटना सन् 1957 प्रथम संस्करण, पृ0सं0–21
8. औरंगजेब रोड का नाम बदलने पर दिनकर क्या कहते? वीर भारत तलवार हंस पत्रिका समपादक संजय सहाय सितम्बर 2017, अक्षर प्रकाशन लिमिटेड, दिल्ली, पृ0सं0–36।
9. 'दिनकर सृष्टि और दृष्टि', डॉ0 छोटे लाल दीक्षित' अभिलाषा प्रकाशन ब्रह्मनगर कानपुर, संस्करण, प्रथम जून 1978 पृ0सं0–65–66।
10. कुरूक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर उदयाचल प्रकाशन पटना प्रथम संस्करण सप्तम सर्ग, पृ0सं0–87
11. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना, डॉ0 मधुबाला, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1985, प्रथम संस्करण, पृ0 22

❑❑

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पारम्परिक मूल्यों के प्रति विद्रोह

डॉ0 (श्रीमती) बीना मथेला
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

हिमांशी बिष्ट
शोध छात्रा हिन्दी

एम.बी.राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखण्ड

वास्तव में भारतीय स्त्री के दयनीय अतीत तथा उसके यातनामय जीवन के इतिहास पर नजर डाली जाय तो यह स्पष्टतः समझा जा सकता है कि नारी की दयनीय स्थिति के मूल में महत्त्वहीन व खोखली परम्पराओं और मूल्यों का विशेष हाथ रहा है। नैतिकता, धर्म, संस्कृति और समाज जो पुरुष प्रधान रहा है, उसमें सारी मान्यताओं और मूल्यों को पुरुष के वर्चस्व के आधार पर निर्धारित किया था, क्योंकि इस सबका कर्ता–धर्ता पुरुष ही था। आधुनिक स्त्री जिन परम्पराओं का विरोध करती थी और आज भी कर रही है, वे एक–दो नहीं अनेक हैं। बालक की तुलना में बालिका को शिक्षा प्राप्ति की दृष्टि से उपेक्षित रखना, युवतियों के लिये पर्दे में रहने का नियम, विवाह के लिए माता–पिता या परिवार के मुखिया का आदेश मानना, परपुरुष से दूर रहना, विधवा होने की स्थिति में कठोर नियमों में रहकर वैधव्य का निर्वाह करना, अथवा पुनर्विवाह की स्थिति में देवर अथवा किसी अन्य के गले मढ़ दिया जाना। स्त्री की इच्छा–अनिच्छा का परम्परागत समाज ने कभी ध्यान नहीं रखा। दहेज–प्रथा भी नारी को आघात पहुँचाने वाली एक अमानवीय परम्परा ही थी। सन्तान की उत्पत्ति में असमर्थ होने अथवा बाँझ होने, अधिक मात्रा में पुत्रियों को जन्म देने पर अपमान, कन्या होने पर विवाह की अनिवार्यता, कामकाजी महिला होने पर नारी के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखा जाना, अपने जीवन साथी का चयन करने के प्रयास के फलस्वरूप हत्या कर दिये जाने जैसे, अमानवीय कृत्यों को परम्परा के रूप में आज की नारी भी झेल रही है। अतः लिंग के आधार पर भेदभाव आज भी बना हुआ है।

मैत्रेयी पुष्पा के प्रायः सभी उपन्यासों में नारी का परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह स्पष्टतः देखा जा सकता है। परम्परागत मूल्यों के मूल में मुख्य अवरोध शक्ति है– पितृसत्तात्मक व्यवस्था। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी का वैवाहिक जीवन विवाह होने तक सामान्य रूप से ठीक चलता है लेकिन पति की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई अजीत उसे अपने स्वार्थ में अन्धा होकर बरजोर सिंह के पल्ले बाँध देता है। एक बेटी की माँ, उर्वशी परम्परागत मूल्यों को जानती–समझती है और समाज में उसने इसके दुष्परिणाम भी देखे हैं। वह बरजोर सिंह के बड़े बेटे विजय की विधवा का हाथ उसी के देवर उदय को पकड़ा देती है और एक अछूती विधवा के जीवन को अपनी ही तरह अभिशाप बनने से रोकती है। इसी अपराध की सजा के रूप में बरजोर सिंह उसे धीमा जहर देकर मौत के घाट उतार देते हैं। अपने जेठ से अपना जमीनी हक लेना वह भूलती नहीं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी का विवाह न चाहते हुए पैसे लेकर कर दिया जाता है। पढ़ने की उसकी चाह पर वज्रपात हुआ लेकिन पढ़ने और पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होने की अपनी चाह को कस्तूरी ने बनाये रखा। परम्परागत मूल्यों को धता बताकर कस्तूरी ने वह सब कर दिखाया जो उसके मन में था। कस्तूरी की बेटी बाल्यकाल से ही दूसरों के सहारे रहकर पढ़ती रही ओर किशोरावस्था से ही उसे पुरुष के दुराचार का शिकार बनते–बनते प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा। माँ तथा बेटी दोनों ने मिलकर परम्परागत मूल्यों की चक्की में पिस रही स्त्रियों को जगाया और बचाया।

'इदन्नमम्' की सुगना और मन्दाकिनी, 'अल्मा कबूतरी' की भूरी, कदम–बाई तथा अल्मा, 'चाक' की सारंग, 'अगनपारवी' की भुवन, 'झूलानट' की सरसुती तथा शीलों, 'विजन' की डॉ0 नेहा और डॉ0 आभा, 'गुनाह बेगुनाह' की इला चौधरी, समीना, सुरिन्दर कौर तथा प्रिये, 'फरिश्ते निकले' की बेला–बहू तथा उजाला, मैत्रेयी पुष्पा के ऐसे

नारी चरित्र हैं जिन्होंने परम्परागत मूल्यों के विरूद्ध अदम्य साहस के साथ संघर्ष किया। इन परम्परागत मूल्यों के प्रति इनका विद्रोह निम्नांकित रूपों में देखा जा सकता है।

पारिवारिक – पारिवारिक परम्परागत मूल्यों की विरोध की स्थिति मैत्रेयी पुष्पा के 'बेतवा बहती रही' 'इदन्नमम्', 'चाक', 'अगनपाखी', 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'झूला नट', 'विजन', 'फरिश्ते निकले' तथा 'गुनाह–बेगुनाह सभी उपन्यासों में चित्रित है। सभी परिवार पूर्णतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अनुकूल चलने वाले परिवार हैं, जहाँ परम्परागत मूल्य हावी हैं। इन उपन्यासों की नायिकाओं को परम्परागत मूल्यों की असलियत समझ में आती है, अतः ये स्त्रियाँ परम्परागत मूल्यों का विरोध करती हैं। परिवार के मुखिया जब चाहे, बेटी की इच्छा जाने बिना ब्याह रूका सकते हैं, बेटी को बेच सकते हैं अथवा उसे किसी बृद्ध के गले मढ़ सकते है। दुर्भाग्यवश ब्याहता विधवा हो जाती है, तब ससुराल के लोग से जैसे चाहे चलाते हैं अथवा उसके हिस्से की सम्पत्ति हड़पने की भावना उसे उस राह के रोड़े को हटा देना चाहते हैं।

'बेतवा बहती रही' की उर्वशी, 'कस्तूरी कुण्डल बसै की कस्तूरी', 'इदन्नमम्' की सुगना, 'चाक' की सारंग, 'अगनपाखी' की भुवन, 'झूलानट' की शीलों आदि ऐसे नारी चरित्र है जो परिवार के स्तर पर परम्परागत मूल्यों के फलस्वरूप सताए जाते हैं और सताने वाला पुरुष उनका परिवारजन, पिता, पति, भाई, ससुर, जेठ आदि में से ही कोई रहता है। इन उपन्यासों के स्त्री पात्र परिवार के स्तर पर भी परम्परागत मूल्यों का विरोध करते हैं और सफल भी होते हैं।

सामाजिक– परम्पराओं के पोषक पितृसत्तात्मक समाज में परम्पराओं का विरोध करने की इजाजत नहीं होती। यदि कोई स्त्री सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों की अनदेखी करती है, उल्लंघन करती है अथवा विरोध करने का साहस करती है तो उसे आवारा, कुलटा या वैश्या तक कह दिया जाता है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी जिस बरजोर सिंह की रखैल बना दी जाती है, उन्हीं के बड़े बेटे की विधवा का विवाह छोटे भाई उदय से करा देने के कारण, बरजोर सिंह की आँखों का काँटा बन जाती है। बरजोर सिंह अपने बेटे के सामने उर्वशी से कहते हैं, "कौन जनम को बदलौ लऔ हमसे? अपनी खेती–पाती फूँक बार के, जाके लाने लाए थे तुम्हें...'[1] बरजोर सिंह ऐसी परम्परागत मूल्यों की विरोधी, सामाजिक मूल्यों को ठुकराने वाली, रखैल उर्वशी को धीमा जहर देकर मौत के घाट उतार देते हैं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी का, समाज उनके खान–पान, वेश–भूषा, आचार–व्यवहार तथा पहनावे आदि को लेकर आलोचना करता है, विशेषकर एक अन्य स्त्री गौरा को साथ रखने को लेकर लेकिन वह समाज और सामाजिक मूल्यों को पुराने और महत्वहीन मानकर आगे बढ़ती चली है। इस सम्बन्ध में यह कथन दृष्टव्य है "राँड लुगाई, बच्चा बंधन लगता है। आजाद बछैडी गौरा के संग मौज कर रही है। खसम लुगाई हो गई दोनों।"[2] 'चाक' की सारंग का पति रंजीत, पितृसत्तात्मक विचारों में पला–बढ़ा होने के कारण पत्नी का साथ देना छोड़ देता है जबकि उसके पिता अन्याय का विरोध करने वाली अपनी बहू का उत्साहवर्धन करते हैं। पति रंजीत और समाज के अन्य लोग मास्टर श्रीधर और सारंग की निकटता को लेकर तरह–तरह की बातें करते हैं, जिनका सारंग पर कोई असर नहीं पड़ता और वह अपनी मंजिल की ओर बढ़ती चलती है।

जर, जोरू और जमीन की सामाजिक महत्ता ही संघर्ष का कारण रही है। 'अगनपाखी' की भुवन को पति की मृत्यु के बाद अपने जेठ के बदले–बदले आचरण को लेकर शक होने लगता है। सन्तानविहीन भुवन सोचती है कि उसका जेठ अजयसिंह अपने पागल भाई के हिस्से की सम्पत्ति को अपने नाम करने की सोच रहा है और इसके लिये कोई भी हथकंडा अपना सकता है। कभी यह भ्रम फैलाया जाता है कि भुवन सती होना चाहती है, कभी कहा जाता है कि वह बेतवा में कूदना चाहती है लेकिन वास्तव में होता ऐसा कुछ नहीं। भुवन कोर्ट में उपस्थित होकर अपने हक की जमीन के लिये उज्रदारी पेश कर देती है।

'फरिश्ते निकले' की बेला बहू सामाजिक परम्परागत मूल्यों से सर्वाधिक संघर्ष करती है। पिता की मृत्यु के बाद उसकी माँ पिरौना बाई अपनी सहायता के लिए अपने एक करीबी रिश्तेदार शुगर सिंह को घर पर रख लेती है। इस बात को लेकर समाज ही नहीं उसकी किशोरी बेटी बेला भी अच्छा भाव नहीं रखती। समय बीतने के

साथ–साथ अपने और अपनी बेटी के सुख के लालच में बेला की माँ उसका बूढ़े शुगर सिंह से ब्याह करने की सोचने लगती है। बेटी बेला इसका कड़ा विरोध करती है, मर जाने की बात कहती है और बेटी की दशा देखकर माँ का दिल भी पसीजता है। बेला को शुगर सिंह की दुल्हन बनाने के लिये उसकी माँ को गुप्त रूप से धमकियाँ और उलाहने मिलते हैं। समाज के लोग स्वार्थ की दृष्टि से सोचते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि बेला का शुगर सिंह से ब्याह हो जाये तो बेकार का बवंडर खत्म हो, कुछ ऐसे भी हैं जो बेला को भय दिखाकर भगा ले जाना चाहते हैं। इस प्रकार की सामाजिक सोच का मुकाबला करने का दम अब तक बेला जुटा नहीं सकी थी, लेकिन समाज जिस प्रकार नारी को पशु के समान और उपभोग की वस्तु मानकर चलता चला आ रहा है, उसका जवाब वह भारत सिंह और उसके बलात्कारी भाइयों को लाक्षागृह की तरह जिन्दा जलाकर देती है। बेला पकड़ी जाती है, जेल जाती है, लेकिन उसका बचपन का एक दोस्त बलवीर जो अब वकील हे, उसे जेल से निर्दोष मुक्त करा लेता है। वह समाज के परम्परागत मूल्यों का विरोध भी करती है और अपने शेष जीवन में समाज को बदलने के लिये समर्पित होकर कार्य भी करती है। समाज में व्याप्त ऊँच–नीच की भावना और जाति–प्रथा जो प्रेम करने तथा अपना जीवन साथी स्वयं चुनने के मार्ग में बांधक रही है। उसका विरोध रामरतन लोहापीटा की बेटी उजाला करती है और समाज के सम्पन्न और ऊँची जाति के लोग उसे अमानवीय रूप से बलात्कार की शिकार बनवाकर, मरा समझकर फिंकवा देते हैं।

समाज में पुरुष के वर्चस्व तथा विवाह करने की दृष्टि से पुरुष को दी गई छूट का शिकार बनती है– शीलो, शीलो का पति उसे धोखा देकर दूसरी पत्नी के रूप में उसे घर में रख लेता है, परन्तु उसे उसका शरीर सुख देना तो दूर की बात, इससे सम्पर्क तक नहीं रखता। शीलो की सास सरसुती शीलो को अपने छोटे, बेटे बालकिशन को सौंपकर, बड़े बेटे के अन्याय का भरपूर जवाब शीलो के माध्यम से ही दे देती है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में समृद्ध तथा कमजोर समाज के बीच चला आ रहा वर्चस्व का संघर्ष मुख्य है। कमजोर पक्ष की स्त्रियाँ शोषक वर्ग के परम्परागत मूल्यों और मान्यताओं का विरोध कमर कस कर करती है और सामाजिक विषमता के लिये समर्पित होते रहने के बावजूद अन्त में विजय प्राप्त करती है। भूरी, कदमबाई तथा अल्मा इसी कोटि की स्त्रियाँ हैं। समाज और समाज में व्याप्त परम्परागत मूल्यों का मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की स्त्रियाँ सर्वत्र विरोध करती है।

आर्थिक– भारतीय नारी पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था के तहत पुरुष के अधीन रही है और इस अधीनता का प्रबल कारण आर्थिक रूप से उसका पराश्रयी होना रहा है। घर–परिवार, सम्पत्ति सभी कुछ पुरुष के अधिकार में होने की परम्परा के चलते जो मूल्य बने, उनके चलते नारी समुचित सम्मान प्राप्त नहीं कर सकी। आर्थिक रूप से अपने पैरों में खड़ी न होने के कारण युवावस्था में उसे उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी भी पुरुष के गले मढ़ दिया जाना परम्परा के रूप में चलता रहा। इस अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करना मूल्यों का उल्लंघन माना जाता रहा और नारी का उत्पीड़न हुआ। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी आर्थिक दृष्टि से परिवार की विपन्नता के चलते तमाम अकल्पनीय उतार–चढ़ावों को पार करती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी माता–पिता द्वारा ब्याह के लिये बेच दी जाती है। 'इदन्नमम्' की सुगना का पिता जगेसर अपने ही घर में अधबूढ़े पुरुष अभिलाख को बेटी से व्यभिचार करने की छूट देता है और माँ मूकदर्शक बनी रहती है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की स्त्रियों भूरी, कदमबाई और अल्मा का संघर्ष वास्तव में आर्थिक विपन्नता के चलते कज्जा (उच्च वर्ग) से है। कबूतरा स्त्रियाँ यह समझ गयी है कि उनके कल्याण का एकमात्र उपाय बच्चों की शिक्षा है। बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिये ये स्त्रियाँ प्रतिबद्ध हैं और दूसरे पुरुषों को शरीर सौंप देना इनके लिये महत्व नहीं रखता। अल्मा का पिता रामसिंह जो पढ़ा–लिखा भी है, अपनी बेटी अल्मा को किसी वस्तु की तरह किसी दुर्जन के यहाँ गिरवी रख देता है, जो उसे सत्ता के दलाल सूरज भान के हाथ बेच देता है। सूरज भान अल्मा से कहता है, ''तुझे पता है, तेरा बाप कितने रूपये खाकर बेचा रहा? और कितने खाकर मरा है? कौन भरेगा? दूसरे का रूपया मुफ्त का है?''[3] बार–बार अमानवीय यौन शोषण का शिकार बनकर अल्मा इतना तो जान जाती है कि क्या सही है, क्या गलत। 'फरिश्ते निकले' उपन्यास की बेला–बहू व उजाला की दुर्दशा के पीछे भी आर्थिक विपन्नता ही मुख्य कारण रहा है। उजाला का प्रेमी वीर सिंह धनी–मनी बाप का बेटा है और उसका पिता अपने

अहं के कारण ही उजाला की दुर्दशा कराता है। 'अगनपाखी' की भुवन आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर न होने के कारण ही विधवा होने के उपरान्त भी दर–दर की ठोकरें खाती है। अपने आत्म सम्मान व अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए संघर्ष करती है। 'झूला नट' की शीलो अपनी सास सरसुती और देवर बालकिशन की सहायता से आर्थिक विपन्नता से बच जाती है और धोखेबाज पति को सबक सिखाती है।

शैक्षिक– मैत्रेयी पुष्पा के अधिकोश उपन्यास परम्परागत ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। आर्थिक विपन्नता के चलते बालिकाओं की शिक्षा की ओर ध्यान न दिया जाना भी एक कारक रहा है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी के पिता अपने बेटे अजीत को तो येन केन प्रकारेण पढ़ाते ही हैं ताकि वह पढ़–लिखकर नौकरी पा जाय तो माता–पिता और घर–परिवार को सँभाले, लेकिन मीरा की देखा देखी पढ़ने की तीव्र इच्छा रखने वाली उर्वशी के ब्याह की ही चिन्ता माता–पिता को अधिक रहती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी ब्याह करने को राजी नहीं होती, क्योंकि उसे डर है कि उसका बूढ़ा पति जल्दी मर जायेगा तो उसे सती होना पड़ेगा। वह माँ को जब यह बताती है तो उसने रेशन कुँवर सती की किताब पड़ी है तो माँ बौखला जाती है और कहती है, ''तो तू पोथी पत्ता पढ़कर बरबाद हुई है? हाय कुभागी तू होते ही न मर गई।''[4] कस्तूरी की माँ ही नहीं परम्परागत समाज भी विधवा हो जाने पर झोला लेकर स्कूल जाती कस्तूरी खूब हँसा और उसे पागल मानता रहा। माँ के विरोध का तो कहना ही क्या? वह तो तब ही शान्त हुआ जब कस्तूरी ने मायके से नाता तोड़ लिया। कस्तूरी को जब कभी अपने मृत पति की याद आती तो वह सोचती, ''पति आज रहते तो मुझे पढ़ने देते? बेटी के पढ़ने की बात सोचते? औरतों खरीदने वाला आदमी इस लड़की को बेचने में हिचकिचाता भला?''[5] पढ़ने की हार्दिक इच्छा तो कस्तूरी को सिर चढ़कर बोल रही थी, लेकिन परम्पराओं का भय उसे झकझोरता अवश्य था। वह सोचती, ''स्कूल में तो इस गाँव के लड़के तक नहीं जाते, लड़की और औरतें पढ़ेंगी, इस बात का सपना कैसे देखा जा सकता था।''[6] कस्तूरी अपनी हठ की पक्की थी और उसने लोक–लाज, मान–अपमान और खोखली परम्पराओं को दर–किनार कर अपनी पढ़ाई जारी रखी और सरकारी नौकरी पाकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर तो हुई ही, साथ ही अपनी बेटी मैत्रेयी को अच्छी शिक्षा देने का संकल्प भी लिया।

जब कस्तूरी अपनी बेटी को अपने से दूर दूसरों के सहारे रख पढ़ा रही थी तो सब कुछ ठीक–ठाक नहीं चला। बाल्यावस्था से ही बालिका को कभी कोई युवक और कभी बूढ़े अपनी हवस का शिकार बनाने का प्रयास करते रहे। परिणाम यह हुआ कि माँ के विपरीत अपने विवाह की इच्छा उसने निर्भीकता के साथ रख दी। माँ की प्रेरणा और इच्छा के फलस्वरूप मैत्रेयी उच्च स्तर तक की शिक्षा प्राप्त करने में सफल होती है।

अल्मा कबूतरी की भूरी तथा कदमबाई अपनी–अपनी सन्तानों को शिक्षा और रोजगार दिलाकर कज्जाओं (समृद्ध समाज) की बराबरी में लाना चाहती है। इनकी सन्तानें पढ़–लिखकर नौकरी भी पा जाती है लेकिन कज्जा समाज उन्हें हतोत्साहित और अपमानित कर नौकरी छोड़ने को विवश करता है। रामसिंह नौकरी छोड़ने को विवश होता है और माँ को याद करते हुए मन ही मन कहता है, ''अच्छा हुआ माँ मर गयी, नही ंतो देखती और दुःखी होती कि उसकी देह नोचने वाले अब बेटे को खोंट रहे हैं।''[7] रामसिंह की बेटी अल्मा पढ़ी–लिखी होने के कारण कबूतर समाज को कज्जा समाज की बराबरी में खड़ा करने में अपनी पढ़ाई के बल पर ही प्राप्त राजनीति की सीढ़ी पर चढ़ पाने के कारण ही सफल होती है। 'चाक' उपन्यास की सारंग भी संघर्श की प्रतिमूर्ति है जो गाँव में स्वास्थ्य सेवायें तथा शिक्षा की अच्छी व्यवस्था के लिये संघर्श करती है। सभी प्रकार के शोशण के विरूद्ध संघर्ष करने वाली सारंग का पति भी उसका साथ छोड़ देता है लेकिन वह परवाह न करते हुए अपने अभीश्ट संघर्श के पथ पर अग्रसर रहती है।

'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास यद्यपि पूर्णतः आज के पढ़े–लिखे समाज के जीवन पर आधारित है लेकिन यहाँ भी समाज (पुरुष) की दृष्टि में पढ़ाई–लिखाई करने वाली तथा नौकरी करने वाली स्त्रियाँ सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखी जाती। पुलिस विभाग में सिपाही के रूप में नौकरी कर रही–इला चौधरी, समीना, सुरिन्दर कौर तथा प्रिया को अपनी पढ़ाई–लिखाई, खेल कूद तथा पुलिस की नौकरी में जाने को लेकर घर तथा समाज से जमकर

संघर्ष करना पड़ता है। लड़कियों की शिक्षा के प्रति विशेषकर–जाटों, यादवों और गुर्जरों में आजादी के बाद भी लम्बे समय तक अच्छी धारणा नहीं रही। लड़की और पढ़ाई का मतलब वहां लड़की के बिगड़ने, प्रेमी के साथ भाग जाने और खानदान की इज्जत धूल में मिल जाने तक की ही सोच रही है लेकिन इला चौधरी, समीना, सुरिन्दर कौर तथा प्रिया जैसी पुलिस कर्मियों ने यह प्रमाणित कर दिया कि शिक्षित स्त्री विभिन्न मोर्चो पर संघर्ष कर विजय की पताका फहरा सकती है। 'खाप' पंचायतों के निर्णयों को लेकर अनेक पढी–लिखी लड़कियों का तक बलिदान हुआ लेकिन इस सबके उपरान्त यह सिद्ध हुआ कि लड़की भी मानवी है। अतः स्वेच्छा से आचरण करना व आत्मनिर्भर होना उसका अधिकार है।

धार्मिक– मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास स्त्री विमर्श की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। परम्परागत भारतीय ग्रामीण समाज के मूल्यों के मूल में धर्म की बड़ी महत्ता रही है। स्त्री के लिए घर की चारदीवारी से बाहर निकलने का निषेध, बाँझ होने पर पूजा–पाठ, जादू–टोना, तांत्रिक व धर्म गुरूओं का आशीर्वाद लेने जैसी बातें, लड़की के ब्याह की महत्ता अनेक विषयों पर परम्परागत समाज धर्म की आड़ लेकर महिलाओं पर अधिकार जताता रहा है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी एक बेटे की माँ है और विधवा हो चुकी है। वह अपने घर जेठ की छत्र छाया में धर्मानुसार वैधव्य बिता सकती थी, लेकिन उसका भाई उसे अन्यत्र बेच डालता है। उर्वशी की मृत्यु होने पर दाह संस्कार से पूर्व धर्म का निर्वाह करते, ''आगे–आगे देवेश के साथ दूसरा कंधा उदय का था। पीछे लुटे–लुटे से दाऊ और वैरागी और महाप्रयाण की ओर चली जा रही थी– सर्वदमन की विधवा .... उर्वशी।''[8] 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी को विवाह करने से इंकार करने पर उसकी माँ धर्म की आड़ लेकर उसे बहुत डराती–धमकाती है। माँ कहती है, ''कस्तूरी जिसकी बेटी कुँआरी रहती है, उसकी सात पीढ़ियाँ गल जाती हैं, समझ लें।''[9] एक धार्मिक विश्वास ग्रामीण समाज में कुँवारी कन्याओं के बाल कटवाने को लेकर भी था।

'विजन' उपन्यास की डा0 नेहा की सास बेटे बहू को घर पर सम्पन्न किए जाने वाले अनुष्ठानों के पूर्ण होने तक हनीमून पर जाने की इजाजत नहीं देती। 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में धार्मिक भावना विशेषकर स्त्री धर्म के निर्वाह को लेकर व्यक्त हुई है। पिरौना बाई का रिश्तेदार शुगर सिंह उसके घर में रह रहा है, उसकी बेटी बेला से विवाह करने की जिद में धर्म की दुहाई देता है। वह कहता है, ''सगाई आधा ब्याह ही होती है। वह मंगेतर है। हमारी जात में तो बछिया पुन्न होकर ब्याह–शादी हो जाते हैं।''[10] बेला की अनिच्छा के चलते शुगर सिंह से उसका ब्याह हो जाता है। ब्याह के कुछ दिनों बाद समाज और स्वयं शुगर सिंह अब बेला से सन्तान की अपेक्षा रखते हुए उतावले रहते हैं। शुगर सिंह यह भी भूल गए कि अपनी पहली पत्नी को वह जिस तांत्रिक के पास सन्तान की आशा से ले गए थे, वह मरी नहीं, वरन् तांत्रिक ही उसे भगा ले गया था। शुगर सिंह के गाँव में यह बात खूब चली कि ''एक तांत्रिक आया करता था, जिसका तंत्र–मंत्र उस औरत के बाँझपन को दूर करने के लिए चलता था। बताया गया कि वह नदी नहाते समय डूब गयी।''[11] 'झूला नट' उपन्यास का बालकिशन भी घर की माया मोह से ऊब कर अन्त में धर्माचरण की राह पकड़ने को बाध्य हो गया था। 'अगनपाखी' की भुवन अपने पति विजय के स्वास्थ्य लाभ की इच्छा लिए रोज मंदिर जाती है। मन्दिर के पुजारी और उसका बेटा धर्म भीरू थे, लेकिन जाने जाते थे धर्मात्मा के रूप में।

सांस्कृतिक– भारतीय ग्रामीण समाज में हमारा खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, विश्वास और मान्यताएँ सभी हमारी संस्कृति की पहचान है। भारतीय समाज में साधु–सन्तों के सम्मान तथा दान की महत्ता सदैव रही है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी बैरागी के सुदर्शन रूप में गाँव में आये हरीन्द्र सिंह यादव को साक्षात भगवान मानती है और उसकी श्रद्धा–भक्ति इस कदर उमड़ती है कि वह कोठरी में पड़ी अन्न की ढेरी में से अंजुरी भर अनाज ''अन्न–दान, महादान'' सोचकर स्वामी जी की झोली में डालने चल दी।''[12] वैधव्य को भारतीय संस्कृति में नारी जीवन की दुःखद स्थिति के रूप में देखा जाता है और विधवा जीवन व्यतीत करने के लिये कठोर नियमों का विधान भी है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी एक जागरूक स्त्री है जो खोखली परम्पराओं तथा संस्कृति के कठोर बन्धनों की अनदेखी करने के लिए उपहास का पात्र बनती है लेकिन नवीन संस्कृति को अपनाकर वह

प्रगति के पथ पर अग्रसर होती है। 'कही ईसुरी फाग' में बुन्देलखण्ड की संस्कृति लोकगीतों और गायकों के माध्यम से उजागर हुई है। मेहमान को देवता मानना हमारी संस्कृति की विशेषता है। अपने फागों में रजऊ नाम का बार–बार प्रयोग करने वाले ईसुरी से नाराज होते हुए भी रजऊ की सास ईसुरी को अपने घर पर न्यौतती है और अच्छी खातिरदारी करती है। स्त्री को घर में घूँघट करते रहना भारतीय संस्कृति है जो स्त्री को घर की चारदीवारी मे कैद कर उसकी स्वतंत्रता में बाधक रही है, जिसका विरोध आधुनिक स्त्री करने लगी है। 'चाक' की सारंग कहती है?'' अरे हम इसी तरह हवन करते रहेंगे, अपनी देहों का? हमें मारकर ही इनकी आन–बान का झंडा फहरेगा? भँवर कैसे लोग हैं ये? इनके पास अपना कुछ नहीं। घर–बार की खुशी, शान–शौकत हमारे घूँघट के नाम लिख दी है। तुम्हारे भइया पढ़े–लिखे बनते हैं और घूँघट ऊँचा होते ही गुर्राने लगते हैं।''[13]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में खानाबदोसी जीवन व्यतीत करने वाली जनजातियों विशेषकर लोहापीटाओं की संस्कृति तथा समृद्ध समाज (कज्जाओं) की संस्कृति, उनकी मान्यताओं, रीति–रिवाजों की समुचित अभिव्यक्ति मिलती है। मृत्यु का संस्कार भारतीय समाज में पूर्णनिष्ठा के साथ पूर्ण किया जाता है। क्योंकि यह संस्कृति का अनिवार्य अंग है किन्तु भारतीय समाज में मुखाग्नि देने का कार्य पुरुष द्वारा करने का विधान है, जिसका अल्मा विरोध करती है और स्वयं श्रीराम शास्त्री की चिता को मुखाग्नि देने का कार्य अल्मा द्वारा सम्पन्न किया जाता है। 'अगनपाखी' उपन्यास की भुवन अपने बाल्यकाल से ही जाति–पाति के भेदभाव को अच्छा नहीं समझती। वह इस प्रकार भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता–अनेकता में एकता की पक्षधर है।

यौन सम्बन्धी– भारतीय ग्रामीण समाज सामान्यतः अशिक्षित समाज रहा है, जहाँ उच्च वर्ग की अपेक्षा मध्य व निम्नवर्ग का बोलबाला है। पितृसत्ता का बोलबाला होने के कारण समाज में पुरुषों का प्रभुत्व रहा और अपनी परम्परा के अनुसार पुरुष वर्ग ने नारी की सदैव भोग्या समझा। ''जिसकी लाटी उसकी भैंस' की तर्ज पर पुरुष समाज जब जहाँ मन करता, बलात्कार करता रहा और इस प्रवृत्ति को अपने पौरुष की विशेषता मानता रहा। स्त्रियाँ या युवतियाँ जो भी यौन सम्बन्धी दुराचार की शिकार हुयी, उन्हें या तो दुराचार को छिपाने के लिए बाध्य होना पड़ता था अथवा उन्हें वैश्या, कुल बारिनी, कलंकी और पतिता कहकर समाज उपेक्षा प्रदान करता रहा। मैत्रेयी पुष्पा जिन्हें आज हम स्त्री विमर्श की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कथाकार मानते हैं, उन्होंने समाज की यौन विकृतियों को करीब से देखा ही नहीं, भोगा भी है। ग्राम, जीवन से लेकर इस प्रकार का चित्रण शहरी जीवन से सम्बन्धित उपन्यास 'गुहान–बेगुनाह' तक सर्वत्र व्याप्त है। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास, जिसकी मुख्य कथा पुलिस विभाग से सम्बन्धित है, यौन चित्रण की दृष्टि से सर्वाधिक अमानवीय और वीभत्स है।

स्त्री के क्रय–विक्रय की परम्परा, आर्थिक विपन्नता, अधिक उम्र में विवाह होना, अनमेल विवाह, सन्तान की कामना तथा शरीर सुख की सन्तुष्टि आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे समाज में यौन सम्बन्धी दुराचार को प्रश्रय मिलता रहा है। जब से समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ व नारी की चेतना जाग्रत हुई, तब से पुरुष की देखा–देखी नारी भी शरीर सुख की चाह युक्त रूप से करने लगी। 'अल्मा कबूतरी' की भूरी तथा कदमबाई स्वेच्छा से, तो अल्मा मजबूरी के चलते यौन सम्बन्ध बनाती है। भूरी और कदमबाई अपनी सन्तान की शिक्षा के लिये तथा समय पर बच्चा पैदा करने के इरादे से खुले रूप में यौन सम्बन्ध बनाती है तो पिता द्वारा गिरवी रखी गई अल्मा जिन–जिन हाथों से होती हुई गुजरती है, वे सभी उससे यौन सम्बन्ध बनाते हैं। अल्मा सब सह लेती है क्योंकि उसकी दृष्टि अपने उद्देश्य की सफलता पर है। 'चाक' उपन्यास की सारग अपने पति रंजीत को अन्याय के विरूद्ध संघर्ष के लिए साथ लेना चाहती है, लेकिन पुरुषवादी मनोवृत्ति का पोषक रंजीत उसका साथ नहीं देता तो वह मास्टर श्रीधर का साथ कर लेती है। साथ ही नहीं करती, उससे यौन सम्बन्ध भी बनाती है। सारंग श्रीधर से करती है, ''श्री धर, अगर तुम्हारी आँखें इस देह को देखकर आनन्द पाती है तो जी भरकर देखो मुझे। मेरा देह धरना सुकारथ हो गया। परस से तुम्हारे घाव सिराते हैं तो छुओ न, मेरी सुन्दरता सार्थक हुई। भोग करने से तुम्हारे प्राण तृप्त हों, तो आओ रात बाँकी है अभी। भवसागर से पार उतर जाऊँगी मैं।''[14] सारंग मानती है कि आज तो मेरे

पास श्रीधर को देने के लिये कुछ है, जब वह भी न रह जायेगा तो केवल पश्चाताप बच रहेगा। मैत्रेयी पुष्पा के अधिकांश उपन्यासों के नारी चरित्र चेतना सम्पन्न है अथवा उनमें चेतना आ रही है। 'इदन्नमम्' की सुगना बलात्कार की शिकार होती है। माता–पिता की मजबूरी के चलते लेकिन जब उसे ऐहसास होता है कि उसके साथ ज्यादती हो रही है, वह छुरे से वार कर बलात्कारी अभिलाख की हत्या तो करती ही है, आत्महत्या भी कर लेती है। 'फरिश्ते निकले' उपन्यास की बेला बहू शुगर सिंह की बीमारी के चलते भारत सिंह के पास पहुँचती है। उसे शुगर सिंह ने बाँझ कहकर पीड़ित और प्रताड़ित किया है, जबकि वह बाँझ नहीं है, पुरुष की कमजोरी के चलते वह बच्चा नहीं जन पा रही है। भारत सिंह के संसर्ग से उसे अपना सपना पूरा होता दिखता है लेकिन जब वह जानती है कि भारत सिंह और उसके भाई बेला के शरीर का उपयोग कर राजनीतिक सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो बलात्कार सहन करते–करते सब भाइयों को जिन्दा जला डालती है। इसी उपन्यास की उजाला तो लोहापीटाओं की लड़की है, अपने से उच्च जाति के लड़के बीर सिंह की प्रेमिका बनने के फलस्वरूप बलात्कार की शिकार बनती हैं। यहाँ बेला बहू और उजाला के यौन सम्बन्ध स्वेच्छा पर आधारित न होकर मजबूरी का परिणाम कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार यौन सम्बन्धी वर्णन कहीं मनुष्य की आदिम वृत्ति के रूप में, तो कहीं पुरुष की अहमवादी मनोवृत्ति के कारण और कहीं स्त्रियों की कामेच्छा के कारण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास में बहुतायत से हुआ है। तमाम प्रकार की यौन विषयक घटनाओं और प्रसंगों का चित्रण कर कथाकार ने स्त्री समाज की आँख खोलने, उन्हें संगठित करने तथा सम्मिलित होकर नारी मुक्ति के महत् कार्य के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नारी की दयनीय स्थिति के मूल में महत्वहीन व खोखली परम्पराओं और मूल्यों का विशेष हाथ रहा है और इन्हीं ने नारी के विकास की राह में हमेशा रोड़े अटकाये और उसके निर्वाध अग्रसर कदमों को रोकने का भरसक प्रयास किया। आज भी स्त्रियों की इस बदतर स्थिति के उदाहरण यत्र–तत्र समाज में देखने को मिल जाते हैं किन्तु फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आज मैत्रेयी पुष्पा जैसी स्त्री विमर्श की जबर्दस्त पैरोकार महिला कथाकारों की अपनी कृतियों द्वारा प्रचारित–प्रसारित स्त्री शिक्षा, स्त्री जागरूकता व स्त्री चेतना के फलस्वरूप समाज में नारी की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगत होता है जो भविश्य के लिए एक शुभ संकेत है।

सन्दर्भ सूची

1. पुष्पा मैत्रेयी 'बेतवा बहती रही', पृष्ठ 142, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक संस्करण : 2010
2. पुष्पा मैत्रेयी 'कस्तूरी कुण्डल बसैं', पृष्ठ 105, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2009
3. पुष्पा मैत्रेयी 'अल्मा कबूतरी', पृष्ठ 344, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2009
4. पुष्पा मैत्रेयी 'कस्तूरी कुण्डल बसैं', पृष्ठ 11, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2009
5. पुष्पा मैत्रेयी 'कस्तूरी कुण्डल बसैं', पृष्ठ 34, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2009
6. पुष्पा मैत्रेयी 'कस्तूरी कुण्डल बसैं', पृष्ठ 34, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2009
7. पुष्पा मैत्रेयी 'अल्मा कबूतरी', पृष्ठ 103, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2009
8. पुष्पा मैत्रेयी 'बेतवा बहती रही', पृष्ठ 150, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक संस्करण : 2010
9. पुष्पा मैत्रेयी 'कस्तूरी कुण्डल बसैं', पृष्ठ 13, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2009
10. पुष्पा मैत्रेयी 'फरिश्ते निकले', पृष्ठ 28, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2014
11. पुष्पा मैत्रेयी 'फरिश्ते निकले', पृष्ठ 42, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2014
12. पुष्पा मैत्रेयी 'बेतवा बहती रही', पृष्ठ 18, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक संस्करण : 2010
13. पुष्पा मैत्रेयी 'चाक', पृष्ठ 388, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण : 2014
14. पुष्पा मैत्रेयी 'चाक', पृष्ठ 329, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण : 2014

❑❑

43

हिन्दी साहित्य में दलित जनजीवन का यथार्थ चित्रण

डॉ0 बुशरा रिज़वान जाफरी
प्रवक्ता–हिन्दी विभाग
चन्द्रशेखर आज़ाद डिग्री कॉलेज, रामापुर, लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

साहित्य की किसी भी विधा पर वहाँ के देश काल का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। किसी भी समुदाय का जनजीवन आस–पास के परिवेश से प्रभावित होता है। अतः वर्ण व्यवस्था के कारण समाज में व्याप्त ऊँच–नीच, जातिगत भेदभाव, छुआछूत आदि का सीधा प्रभाव दलित कहे जाने वाले अवर्ण समाज पर पड़ा। दलितो के लिए प्रतिकूल देशकाल के कारण ही दलितों को सामाजिक रुप से अपमान व तिरस्कार का दंश झेलना पड़ा परिणाम स्वरुप दलितों का लोक जीवन भी इससे प्रभावित हुआ। निर्धनता एवं अशिक्षा के चलते इस समुदाय का खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, आचार–विचार आदि सभी सवर्णों से निम्न स्तर के ही रहे। इसका प्रतिफलन दलित कहानीकारों की कहानियों में यथार्थता के साथ हुआ है।

भारतीय समाज के देशकाल से प्रभावित दलित जनजीवन के सम्बन्ध में दुसाध कहते हैं, ''सवर्ण साहित्यकार किसी दूसरे ग्रह या समाज से नहीं आए, ये भी उसी जाति समाज के सदस्य हैं, जहाँ की धूल–माटी में दया पवार, नैमिशराय या वाल्मीकि पले–बढ़े हैं। दयापवार या नैमिशराय जी को हिन्दू समाज का उत्पीड़न झेलते उन्होंने देखा होगा। नामुमकिन नहीं कि यह दंश देने में उनका भी कुछ हाथ रहा हो। हिन्दुस्तान में इतनी सारी ऊँची–नीची जातियाँ और उपजातियाँ हैं कि खुद सवर्ण लेखक ने भी किसी–न–किसी स्तर पर कभी अपमान जनक स्वाद चखा होगा।''[1]

लोक–जीवन :

दलित साहित्यकारों की रचनाओं में लोक जीवन का विशेष महत्व है अतः दलित कहानियों में भी इसके दर्शन होते हैं। लोक साहित्य वह साहित्य होता है, जो किसी समाज में जनसाधारण के बीच सदियों से मौखिक या वाचिक परम्परा में विद्यमान होता है। लोक साहित्य चूँकि लोक चेतना का साहित्य है इसलिए इसमें सामान्य जन, बहुसंख्य या सर्वहारा वर्ग के सुख–दुख, आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, आहलाद–उल्लास आदि कि अभिव्यंजना तो होती ही है साथ ही उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, कुल मिलाकर सांस्कृतिक समस्याओं को भी केन्द्र में रखा जाता है। अतः दलित साहित्य भी एक प्रकार से लोक साहित्य ही है।

'लोक' शब्द लोक् दर्शने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बना है जिसका अर्थ है देखना। इस प्रकार 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला अतः वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाता है।[2]

स्पष्ट है कि लोक वह मनुष्य समाज है, जो अपनी परम्पराओं, रीति–रिवाजों, खान–पान, आचार–विचार, रहन–सहन कुल मिलाकर अपनी सम्पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति में अलिखित और मौखिक परम्परा प्रदत्त ज्ञान के प्रति अधिक आस्थाशील होते हैं।

भारतीय साहित्य लोक जीवन से परिपुष्ट है। भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की व्याप्ति के कारण ही यहाँ का साहित्य भी लोक चेतना से सम्पृक्त है। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में भी अपने समाज के लोक जीवन का यथार्थांकन किया है। डॉ0 दुर्गा भागवत के अनुसार–''भारत में लोक साहित्य केवल अवशेष मात्र नहीं है। यह बहुरंगी, बहुभाषी और बहुपरम्परा वाली भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग है जोकि यथार्थातः न समझने योग्य है। एक व्यक्ति इसका पूर्ण दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता। कोई व्यक्ति इसे ठीक प्रकार से नहीं आँक सकता

क्योंकि यह अनुमान न कर सकने योग्य रुप से विशाल है।''[3]

अतः लोक जीवन का हमारे साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भिन्न लौकिक परिवेश से आए हुए भिन्न–भिन्न साहित्यकारों के साहित्य में उस साहित्यकार के आस–पास उपस्थित लोक जीवन की छाप सहज ही देखने को मिलती है, यह तथ्य दलित कहानीकारों पर भी लागू होता है। अतः दलित कहानीकारों की कहानियों में दलित पात्रों का रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, वेश–भूषा, पर्व–त्योहार, सोच–विचार आदि को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। जिससे कहानी की स्वाभाविकता एवं नैसर्गिकता में वृद्धि हुई है।

''वस्तुतः अछूत भावना या अस्पृष्यता मुख्यतः तीन रुढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित है– खान–पान सम्बन्धी नियम, शादी का सम्बन्ध तथा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर की बात है उसके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध हुआ मानते हैं। मन्दिर प्रवेश तथा धार्मिक उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर, वह मन्दिर में रखी हुई मूर्ति का दर्शन भी नहीं कर सकता है।''[4]

खान–पान :– खान–पान से भी दलितों की स्थिति का पता चलता है। खान–पान के माध्यम से दलितों का आर्थिक स्तर, उनके भोजन तथा उनके उत्सवों में खान–पान की व्यवस्था के बारे में जानकारी मिलती है।

खान–पान भी लोकजीवन का ही एक अंग है। 'सलाम' कहानी में कहानी नायक हरीश के विवाह में नान–मीट का इंतज़ाम करवाया गया है जिससे पता चलता है कि दलित जाति के लोग भी विवाह आदि में नान, बकरे का मीट व दारू का सेवन करते हैं। यथा :–

'सूरज सिर के ऊपर चढ़ गया था। शादी वाले घर में काफी चहल पहल थी। दोपहर के खाने में विशेष इंतजाम किया गया था। पास के कस्बे से 'नान' और 'मीट' बनाने के लिए कारीगर बुलाया गया था। एक मोटा ताजा बकरा काटा गया था पके हुए 'मीट' और गर्म मसालों की महक पूरे आँगन में फैल गई थीं। कुछ लोग सुबह से ही दारू पीने बैठ गए थे। काफी हो–हल्ला होने लगा था। बच्चों की चिल्ल–पों अलग थी। बड़े–बूढ़े हुक्के की गुड़–गुड़ में अपने जमाने को याद कर रहे थे। औरतों की व्यस्तता कुछ अगल थी।'...[5]

'भय'– कहानी के पात्र जातिगत हीनता भाव के कारण अपनी जाति छिपा कर कॉलोनी में रहते थे। वे अपनी जाति को लेकर इतने अधिक भयभीत रहते थे कि द्विज जाति के राम प्रसाद तिवारी के आने पर खान–पान में भी विशेष सतर्कता बरती जाती थी–

'उसके लिए सबसे बड़ी चिंता का कारण था – राम प्रसाद तिवारी। रोज का आना जाना था उसका कभी–कभी उनके साथ ही खाना भी खा लेता था। जिस रोज वह उनके घर खाना खाने के लिए रूकता था। उस रोज माँ सब्जी में लहुसन तक नहीं डालती थी। माँस तो यदा–कदा ही बनता था। वह भी तब, जब यह पता होता था कि तिवारी नहीं आएगा या कहीं बाहर गया हुआ है।'[6]

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'खानाबदोश' के दलित पात्र अभावग्रस्त जीवन जीते थे। वे भट्टे में ईंटे पाथने का कार्य करते थे। इन दलित मजदूरों का खान–पान अत्यन्त सामान्य था। यथा–

'भट्टे की जिन्दगी अजीब थी। . . . झोपड़ी के बाहर जलते चूल्हे और पकते खाने की महक भट्टे की नीरस ज़िन्दगी में कुछ देर के लिए ही सही ताज़गी का अहसास होता था। ज्यादातर लोग रोटी के साथ गुड़ या फिर लाल मिर्च की चटनी खाते थे। दाल–सब्जी तो कभी–कभार ही बनती थी।'[7]

प्रेम शंकर कृत कहानी 'बित्ते भर ज़मीन' का नायक 'मैं' एक दलित जाति का युवक है। वह अपने गाँव पहुँचता है। उसकी बड़ी भतीजी खाट पर ही थाली में रोटी और कद्दू की सब्ज़ी लाकर देती है। इससे उनके साधारण खान–पान का पता चलता है।

जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'चमार' का नायक सुक्खा अपनी विपन्नता से अत्यन्त दुःखी है। वह सोचता

है कि क्या उसके पुत्र चन्दन को भी यही सब सहन करना पड़ेगा। क्या उसे भी रूखा–सूखा खाकर सन्तोष करना पड़ेगा। यथा–

'' . . . क्या उसे भी गुड़ की डली या प्याज़ की गंठी के साथ रूखी–सूखी रोटी हलक़ के नीचे उतारकर दिन गुज़ारने पड़ेंगे?क्या उसे भी मेरी जैसी ज़िन्दगी जीनी पड़ेगी?''[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'रिहाई' के दलित पात्र मिट्ठन व उसकी पत्नी सुगनी लाला के गोदाम की रखवाली करते हैं। गोदाम से बाहर जाने की इजाज़त भी उन्हें नहीं है। वे रोज़ दाल खा–खाकर ऊब जाते हैं तो मिट्ठन गोदाम में सब्ज़ी उगाने की बात लाला से पूछता है, तो लाला बिफर पड़ता है। यथा–

''तेरा दिमाग तो ठीक है। तू गोदाम में खेती करेगा . . . तुझे यहाँ खेती करने के लिए नहीं; गोदाम की देखभाल के लिए रखा है। . . . भर पेट रोटी मिलते ही हरी सब्ज़ियाँ याद आने लगीं।''[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'हत्यारे' नामक कहानी अंधविश्वास को उजागर करती है। बीमार सलेसर को ठीक करने के लिए सूरजा भगत के कहने पर प्रेत के साए से बचाने के लिए बेरहमी से पीटा जाता है, और देवता को सूअर चढ़ाया जाता है। मोहल्ले के लोग भी मज़े से दावत उड़ाते हैं। यथा–

'सूअर का गोश्त और शराब गले से नीचे उतरते ही मोहल्ले की रौनक बढ़ गई थी। देर रात तक शोर–शराबा चलता रहा। कई लोग गोश्त के स्वाद की बढ़–चढ़कर प्रशंसा कर रहे थे। शराब के पेवर (प्योर) होने के गुण ने हलक को ताज़गी से भर दिया था। हर एक चेहरे पर राजसी अहम् फूटने लगा था।'–[10]

दयानन्द बटोही की कहानी 'अन्धेरे के बीचोबीच' में चित्रित दलित पात्र अत्यधिक विपन्न हैं। एम0ए0 पास रेवत अपनी पत्नी व बच्चे का खर्च चलाने हेतु रिक्शा चलाने को बाध्य होता है। वे कठिनाई से केवल रोटी खा सकने की ही व्यवस्था कर पाते हैं। वह भी उन्हें हर समय या भर पेट उपलब्ध नहीं हो पाती।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी 'कर्ज़' के दलित पात्र अत्यधिक निर्धनतापूर्वक जीवनयापन करने को विवश थे। यथा–

'कभी–कभी रामदीन को बाहर का काम मिल जाता था तो रामप्यारी को अपने खेत में जुताई–बुआई करनी पड़ती। थोड़ी बहुत छाछ और गुड़ पड़ोस से कभी मिल जाता तो सुबह उसी से काम चला लिया जाता। इसी तरह रूखी–सूखी रोटियों के सहारे जीविका चल रही थी।'[11]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'गाँव' के दलित पात्र सुक्खन नाई की पत्नी जब चूल्हे के पास बैठकर भोजन बनाती तो पुत्र ननकू पास आकर बैठ जाता। गरम–गरम रोटी और साग, चूल्हे की घई की खूब सिकी हुई मिस्सी रोटी खाते हुए वह अपनी माँ के हाथ के बने भोजन की प्रशंसा भी करता।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'हमारा जवाब' का दलित पत्र हिम्मत सिंह पहलवानी भी करता था। उसका शरीर कसरती था। दो ही काम थे– खूब कुश्ती लड़ना और दूध–घी खाना।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'आधा सेर घी' का पात्र एक विद्यार्थी है। खाने में उसे एक छटाँक घी भी मयस्सर नहीं था उसे सूखी रोटी खानी पड़ती थी।

उक्त दलित कहानियों में चित्रित दलितों में प्रचलित खान–पान के माध्यम से दलितों की स्थिति के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी मिलती है।

सहन :– दलित कहानीयों में चित्रित दलितों का रहन–सहन दलितों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को स्पश्ट करता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'कहाँ जाए सतीश' का दलित पात्र अपने घर से भाग आता है और किराएदार के रूप में मि0 व मिसेज़ पंत के घर रहने लगता है। वह पढ़ना चाहता है और माता–पिता उसे सफ़ाईकर्मी

बनाना चाहते हैं। इसीलिए वह बिना बताए घर से चला आता है। पंत परिवार में उसका रहन–सहन अति–साधारण–सा था। उसकी दिनचर्या व रहन–सहन इस प्रकार है–

'पिछले छः महीने से सतीश सुबह स्कूल जाता और दोपहर बाद से रात नौ–दस बजे तक एजाज़ साहब की बल्ब फैक्ट्री में काम करता था। हर रोज़ उसे बीस–पच्चीस रूपये मिल जाते थे। जिससे उसका स्कूल का ख़र्च और खाना–पीना–रहना चल रहा था। पंत के घर वह पाँच बाई छः के एक छोटे से स्टोर में रहता था। जिसमें एक छोटी चारपाई डालने के बाद चलने–फिरने की जगह भी नहीं बचती थी। वैसे भी उसके पास नाममात्र का ही सामान था। एक थैली भर किताबें, दो जोड़ी कपड़े, एक चटाई और एक चादर तथा रजाई। रजाई भी उसने अभी–अभी बनवाई थी।'[12]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'जिनावर' का नायक एक दलित व्यक्ति है। वह चौधरी का गुलाम है। माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् से वह चौधरी के ही पास रहता है। यथा–

'जब बापू मरे, जगेसर दस बरस का था। एक साल बाद माँ भी चल बसी थी। उसके बाद तो वह चौधरी का ही होकर रह गया था। उसे तो कभी पता भी नहीं चला कि बापू ने ऐसा क्या कर्ज़ किया था जो उम्र भर की गुलामी उसके हिस्से में आई थी। अब तो वह चौधरी से अलग कुछ सोच भी नहीं पाता है। चौधरी को छोड़कर वह जाए भी तो कहाँ जाए।'[13]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'अम्मा' की नायिका अम्मा का रहन–सहन अत्यन्त साधारण था। यथा–

'शुरू के दिनों में सुकड़ू उसका नाम नहीं लेता था। नाम तो वह अब भी नहीं लेता। उन दिनों नाम लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। दिन–भर तो वह माँ–बहन के साए में घिरी रहती थी। देर रात सुकड़ू चुपके चुपके उसकी चारपाई पर पहुँचता था, वह भी चोर की तरह दबे पाँव। . . . उसमें भी डर लगा रहता था, कहीं बहन या माँ जाग न जाएं। एक छोटे से आँगन में टिन की छत और लकड़ी के फट्टों को जोड़कर रहने भर की जगह थी।'[14]

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'खानाबदोश' में चित्रित मज़दूरों का रहन–सहन अति–साधारण था। यह मजदूर भट्टे पर रहकर ही ईटें पाथने का कार्य करते थे। यथा–

'एक कतार में बनी छोटी–छोटी झोपड़ियों में टिमटिमाती डिबरियां भी इस अंधेरे से नहीं लड़ पाती थीं। दड़बेनुमा झोपड़ियों में झुककर घुसना पड़ता था। झुके–झुके ही बाहर आना होता था। भट्टे का काम खत्म होते ही औरतें चूल्हा–चौका सँभाल लेती थी। कहने भर के लिए चूल्हा–चौका था। ईंटों को जोड़कर बनाए चूल्हे में जलती लकड़ियों की चिट–चिट जैसे मन में पसरी दुश्चिंताओं और तकलीफ़ों की प्रतिध्वनियाँ भी जहाँ सब कुछ अनिश्चित था।'[15]

प्रेम शंकर की कहानी 'बित्ते भर जमीन' का रहन–सहन अत्यन्त साधारण है। सर्दियों की रातों में कोई घर से बाहर निकलना भी पसन्द नहीं करता। नायक 'मैं' का भतीजा रामू कहता है–

'चलो ऊपर ही सोएंगे' मैंने कहा– 'हाँ चलो।' ऊपर कोठे में एक ओर उपले चिने हुए थे और दूसरी ओर मक्का की सूखी गिल्लियां पड़ी थीं। ढिबरी जलाकर रोशनी की। पलंग को रामू ने झाड़ा और बिछौना किया। मैं कपड़े उतारकर बैग खूंटी पर टांग रजाई में घुस गया और रामू से कह दिया कि रात को पानी पीने के लिए एक लोटा पानी ऊपर ही रख जाए।'[16]

दलितों के साधरण रहन–सहन को स्पष्ट करने का प्रयास कहानीकार ने किया है। प्रकाश के लिए ढिबरी जलाना, एक ओर उपले और दूसरी ओर मक्का की सूखी गिल्लियां आदि दलितों के साधारण रहन–सहन की प्रतीक हैं।

जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'चमार' दलित जाति के सुक्खा के निम्न जीवन स्तर को स्पष्ट करती है। वक्त की मार ने उसका सब कुछ चौपट कर दिया था। वह अपने उच्छे दिनों के सम्बन्ध में सोचता है–

'...मेहनत–मजदूरी कर–करके एक दो बीघे की बौंडिया ख़रीद ली थी सुक्खा ने और एक भैंस भी पाल ली थी। खाने–पीने के लिए थोड़ा–बहुत अनाज खेत में हो जाता था और कुछ ठाकुर जंमींदारों के खेतों में लाई–पताई से। भैंस का दूध बेचकर साग–सब्ज़ी और ऊपर का ख़र्च चल जाता था। अच्छा काम चल निकला था। ...पर वक्त की मार ने सबकुछ चौपट कर दिया सुक्खा का।'[17]

रत्नकुमार सांभरिया की 'क्षितिज' नामक कहानी अत्यन्त मार्मिक है। कहानी के पात्र सोमा के रहन–सहन से दलित जन–जीवन की दरिद्रता का अनुमान सहजतापूर्वक लगाया जा सकता है। यथा–

'पौष की सर्दी हड्डियों से निकलती थी। जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों की तो क्या औकात थी, धरती भी काँप रही थी। . . . दरअसल पन्द्रह दिन पहले सोमा अपनी पत्नी रेवती और पांच महीने के बच्चे के साथ खुले आसमान तले ही रातें निकाला करता था। एक रात सर्दी से बच्चे को बुख़ार आ गया और सोमा तथा रेवती की दांती बजती रही, नहीं रुकी तो सोमा ने सुबह होते ही चार फटी पुरानी बोरियां ख़रीदीं। उसने उनको सीधा किया और तिरपाल जैसा सी लिया। उसने उस तिरपाल के दो सिरे महाजन की एक दीवार से कीलें ठोककर बाँध दिए। ...धरती से लटकते तिरपाल को चारों ओर से पत्थरों से दबा भी दिया ताकि हवा में उड़े नहीं और सूअर, कुत्ते, बिल्ली सीधे अन्दर नहीं चले आएं।'[18]

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'शवयात्रा' में चित्रित बल्हार परिवार दलितों में भी दलित है। वह अत्यन्त निम्न स्तर का जीवन यापन करने को विवश है। परन्तु कल्लन की नौकरी लग जाने से परिवार का रहन–सहन बहुत–कुछ बदल भी गया है यथा–

'जब सन्तो की शादी हुई थी, सारा ख़र्च कल्लन ने ही उठाया था। सुरजा के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। कल्लन की शादी भी रेलवे कॉलोनी में ही हो गई थी। उसके ससुर भी रेलवे में ही थे। उसे पढ़ी–लिखी पत्नी मिली थी, जिसके कारण उसके रहन–सहन में फ़र्क आ गया था। उसके जीवन का ढर्रा ही बदल गया था। . . . लेकिन जब भी वह गाँव आता, चमार उसे अजीब सी नज़रों से देखते थे। कल्लू से कल्लन हो जाने को वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे।'[19]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'कूड़ाघर' के नायक को जाति पता चलने पर सवर्ण मकान मालिक डॉक्टर साहब और उनकी घरवाली द्वारा निकाल दिया जाता हे। दलितों को अच्छी जगह मकान मिलने में भी समस्याएं हैं, क्योंकि जातिगत भेदभाव दलितों के रहन–सहन को भी प्रभावित करता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा कृत 'रिहाई' नामक कहानी के मुख्य पात्र मिट्ठन व उसकी पत्नी सुगनी लाला के गोदाम की रखवाली करते हैं। वे गोदाम में ही रहते हैं, यही उनका संसार है। यथा–

'सुगनी और मिट्ठन कई बरसों से इसी गोदाम में बन्द थे। बाहर जाने की इजाज़त नहीं थी। . . . दिन–रात गोदाम में रहकर गोदाम की रखवाली से लेकर रख–रखाव तक उसके ज़िम्मे था। बाहर का ताला लाला के आने पर ही खुलता था।'

'माल लाने ले जाने वाले ट्रक–ड्राइवरों, क्लीनरों के माध्यम से ही उनका बाहरी दुनिया से सम्पर्क था। ज़रूरत की चीज़ें इनके मार्फत ही आती थीं। गोदाम के इर्द–गिर्द ही उनकी दुनिया थी।'[20]

डॉ0 दयानन्द बटोही की कहानी 'अन्धेरे के बीचोबीच' अर्थाभाव से जूझते, शहर में रह रहे, एम0ए0 पास रिक्शा चलाने को विवश दलित पात्र के रहन–सहन को प्रदर्शित करती है। दलित पात्र रेवत का बच्चा भूख से रोता है तो पत्नी फुलवा उसे फटकारती है। रेवत पत्नी को समझाता है कि वह ना समझ है इसपर पत्नी रेवत से कहती है–

''हाँ। हाँ!! तुम्हीं ने तो जिद्दी बनाया है। ...मुझे क्या, जो देते हो बनाती हूँ, जो देते हो तुम्हें खिलाकर ही खाती हूँ, रोज नाक पर दम ला देता है। एक तो मुँह जरा भगवान हम ग़रीबों को घर द्वार से वंचित कर ...बेपरद में रहने के लिए लाया है फिर ...।''[21]

अर्थाभाव के कारण रेवत परिवार के साथ गाछ के नीचे टेन्ट जैसी फटी दो चादर डालकर रहने को विवश है। वास्तव में दलितों का इतना अधिक निम्न जीवन स्तर विचारणीय है।

विपिन बिहारी कृत कहानी 'कीर्तन मण्डली' के दलित पात्र अभावों से भरा जीवन जी रहे हैं। ये दलित पात्र उसी गाँव में रहते हैं जहाँ सवर्ण रहते हैं। परन्तु फिर भी इनके रहन सहन में काफ़ी अन्तर है। जैसा कहानी से भी स्पष्ट है। यथा– 'उस टोले के मुकाबले ये कहीं भी नहीं टिकता है। वह गाँव का माथा है तो यह पाँव। लेकिन दोनों हैं गाँव में ही। फिर भी गाँव का पाँव माना जाने वाले ये टोला . . . हालात काफी भयावह हैं। बस यही कहा जा सकता है ज़िन्दगी जी नहीं रहे हैं गुज़ार रहे हैं। तन पर सिर्फ़ वस्त्र हैं। खा भी रहे हैं, लेकिन क्या खा रहे हैं कुछ पता नहीं। रह रहे हैं, लेकिन ये भी मालूम नहीं है कि कहाँ रह रहे हैं। बस रह रहे हैं घर में जिस पर छौनी है। बरसात में छप्पर नहीं चूता। जाड़े में ठण्ड रोकती है और गर्मी में गर्मी।'–[22]

विपिन बिहारी की कहानी 'प्रतिकार' के दलित पात्रों का जीवन भी शोषण और आभाव से ग्रस्त है, उनका रहन–सहन साधारण से भी साधारण है। यथा– 'ब्राह्मण बहुल बस्ती के दक्खिन में बसा दुसाधों–चमारों का टोला। जन्म से शोषित, प्रताड़ित, मजूर। 'कर्म किये जा फल की चिन्ता मत कर रे इन्सान' के सूत्र पर दुसाधों चमारों का जीवन। खाना उतना ही मिलता था जितने में वे जीवित रह सकें। जहाँ तक पहनने–ओढ़ने की बात थी तो कपड़े ही पहनते–ओढ़ते थे। लेकिन इतनी प्रचुरता नहीं थी कि ... जवान होती लड़कियाँ भी एक झीनी साड़ी बाँधती थीं।

x x x

ब्राह्मण ही गाँव के सामन्त थे। अन्य जातियों की भी खेती–बाड़ी थी लेकिन खाने–कमाने तक। बस्ती की जायदाद का एक बड़ा हिस्सा ब्राह्मणों के ही कब्ज़े में था...।'[23]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'कर्ज़' के दलित पात्र अत्यधिक अभावों से भरे जीवन को जीते हैं। यथा–

'उनके घर में कोई विशेष सामान न था, सूनी दीवारें, टूटी हुई छत, पुराने दरवाज़े। जीविकोपार्जन के लिए नाम मात्र को एक छोटा सा खेत था . . .।'–[24]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'सिकन्दर' एक निर्धन दलित पति–पत्नी की कहानी है, जो अपना व अपने पुत्र का पेट पालने के लिए भीख माँगने को मजबूर हैं। उनके पास रहने को घर तक नहीं है। यथा–

'एक अदद पेड़, उसके नीचे एक औरत, मर्द और बच्चा। पेड़ उनकी बपौती था और पेड़ के नीचे खुरदुरे फ़र्श का कुछ गज़ का टुकड़ा उनका आशियाना था। बम्बई के सबसे खूबसूरत और महंगे इलाक़े में उनका यही घर था। भले ही उस घर की छत और दीवारें न थीं। पर उन्हें अपना घर होने का अहसास तो था।'–[25]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'मुक्ति का संघर्ष' गुलामों के ऊपर हुए अत्याचारों को स्पष्ट करती है। कहानी से यह भी स्पष्ट है कि गुलामों का रहन सहन उनकी दिनचर्या सब उनके अमीर मालिकों पर निर्भर था और मालिक उनपर अत्याचार करने को पूर्णतः स्वतन्त्र थे। यथा–

'गुलामों का जीवन ग्लैडिएटरों की अन्तिम परिणति थी। एक–दूसरे के साथ मौत का खेल। वहाँ उस खेल से अमीरों का मनोरंजन होता था। गुलाम नौजवानों तथा उनके परिवारों को रोटी मिलती थी। . . . गुलामों की उखड़ी साँसों तथा रिस्ते ज़ख्मों पर जुआ खेला जाता था। x x x उन सभी की दिनचर्या पर नियन्त्रण था अमीरों का। न अपनी मर्ज़ी से रोये न हँसे। गुलाम औरतों का शरीर मालिकों की बपौती थी।'–[26]

सूरजपाल चौहान की कहानी 'घाटे का सौदा' के दलित पात्र डोरी लाल का रहन– सहन अत्यन्त साधारण था। सवर्णों के अत्याचारों के मध्य रहते हुए उनका बचपन बीता। यथा– 'लल्लनपुर गाँव की बस्ती, जहाँ उनका छोटा सा बरसात के थपेड़ों से पिटा कच्चा घर। छोटी–छोटी तंग गलियाँ। गाँव भर की सफ़ाई करता उसका पिता कालू। . . . वे तमाम चीज़ें जिसने डी0 लाल के भीतर बहुत गहरे तक हीन भावना भर दी थीं, जिनसे वह कभी छुटकारा नहीं पा सका।'[27]

सूरजपाल चौहान द्वारा लिखित 'अंगूरी' नामक कहानी के पात्र अत्यधिक दीन–हीन दशा में जीवनयापन करने को विवश हैं। सवर्णों की कुदृष्टि और मनमानी के कारण गेन्दा को अपनी पत्नी अंगूरी की सुन्दरता भी एक अभिशाप लगती है। कहानीकार के अनुसार 'ग़रीब की जोरू, सबकी भाभी।'' यह कहावत गेन्दा लाल की पत्नी पर सटीक बैठती है। यथा– 'बेचारा दीन–हीन गाँव के ऊँचे कहे जाने वाले लोगों की बेगारी करता था। खेत जोतना, जानवरों को खाना खिलाना, घर–घर जाकर लिपाई–पुताई करना बस यही कार्य थे गेन्दा के। इन सब कार्यों के बदले उसे एक वक्त का खाना ही मिल पाता था। . . . ऊपर से उसकी पत्नी अंगूरी का अधिक सुन्दर होना भी उसके अभिशाप सिद्ध हो रहा था।'[28]

सूरजपाल चौहान की कहानी 'हैरी कब आएगा?' के दलित पात्र रवि का रहन–सहन अति–साधारण है। यथा– 'रवि हिन्दुस्तान के दिल, दिल्ली का रहने वाला है। जीवन में बहुत संघर्ष किया है। उसके पिता कृषि मंत्रालय में क्लर्क हैं . . . उपलब्धियाँ सिर पर सरकारी फ्लैट की चुचियाती छत, पेट में रोटी कम और भूख ज्यादा। महीने भर का ईंधन गृहस्थी की गाड़ी मात्र दस दिन में पी जाती है। शेष रहता है भोगने के लिए अभावों का विकराल पहाड़।'[29]

सी0बी0 भारती की कहानी 'स्टेटस' के दलित पात्र रामधन के परिवार का रहन–सहन अत्यन्त साधारण था। यथा – 'रामधन इस छोटे से गाँव में रहने वाला कथित निम्न जाति के एक गरीब मज़दूर का बेटा था। उसकी जाति में इसी गाँव के ही नहीं दूर–दूर तक के गाँवों के भी लोगों ने कभी भी स्कूल का मुँह नहीं देखा था। उसके पिता गाँव के ही ज़मींदार के यहाँ हलवाहा थे। रामधन को कभी भी पेट भर भोजन एवं पूरे शरीर को ढकने के लिए कपड़े तक मयस्सर न हुये थे।'[30]

डॉ0 शत्रुघ्न कुमार की कहानी 'सबक' के दलित पात्र अत्यन्त जागरूक थे। अतः उनका रहन–सहन भी पढ़े–लिखे लोगों जैसा नियमित ही था। यथा– 'वेणी प्रसाद ने अपने बेटों को शिक्षा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। दलित होने के कारण उन्हें एहसास था कि शिक्षा ही सबसे बड़ी पूँजी है। सुमंगली भी अपने बच्चों के लिए दिन–रात मेहनत करती। सुबह उठकर सब बच्चों को नाश्ता, खाना तैयार करना तथा पति को ठीक समय पर ऑफिस भेजना उसकी दिनचर्या में शमिल था। बीस वर्ष से वह लगातार अपने इसी रूटीन को दोहराए जा रही थी।'[31]

उक्त दलित कहानियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि दलितों का आर्थिक स्तर और दयनीय स्थिति दलितों के रहन–सहन को स्पष्ट करने में पूर्णतः समर्थ है। कहानियों में चित्रित रहन–सहन आर्थिक स्तर से प्रभावित है।

वेश–भूषा :– दलित कहानीकारों की कहानियों में चित्रित दलित पात्रों की वेश–भूषा से सहज ही उनके जनजीवन का पता चलता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'बैल की खाल' के प्रमुख दलित पात्र काले एवं भूरे की वेश–भूषा उनके विपन्न जीवन का सजीव नमूना प्रस्तुत करती है यथा–

'सामने गली से काले और भूरे चले आ रहे थे। उनके चेहरे बुझे हुए और आँखे गड्ढों में धँसी हुई थीं। सख्त हाथों की हथेलियाँ चौड़ी और माँसविहीन थीं। जिससे हाथों की नसें और अधिक उभरी हुई दिखाई पड़ती थीं। दोनों ने घुटनों तक मटमैली सफ़ेद धोती का टुकड़ा लपेट रखा था। कमर से ऊपर कमीज़ की जगह पुराने किस्म की बंडीनुमा चीकट बनियान पहन रखी थी। जिसमें जगह–जगह छेद हो गए थे। उनके पौर–पौर से विपन्नता झलक रही थी। वे सीधे आकर बैल के पास रूके भूरे के हाथ में मोटे बाँस की एक लंबी सी बाही थी।'[32]

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित 'कहाँ जाए सतीश' नामक कहानी में सतीश के माता–पिता जब सतीश को ढूढ़ँते हुए मिसेज़ पंत के घर पहुँचते हैं, तो उनकी वेश–भूषा ही उनके दलित होने का प्रमाण देती है। आर्थिक विपन्नता और अभावों का जीवन उनको देखने से स्वतः ही परिलक्षित होता है–

'बाहर दो अपरिचित स्त्री–पुरुष खड़े थे। दोनों बूढ़े, थके हुए, मैले–कुचैले। स्त्री का चेहरा समय की मार से

पिटकर सूखा और निस्तेज था। पुरूष की आकृति से पता चल रहा था जैसे एक लम्बे समय की बीमारी से उठकर यहाँ आए हैं।'[33]

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी का दलित नायक सुदीप जब अपनी पहली तनख्वाह के रूपये लेकर गाँव वापस आता है तो कंडक्टर को किसी आदमी पर बिगड़ते हुए देखकर उसे अपने पिताजी की गिड़गिडाने की छवि स्मरण हो आती है। उसे कंडक्टर एक बनैले सुअर की भाँति दिखाई पड़ता है– '...कंडक्टर का तोंदियल शरीर कपड़े फाड़कर आने को छटपटा रहा था। बनैले सुअर की तरह उसके चेहरे पर पान से रंगे दाँत, उसकी भव्यता में इजाफा कर रहे थे। सुदीप को लगा जंगली सुअर बस की भीड़ में घुस आया है।'[34]

सुदीप सोचता है कि जिस समय वह छोटा था पिता जी उसका नाम लिखवाने उसे लेकर गए थे। उस समय पूरी बस्ती में पढ़ाई–लिखाई की ओर किसी का ध्यान नहीं था, वेशभूषा भी कुछ अच्छी नहीं थी जब पिताजी उसका नाम लिखवाने हेतु लेकर जा रहे थे। यथा – पिता जी लम्बे–लम्बे डग भरकर चल रहे थे। उसे उनके साथ चलने में दौड़ना पड़ रहा था। उसने मैली–सी एक बदरंग कमीज और पट्टेदार नीकरनुमा कच्छा पहन रखा था। जिसे थोड़ी–थोड़ी देर बाद ऊपर खींचना पड़ता था।[35]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'अम्मा' की नायिका की वेशभूषा उसके दलित होने का आभास स्वयं ही करा देती है। यथा – 'उन दिनों आज की यह अम्मा तो वह थी नहीं। जो अब घिसट–घिसट कर धीमे कदमों से चलती है जिसकी गंदी साड़ी सामने से पेट के पास ठूँसी रहती है। सण जैसे रूखे बाल, झुर्रियों से भरा चेहरा, मिचमिची आँखों वाली अम्मा, वक्त की मार ने जिसकी एक आँख को छोटा कर दिया है। और जिसके सामने के दाँत टूटे हुए हैं। जो एक–आध बचा है, वह भी भड़भूजे की कढ़ाई में उछलते मकई के दानों की तरह हिलता है।'36

प्रेमशंकर द्वारा विरचित कहानी 'बित्ते भर जमीन' के नायक के बड़े भइया नायक को गाँव आने पर दिखाई पड़ते हैं। उसकी दृष्टि उनकी वेशभूषा पर पड़ती है। यथा – ''मैंने देखा रास्ते में ही बड़े भइया खादी का मैला कुरता एवं धोती पहने गुड़गुड़ी (छोटा हुक्का) पीते हुए दो–तीन आदमियों से बातें कर रहे हैं।''[37]

जय प्रकाश कर्दम की कहानी 'चमार' के दलित पात्र सुक्खा व उसकी पत्नी रमिया घोर आर्थिक संकट से गुज़र रहे हैं। कहानी में चित्रित उनकी वेश–भूषा इस प्रकार है – ''...ज़ेवर के नाम पर जो एकाध चीज़ थी रमिया के हाथ–पाँव में, वह पहले ही बिक चुकी है। हाथ–पाँव नंगे रह गए हैं बेचारी रमिया के भी। दिन–रात नंगे पाँव कील–खोबड़ों में चलते–फिरते तलुओं में जख्म बन गए हैं, एक जोड़ी जूती तक नसीब नहीं हो पाती। एक–दो गजा तहमद और फटा–सा मैला–कुचैला कुर्ता है सुक्खा के पास और एक पेटीकोट, कमीज़ और ओढ़ना रमिया के पास, उनमें भी जगह–जगह थेकली लगी हैं।''[38]

ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'कुड़ाघर' का नायक आरक्षण बचाओ रैली में प्रधानमंत्री को ज्ञापन देने दिल्ली तक जाता है। वह संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष कृष्णराज के अधीन इस रैली में जाता है। उसने क्लब की यूनीफॉर्म पहन रखी थी। यथा – '....उसने कृष्णराज के बनाए क्लब की यूनिफॉर्म पहन रखी थी। जेब में लगे पेन पर भगवान बुद्ध की तस्वीर लगी थी। जेब में बाबा साहब की फोटो वाला पॉकेट कैलेंडर भी था। और सीने में थी 'शिक्षित बन, संगठित हो, संघर्ष करो' की हुंकार।'[39]

ओम प्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित कहानी 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ।' के मोहनलाल शर्मा नामक पात्र जोकि जात छिपाकर अपने सगे–सम्बन्धियों से नाता तोड़ कर रह रहे हैं, उनके पुत्र के विवाह में सम्मिलित होने आ रही उनकी बहिन की वेश–भूषा उनकी जाति की पोल खोलती है। यथा – 'काफी देर से कुछ सवारियाँ स्टेशन के बाहर पोर्च के किनारे बैठी हुई थीं। अधेड़ उम्र की महिला, एक युवक तथा तीन लड़कियाँ थीं। युवक के कन्धे पर रंग–बिरंगा–सा एयर बैग लटका था। एक लड़की पुराना–सा मटमैला थैला, जो कपड़ों से ठुंसा हुआ था, पकड़े बैठी थी। एक कपड़े में ढोलक तथा दूसरे में हारमोनियम बंधी थी। महिला के पास पुरानी सी चादर की एक पोटली

थी। उनके सामान और वेशभूषा देखकर टिड्डियों की तरह मंडराते ऑटो चालकों ने कोई खास रूचि उनमें नहीं ली थी।'[40]

दयानन्द बटोही की कहानी 'भूल' के पात्र बुद्धू की वेशभूषा स्वयं ही उसके दलित होने का आभास देती है। यथा–

'.....उसका शरीर, यौवन के साथ ऐसा मालूम देता था जैसे सूखा पेड़ बिना पत्ते का दिखाई देता है।'[41]

विपिन बिहारी की कहानी 'कीर्तन मण्डली' का नायक कन्हाई गोड़ाइत है। गाँव में उसके नेतृत्व में ही 'कीर्तन मण्डली' है। उसकी वेशभूषा इस प्रकार है–

'...कन्हाई की उम्र तो लगभग पैंतीस तो हुई ही होगी। रूप–रंग करिया भुच्च। आँखें गुजुर–गुजुर दिखलाई पड़ती हैं, कोई सिर्फ उसकी आँखें देख ले तो उल्लू की आँखों के सिवा कुछ न कहे। मूँछे घनी–घनी बिता भर की। जुल्फी करूआ तेल से अक्सर चुपड़ी रहती है। बाल पहलवान कट।. . .जिसने नहीं सुना है उसकी बोली तो यही जानेगा कि बड़े शरीर की आवाज भी भैंस की तर्ज पर ही होगी, लेकिन जब गला टानता है तो . . .ये तो बाँसुरी है भइया. . .जनाना आवाज। जरूर ये जनाना जोनी में पैदा होने वाला रहा होगा कि. . .भूल से हो गया मर्दाना।'[42]

मोहनदास नैमिशराय कृत कहानी 'कर्ज़' के दलित परिवार का अभावों से ग्रस्त, जीवन उनकी वेशभूषा से सहज ही प्रकट होता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् अशोक अपनी माँ और बहिन की वेश भूषा की ओर देखकर व्यथित होता है। यथा–

'...उनके फटे पुराने कपड़ों पर से, जिन्हें शहरों में चिथड़ों की उपमा दी जाती है, उसकी निगाह हटती नहीं है, एक–एक सीवन को ध्यान से देखता है। नंगे हाथ–पाँव को देखता है। उनपर उभरी लकीरों को देखता है।'[43]

सूरजपाल चौहान द्वारा विरचित कहानी 'घमण्ड जाति का' में चित्रित दलित पात्र किरपाल की वेशभूषा उसके गाँव से जुड़े होने का पता तो देती ही है, साथ ही साथियों के विनोद का कारण भी बनती है। नगर–निगम के स्कूल में किरपाल के पिता ने उसका नाम लिखवा दिया था। धीरे–धीरे उसका मन मित्रों में लगने लगा परन्तु उसकी वेश–भूषा के कारण बच्चे उसका मज़ाक अवश्य उड़ाते। यथा– '. . .गाँव का था किरपाल, इसलिए सभी बच्चे उसकी बोली पर उसका मज़ाक उड़ाते। सिर पर एक लम्बी चोटी भी थी जो उसके हिन्दू होने का प्रमाण थी। उसके कुछ शरारती साथी उसकी चोटी को लेकर खूब परेशान करते थे। उनमें से कई तो उसकी चोटी को खींचकर भाग जाया करते थे।'[44]

रजतरानी मीनू की कहानी 'वह एक रात' में बस में बैठा एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति कहता है– ''...शहर के पहनावे मैं तो पतौ ही नायि चलतु है कि कौन बावन है और कौन भंगी है?''[45]

इस कथन से दलितों की अच्छी वेश–भूषा का पता चलता है। जिसके कारण सवर्ण–अवर्ण में भेद करना भी कठिन होता जा रहा है। यह दलितों में आई जागरूकता शिक्षा और अच्छी नौकरियों के कारण ही सम्भव हो पाया है।

उक्त कहानियों के विवेचन से स्पष्ट है कि दलित पात्रों की वेश–भूषा पर जातिगत प्रभाव है, तो कुछ दलित पात्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण पहचाने नहीं जाते।

आचार–विचार :– किसी भी साहित्यकार की रचनाओं पर उसके आस–पार–पास के परिवेश के साथ ही आचार–विचार का भी प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। दलित जनजीवन पर आधारित दलित कहानीकारों की कहानियों पर भी इनके आचार–विचार की छाप देखने को मिलती है। इसके अन्तर्गत दलित पात्रों का आचरण, उनके विचार, दलित समाज में प्रचलित पर्व–त्योहार, रीति–रिवाज, पूजा–अर्चना, तथा लोकगीतों का प्रयोग व परम्पराएं आदि का चित्रण किया जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'सलाम' के द्विज वर्ग की सोच परंपरावादी ही है। दलित जाति के दूल्हा–दुल्हन को सवर्णों के द्वार पर सलाम कराई हेतु जाने की जो परंपरा है वह वहाँ के लोक–जीवन का ही प्रतीक है। कहानी में वर्णित रांघड़ परिवारों से बार–बार बुलावा आने पर भी हरीश सलाम पर नहीं जाता, तो बिरादरी के बड़े–बूढ़े अपने–अपने तर्क देकर उसे ऊँच–नीच समझाते हैं –

"बाप–दादों की रीत है, एक दिन में तो ना छोड़ी जावे है। वे बड़े लोग हैं। 'सलाम' पे तो जाणा ही पड़ेगा और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है और इसी बहाने कपड़ा–लत्ता, बर्तन–भाँडे भी नेग–दस्तूर में आ जाते हैं।"

हरीश ने भी स्पष्ट तौर पर कह दिया– "मुझे न ऐसे कपड़े चाहिए, न बर्तन, मैं अपरिचितों के दरवाज़े 'सलाम' पर नहीं जाऊँगा।"[46]

इतना ही नहीं वह केवल इस निन्दनीय रीति–रिवाज को तोड़ता तो है ही साथ ही आत्मविश्वास व आत्माभिमान भी उसके आचरण में सम्मिलित हैं। वह किसी के दया स्वरूप दिए कपड़े–बर्तन आदि लेना भी पसन्द नहीं करता। वह कहता है कि ऐसे रीति–रिवाज दलितों के आत्मविश्वास को तोड़ने की साज़िश हैं और ऐसी रस्में खत्म होनी चाहिए। हरीश के रूप में एक खुद्दार दलित व्यक्ति का चरित्र उजागर होता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'बैल की खाल' नामक कहानी के पात्र काले व भूरे अपना मरे जानवरों की खाल उतारने का कार्य तो छोड़ना चाहते हैं, पर वे यह भी सोचते हैं कि यदि हमने यह कार्य छोड़ दिया तो कौन उठाएगा मरे जानवर?वे तो गाँव में ही पड़े सड़ते रहेंगे। परन्तु उनके पास से इस कार्य को करने के कारण जो दुर्गन्ध आती है उसमें वे गले–गले तक डूब जाते हैं और कोई पास भी बिठाना पसन्द नहीं करता। वे आर्थिक रूप से विपन्न हैं और खाल उतारने के कार्य में उनको उचित पारिश्रमिक भी नहीं मिल पाता। क्योंकि जानवर कभी–कभी ही मरते थे। जानवरों के डाक्टर के आ जाने से वे और अधिक विपन्न हो गए। काले कहता है–

"और वो शहर का लाला . . . सौ बातें सुणावे है। पिछली बार जब वह भैंस की खाल लेके गए थे तो क्या कह रहा था– 'यह पुड़िया ले जाओ। जिस जानवर को खिलाओगे टें बोल जाएगा।' वह सरकारी डॉक्टर कुछ नहीं कर पाएगा। पूरा राक्छस है राक्छस वह लाला।"[47]

यही काले और भूरे के आचरण की विशेषता है कि अपने लाभ के लिए वे किसी जानवर तक की जान लेना पसन्द नहीं करते। यही कारण है जब वे खाल बेचने हेतु बस की प्रतीक्षा में बैठे होते हैं तो ट्रक से टकराकर एक बछड़ी गिरती है। वे दोनों उसकी सेवा में लग जाते हैं। वे खाल बेचने की चिंता ही छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि उनकी खाल से दुर्गन्ध आने लगती है। परन्तु वे बछड़ी को बचाने का प्रयास करते है और बचा नहीं पाते। वे अत्यधिक उदास मन से बछड़ी के मरने की खबर देने गाँव वापस चले जाते हैं। यह उनका आचरण वास्तव में अनुकरणीय है। ऐसे दलित जाति के साधन विपन्न पात्र जिनके पास कुछ भी नहीं है, पर मानवता, दया, दुःख इत्यादि भाव हैं वे श्रद्धा के पात्र हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'कहाँ जाए सतीश' कहानी के दलित पात्र सतीश को उसके मास्टर रवि शर्मा, सुदर्शन पंत के घर किराए पर रखवा देते हैं। पंत परिवार को उसकी वास्तविक जाति के सम्बन्ध में जानकारी नहीं होती है। किंतु पता चलते ही मिसेज़ पंत उसे निकाल देने के बारे में दृढ़ संकल्प हो उठती हैं। सुदर्शन पंत के कहने पर कि तुम सतीश के माता–पिता को अन्दर तो बैठा सकती थीं, उनका जातिगत अहम् जागृत हो उठता है। वे अफ़सोस करते हुए कहती हैं कि मेरी बेटी तो उसको भाई बनाकर उसका झूठा तक खा गई। वे कहती है–

"हाँ . . . अब यही तो बचा है, बाप–दादों की परंपरा ख़त्म कर दी। एक डोम को घर में रख लिया। सोनू तो उसका झूठा तक खा गई . . . मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है, प्रायश्चित कैसे होगा . . . अगर मुझे पता होता

तो घर में घुसने भी न देती उसे। जैसे वह वापस आएगा उसका सामान उठाकर बाहर फेंको। मुझे तो उसके कपड़ों से भी बदबू आने लगी है।''[48]

इस प्रकार मिसेज़ पंत एक स्त्री होते हुए इतनी निर्दयी, कठोर व क्रूर स्वभाव की नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह ऐसे सवर्णवादी समाज का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ मानवीयता रंच मात्र भी शेष नहीं है। वह केवल बाप–दादों की परंपरा और जातिगत घृणा से ओत–प्रोत है। उसका आचरण दलितों के प्रति उपेक्षापूर्ण व अपमान से भरा हुआ है।

'गोहत्या' कहानी का दलित पात्र सुक्का एक ग़रीब युवक है। वह आत्म–सम्मान के साथ जीना पसन्द करता है। मुखिया उससे कहता है कि वह अपनी दुल्हन को हवेली भेजे परन्तु वह साफ़ इन्कार कर देता है। उसके मना करने पर मुखिया उसे क्रोधपूर्वक डाँटता है–

''औक़ात में रह सुक्का। उड़ने की कोशिश ना कर, बाप–दादों से चला आई रीत है।'' सुक्का के भीतर बैठा कमजोर आदमी करवट बदल रहा था। उसने कमज़ोर पड़ते साहस को समेटा और बोला, ''मुखिया जी काम करता हूँ तो दो मुट्ठी चावल देते हो . . . वह हवेली नहीं आएगी।'' कहकर वह हवेली से बाहर हो गया।[49]

इस प्रकार स्वाभिमान की भावना सुक्का के आचरण में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'अंधड़' का नायक उच्च पद पर पहुँचने के पश्चात् अपनी जाति से दूर भागने लगता है। क्योंकि सगे–सम्बन्धियों से मिलने पर उसे जाति के खुलने का भय है। मि0 लाल का यह आचरण अपनी पत्नी से व्यक्त किए हुए विचारों के माध्यम से परिलक्षित होता है। सविता सोचती है कि जब वह चाचा दीपचन्द के घर जाना चाहती थी, तो मि0 लाल कैसा बिफर पड़े थे। यथा–

''मैं जिस जिन्दगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ ...तुम लौट–लौटकर उसी में जाना चाहती हो। तुम वहाँ जाओगी, तो वे भी यहाँ आएँगे। मैं नहीं चाहता, यहाँ लोगों को पता चले कि हम 'शेड्यूल्ड कास्ट' हैं। जिस दिन लोग ये जान जाएँगे, यह मान–सम्मान सब घृणा–द्वेष में बदल जाएगा।''[50]

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'अम्मा' की नायिका का आचरण वास्तव में बहुत अच्छा है। उसके विचार ऊँचे हैं। स्वयं अभावों में जी रही अम्मा अपने बेटे शिबू की पैसा लेकर कार्य करवाने की शिकायत सुनकर कटु निन्दा करती है। वह स्पष्ट कहती है–

''शिबु, आजकल तू जो करे है ठीक ना है ...जो मैंने पता होता कि तू इस तरियो पैसा कमावे है तो मैं तेरे पैसे कू हाथ भी ना लगाती। तैन्ने पढ़ा–लिखा दिया। तेरी साद्दी (शादी) कर दी ...मेरा काम ख़त्म ...अच्छा इनसान न बणा सकी यो मेरा कसूर। कल से तू अपना चौका–चूल्हा अलग कर ले . . . मन्नै ना खाणी इस कमाई की रोटी। अलग रहके चाहे किसी ने लूट या मार ...मेरे से कोई मतलब नहीं।''[51]

प्रेमशंकर की कहानी 'बित्ते भर जमीन' के दलित पात्र इक्कीसवीं सदी में रहते हुए भी भाग्य को कर्म से अधिक शक्तिशाली मानते हैं। जमींदार फगुनी के घर में आग लगवा देता है। सुबह उसकी बहू एक ओर मुँह ढाँपे बैठी रो रही थी। और जमींदार के खानदान को गाली भी दे रही थी। तब ही उसके द्वार पर एकत्र भीड़ में से कोई व्यक्ति बोला – 'अरी! रोने और गालियाँ बकने से ठीक थोड़े ही हो जाएगा, जा थाने में रपट कर आ।' फगुनी एक ओर बैठा था। बीड़ी जलाता हुआ बोला 'अब रपट से ही के होगा, म्हारे भाग में जो होगा मिल जाएगा।'[52]

इस प्रकार कहानीकार ने यह स्पष्ट किया है कि दलितों में जागरूकता की कमी है और वे भाग्यवादी बन कर अकर्मठता की ओर बढ़ रहे हैं, जो उनके लिए खतरनाक सिद्ध हुआ है।

जयप्रकाश कर्दम कृत कहानी 'चमार' का दलित पात्र सुक्खा शिक्षा के प्रति अतिरिक्त सजग है। वह जानता है कि उसका बेटा चन्दन शहर पढ़ने गया है यह बात गाँव के सवर्ण कदापि सहन नहीं करेंगे कि दलित का बेटा शहर पढ़ने जाए। वे तरह–तरह के अन्याय करेंगे। परन्तु वह अपने पुत्र की पढ़ाई से समझौता नहीं करता और न

ही उन विरोधी सवर्णों के आगे मदद की भीख मांगता है। वह अपनी पत्नी से भी ठाकुरों जमींदारो से सहायता मांगने की बात सुनकर आक्रोशित होकर स्पष्ट कहता है–

''चुप रह रमिया। मत ले ऐसे जाहिलों का नाम मेरे सामने, जो मेरे बेटे का जीवन बर्बाद करने पर तुले हैं। मैं मर जाऊँगा, भूखा प्राण तज दूँगा। सब कुछ बर्दाश्त कर लूँगा मैं, पर चन्दन को इस नर्क में नहीं पड़ने दूँगा कभी। जिस नर्क में मुझे रहना पड़ा है। तू अपना काम देख मैं सब देख लूँगा।'' और लाठी उठाकर घर से निकल पड़ा सुक्खा।[53]

उक्त कहानी का पात्र 'सुक्खा' वास्तव में जुझारू प्रकृति का दृढ़ निश्चयी व्यक्ति है। विपरीत परिस्थितियों व बाधाओं से डरकर वह भागता नहीं न ही किसी से दया की याचना करता है। वह मुकाबला करने के लिए चट्टान की तरह डटकर खड़ा हो जाता है। उसके विचार दलित चेतना के संवाहक बाबा साहब के विचारों से प्रभावित हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत कहानी 'हत्यारे' अंधविश्वास पर आधारित एक महत्वपूर्ण कहानी है। कहानी का पात्र सलेसर जब काम से लौटकर आता है, तो बुखार से उसका शरीर तप रहा होता है। उसकी तबीयत ठीक ना होने पर झाड़–फूँक करने वालों को बुलाया जाता है। उसकी माँ सभी देवी–देवताओं से मन्नतें माँगती है और ग्राम माता को सूअर की बलि चढ़ाने का वादा भी करती है। परन्तु फिर भी पुत्र की तबीयत ठीक ना होने पर सूरजा भगत को बुलाया जाता है। प्रेत उतारने के नाम पर वह सलेसर को बेरहमी से पीटता है। यथा–

'सूरजा ने हुंकार के साथ ही सलेसर पर तड़ातड़ कोड़े बरसाने शुरू कर दिए थे। कालू के भीतर एक कोलाहल सिमट आया था। बिरम की माँ सलेसर की चीखों से सहम गई थी। एक खामोश दहशत उसके रोम–रोम में भर गई थी। आँचल दाँतों में दबाकर वह सिसक उठी थी।'[54]

डॉ0 दयानन्द बटोही द्वारा रचित 'अन्धेरे के बीचोबीच' नामक कहानी दलित जनजीवन को समीपता से उजागर करती है। दलित पात्र रेवत अत्यधिक विपन्न होते हुए भी अपने बच्चे से अथाह प्रेम करता है उसका यह प्रेम भरा व्यवहार बच्चे को बहलाने के लिए गाई गई लोरी से प्रस्फुटित होता है रोते हुए बच्चे को चुपाते हुए रेवत लोरी सुनाता है–

''आरे आवे, बारे आवे, नदिया किनारे आवे
सोने की कटोरी में, दूधा भत्ता ले ले आवे
बउआ के मुँह में घुटुऽऽऽसऽ–
घुटुक. . .ऽघुटुक. . .''[55]

ठंड के प्रकोप से रेवत की मृत्यु होने के बाद उसकी पत्नी को लगता है कि धू–धू करती चिता से वह सुन रही है कि अब साहस करो जमाना बदल गया है। यह कहते हुए रेवत बेटे को लोरी सुना रहा है–और लगता है अंधेरे के बीचोबीच उसका गला दबा दिया हो। यथा–

''चाँद मामू चाँद मामू हसुआदा काहे ले?
कतरा कटवेले। जे कतरवा काहेले?
गोरूआ चरावेले। जे गोरू आ काहेले?
चोतवा पुजावेले। जे चोतवा काहेले?
अंगना निपावेले। जे अंगनवा काहेले?
बउआ के खेलावेले। जे बउआ काहेले?
गुल्ली डंडा खेलेले।
जा। गुली डंडा टूटगेलो। बउआ रूस गेलो।[56]

डॉ0 दयानन्द बटोही की कहानी 'भूल' एक आदर्शवादी कहानी है। सवर्ण गोबर पण्डित द्वारा पहले तो बुद्धू दलित को चोरी के झूठे आरोप में फँसाया जाता है। परन्तु बाद में अपनी प्रगतिशील, मानवतावादी पुत्री और गाँव के ही दलित रमेश के आचरण से अन्त समय में उसकी आँखे भी खुल जाती हैं। वास्तव में उसके आचरण में आया यह परिवर्तन समाज के लिए शुभ संकेत है। मृत्यु शय्या पर पड़े गोबर पण्डित के मन में टीस उठती है वह सोचता है–

'...हम सब एक हैं। जाति धोखा है, मिथ्या है, वाह्याडम्बर है, प्रवंचना है। हाँ पारो और रमेश सच तो कहते थे। मैं कितना बड़ा पापी हूँ। छिः ब्राह्मण का मतलब तो पढ़ा–लिखा होता है और. . .फिर चमार भी तो मुझसे अच्छा है। वे भी तो पढ़े–लिखे हैं...उन्हें भी तो ब्राह्मण कहना चाहिए. . .सोचता रहा और सोचता जा रहा था...।'[57]

विपिन बिहारी द्वारा लिखित कहानी 'कीर्तन मण्डली' का नायक कन्हाई गोड़ाइत है। वह एक स्वाभिमानी दलित पात्र है। वह किसी भी हाल में अपने स्वत्व का सौदा नहीं होने देता अपने चेलों को भी वह यही शिक्षा देता है। उसका आचरण वास्तव में अभिनन्दनीय है। वह कहता भी है–

''अरे हम छोटी जात से हैं, माना कि हम कमाऊ–खाऊ है, लेकिन गान–बजान को पेट भरू नहीं समझते हैं हम। उसके लिए हमरी देह में ताकत बहुत है। गाने–बजाने को हम अपने पेट का साधन बनाते तो भाई हम आज किसी के मजूर नहीं रहते।...''[58]

विपिन बिहारी की कहानी 'प्रतिकार' दलित स्त्री के प्रतिकार की अनोखी कहानी है। गेंदवा नामक दलित स्त्री सवर्णों से अपनी अस्मिता की रक्षा तो नहीं कर पाती, पर सुन्नर पाण्डे जैसे राक्षस को सबक जरूर सिखा देती है। लोगों के डराने पर भी वह गाँव छोड़कर जाने को तैयार नहीं होती वह स्पष्ट कहती है–

''मैं जिन्दा ही कब थी? आज ज़िन्दा हुई तो भाग जाऊँ, क्या कर लेगा, मारवे न करेगा, तो मार दे। मेरे साथ जबरदस्ती करेगा तो...जबसे होश आया तबसे ही जबरदस्ती हुई मेरे साथ।''[59]

विपिन बिहारी द्वारा रचित कहानी 'काँच' के दलित पात्र बसन्त बाबू अपनी जाति के उत्थान हेतु अत्यन्त सजग हैं। अपने पुत्र के उच्च्य नौकरी में आने के पश्चात् सवर्ण कन्या से विवाह की इच्छा की वे कटु निन्दा करते हैं। उनका मानना है कि अभावों में पली दलित कन्या जिसने वह सब सुख–सुविधाएँ नहीं देखी हैं, विवाहोपरान्त वह उन्हें देख सकेगी। वे अपनी पत्नी से पुत्र के प्रति नाराज़गी व्यक्त करते हुए कहते भी हैं–

''...छूत मानने वाले अब जो समझें कोई छुपाव नहीं। जात से कब तक भागेंगे?जिस जात के बल पर तुमने ऊँचाई तय की है, उसे भी एक ऊँचाई दो, न कि भाग जाओ अपना काम निकालकर।''[60]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'गाँव' के पात्र सुक्खन की घरवाली एक सीधी–सादी महिला है। यही कारण है कि वह मन्नतें मानने आदि में विश्वास करती है। बड़े पुत्र के लिए मनौती माँगने के बाद जब उसकी नौकरी लगने की बारी आती है, तो वह माँ–पिता को छोड़ शहर पलायन कर जाता है। तब भी वह छोटे पुत्र के लिए मनौती माँगना नहीं भूलती।

रामजी यादव कृत कहानी 'खेलने के दिन' में बच्चों के खेल के माध्यम से कई लोकगीतों का भी प्रस्तुतिकरण हुआ है और खेल के ही माध्यम से कहानीकार ने गम्भीर समस्या को उठाते हुए बताया है कि 'रूपए का हुंडार दुनिया का सबसे ज़ालिम और जबर हुंडार है।'

उक्त वर्णन से स्पष्ट है, कि दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में आचार–विचार का यथार्थ चित्रण करके दलित जनजीवन की वास्तविकता से रु–ब–रु कराया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सम्मेलन पत्रिका– शोध त्रैमासिक, पृ0सं0–225, अधिवेशन, अंक–12
(लाहौर) भाग–92, सं0–4 साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद
2. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, पृ0सं0–1 (प्रस्तावना) षोडश भाग

3. भारतीय लोक साहित्य की रुपरेखा, डॉ0 दुर्गा भागवत, पृ0सं0–12
4. दलित विमर्श के विविध आयाम, पृ0सं0–227,डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–पहला संस्करण–2010–राधा पब्लिकेशन्स–नई दिल्ली–110002
5. सलाम, पृ0सं0–16 ओम प्रकाश वाल्मीकि 'सलाम'
6. सलाम, पृ0सं0–45 ओम प्रकाश वाल्मीकि 'भय'
7. सलाम–पृ0सं0–125 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि –'ख़ानाबदोश'
8. यातना की परछाइयाँ–पृ0सं0 – 27, 'चमार'–जयप्रकाश कर्दम
9. (घुसपैठिए)–पृ0सं0–77, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'रिहाई'
10. (घुसपैठिए)–पृ0सं0–94 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि 'हत्यारे'
11. हमारा जवाब–पृ0सं0–19 मोहनदास नैमिशराय – 'कर्ज़'
12. सलाम–पृ0सं0–52, ओमप्रकाश वाल्मीकि – 'कहाँ जाए सतीश'
13. सलाम–पृ0सं0–96, ओमप्रकाश वाल्मीकि – 'जिनावर'
14. सलाम–पृ0सं0–113 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि – 'अम्मा'
15. सलाम–पृ0सं0–123, ओमप्रकाश वाल्मीकि – 'खानाबदोश'
16. यातना की परछाइयाँ –पृ0सं0– 20 ,'बित्ते भर ज़मीन' – प्रेम शंकर
17. यातना की परछाइयाँ –पृ0सं0– 26 ,'चमार'–जयप्रकाश कर्दम
18. यातना की परछाइयाँ –पृ0सं0–74 'क्षितिज'–रत्नकुमार सांभरिया
19. घुसपैठिए–पृ0सं0 –36, ओमप्रकाश वाल्मीकि–शवयात्रा'
20. घुसपैठिए–पृ0सं0 –76 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'रिहाई'
21. सुरंग –पृ0सं0–28, दयानन्द बटोही–' अन्धेरे के बीचोबीच'
22. पुनर्वास–पृ0सं0–20 ,विपिन बिहारी–'कीर्तन मण्डली'
23. पुनर्वास–पृ0सं0–30, विपिन बिहारी–'प्रतिकार'
24. हमारा जवाब–पृ0सं0–13, मोहनदास नैमिशराय–'कर्ज़'
25. हमारा जवाब–पृ0सं0–98 ,मोहनदास नैमिशराय–'सिकन्दर'
26. हमारा जवाब–पृ0सं0–141 ,मोहनदास नैमिशराय–'मुक्ति का संघर्ष'
27. हैरी कब आएगा–पृ0सं0–32 सूरजपाल चौहान–'घाटे का सौदा'
28. हैरी कब आएगा?–पृ0सं0–44 सूरजपाल चौहान–'अंगूरी'
29. हैरी कब आएगा?–पृ0सं0–71 सूरजपाल चौहान–हैरी कब आएगा?
30. हाशिए से बाहर–पृ0सं0–145 'स्टेटस'–सी0बी0 भारती
31. हाशिए से बाहर–पृ0सं0–161 ,'सबक'–डॉ0 शत्रुघ्न कुमार
32. सलाम–पृ0सं0–33 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'बैल की खाल'
33. सलाम–पृ0सं0–48, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'कहाँ जाए सतीश'
34. सलाम–पृ0सं0–79, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'पच्चीस चौका डेढ़ सौ'
35. सलाम–पृ0सं0–79 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'पच्चीस चौका डेढ़ सौ'
36. सलाम–पृ0सं0–113 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'अम्मा'
37. यातना की परछाइयाँ–पृ0सं0–17, प्रेमशंकर–'बित्ते भर जमीन'
38. यातना की परछाइयाँ–पृ0सं0–27, जयप्रकाश कर्दम–'चमार'
39. घुसपैठिए–पृ0सं0–52/53,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'कूड़ाघर'
40. घुसपैठिए–पृ0सं0–59 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ।'

41. सुरंग–पृ0सं0–50 ,दयानन्द बटोही–'भूल'
42. पुर्नवास–पृ0सं0–21, विपिन बिहारी–'कीर्तन मण्डली'
43. हमारा जवा–पृ0सं0–13, मोहनदास नैमिशराय–'क़र्ज़'
44. हैरी कब आएगा?–पृ0सं0–54, सूरजपाल चौहान–'घमण्ड जाति का'
45. हाशिए से बाहर–पृ0सं0–137 ,रजतरानी मीनू–'वह एक रात'
46. सलाम–पृ0सं0–16, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'सलाम'
47. सलाम–पृ0सं0–36, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'बैल की खाल'
48. सलाम–पृ0सं0–51 ओमप्रकाश वाल्मीकि–'कहाँ जाए सतीश?'
49. सलाम–पृ0सं0–59 ,ओमप्रकाश वाल्मीकि–'गोहत्या'
50. सलाम–पृ0सं0–86 ओमप्रकाश वाल्मीकि–'अंधड़'
51. सलाम–पृ0सं0–119 / 120, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'अम्मा'
52. यातना की परछाइयाँ–पृ0सं0–21, प्रेमशंकर–'बित्ते भर जमीन'
53. यातना की परछाइयाँ–पृ0सं0–33, जयप्रकाश कर्दम–'चमार'
54. घुसपैठिए–पृ0सं0–92, ओमप्रकाश वाल्मीकि–'हत्यारे'
55. 'अंधेरे के बीचोबीच' ,पृ0सं0–28 सुरंग दयानन्द बटोही
56. सुरंग–पृ0सं0–34, दयानन्द बटोही – 'अन्धेरे के बीचोबीच'
57. सुरंग–पृ0सं0–55 ,दयानन्द बटोही–'भूल'
58. पुनर्वास–पृ0सं0–26, विपिन बिहारी–'कीर्तन मण्डली'
59. पुनर्वास–पृ0सं0–35,विपिन बिहारी–'प्रतिकार'
60. पुनर्वास–पृ0सं0–65 ,विपिन बिहारी–'काँच'

❑❑

44

दलित साहित्य की कविताओं में प्रतिरोधी मूल्य

डॉ.कमलेश सिंह नेगी
सहायक प्राध्यापक –हिन्दी
चन्द्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय, सीहोर, मध्यप्रदेश
एवं एसोसिएट
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास शिमला, हिमाचल प्रदेश

''पता नहीं धर्म के नाम पर
किस हिंसक ने लिखा
दूध पीते अबोध बच्चों को जलाना
माँ–बहनों को रायफलों से भूनना
चना मटर और मकई की तरह
आदमी को चीखते हुए आग में फेंकना
आज बेलछी, आगरा या नारायणपुर हो,
सब जगह एक ही चीख आती है
बचाओ–बचाओ।[1]

कवि प्रेमशंकर की उक्त कविता प्रतिरोध को अभिव्यक्त करते हुए, एक नये प्रकार के साहित्यिक सौंदर्य का प्रादुर्भाव करती है। हमारे समाज का एक ऐसा तबका जो सदियों से उपेक्षित, बंचित रहा है। ढेर सारी बंदिसों के नीचे दबा रहा। उसे अपना स्वतंत्रतापूर्वक काम करने और बात रखने का अधिकार नहीं था। प्रतिरोध करने का तो सवाल ही नहीं उठता है। 1960 के दशक के बाद एक नये साहित्यिक आन्दोलन का जन्म होता है। दलित साहित्य के माध्यम से नये–कवियों का प्रादुर्भाव होता है। जिनकी कविताओं में प्रतिरोध की ज्वाला धधक रही है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में घटित सभी प्रकार की घटनाओं का उसके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जहां तक प्रश्न है दलित वर्ग का तो इस वर्ग को जन्म से मरण तक सुबह से शाम तक किसी न किसी प्रकार से मानसिक प्रताड़ना का शिकार पहले भी बनाया जाता था और आज सुशिक्षित समाज में भी। कोई न कोई चुभने वाली बात कह दो व्यक्ति एकाध नहीं कई दिनों तक मानसिक रूप से परेशान हो जाएगा। इसी प्रकार की रणनीति एक विशेष वर्ग द्वारा दलितों का मानसिक शोषण करने के लिए अपनाई है। शिक्षा संस्थानों, कार्यालयों और गली मुहल्लों में मानसिक प्रताड़ना का कुचक्र चलता रहता है। इस प्रकार की घटनाओं, सामाजिक अत्याचारों का व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे वह हम तभी महसूस कर सकते हैं। दलित कवि स्वयं भुक्तभोगी होकर ही वेदना को अपने शब्दों में प्रकट करता है। सवर्ण प्रायः दलितों को 'अक्करमाशी' या 'ढेढ़', चमार, चूहड़, सरकारी दामाद, कोटेवाला आदि संबोधनों से द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं। 'अक्करमाशी' एक मराठी शब्द है जिसका अर्थ है अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न संतान या जारज संतान'। इस प्रकार के सम्बोधन इनके सामने इनके पूर्वजों की विकृतियों को खोलकर रख देते हैं जो सर्वाधिक आहत करने वाले होते हैं। कवि जय प्रकाश कर्दम ने इसी प्रकार के भावों को प्रकट करते हुए लिखा है–

''मेरा उपहास मत उड़ाओ
मेरे खून को मत खौलाओ
अपनी माँ के कुकर्मों के कारण

नहीं हूँ मैं अक्करमाशी
मैं उसकी विवशता का परिणाम हूँ।''[2]

मानसिक प्रताड़नाओं के फलस्वरूप जन्मी ये कविताएं व्यवस्था में प्रतिरोध को जन्म देती हैं। आज के कवि का इस प्रकार कसी जाने वाली फब्तियों से खून खौलता है। गंगा सहाय मीणा इसी विचारधारा पर कुठाराघात करते हुए लिखते हैं कि–

''वर्णश्रेष्ठताजनक सामाजिक आरक्षण
भकोस रहे कुछ सज्जन
चाणक्य प्रणीत साम–दाम–दण्ड–भेद में से
मकूल पेंच भिड़ाकर
बस इसी योग्यता के बूते
अपने लिए और अपनी परवर्ती पीढ़ियों के लिए
कई सरकारी पद सहज ही हथियाते रहे
और यकीनन
इतने कुछ के बावजूद
वे ताजिंदगी आरक्षण–मन से रहे कोसों दूर
जीभर संवैधानिक आरक्षणभोगियों और
उसके प्रणेता बाबा साहेब अंबेडकर को
पानी पी पीकर कोसते गरियाते रहे।''

(गंगा सहाय मीणा : आरक्षण बनाम आरक्षण)

निर्मला पुतुल, ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों के साथ होने वाले भावनात्मक, आर्थिक, शारीरिक अन्यायों का वर्णन किया है। दलित स्त्रियों को तो सवर्ण अपनी सम्पत्ति मानते ही आए हैं। प्राचीन काल में तो विवाहोपरांत प्रथम रात्रि के समय दलितों को अपनी नवविवाहिता पहले ठाकुरों, शासकों के यहां भेजनी पड़ती थी और वह जब तक चाहे उसे अपने यहां रखकर उसका शारीरिक शोषण करता था। उसके बाद कहीं दलित को यदि शोषक मेहरबान हो जाए तो स्त्री सुख नसीब होता था। 'यौन शोषण' समाज का बहुत ही घिनौंना रूप रहा है जिसे दलित समाज ने सदियों तक झेला है। इसका जिक्र दलित कवि अपनी कविताओं में अपनी माँ, बहनों से होने वाले बलात्कारों और देवदासियों के साथ होने वाले यौन शोषण के रूप में करते रहे हैं। इनकी कविताएं भावनात्मक, शारीरिक तथ्य को उजागर करती हैं निर्मला पुतुल की निम्नलिखित कविता –

''मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में
वे घृणा करते हैं हमसे
हमारे कालेपन से
हँसते हैं, व्यंग्य करते हैं हम पर
वे नहीं चाहते
हमारे हाथों का छुआ पानी पीना
हमारे हाथों का भोजन
सहज ग्राह्य नहीं होता उन्हें
वर्जित है उनके घरों में हमारा प्रवेश
प्रिय है तो बस

मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्जियाँ
घर की मुर्गियाँ
उन्हे प्रिय हैं
मेरी गदराई देह
मेरा मांस प्रिय है उन्हें।''[3]

समाज में रचा–बसा 'विद्वेष' रूप बदल–बदल कर झांसा देता है। दलित कवि के सामने ऐसी भयावह स्थितियां निर्मित करने के अनेक प्रमाण हर रोज सामने आते हैं, जिनके बीच अपना मार्ग तलाशना कठिन होता है। सभ्यता, संस्कृति के घिनौने षड्यंत्र लुभावने शब्दों से भरमाने का उपक्रम करते हैं। दलित के लिए नैतिकता, अनैतिकता और जीवन मूल्यों के बीच भेद फर्क करना कठिन हो जाता है, फिर भी उम्मीद बाकी है। एक दलित कवि का यही प्रयत्न होता है कि इस भयावह त्रासदीमय वातावरण से मनुष्य स्वतंत्र होकर प्रेम और भाईचारे की ओर उन्मुख हो, जिसका अभाव हजारों साल से साहित्य और समाज में परिलक्षित होता रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक उसे अपना दर्द कहने तक की इजाजत नहीं थी। प्राचीन वर्ण–व्यवस्था तथा वर्तमान में अंतर यह है कि आज कवि अपनी बात को रोषपूर्ण ढंग से कहने की स्थिति में है, जो वह पहले नहीं कह सकता था। दलितों को आजीवन सवर्णों ने स्वयं से दूर रखा यहां तक मरघट में भी। इसी स्थिति का बोध कराती हैं रघुवीर सिंह की प्रस्तुत पंक्तियां –

''ओ ! मेरे गाँव !
तेरी जमीन पर
घुटी–घुटी सांसों के साथ
चलना पड़ता है अलग–थलग
लड़खड़ाते कदमों से
चलना पड़ता है अलग–थलग
मरने के बाद भी
जलना पड़ता है अलग–थलग।।'' (डॉ. रघुवीर सिंह, दीर्घा, पृष्ठ सं. 13)

मंदिर में उपासना या पूजा तो दूर की बात है उनमें दलितों का प्रवेश तक वर्जित रहा है और तो और किसी भी स्थान पर उन्हें कार्य करने तक सामाजिक स्वीकृति उच्च वर्ग ने नहीं दी। डॉ. जगदीश गुप्त के शब्दों में वेदना स्पष्ट झलकती है –

''कर रहा तप शूद्र कोई
अधोमुख दंडक गहन में स्वर्ग का सुख लूटने की
लालसा को लिए मन में
चाहता है एक दिव्य कृपाण
किन्तु जाएंगे उसी के प्राण।।''[4]

श्री जगदीश गुप्त 'शम्बूक' नामक काव्य में शम्बूक नामक दलित महान तपस्वी के माध्यम से दलित वर्ग का प्रतिरोध उजागर करते हैं। शम्बूक के द्वारा घोर तपस्या करते समय राम ने उनका सिर काट दिया। दलितों के प्रति अपमान एवं शोषण तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। समाज की इस कुत्सित विचारधारा का दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में किया जा सकता है –

''हे राम! तुम्हारी रची
रक्त की भाषा में
हर बार
तुम्ही से कहता है
शम्बूक मूक
तज कर्म–वेद–पथ
मानव समाज की
ऊर्धमुखी मर्यादा में
तुम गए चूक।''[5]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों के दर्द और संघर्ष के कवि हैं। वे अपनी पीढ़ी के लोगों में आँसुओं का सैलाब नहीं, बल्कि विद्रोह की चिनगारी देखना चाहते हैं। उनकी पीढ़ी के दलितों ने अपने स्वाभिमान और सम्मान के लिये उन गाँवों से शहरों में पलायन किया, जो उनके लिये हिन्दुओं के 'घेटो' (यातना शिविर) थे। शहरों में आकर, उन्होंने जुलूसों को देखा और अपने लिये भी संघर्ष का रास्ता चुना। 'तनी मुट्ठियाँ' कविता में कवि इन्हीं दलितों का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहता है, यथा–

''मेरी पीढ़ी सदियों के अभिशाप को
कंधों पर लादे
गाँव से शहर तक आयी है
खड़ी देख रही है दोराहे पर
मशाल लिये जाते जुलूस को।
मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिन्गारी फूटेगी
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में
तनी मुट्ठियाँ रचेंगी
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास ।''

शम्बूक और एकलव्य दलित कविता में दलित अस्मिता के प्रतीक के रूप में प्रयोग किये जाते रहे हैं। पर, ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'शम्बूक का कटा सिर' कविता में हर युग में शम्बूक की शहादत का चित्रण किया है। यथा–

''यहाँ गली–गली में
राम है/शम्बूक है
द्रोण है/एकलव्य है
फिर भी सब खामोश हैं/कहीं कुछ है
जो बन्द कमरों में उठते क्रन्दन को
बाहर नहीं आने देता/कर देता है
रक्त से सनी उंगलियों को महिमामंडित।''

इस कविता के द्वारा उन्होंने हिन्दी के उन तथाकथित सहानुभूतिवादी कवियों को आईना दिखाया है, जिन्होंने

कभी भी दलित–विरोधी राज व्यवस्था के खिलाफ इसलिये आवाज नहीं उठायी, क्योंकि वे उस व्यवस्था से लाभान्वित होते थे। इसलिये, दलित कवि ने 'हथेलियों में थमा सिर' कविता में दो–टूक शब्दों में कहा–

''गली के मुहाने पर
खाँसता सदियों का अभिशाप
समय की गिनती भूल चुका है
साथ ही भूल चुका है
साँझ और सबेरे का अन्तर।''

हर कोई इंसान है तथा वह अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के अनुसार कार्य कर सकता है। यह बात दूसरी है कि एक वर्ण को असवर्ण एवं दलित मानकर उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। अब दलितों को उनके अधिकार प्रदान करने के लिए कवि कटिबद्ध है, दलित कविता इसका प्रबल प्रमाण है, कवि जगदीश की कविता –

''मैने जब माँगा
जन्म–सिद्ध अधिकार
आत्मा के शिखरों को छूने का
स्वयं खड्ग–पाणि हो
उतर आये हिंसा पर
मर्यादा पुरूषोत्तम।''[6]

डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी अपनी 'अलगाव की चोट' कविता में दलित समुदाय पर होने वाले उस सामाजिक अन्याय की व्याख्या करते हुए कहते हैं –

''तुम्हारी इस सत्ता व्यवस्था ने
सार्वजनिक कुओं–तालाबों से पानी लेने
सड़कों पर चलने
अपनी पसंद के कपड़े एवं जेवर पहनने
खाना खाने स्कूल में पढ़ने
गाँव बस्ती में घर बनाकर रहने का अधिकार छीनकर इसको छुओ मत इसके साथ खाओ मत
और इसके साथ विवाह मत करो
वर्जनाओं–प्रतिबंधों की काल कोठरी में
कैद किया और अस्पृश्य बना दिया मुझे।।''[7]

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्ष बाद आज भी दलितों की बस्तियां, गाँवों, कस्बों और शहरों में बाहर की ओर होती हैं उन्हें अन्य जातियों के लोगों के साथ उनके गली मुहल्लों में रहने का अधिकार नहीं है। जो कि संवैधानिक प्रावधानों तथा कानून के सतही स्तर पर कार्यान्वयन की कमी को उजागर करता है परन्तु कार्यान्वयन करने के लिए उत्तरदायी भी तो उच्च वर्ग ही है और सदियों पुरानी रूढ़ियां आज भी उनके मस्तिष्क पर शासन करती हैं। परिणाम भोगता है दलित वर्ग। शिक्षित होने के उपरांत कुछ लोग आधुनिकता के दौर में छोटी–मोटी नौकरी करने योग्य हो गए हैं और अच्छे रहन–सहन की लालसा में गांवों से कस्बों और शहरों की ओर जाने लगे हैं। अपना गाँव, शहर का निवास छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाने रहने के लिए अधिकांशतः मकान किराए पर लेना आवश्यक होता है परन्तु दलित जाति के व्यक्ति के लिए मकान किराये पर लेना आसान काम नहीं होता है यही

भाव दलित कविता में प्रतिरोध के रूप में सामने आता है–

"घर की तलाश
इस अपरिचित बस्ती में
घूमते हुए मेरे पैर थक गए हैं
अफसोस! एक भी छत
सर ढकने को तैयार नहीं।
हिन्दू दरवाजा खुलते ही
कौम पूछता है और
नाक भौं सिकोड़ –
गैर सा सलूक करता है
नमाजी दरवाजा
बुत परस्त समझ
आँगन तक जाने वाले रास्तों पर
कुंडी चढ़ाता है
अब यही सोच रहा हूँ मैं
कि सामने वाले दरवाजे पर
दस्तक नहीं, ठोकर दूँगा।"[8]

निष्कर्ष – इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य शोषण रहित मानवतावादी एवं समतावादी समाज की स्थापना का पक्षधर है। दलित आन्दोलन समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों की स्थापना का पक्षधर है। दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य के द्वारा 'स्व' की खोज में निकले पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं से विद्रोह एवं अपनी अस्मिता की स्थापना का एक विनम्र प्रयास है। दलित साहित्य का विद्रोह रचनात्मक विद्रोह है। निश्चित लक्ष्य और उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए यह साहित्य धार्मिक, जातिगत, राजनैतिक, शैक्षिक एवं साहित्यिक स्थितियों को बदलने के लिए संघर्षरत चेतना उत्पन्न करता है। यही चेतना दलित कवियों की कविताओं में प्रतिरोधी स्वरों के रूप में अभिव्यक्त होती है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी दलित कविता – डॉ. रजत रानी 'मीनू', नवभारत प्रकाशन, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली–93, प्रथम संस्करण – 2009, पृष्ठ–122
2. गूँगा नहीं था मैं (कविता संग्रह) – जयप्रकाश कर्दम ,अतिशय प्रकाशन, हरिनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997, पृष्ठ–44
3. नगाड़े की तरह बजते शब्द : निर्मला पुतुल, (मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में कविता से), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2005, पृष्ठ सं. 72
4. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–11
5. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 1
6. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 99–100
7. डॉ. पुरूषोत्मक सत्यप्रेमीः मूक मोटी की मुखरता, पृष्ठ सं. 12
8. दलित निर्वाचित कविताएँ संपादक – कँवल भारती, इतिहास बोध प्रकाशन, बी–239, चन्द्रशेखर नगर इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 2006, पृष्ठ– 51, 52

❑❑

45

युवा एवं शिक्षा

डॉ. विजय कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत लेख में या प्रपत्र में हमने युवा एवं शिक्षा पर प्रकाश डाला है। "हमारे शिक्षित युवाओं ने जहाँ एक ओर ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, कला तथा तकनीकी क्षेत्र में वैश्विक पहचान को स्थापित किया है वही चिकित्सा तथा अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय युवाओं की उपलब्धियाँ चमत्कारिक रही है। समय परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा की अवधारणा भी परिवर्तित हुई है। आज वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा का उद्देश्य आत्मविकास (आत्मचिंतन, मनन, अर्न्तध्यान, इंद्रिय संयम इत्यादि) से विलग होकर मात्र जीविकोपार्जन से जुड़ गया है जो जीवन की भौतिक सुख समृद्धि की माँग करता है। जीवन की यही भौतिक सुख समृद्धि की पिपासा और उसकी प्राप्ति हेतु शिक्षा का अर्जन करना आज के युवाओं का 'कैरियर' बन गया है। अधिकांशः अभिभावक, किसी तरह धन खर्च करके अपने युवा बच्चों को उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश इस उम्मीद से दिलाते हैं ताकि वे उच्च डिग्री हासिल करके अपने जीवन में अधिक से अधिक धनोपार्जन कर उन समस्त भौतिक संसाधनों को जुटा सके, जो आज 'उच्च जीवन स्तर' (High Life Status) के मानदण्ड बन गये हैं। इससे स्पष्ट है कि युवाओं में विद्यमान इस अनन्त क्षमता, ऊर्जा व प्रतिभा को यदि तराशा जाये, सही मार्गदर्शन दिया जाये, ससमय उचित संस्कारों को प्रवाहमय बनाकर उनके समक्ष आदर्श स्थापित किया जाये जिससे सही दिशा का चुनाव संस्कारमय तरीके से आज के युवा कर सके।

अन्तर्निहित क्षमताओं से सम्पन्न युवा पीढ़ी के भटकाव की स्थिति को रोकने के लिये आज आवश्यकता है उनके व्यक्तित्व परिष्कार की। ताकि हर युवा इतना प्रखर एवं प्रभावी बन सके कि फूलों की तरह वह सर्वत्र ज्ञान के साथ–साथ संस्कारों की खुशबू को बिखरने में सक्षम हो सके। 'एनी बेसेंट' ने 'हिन्दू आइडियल्स' में कहा है कि शिष्य, केवल परीक्षा उत्तीर्ण की दृष्टि से अध्ययन न करें, उसे तो मन के सभी विभागों को अनुशासित करना पड़ता है। आधुनिक शिक्षा की आलोचना करते हुये वे कहती है कि "सोने पर जो हाल मार्क लगाया जाता है उससे सोने का मूल्य नहीं बढ़ता है वरन् सोना स्वयं मूल्यवान है, इसलिये उस पर हाल मार्क लगाया जाता है। इसी प्रकार ज्ञान का स्वयं का मूल्य होता है, परीक्षा उसके मूल्य को नहीं बढ़ाती, परीक्षा का महत्व इसलिए है कि उसके उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थी को यह प्रमाण मिल जाता है कि उसके पास अमुक मात्रा का ज्ञान है, क्योंकि कभी–कभी बालक रटकर भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है और परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रमोशन की वैद्यता पार कर लेता है।

ज्ञानार्जन ही शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। इसका लक्ष्य है मन के विभागों का प्रशिक्षण, उनका विकास, उनका अनुशासन। इसी क्रम में स्वामी दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश) ने जनता का आह्वान किया कि वह वेदों की ओर लौटे। वेदों के गहन अध्ययन से उन्हें भली प्रकार अनुभव हो गया था कि केवल अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य साहित्य से व्यक्ति को प्रगतिशील विचार नहीं मिल सकते। वास्तव में स्वामी दयानन्द, वेदों की ओर भारतीय जनता का ध्यान इसलिए आकर्षित कर रहे थे क्योंकि युवा पीढ़ियाँ पाश्चात्य संस्कृति में रंगकर अपने यथार्थ स्वरूप को भूलती जा रही थी। लोग भौतिकवादी होते जा रहे थे। सच्ची भारतीय संस्कृति का पुनरूद्धार करने की दृष्टि से स्वामी जी ने उपनिषदों, वेदों इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन करने पर भी बल दिया था।

भौतिकता के चरमोत्कर्ष में आत्मविकास व चारित्रिक विकास जैसे शब्द विलुप्त होते दिखायी देते हैं। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि आज उच्च शिक्षा मात्र व्यावसायिक प्रतिष्ठान बनकर रह गयी है बेहतर होता कि वह सांस्कारिक प्रतिष्ठान भी होती। इस शिक्षा ने अवमूल्यन को बढ़ावा दिया है। यही कारण

है कि उच्च शिक्षा आज के युवाओं में अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्द्वों एवं विविधमुखी समस्याओं को जन्म दे रही है। भौतिक आत्म संतुष्टि की बढ़ती आकांक्षा, स्वार्थपरता एवं आत्मीयता के अभाव में न केवल युवापीढ़ी को भ्रमित किया है बल्कि शिक्षा की व्यापक परिकल्पना के समक्ष एक प्रश्न चिहन भी खड़ा कर दिया है। उच्च शिक्षा प्राप्त जब युवा पीढ़ी, नशे की भ्रामक दुनिया में भटकती हुयी विध्वंश व अनाचार का परिचय देती है तब सम्पूर्ण राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था, एक स्वतः समग्र चिंतन का विषय बन जाती है।

आज समाज में आध्यात्मिकता के नाम पर अनेक क्रियाकलाप देखने को मिलते हैं परन्तु वास्तविक जीवन में इनके अनुशीलन का प्रभाव बहुत कम देखने को मिलता है।

आत्मसंयम, सेवा, परिश्रम, त्याग, समर्पण, उच्च विचार, सत्य व विश्वास जैसे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के अस्तित्व पर आज गम्भीर प्रश्न चिनह लगा हुआ है। भौतिकता के बढ़ते आकर्षण के कारण जब सुख सुविधा, वैभव–विलास, स्वार्थपरता एवं अनाचार का वातावरण अपने वर्चस्व रूप में दिखायी देता है तो युवावर्ग के समक्ष ये मूल्य महत्वहीन हो जाते है। ऐसे में युवाओं के सामने यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा हो जाता है कि वे आध्यात्मिक विकास की ओर क्यों अग्रसर हो? वे क्यों इन्द्रिय सुखों पर अंकुश लगाकर शील संयक का जीवन जिये?वे क्यों नैतिकता के नियमों में बंधकर अपनी स्वतंत्रता का हनन करें? युवा हृदयों को उद्वेलित करते यह प्रश्न तर्कसंगत प्रत्युत्तर की माँग करते है जब तक इन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर नहीं मिलते तब तक ये युवा अपने जीवन के लक्ष्यों को सही दिशा नहीं दे सकते हैं। अतः हम सभी को मिलाकर, इन प्रश्नों के तथ्यपरक व तर्कसंगत उत्तर खोपने होगें ताकि भ्रमित व भटकती युवापीढ़ी जीवन के सद्मार्ग पर चल सके। उसमें निहित उस संस्कार चेतना को जाग्रत करना होगा जो उसके अन्दर सोयी पड़ी हुई है। स्वामी विवेकानन्द जी युवाओं को उनके यथार्थ स्वरूप से अवगत कराते हुये कहते हैं कि "हर आत्मा मूल रूप में देवस्वरूप है और लक्ष्य इस दिव्यता को जगाना है। इस तरह मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को जाग्रत करने और जीवन के हर क्षेत्र में उसकी अभिव्यक्ति को ही स्वामी जी जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य घोषित करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि लक्ष्य के अभाव में, अध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में हम अपनी अन्तर्निहित दिव्यता एवं पूर्णता भुलाकर देह मन तक ही अपना परिचय मान बैठते हैं। हमारे समस्त दुःखों, कष्टों व विषादों का मूलकारण आत्मविस्मृति ही है। अतः आज के भीषण अन्तर्द्वन्द्व की इस विषादपूर्ण स्थिति में युवाओं में आध्यात्मिक पद का निर्देशन करने के लिये शिक्षा में आध्यात्मिक शिक्षा की अनिवार्यता एवं प्रासंगिकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस प्रकार आज भौतिकतावादी परिवेश में आध्यात्मिकता के महत्व व उसकी आवश्यकता को सर्वत्र महसूस किया जा सकता है और जीवन निर्माण में उसकी अपरिहार्यता को भी स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि आध्यात्मिकता के विकास के बिना जीवन का विकास एक पक्षीय है।

विचारमंथन करने पर निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि युवा शिक्षा का ध्येय केवल डिग्रिया, धन, हासिल कर जीविकोपार्जन करना ही नहीं है बल्कि एक ऐसे सुसंस्कृत समाज का निर्माण करना भी है जहाँ संवेदनशीलता हो। अतः देश के इन युवाओं की ऊर्जा व क्षमता के क्षरण को रोककर, रचनात्मक दिशा की ओर ले जाने के लिये सर्वप्रथम आत्मिक अनुशासन की आवश्यकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि आत्मिक अनुशासन, जीवन में आध्यात्मिकता के समावेश से ही संभव है। अतः इन्हें हृदय व मस्तिष्क की संकीर्णता से मुक्ति दिलाकर समग्रता की ओर ले जाने वाली विश्वव्यापी उदात्त भावना से युक्त करना है।

संदर्भ सूची

- भावलकर, स्मिता (2002), शैक्षिक समस्याएं एवं सुधारः एक विश्लेषण, भारतीय आधुनिक शिक्षा, दिल्लीः एन.सी.ई.आर.टी.
- द्विवेदी, कमला (1996), गाँधी के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, वाई.के.पब्लिशर्स।
- अखण्ड ज्योति, वर्ष – 66, अंक – 4, अप्रैल – 2003

❑❑

संगीत शिक्षा परम्परा में घरानों की उपयोगिता

डॉ0 रेनू वर्मा
एसो0 प्रोफेसर, संगीत सितार वादन
श्रीमती बी0डी0जैन कन्या महाविधालय आगरा

संगीत शिक्षण की प्राचीन परम्परा तथा उसके मूलभूत तत्वों के सम्बंध में परिचय, विशिष्ट लक्षण ग्रन्थों के रूप में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध नहीं होगा। ''आधुनिक अर्थ में प्राचीन शिक्षा शास्त्र के सिद्धान्तों का विवरण भी ग्रन्थ के रूप में एक स्थान पर कहीं नही होता। तथापि उसके सम्बन्ध में परिज्ञान तत्कालीन विभिन्न ग्रन्थों में न्यूनाधिक मात्रा में विकीर्ण पाया जाता है। इन्हीं विकीर्ण सूत्रों को एकत्रित करने पर प्राचीन संगीत शिक्षा की प्रणाली तथा शिक्षा के सर्वमान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक मानचित्र प्राप्त हो जाता है।''

संगीत शिक्षण में विद्यार्थी में साधना–शक्ति व संयम पल्लवित होता है। कण्ठ संगीत की प्रवाहात्मकता दीर्घ–प्रक्रिया से वाद्य संगीत अंग–विशेष के संचालन की प्रक्रिया से तथा नृत्य शारीरिक अंगो व भाव–भंगिमाओं की प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध रखते है। परन्तु भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए यह तीनों ही शिक्षार्थी की वैयक्तिक प्रतिभा व कला–कौशल की अपेक्षा रखते हैं। क्योंकि शारीरिक व मानसिक वृत्तियों का समन्वय ही भावनात्मक व रचनात्मक क्रियाशीलता को परिपक्व कर आत्माव्यक्ति, का अवसर प्रदान करता है।

संगीत शिक्षण की प्राचीन परम्परा तथा उसके मूलभूत तत्वों के सम्बंध में परिचय, विशिष्ट लक्षण ग्रन्थों के रूप में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध नहीं होगा। ''आधुनिक अर्थ में प्राचीन शिक्षा शास्त्र के सिद्धान्तों का विवरण भी ग्रन्थ के रूप में एक स्थान पर कहीं नही होता। तथापि उसके सम्बन्ध में परिज्ञान तत्कालीन विभिन्न ग्रन्थों में न्यूनाधिक मात्रा में विकीर्ण पाया जाता है। इन्हीं विकीर्ण सूत्रों को एकत्रित करने पर प्राचीन संगीत शिक्षा की प्रणाली तथा शिक्षा के सर्वमान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक मानचित्र प्राप्त हो जाता है।''

संगीत जगत् में 'घराना' शब्द से गुणी–वंश परम्परा समझी जाती है। आज 'घराना' शब्द से जो अर्थ हम लेते हैं उसका इतिहास एक सौ साल से अधिक नहीं है बल्कि यह शब्द इस संकुचित अर्थ में व्यक्त नहीं होता था। बड़े व्यापक अर्थ में इसका व्यवहार होता था। भरत, नंदिकेश्वर, कोहल, नारद, मतंग, शारंगदेव ये सभी प्रख्यात संगीत शास्त्रकार थे और कहा जा सकता है कि इनकी संगीत कला अपनी विशेषताओं के कारण अलग–अलग चिहिन्त होती थी। आधुनिक युग की परिभाषा के अनुसार इन्हें अलग–अलग घरानों क प्रवर्तक कहा जा सकता है।

'घराना' का अर्थ है एक विशेष स्थान पर प्रचलित अथवा व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित संगीत की 'रीति' या 'स्टाइल' और यही रीति या स्टाइल किसी एक वैशिष्ट्य द्वारा चिन्हित होती है। इसीलिए घरानों का नामकरण किसी व्यक्ति या स्थान के नामानुसार होता है जैसे–सेनी घराना, अल्लादिया खाँ घराना, या फिर जैसे– ग्वालियर घराना, पटियाला घराना, आगरा घराना आदि।

'घराना' शब्द संस्कृत के 'गृह' शब्द से उद्धृत है। यह घर का भाव–वाचक है। 'शब्दकोष' में घराना शब्द का अर्थ वंश या कुल है। सांगीतिक परिभाषा में भी इसी अर्थ का प्रयोग हुआ है। मानव प्रारम्भिक जीवन से लेकर आज तक वर्गो तथा घेरों से बँधा हुआ रहा है, जिसकी पृष्ठभूमि में कुछ सामाजिक व प्राकृतिक कारण है। स्थान–स्थान की जलवायु व वातावरण के अनुसार खान–पान, रहन–सहन व अन्य गतिविधियों की अनुकूलता तथा वस्तुओं की उपलब्धि आदि के अनुसार प्राप्त सामग्री से ही विभिन्न प्रकार के वाद्य बनाये गये तथा प्रत्येक स्थान

पर वहां के सामान्य जीवन के अनुकूल ही संगीत विकसित हुआ। इस प्रकार प्रत्येक स्थान के गायन, वादन व नृत्य में कुछ भिन्न–भिन्न प्रकार की विशेषताएँ रहीं। 'घराने' का जन्म ऐसी ही कुछ विशेष परिस्थितियों में हुआ। यह समाज से अलग न होकर समाज का ही एक अंग है। राजनीतिक उथल–पुथल होने तथा अनेक परिवर्तनों के आ जाने पर भी घरानों के कारण ही संगीत का प्राचीन रूप सुरक्षित रहा तथा सुविधाएँ मिलने पर विकसित हुआ। 'घराने' के अन्तर्गत किसी विशेष गुरू के वंशजों एवं शिष्यों का वह परिवार आता है, जिन्होंने उस घराने की प्रणाली विशेष को और अधिक प्रचलित और प्रसारित किया हो। संगीत में 'घराना' एक विशिष्ट गायन शैली, वादन शैली, या नृत्य शैली का सूचक होता है। यह शैली या रीति जिस कलाकार के द्वारा प्रवर्तित होती है, वहीं इसका संस्थापक माना जाता है, और उसके नाम से अथवा निवास–स्थान (शहर) से घराने का नामकरण होता है। प्रत्येक घराने की अपनी एक विशेष शैली होने के कारण उसमें कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है, जैसे–

1. गीत की बंदिश
2. आवाज लगाने का ढ़ंग
3. तान एवं बोल तानों का प्रयोग
4. राग विस्तार एवं आलाप
5. तान व लयकारी
6. रागों की पसन्दगी

घरानों की प्राचीनता – ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वैदिक काल से ही 'उपनिषद्' शब्द से मिलकर बना है अर्थात् 'नीचे निकट बैठना' तात्पर्य यह है कि उस समय शिष्यगण गुरू से गुप्त विद्या सीखने के लिए निकट बैठते थे।

स्वामी हरिदास की शिष्य परम्परा में तानसेन का नाम उल्लेखनीय है जो इस तथ्य को इंगित करता है कि इस युग में भी अन्य विधाअें, कलाओं की भाँति संगीत विद्या भी एक विद्वान या गुरू से प्राप्त की जाती थी। इसी प्रकार बैजू के मृगनयनी (राजा मानसिंह की पत्नी) को संगीत सिखाये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। संगीत विधा का आदान–प्रदान गुरू–शिष्य परम्परा द्वारा सम्पन्न होता रहा। समय व परिस्थिति अनुसार, इसमें परिवर्तन आया और गुरूकुलों अथवा आश्रमों के अतिरिक्त संगीत की शिक्षा राजमहलों एवं संगीत संस्थाओं में दी जाने का प्रादुर्भाव हुआ।

गुरू शिष्य के आधार एवं महत्व

''संगीत–जगत् में 'घराना' शब्द का विशेष स्थान है। विशेष रूप से ख्याल गायन के संबंध में घरानों की चर्चा की जाती है, परन्तु अन्य सभी गायन–शैलियों के साथ भी घराने किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं देखा जाए तो घरानों का अस्तित्व केवल संगीत में ही नहीं, अपितु, मनुष्य के दैनिक जीवन से भी बना हुआ है। यदि इस पर ध्यान दें, तो पाएँगे कि घराने हमारी सामाजिक परंपराओं को दृढ़ रखने, समाज की विकास धारा को आगे बढ़ाने तथा मनुष्य को अनुशासन, संयम एवं पूर्वजों के प्रति श्रद्धा रखने की शिक्षा देने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

'घराना' शब्द बीसंवी शताब्दी की देन है, तथापि वर्ग के रूप में इसका अस्तित्व सदा ही रहा है। मानव प्रारंभिक जीवन से लेकर आज तक वर्गो तथा घेरों में बँधा हुआ रहा है, जिसकी पृष्ठ भूमि में कुछ सामाजिक व प्राकृतिक कारण है। स्थान–स्थान की जल–वायु व वातावरण के अनुसार खान–पान, रहन–सहन व अन्य गतिविधि ायों की अनुकूलता तथा वस्तुओं की उपलब्धि आदि के अनुसार प्राप्त सामग्री से ही विभिन्न प्रकार के वाद्य बनाए गए तथा प्रत्येक स्थान पर वहाँ के सामान्य जीवन के अनुकूल ही संगीत विकसित हुआ। इस प्रकार प्रत्येक स्थान के गायन, वादन व नृत्य में कुछ भिन्न प्रकार के ही सौंदर्य–घटक व्याप्त थे। यही संगीत अपने–अपने वर्गो में सीमित रहकर विकसित होता गया। यह अधिकतर लोक–संगीत के रूप में पहचाना गया।

लय–संस्कारित स्वर और–साधित लय भी घरानेदार गायकी का आधार है। लय व स्वर, दोनों ही रंजकता का निर्माण करते हैं। व्यक्ति के ह्रदय से लेकर सूर्य और चंद्रमा के उदय व अस्त होने तक में गति विद्यमान है और पक्षियों के चहचहाने व नदी की वेगवान् धारा में स्वर विघमान है। इन दोनों के मिश्रण से ही उत्साह, क्रियाशीलता, उल्लास अदि उत्पन्न होते हैं। अतः दोनों को एक दूसरे से अलग करना कठिन है, परंतु इनके न्यूनानिक प्रयोग ही विभिन्न घरानों की गायकी के आधार के रूप में सामने आते हैं। गायकी के सूक्ष्म विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि स्वर की ओर अधिक रझान से किराना–घराना, लयकारी, –प्रधानता से आगरा–धराना और तान की तेजी, चमत्कार व वैचित्रय के प्रदर्शन से दिल्ली–घराना पहचाना जाता है। किंतु कोई ऐसा मापदंड नहीं है, जिससे मालूम हो कि संगीत में रस–परिपोष के लिए स्वरव लय का सही अनुपात क्या है।

गायक की गायन–शैली के आधार पर घराने बनते हैं। गुरू–शिक्षा के उपरांत अपनी कल्पना–शक्ति, भावाभव्यक्ति की क्षमता, बुद्धि व कला–कौशल से गायकी को सुंदर, सरस व आकर्षक बनाने का प्रयत्न करने से ही घराना प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। कूप–मंडूक न बनकर विशाल दृष्टिकोण अपनाना ही घराने के हित में सहायक सिद्ध होगा।

वर्तमान परिपेक्ष्य में संगीत शिक्षा का प्रारूप एवं प्रभाव के लिए संगीतकारों के द्वारा समय में परिस्थितियाँ कुछ बदली है। स्कूल व विश्वविद्यालय आदि में संगीत एक विषय के रूप में आ जाने से आज संगीत घरानेदार गायकों की निजी निधि बनकर नहीं रह गया है, वरन् सर्वसुलभ हो गया है। परंतु इस सुलभता का अनुचित लाभ उठाए जाने तथा घरानेदार संगीत से दोषी के साथ–साथ गुण भी लुप्त हो जाने से वर्तमान संगीत–शिक्षा–प्रणाली में संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

ग्रंथ–सूची

1. शोभना शाह – संगीत शिक्षण प्रणाली, प्रकाशक विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण–1986
2. डॉ0 रविद्र अग्निहोत्री– आधुनिक भारतीय शिक्षा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ, अकादमी, प्रथम संस्करण–1987
3. डॉ0 मधुवाला सक्सेना– भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, प्रकाशक हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, संस्करण–1990
4. डॉ0 योगेन्द्र जीत – शिक्षा में नवसंचार और नवीन प्रवृतियॉ, प्रकाशक विनोद पुस्तक, आगरा, प्रथम संस्करण–1988

संगीत पत्रिकाएँ :

5. संगीत घराना–सम्पादंक–लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस–अंक–जनवरी–फरवरी, 1982, संगीत कार्यालय, हाथरस
6. संगीत कला विहार–मार्च, 2011– अखिल भारतीय गान्‍र्धव महाविधालय मण्डल, मिरज

संगीत शोध–पत्रिकाएँ :

7. ब्रज सलिला–प्रधान सम्पादक–हरिमोहन मालवीय –प्रकाशन–बृंदावन शोध संस्थान, वृंदावन, अक्टूबर 2010–मार्च 2011
8. ब्रज सलिला–प्रधान सम्पादक–हरिमोहन मालवीय –प्रकाशन –बृंदावन शोध संस्थान, वृंदावन, अक्टूबर 2010–मार्च 2011
9. ब्रज सलिला–प्रधान सम्पादक–हरिमोहन मालवीय – प्रकाशन – बृंदावन शोध संस्थान, वृंदावन, अक्टूबर 2010– मार्च 2011
10. भैरवी संगीत शोध पत्रिका – प्रधान संम्पादक – डॉ0 पुष्पम नरायण, प्रकाशक – स्नात्कोत्तर संगीत नाटय विभाग, ललित नरायण मिथिला विश्वविधालय, कामेश्वर नगर दरभंगा, 2009–अक्टूवर, मिथलाचंल संगीत परिषद, दरभंगा, बिहार।
11. भैरवी संगीत शोध पत्रिका– प्रधान संम्पादक – डॉ0 पुष्पम नरायण, प्रकाशक – स्नात्कोत्तर संगीत नाटय विभाग, ललित नरायण मिथिला विश्वविधालय, कामेश्वर नगर दरभंगा, अक्टूवर–2010, मिथलाचंल संगीत परिषद, दरभंगा बिहार।

❑❑

परिवार नियोजन में पुरुषों की जागरूकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

लक्ष्मी सिंह
शोधार्थी, समाजशास्त्र
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

आज विश्व में जनसंख्या के मामले में दूसरे नम्बर पर आता है। भारत देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या चिंता का विषय बन चुकी है।

जनसंख्या को नियंत्रित करने, बच्चों के उचित लालन–पालन एवं माता के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि परिवार नियोजन अपनाया जाये जिससे दो बच्चों के बीच अन्तर रखा जा सके ताकि उनकी उचित देखभाल की जा सके।

परिवार नियोजन का अर्थ : दम्पति अपनी मर्जी से यह फैसला करें के उन्हें कब बच्चा चाहिए और कब नहीं। तब तक वे कोई मनपसंद तरीका चुनकर उसका प्रयोग करें। ऐसा करने से बच्चे उनकी इच्छा से ही होंगे, संयोग से नहीं।

परिवार नियोजन की सहायता से दम्पत्ति बच्चों की संख्या और जन्म के मध्य अंतर को नियंत्रित कर, गर्भ निरोधकों का प्रयोग कर, एवं प्राकृतिक तरीकों को अपनाकर काफी हद तक जनसंख्या नियंत्रित करने में भागीदारी कर सकता है।

आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में और बढ़ती हुई मंहगाई को देखकर हर इंसान परिवार नियोजन की तरफ ध्यान दे रहा है और देना भी जरूरी है। हर दम्पति को अपना परिवार बढ़ाने से पहले यह देखना जरूरी है कि उनका बच्चा पैदा करने का सही समय क्या है। उसे कितने बच्चे पैदा करने चाहिए जिनकी वह अच्छी तरह से परवरिश कर सके उन्हें अच्छे स्कूल में पढ़ा सके। उनकी जरूरतों को पूरा कर सके। इसके अलावा उन्हें यह भी जानना जरूरी है कि एक पैदा करने के बाद अगर वह दूसरा बच्चा पैदा करना चाहते है तो उन दोनों में कितना अन्तर होना चाहिए।

प्रस्तुत शोध पत्र परिवार नियोजन में पुरुषों की जागरूकता का समाजशास्त्रीय अध्ययन विषय पर आधारित है।

शोध के उद्देश्य :

1. परिवार नियोजन कार्यक्रम के तहत पुरुषों की जागरूकता का अध्ययन करना।
2. परिवार नियोजन के अन्तर्गत परिवारों में लगातार हो रहे परिवर्तन का अध्ययन करना।
3. परिवार नियोजन के विषय में समाज की जागरूकता का अध्ययन करना।
4. परिवार नियोजन से मनुष्य की जीवन शैली में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन।

भारत विश्व में पहला देश है जिसने परिवार नियोजन कार्यक्रम को सरकारी स्तर पर अपनाया है भारत सन् 1951 से जनसंख्या को सीमित करने के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित साधनों में नियन्त्रण स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण किया जाए। शाब्दिक रूप से परिवार नियोजन का अर्थ साधारण दो या तीन सन्तानों को जन्म देकर परिवार के आकार को

नियोजित रूप से सीमित रखना समझा जाता है। परिवार नियोजन से तात्पर्य एक ऐसी योजना से है, जिसमें परिवार की आय, माता के स्वास्थ, बच्चों के समुचित पालन पोषण तथा शिक्षा को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त समय पर और एक आदर्श संख्या में सन्तानों को जन्म दिया जाए।

परिवार नियोजन और परिवार कल्याण : परिवार नियोजन को अब बेहतर जीवन स्तर हेतु मौलिक मानवीय हक माना जाता है। जन्मों में प्रर्याप्त अन्तर होना बेहतर पारिवारिक स्वास्थ के लिए महत्त्वपूर्ण और महिलाओं के लिए अधिक स्वतंत्र और समान अधिकारो की प्राप्ति हेतु सहायक होता है। यदि महिलाओं को परिवार नियोजन अपनाने हेतु स्वतन्त्रता दी जाए तो अधिकांश महिलाएं सिर्फ दो या तीन बच्चों को ही जन्म देना स्वीकार करेगी।

1. सिर्फ दो बच्चो के पर्याप्त अन्तर से जन्म लेने की वजह से माता का स्वास्थ अच्छा रहता है। वह परिवार की देखभाल अच्छी तरह से करती है।
2. माताओ और शिशुओं के स्वास्थ सम्बन्धी खतरे बहुत कम हो जाते है।
3. छोटा परिवार स्वास्थ, सुखी और सतुंष्ट रहता है।
4. अच्छी शिक्षा की वजह से दम्पत्ति स्वतन्त्रता पूर्वक परिवार नियोजन कर सकते हैं।
5. माताओ की आयु 20 वर्ष से अधिक होने से शिशु जन्म के समय किसी का खतरा नहीं रहता है।
6. सिर्फ दो बच्चे होने की वजह से पालक उनकी अच्छी देखभाल कर सकता है। उनके आहार, कपड़े, शिक्षा का व्यय आसानी से वहन कर सकते है। बच्चे बड़े होने पर अक्सर अच्छे उपयोगी नागरिक बनते है।
7. छोटे परिवार में पैसा बढ़ता है और स्तर में सुधार होता है।
8. माता के पास अपनी शिक्षा तथा कार्य में सुधार हेतु पर्याप्त समय रहता है और रूचि बनी रहती है। उसका सामाजिक दर्जा भी बेहतर रहता है।

परिवार नियोजन के लाभ :

1. परिवार नियोजन अपनाने से सबसे ज्यादा फायदा मां के स्वास्थ्य को होता है और दो बच्चों के बीच में 3–5 साल का अंतर रखकर वह अपना और बच्चे का ध्यान अच्छे से रख सकती है।
2. बर्थ कंट्रोल से मां का स्वास्थ्य अच्छा रहता है जिसके कारण प्रीमेच्योर बर्थ या दूसरी जटिलताओं का खतरा कम होता है। ऐसे में मां अपनी पुरानी और सामान्य स्वास्थ्य की अवस्था में लौट सकती है।
3. आजकल शादी देर से करने का चलन हो गया है और उम्र बढ़ने के साथ ही गर्भावस्था में कई प्रकार के कांप्लीकेशन्स आते हैं। लेकिन परिवार नियोजन से इस प्रकार की जटिलाओं से बचा जा सकता है।
4. दो बच्चों में नियमित अंतराल रखने से गर्भपात की स्थिति पैदा होने की कम संभावना होती है। इससे गर्भपात के खतरे को कम किया जा सकता है।
5. बच्चे के बेहतर स्वास्थ्य के लिए यह जरूरी है। लगभग 5 साल तक बच्चा मां पर पूरी तरह से निर्भर रहता है। अगर एक साथ कई बच्चे होंगे तो मां को भी उन्हे संभालने में दिक्कत होगी।
6. बच्चों की संख्या कम होने से महिलाओं को भी फायदा होता है। उसे भी ज्यादा भागदौड़ नही करनी पड़ती है।
7. पहले बच्चे के जन्म से उचित अंतर के बाद, पैदा हुए शिशु में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का खतरा कम होता है।
8. बच्चों के बीच सही अंतर रखा जा सकता है। बच्चों के बीच सही अंतर होगा तो उनका विकास भी अच्छे से होगा और आपस में प्रतिस्पर्धा भी नही होगी।

9. दो बच्चों में अगर सही अंतर होगा तो प्रीमेच्योर बर्थ, जन्म के समय कम वजन और सामान्य से छोटे आकार के शिशु के होने की संभावना नही होती है और यह परिवार नियोजन से ही हो सकता है।
10. परिवार नियोजन अपनाने से हाई रिस्क ऑफ प्रेग्नेंसी की स्थिति नही बनती है और गर्भपात होने की संभावना भी कम होती है।
11. परिवार नियोजन अपनाने से अक्सर ऐसा होता है कि आपका बड़ा बच्चा छोटे बच्चे का ख्याल रखता है।
12. परिवार नियोजन आर्थिक दृष्टी से भी लाभदायक होता है।

परिवार नियोजन अपनाने से जच्चा–बच्चा दोनों स्वस्थ रहते हैं और कई प्रकार की समस्यायें भी नहीं होती हैं। सरकार भी परिवार नियोजन को लेकर काफी सजग एवं जागरूक है और इसके लिए वह कार्यक्रम समय–समय पर चलाती रहती है।

परिवार नियोजन की जागरूकता का उदाहरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, एक निजी स्वयंसेवी संगठन चलाने वाले देवेंद्र गांधी ने परिवार नियोजन कार्यक्रम में पुरुषों को भी आगे लाने के लिए एवं जागरूकता अभियान चलाये जाने की बात कही। उनका मानना है कि परिवार नियोजन के अधिकांश कार्यक्रम में पुरुष महिलाओं को ही आगे कर देते हैं।

देवेंद्र गांधी ने बताया कि महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य व अधिकारों को लेकर परिवार नियोजन में पुरुषों की सहभागिता की बात जरूरी है। परिवार नियोजन कार्यक्रम के तहत गर्भनिरोधक कार्यक्रम ज्यादातर महिलाओं को प्राथमिकता देती है। परिवार नियोजन कार्यक्रम में पुरुष महिलाओं को ही आगे कर देते है। यही कारण है कि पुरुष नसबंदी की दर भी बहुत कम है। पुरुष दूसरे साधनों का प्रयोग भी कम करते है। वास्तव में नसबंदी कार्यक्रम महिला नसबंदी तक सीमित होकर रह गया।

भारत में परिवार नियोजन का महत्व :

परिवार नियोजन केवल जन्म नियंत्रण या गर्भनिरोधन से ही नहीं नियंत्रित किया जा सकता है। परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार और माता एवं उसके बच्चों के बेहतर स्वास्थ्य के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। सबसे पहले परिवार नियोजन में जन्म अंतराल पर महत्व दिया गया है जिसमें बताया गया है कि एक से दूसरे बच्चे के जन्म के मध्य कम से कम 2 वर्ष का अंतर होना चाहिए। मेडिकल साइंसेज के अनुसार, 5 वर्ष से अधिक या 2 वर्ष से कम के अंतराल में जन्म देने वाली माता और बच्चे के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रभाव :

परिवार नियोजन कार्यक्रम को लागू करने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का पूरे देश पर अभिप्रायपूर्ण प्रभाव पड़ा है। वर्ष 1952 में भारत एक परिवार नियोजन कार्यक्रम को स्थापित करने वाला दुनिया का पहला देश था। वर्ष 2011 के परिवार कल्याण कार्यक्रम के अनुसार कुछ प्रमुख उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

1. गर्भनिरोधकों के बारे में जागरूक करने के लिए एक या एक से अधिक तरीकों का प्रयोग।
2. पिछले कुछ सालों से गर्भ निरोधकों के प्रयोग में वृद्धि।
3. महिला नसबंदी के ज्ञान को आधुनिक परिवार नियोजन की सबसे सुरक्षित और लोकप्रिय पद्धति माना जाता है।
4. कंडोम के प्रयोग में वृद्धि।
5. गर्भनिरोधक गोलियों के प्रयोग में वृद्धि।
6. शिक्षित महिलाओं में प्रजनन दर कम।
7. उच्च आय समूहों में प्रजनन दर कम।

परिवार नियोजन कार्यक्रम बहुत हद तक सफल हुआ है, लेकिन भारत को अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है। भारत सरकार द्वारा चलाई गई जनसंख्या की नीतियों में से परिवार नियोजन पर हमेशा अधिक जोर दिया गया है। हालांकि, अभी भी अधिक सार्वजनिक जागरूकता और सार्वजनिक भागीदारी की आवश्यकता है। लिंग असमानता, बेटियों से ज्यादा बेटों पर प्राथमिकता, जीवन यापन के मानक में कमी, गरीबी, भारतीयों की परंपरागत विचार प्रक्रियाएं, पुरानी सांस्कृतिक मानदंड जैसे कारण पूरे देश में गरीब परिवार नियोजन प्रथाओं को जारी रखने में अहम भूमिका निभाते हैं।

परिवार नियोजन में पुरुष की भागीदारी महिलाओं के मुकाबले बेहद कम : परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता की कमी के चलते हुए या समाज की पुरुष प्रधान मानसिकता का एक और सबूत यह है कि जनसंख्या विस्फोट की चौतरफा दिक्कतों के बीच आबादी के सरपट दौड़ते घोड़े की नकेल कसने की व्यक्तिगत मुहिम में पुरुषों की भागीदारी महिलाओं के मुकाबले अब भी बेहद कम है।

क्र.सं.	पद्धति	2013	2014	2015
1	महिला नसबंदी	1,57,431	1,49,262	1,42,372
2	पुरुष नसबंदी	8130	5085	6035
	कुल नसबंदी	1,65,561	1,54,347	1,48,407
3	कुल आईयूसीडी सन्निवेशन	3,50,642	3,93,276	3,51,444
	पीपीआईयूसीडी सन्निवेशन	-	-	43,829

विशेषज्ञों के मुताबिक, परिवार नियोजन के ऑपरेशनों के मामले में कमोबेश पूरे देश में गंभीर लैंगिक अंतर बरकरार है। इस सिलसिले में मध्य प्रदेश भी अपवाद नहीं है। सूबे में पिछले पांच सालों के दौरान हुए परिवार नियोजन ऑपरेशनों में पुरुष नसबंदी की भागीदारी सिर्फ सात प्रतिशत के आस–पास रही यानी नसबंदी कराने वाले हर 100 लोगों में केवल सात पुरुष थे।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2007–08 से 2011–12 के बीच प्रदेश में कुल 24,94,293 नसबंदी ऑपरेशन किये गये। इस अवधि में केवल 1,67,830 पुरुषों ने नसबंदी करायी, जबकि 23,26,463 महिलाओं ने परिवार नियोजन के लिए इसको अपनाया। बहरहाल, पिछले तीन दशक में नसबंदी के करीब 2,97,000 ऑपरेशन करने का दावा करने वाले डॉ. ललितमोहन पंत इन आंकड़ों से कतई चकित नहीं हैं।

प्रसिद्ध नसबंदी विशेषज्ञ पंत के अनुसार नसबंदी के मामले में कमोबेश पूरे देश में यही हालत है। परिवार नियोजन के ऑपरेशनों को लेकर ज्यादातर पुरुषों की हिचक और वहम अब भी कायम हैं। पंत के मुताबिक, अक्सर देखा गया है कि महिलाएं अपने तथाकथित पति परमेश्वर के बजाय खुद नसबंदी ऑपरेशन कराने को जल्दी तैयार हो जाती हैं।

उनका कहना है परिवार नियोजन शिविरों में महिलाओं द्वारा बताया गया कि वे इसलिये यह ऑपरेशन करा रही हैं, क्योंकि उनके पति अपनी नसबंदी कराने को किसी कीमत पर तैयार नहीं हैं। उधर, नसबंदी ऑपरेशनों को लेकर ज्यादातर पुरुषों की प्रतिक्रिया एकदम उलट कर बतायी जाती है। ज्यादातर पुरुष अपने यौनांग में किसी

तरह की तकलीफ की कल्पना मात्र से सिहर उठते हैं। सरकारी चिकित्सक ने कहा, ज्यादातर पुरुषों को लगता है कि अगर वे नसबंदी ऑपरेशन करायेंगे तो उनकी शारीरिक ताकत और मर्दानगी कम हो जायेगी, जबकि हकीकत में ऐसा कुछ भी नहीं होता।

परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करने के कारण :

परिवार नियोजन से संबंधित मौजूदा प्रयास परिवार नियोजन में काफी बदलाव हुए हैं और यह मातृत्व एवं शिशु मृत्यु दर को तथा रोगों की संख्या को कम करने के साधन के रूप में सामने आया है। यह स्पष्ट है कि जिन राज्यों में उच्च गर्भनिरोधकों का प्रयोग अधिक हुआ है उनमें मातृत्व व शिशु मृत्यु दर बहुत कम है। परिवार नियोजन में अधिकाधिक निवेश से यह महिलाओं को वांछित परिवार आकार हासिल करने तथा अनचाही एवं असमय होने वाली गर्भावस्थाओं से बचने में सहायता करके उच्च जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को कम करने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त, गर्भरोधक का इस्तेमाल प्रेरित गर्भपात होने और इनसे होने वाली अधिकतर मौतों को रोकने में मदद करता है। ऐसा अनुमान है कि परिवार नियोजन की मौजूदा अपूर्ण आवश्यकता आगामी 5 वर्षों के दौरान पूरी कर ली जाए तो हम 35,000 मातृ मौतों को रोक सकते हैं, 1.2 मिलियन नवजात शिशुओं की मौतों को रोक सकते हैं, 4450 करोड़ रुपए से अधिक की बचत का सकते हैं, और यदि सुरक्षित गर्भपात सेवाओं को अधिकाधिक परिवार नियोजन सेवाओं से जोड़ दिया जाए तो 6500 करोड़ रुपए की और बचत कर सकते हैं। यह कार्यनीति दिशा निर्देश भविष्य में परिवार नियोजन कार्यक्रम के कार्यान्वयन के मार्गदर्शक सिद्धांत होंगे।

भारत देश में परिवार नियोजन की महत्ता को स्वीकार करने तथा इसे लागू करने के अनेक कारण हैं :

- आर्थिक कारण : बढ़ती हुई जनसंख्या का सीधा प्रभाव देश की आर्थिक दशा पर पड़ता है। अनेक परिवार विपन्नता की स्थिति में आ जाते हैं क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली प्रतिस्पर्धा में वे बहुत पीछे रह जाते हैं। अतः देश को समृद्ध बनाने के लिए परिवार नियोजन अत्यधिक आवश्यक है।
- राष्ट्र की उन्नति : प्रमुखतः भारत जैसे विकासशील राष्ट्र की उन्नति के लिए परिवार नियोजन अनिवार्य है । तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण सरकार के लिए सभी नागरिकों को शिक्षा, घर व भोजन की सुविधा जुटा पाना एक दुष्कर कार्य हो गया है। अनेक संसाधनों के बावजूद विकास की गति में विराम–सा लग गया है।
- स्त्री की शारीरिक व मानसिक दशा : प्रायः अधिक बच्चे पैदा करने से माताएँ अस्वस्थ व कुपोषण की शिकार हो जाती हैं । दुर्बल अवस्था में उत्पन्न बच्चे भी प्रायः कमजोर होते हैं । गर्भावस्था के दौरान आराम व भोजन न मिल पाने के कारण जच्चे और बच्चे दोनों की मौत होने का खतरा भी बना रहता है ।

परिवार नियोजन में बाधायें : परिवार नियोजन के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं । देश की दो–तिहाई जनसंख्या आज भी गाँवों में निवास करती है । इनमें से अनेक परिवार निर्धन एवं अशिक्षित हैं । वे आज भी अंधविश्वासों व रूढ़िगत परंपराओं में जकड़े हुए हैं । इनके अनुसार बच्चे ईश्वर की देन हैं और उस पर नियंत्रण ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है ।

अनेक धार्मिक मान्यताएँ भी इसकी सार्थकता में बाधक बनी हुई हैं । अशिक्षित होने के कारण वे इसकी महत्ता को समझ नहीं पाते हैं । इन्हीं कारणों से आज हमारी जनसंख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो रही है । दूसरी ओर भारत एक प्रजातांत्रिक देश होने के नाते अपने नागरिकों पर परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को बलात् थोप नहीं सकता है।

परिवार नियोजन की दिशा में हमारी सरकार अपनी पूर्ण दक्षता से प्रयास कर रही है । इसके लिए देश के सभी भागों में परिवार कल्याण केंद्र स्थापित किए गए हैं जिनके माध्यम से लोगों को परिवार कल्याण से संबधित सभी जानकारियाँ उपलब्ध कराई जाती हैं ।

इसके अतिरिक्त उनमें निःशुल्क गर्भनिरोधक सामग्री वितरित की जाती है । दूरदर्शन, समाचार–पत्र, रेडियो

तथा अन्य संचार माध्यमों का व्यापक स्तर पर उपयोग किया जा रहा है । आवश्यकता इस बात की है कि देश के सभी नागरिक परिवार नियोजन की महत्ता को समझें तथा इसे कारगर बनाने में सरकार को यथासंभव सहयोग दें।

आज की स्थिति इतनी विस्फोटक है कि केवल सरकारी प्रयासों से लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है । परिवार नियोजन कार्यक्रमों की सफलता राष्ट्र की सफलता से जुड़ी हुई है अतः सभी स्तरों पर जागरूक होने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त शोध पत्र से यही निष्कर्ष निकलता है कि परिवार नियोजन अर्थात् परिवार को नियंत्रित करने की प्रक्रिया तथा इसकी महत्ता को सभी देशों ने समझा है । इसका प्रारंभ अवश्य ही ब्रिटेन से हुआ परंतु इसके पश्चात् सभी यूरोपीय देशों में वृहत् पैमाने पर इसका प्रचार–प्रसार हुआ । भारत जैसे देश में तो परिवार नियोजन अनिवार्य होना चाहिए । इस संदर्भ में हमारी सरकार ने अनेक योजनाएँ चलाई हैं तथा इस दिशा में विशेष रूप से कार्य भी किया जा रहा है।

भारत की जनसंख्या बहुत ही तीव्र गति से बढ़ रही है । आज हम जनसंख्या के क्षेत्र में विश्व में चीन के पश्चात् दूसरे स्थान पर हैं । आज हम 100 करोड़ के आँकड़े को पार कर चुके हैं । यही कारण है कि इतने संसाधनों के होते हुए भी हमारी प्रगति की गति धीमी है । पुरुष भी अब इस कार्यक्रम के प्रति जागरूक हो रहे हैं और अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहे हैं।

अतः परिवार नियोजन आज की आवश्यकता है। इस दिशा में यदि ठोस और सकारात्मक उपाय नहीं किए गए तो भविष्य में स्थिति अत्यधिक विकराल हो सकती है ।

सुझाव :

- परिवार, महिला एवं पुरुष दोनों से ही चलता है। इसलिए दोनों को बराबर अपनी जिम्मेदारी का अहसास होना चाहिए।
- दम्पत्ति को यह देखना चाहिए कि उनके बच्चों का लालन–पोषण उचित प्रकार से हो तो पुरुषों को भी बराबर से कंधा मिलाकर कार्य करना चाहिए।
- जनसंख्या वृद्धि मात्र महिला या पुरुष की समस्या नहीं वरन देशव्यापी समस्या है इसलिए पुरुषों को भी नसबंदी कराने से झिझकना नहीं चाहिए।
- दो बच्चों के बीच उचित अंतराल रखना चाहिए।
- पुरुषों को खासतौर पर महिलाओं के उचित पोषण का ध्यान रखना चाहिए।

संदर्भ संकेत

- राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिवार सर्वेक्षण 2015–16
- विश्व जनसंख्या दिवस एवं पखवाड़े का आयोजन सन् 11–24 जुलाई, 2015–16, पृ. 96
- www.newstracklive.com
- www.google.co.in
- storysinhindi.blogspot.com
- webcache.googleusercontent.com
- www.livehindustan.com
- www.myupchar.com

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत विश्व विजेता बनें

डॉ. किशन यादव रश्मि जोशी
शोध निर्देशक शोध छात्रा
राजनीति विज्ञान विभाग
बुंदेलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)

वास्तव में इस समूची वसुंधरा पर मानो कोई ऐसा देश जिसे वास्तविक अर्थों में पुण्यात्मा भूमि कह सकते हैं तो वह स्थान भारत ही है। विश्व की सर्व प्राचीन सभ्यताओं में शामिल सनातन सभ्यता अत्यन्त विशाल और विश्व के अन्य सभ्यताओं को विस्तार देने में महती भूमिका निभाने वाली है। यह अगाध संस्कृतियों का देश है जहाँ विभिन्नता में एकता मिलती, जितनी भारत भूमि पर संभव हैं। यह वह भारत है जहाँ तमाम विविधताओं का साक्षात प्रतिरूप उसमें प्राकृतिक रूप धार्मिक सांस्कृतिक एवं आचार व्यवहार में देखने को मिलता है। यहाँ उत्तर में सुशोभित हिमालय के हिमशिखर ऐसा प्रतीत होता हैं मानों स्वर्ग के रहस्यों की ओर बाट जोह रहे हैं। यह वही भारत है जिस पावन धरा पर मनुष्य के मौलिक स्वरूप तथा अन्तर जगत के विषय जिज्ञासु व्यवहार के अंकुर प्रथमतः फूटे थे। जहाँ धर्म तथा दर्शन के आदर्शों ने अनेक बार अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। शताब्दियों तक आक्रान्ताओं के आघात विदेशियों के अनेक आक्रमण एवं स्वतंत्रता हेतु जारी असंख्य संघर्षों को झेलने के पश्चात भी यह अक्षय बना हुआ है जो अपने अविनाशी बल पर हिमगिरि की भाँति अडिग व अटल है। यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की बात करें तो जब यूनान का कोई अस्तित्व नहीं था तथा रोम भविष्य के अन्धकार में था, आधुनिक यूरोप आदिवासी घने जंगलों में छिपे रहते थे तथा अपने शरीर को नीले रंग से रंगा करते थे तब भी भारत क्रियाशील था और तब भी यहाँ एक अद्भुत प्रकार की संस्कृति जीवित थी। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में विश्व का साहित्य व संस्कृति संस्कृत भाषा व भारतीय पुरातन साहित्य से जुड़ी रही है।

कदाचित् भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जिसका इतिहास हिंसाविहीन है। बिना लाखों स्त्री पुरुषों के खून की नदी में स्नान किये किसी देश को कोई नया भाव आगे नहीं बढ़ सका, किन्तु भारत सदैव शान्ति में विश्वास रखने वाला एकमात्र राष्ट्र रहा है। समय–समय पर असंख्य लोगों का हाहाकार, अनाथ हो रहे और बाल करूण क्रन्दन और विधवाओं का अनुपात होते देखा गया है।

परन्तु भारत हिंसा का आश्रय लिये बिना ही हजारों वर्षों से शान्तिपूर्वक जीवित रहा है। यह एक मात्र ऐसा राष्ट्र है जिसने अपने सम्पूर्ण जीवन काल में किसी अन्य देश पर आक्रमण नहीं किया, सम्भवतः भारत भूमि एक मात्र ऐसा राष्ट्र है जिसके बड़े–बड़े राजा स्वयं को किसी आक्रमणकारी का वंशज न बता कर जंगल में रहने वाले साधारण जीवन जीने वाले किसी आदिवासी अथवा तपस्वी की सन्तान कहने में अधिक गौरव समझते हैं।

आज राष्ट्र के युवाओं यह बेहद आवश्यक है कि वर्तमान पीढ़ी इन तथ्यों को स्वयं में आत्मसात कर उसी गर्व की अनुभूति से ओत–प्रोत रहे एवं अपने पूर्वजों के प्रति वही विश्वास एवं सम्मान उनके रक्त में भी दौड़े। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने के बजाय कुछ मौलिक नया सोचें जिसकी नींव सैकड़ों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने रखी थी। विचारणीय तथ्य है कि यह समय कई मायनों में बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान 21 वीं शताब्दी में इस प्राचीन सभ्यता की नई पीढ़ी विदेशी संस्कृति से नकारात्मक आचरण सीखने में संलिप्त है। इसके विपरीत वही पाश्चात्य संस्कृति भारतीय कृष्ण, राम एवं यहाँ के वेद पुराणों में रुचि दिखाते हुये यहाँ के रंग में रंगने को आतुर प्रतीत होते हैं। कहते हैं हमारे शास्त्रों में सबसे बड़ा आदर्श निर्गुण ब्रह्मा का है तथा ईश्वर की समीक्षा से

अगर सभी निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकते तब तो बात ही अलग होती लेकिन ऐसा सम्भवत नहीं है अतः सगुण आदर्श का रहना इस मनुष्य जाति के बड़े वर्ग के लिये अपरिहार्य हो चला है। इस भाँति कि किसी आदर्श पुरूष के बताये सद्मार्ग पर चलना व अपने परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए कुछ सकारात्मक पहल करना बेहद जरूरी है। स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन इस दिशा में अँधेरे में एक उजियाली किरण के समान प्रतीत होता है, जिन्होंने भारत के युवाओं को सही मार्ग व सदैव उत्साह एवं सकारात्मकता से ओत–प्रोत रहकर राष्ट्र सेवा का आह्वान किया। वस्तुतः सभी देश आत्म रक्षा हेतु विदेशी नीतियों का सहारा लिया करते हैं जब उनके राष्ट्र आपसे में बहुत अधिक कलह प्रारम्भ कर देते हैं तब भी किसी अन्य परराष्ट्र से बैर मोल ले लेते हैं किन्तु इसके विपरीत भारतीय संस्कृति का इतिहास ऐसा हिंचक एवं क्रूर कभी नहीं रहा। अनेकता में एकता, वैचारिक सद्भाव एवं पारस्परिक मेल–मिलाप ही इस राष्ट्र का सर्वकालिक परिचायक रहा है।

किन्तु यदा–कदा मस्तिष्क में एक प्रश्न कौंध जाता है कि इतनी सकारात्मक इन विशेषताओं के बावजूद भी भारत के पतन एवं दरिद्र दुःख का मूल कारण क्या है? वास्तव में इसके अनेक कारण है, यथा–इसका प्रथम कारण है यहाँ के निवासियों का अपने इतिहास पर गर्व न करना, एकता की कमी, निर्धारित कर्तव्य व धर्म का पालन न करना एपं युवा पीढ़ी का भटकाव। हमारे पतन का एक अन्य मुख्य कारण यह भी है कि हम लोगों ने बाहर अन्य राष्ट्रों की प्रगति से अपनी तुलना नहीं की उस पर भी जी यहाँ के कुछ बुद्धजीवियों ने पुरानी रूढ़िवादिता एवं संकीर्ण मानसिकता की दीवारों को तोड़ने का प्रयास किया तो उन्हें सामाजिक उलाहनाओं एवं घोर तिरस्कार का सामना करना पड़ा। भारतीय पुनर्जागरण का मार्ग बेहद सहज एवं सरल कदापि नहीं था। किन्तु राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, ज्योतिबा फूले एवं अनेक बुद्धजीवियों ने प्रयास किया। इस राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बनाये रखने का व्याप्त कुरीतियों व विषमताओं का अन्त करने का प्रयास इन बुद्धजीवियों ने किया। कहा जाता है कि एक बेहतर भविष्य के लिए मनुष्य को सदैव आने वाले कल की ओर दृष्टि रखनी चाहिए किंतु यह भी सत्य है कि एक अतीत के पुनरावलोकन के पश्चात ही एक बेहतर भविष्य का निर्माण संभव है, जहाँ तक संभव हो अतीत की ओर देखो पीछे हुई भूलों एवं त्रुटियों से पाठ सीखते हुए राष्ट्र के निर्माण में एक महान थे। सर्वप्रथम यह बात हमें स्मरण रखनी होगी, समझना होगा कि हम किन उपादानों एवं कारको से बने हैं। जिस प्रकार मानवीय शरीर असंख्य कोशिकाओं से बना होता है उसी प्रकार एक राष्ट्र भी अपने सजग कार्यशील एवं आदर्श नागरिकों से बनी हुई एक प्रतिमूर्ति है।

जिस प्रकार शरीर का एक अंग भी निष्क्रिय हो जाए तो पूरा शरीर निष्प्राण हो जाता है उसी प्रकार यदि एक राष्ट्र का वर्ग अथवा एक व्यक्ति कमजोर हो तो उस राष्ट्र की छवि भी कमजोर राष्ट्र की ही बनती है। अतः संभवतः इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वर्षों पूर्व स्वामी विवेकानंद ने अपने दर्शन में लिखा था कि कि यदि एक शक्तिशाली राष्ट्र का स्वप्न देखना है व इसे साकार करना है तो सर्वप्रथम बुनियादी सुधार करने होंगे, महिलाओं बच्चों और मुख्यतः युवाओं को केंद्र में रखते हुए उनकी समस्याओं के निराकरण की आवश्यकता है। जहाँ महिलाओं को आगे बढ़ाने का अवसर, लिंग भेदभाव से मुक्त समाज, स्वस्थ सामाजिक परिवेश एवं युवाओं को तथाकथित बाजारीकरण से दूर रोजगारपरक एवं नैतिकमूल्य शिक्षा मिले तथा आर्थिक, राजनैतिक,सामाजिक, सांस्कृतिक न्याय व एकतापूर्ण सकारात्मक माहौल हो उस राष्ट्र को सर्वोत्कृष्ट बनने से कोई नहीं रोक सकता हालांकि भारत में विश्व विजेता बनने की समस्त संभावनाऐं है इसके उपरांत भी यह भी एक कटु सत्य है कि इस देश में अन्य राष्ट्रों के अपेक्षा अधिक जटिल समस्याएँ हैं, जाति, धर्म, भाषा, शासन प्रणाली, तमाम सामाजिक वर्ग आदि सभी अवयव एक साथ मिलकर एक सफल राष्ट्र के सृजनकर्ता हैं। यहाँ तुर्क, मुगल, यूरोपीय, द्रविड़, जैन, बौद्ध, हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई एवं अन्य जनजातियाँ विद्यमान रही हैं जो संसार में और कहीं नहीं।

यहाँ भाषाओं का एक विचित्र ढंग का जमावड़ा सा है मानव आचार व्यवहार के विषय में दो भारतीय जातियों

में कितना अंतर है शायद उतना पूर्वी एवं यूरोपीय जातियों व सांस्कृतियों में भी कदाचित ना हो हो किंतु यही एकमात्र सम्मेलन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा हमारा धर्म व राष्ट्र का औपचारिक परिचय भी वर्तमान में भारत की अनुमानित आबादी 131 करोड़ से भी अधिक है जिसमें 65 प्रतिशत से अधिक आबादी युवाओं की है। संयुक्त राष्ट्र संघ की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक यही स्थिति 2045 तक बरकरार रहेगी। निःसन्देह यह हमारे लिए एक सुनहरा अवसर है जो हम सभी वर्ग मिलाकर दुनिया के दूसरे सबसे अधिक आबादी वाला राष्ट्र भारत को पुनः सोने की चिड़िया की भाँति सजासंवार सकते हैं उसको उसका खोया गौरव वापस दिला सकते हैं। यहाँ के प्राचीन अर्थव्यवस्था राजनीति व बुद्धिजीवियों का ज्ञान इतना समृद्ध व परिपक्वता की पूर्व से लेकर पश्चिम तक अधिकांश देश भारत की बौद्धिकता के कायल थे। इतिहास के पन्नों में भारत की छवि एक विश्व गुरू की भाँति थी। प्रारम्भ में प्राचीन ऋषि–मुनियों द्वारा किया गया चिकित्साकार्य आज आधुनिक रूप ले चुका है। आज की आधुनिक 21 वीं शताब्दी में विभिन्न मानसिक एवं शारीरिक रोगों से निजात पाने हेतु मेडिटेशन एक मात्र ऐसा मार्ग है जिसे एक गरीब एवं अमीर कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्ग का व्यक्ति अपना सकता है। 21 जून को विश्व योग दिवस के रूप में मनाना यह दर्शाता है कि भारतीय परंपरा विश्व कल्याण हेतु अति प्राचीन एवं उपयोगी है शल्य चिकित्सा का जन्म भी भारत में ही हुआ। इसके अंतर्गत शारीरिक चीर फाड़ करके उन्हें ठीक किया जाता है रोग मुक्त किया जाता है जिसकी शुरूआत सर्वप्रथम महर्षि सुश्रुत द्वारा ही की गई। बाद में इसे पश्चिमी देशों द्वारा अपनाकर सर्जरी का नाम दिया गया। गणित के सबसे महत्वपूर्ण अंग शून्य का आविष्कार भारत देशों द्वारा अपनाकर सर्जरी का नाम दिया गया। गणित के सबसे महत्वपूर्ण अंग शून्य का आविष्कार भारत में ही किया गया। सर्वप्रथम महर्षि आर्यभट्ट ने इस दुनिया को बताया कि वेदों से हमें 10 खरब तक की संख्याओं के बारे में पता चल सकता है। सम्राट अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि हमें संख्याओं की जानकारी काफी पहले से थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा को विश्व की सर्वाधिक प्राचीन भाषा माना जाता है और कहते हैं विश्व में बोली जाने वाली अनेक भाषाओं का संस्कृत से ही प्राटुर्भाव हुआ है अथवा प्रभावित हुई है।

यदि इस विषय को आधुनिक घटनाक्रम से जोड़ें तो सन् 2014 में प्रथम प्रयास में ही मंगलयान का मंगल ग्रह की कक्षा में पहुँच जाना भारत के लिए बहुत बड़ी सफलता थी। क्योंकि इस हेतु अन्य देशों को कई बार प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिली। आज भारतीय सेना विश्व की 4 बड़ी सेनाओं में से एक है एवं यहाँ की अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ती हुई एशिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है एवं विश्व की 5 अर्थव्यवस्थाओं में एक है। नेशनल इंटेलिजेंस काउंसिल एनआईसी ने वैश्विक रूझानों के मुताबिक अपनी रिपोर्ट जारी करके कहा कि 2030 तक भारतीय अर्थव्यवस्था एक विराट अग्रणी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरेगी। भारत की वर्तमान साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है जो स्वतंत्रता की वक्त मात्र 12 प्रतिशत थी। सन् 1975 में पहले अंतरिक्ष उपग्रह आर्यभट्ट को लॉन्च करने से लेकर अब तक मिली तमाम सफलताएँ सिद्ध करती हैं कि हम क्यों महान सभ्यता है एवं ऐसे ही अनेक अप्रितम सफलताओं से भारत निरंतर प्रगति पर अग्रसर है एवं विश्व की महाशक्ति बनने की ओर कदम बढ़ाए जा रहा है। भारत की प्राचीनतम वेद ऋग्वेद संहिता की एक विलक्षण ऋचा में लेखनबंद है।

सँगच्छध्वं संवदध्वम सँ वो मनांसि जानताम।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

अर्थात तुम सब लोग एक मन हो जाओ सब लोग एक ही विचार की बन जाओ क्योंकि प्राचीन में यही एकता एवं एकमन होने के कारण ही देवताओं ने आहुति पायी। उसी प्रकार एक बार पुनः राष्ट्रीय कल्याण हेतु मैं की भावना को त्याग कर हम की भावना के ऊपर चलते हुए हमें भारत को पुनः वही गौरव एवं विश्व गुरु की उपमा से अभिभूत करना है एवं भारत को विश्व विजेता की भांति पुनः देखने की जिजीविषा हो तो कर्मठ हो कर्मशील रहो एवं एक सजग नागरिक बनो अपनी मौलिकता को छोड़े बिना हमें स्वयं को सिद्ध करना होगा विशेषता इस राष्ट्र के युवाओं

को यह समझना होगा कि पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के बजाए देश के समस्त गरीब दुखी दुर्बल एवं असहाय वर्ग में ईश्वर के दर्शन करने चाहिए उनकी सेवा ही उनका प्राथमिक कर्तव्य होना चाहिए क्योकि यही हमारा वास्तविक इतिहास एवं संस्कार है यह धरा राम कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी टैगोर जैसी अद्वितीय व्यक्तित्व की जन्मस्थली रही है। हमें उनके सपनों का साकार करना चाहिए आजादी के लिए हजारों बुद्धीजीवियों एवं क्रांतिकारियों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए हमें उनके बलिदान को सम्मान देते हुए इस राष्ट्र को प्रत्येक क्षेत्र में आगे ले जाने हेतु कटिबद्ध रहना होगा। एक सच्चा देश प्रेमी ही एक सफल पिता, पति, पुत्र एवं समाज के अन्य संबंधों को सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में निःसंदेह असीम संभावनाएँ व्याप्त है। भारतीय संस्कृति व आधुनिकता का सर्वश्रेष्ठ मिश्रण है। आगामी भविष्य भारत को एक विश्व विजयी ताकत बनाने में सक्षम होगा। अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में गुटनिरपेक्षता की नीति भारतीय सनातन संस्कृति का यह परिचायक है जो कि सत्य शांति मित्रता सौहार्द समानता एवं अहिंसा इत्यादि की महान स्तम्भों पर खड़ी है। अतः मैं कहना चाहूँगी कि भारत का विश्व विजेता के रूप में उभरना एक अत्यंत शुभ संकेत है जो सर्वकल्याणकारी दृष्टि से एक नए युग का जो सर्वलोक कल्याणकारी दृष्टि से एक नए युग का परिचायक भी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत और उसकी समस्याएं (संकलन कर्ता) निर्वेदानन्द स्वामी।
2. विवेकानन्दः एक जीवनी–निखिलानन्द स्वामी (अद्वैत आश्रम)
3. युवकों के प्रति अनुवादक–त्रिपाठी सूर्यकांत 'निराला' रामकृष्ण मठ, नागपुर।
4. दैनिक जागरणः राष्ट्रीय समाचार पत्र

❑❑

49

मूक बधिर, अपंग, मंद बुद्धि बच्चों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

(ग्वालियर जिले के विशेष संदर्भ में)

ज्योति चन्देरिया
शोधार्थी, समाजशास्त्र
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मूक बधिर, अपंग, मंद बुद्धि बच्चों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (ग्वालियर जिले के विशेष संदर्भ में) अध्ययन करना है। इस हेतु अध्ययनकर्ता ने मूक बधिर, अपंग, मंद बुद्धि बच्चों को केन्द्र बिन्दु बनाकर विभिन्न घटकों के परिप्रेक्ष्य में किये गये अध्ययनों का अवलोकन किया है।

हमारे देश में शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दोषों से युक्त ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं और समाज के प्रति अनुकूल बनने की सामर्थ्य नहीं रखते। ऐसे व्यक्ति भीख मांगकर पेट भरते हैं तथा चोरी जैसा असामाजिक कृत्य करते हैं और समाज तथा राष्ट्र के विकास में सबसे बड़े बाधक के रूप में होते हैं। सामान्य नागरिकों की तुलना में देखें तो शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दोषों को एक प्रकार की विकलांगता की श्रेणी में रखा जाता है। आज समाज में रहने वाला प्रत्येक नागरिक विकलांगता का शिकार है, अन्तर इतना है कि कुछ शारीरिक अंगों एवं आन्तरिक विकारों से विकलांग हैं, तो कुछ अपने सामाजिक एवं आन्तरिक विचारों, भावनाओं एवं सोच से विकलांग हैं।

विकलांगता के अन्तर्गत गूंगे, बहरे, अन्धे, लूले–लंगड़े, कोमल एवं निर्बल आदि व्यक्ति आते हैं। ये अपनी शारीरिक विषमताओं के कारण कार्य करने में लाचार होते हैं, इनमें इतनी सामर्थ्य नहीं होती है कि सामान्य एवं स्वस्थ व्यक्ति के समान जीवन निर्वाह कर सके।

भारत का संविधान अपने सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय व गरिमा सुनिश्चित करता है और स्पष्ट रूप से यह विकलांग व्यक्तियों समेत एक संयुक्त समाज बनाने पर जोर डालता है। हाल के वर्षों में विकलांगों के प्रति समाज का नजरिया तेजी से बदला है। यह माना जाता है कि यदि विकलांग व्यक्तियों को समान अवसर तथा प्रभावी पुनर्वास की सुविधा मिले तो वे बेहतर गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे परिभाषित करते हुये कहा–Disability is an umbrella term, covering impairments, activity limitations and participation restrictions. Impairment is a problem in body function or structure; an activity limitation is a difficulty encountered by an individual in excuting a task or action; while a participation restriction is a problem experienced by an individual in involvement in life situation.

दिव्यांग बालकों की योग्यताएं – दिव्यांग बालकों से अभिप्राय उन बालकों से होता है जो साधारण या सामान्य बालकों से मानसिक, शारीरिक या संवेगात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण होते है। ऐसे बालक (बच्चे) जो अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, व्यक्तित्व अन्य व्यवहार के कारण अपनी आयु के अन्य (सामान्य) बालकों से भिन्न होते हैं वे विशेष आवश्यकता वाले बालक कहलाते हैं। अर्थात वह बालक जिसमें सामान्य बालकों की तुलना में कोई शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक कमी अथवा दोष हो जिसके कारण उनकी उपलब्धियाँ अधूरी रह

जाती है विकलांग या अपंग बालक कहलाता है।

विकलांगता युक्त व्यक्तियों के संबंध में पारित अधिनियम 1996 के कारण सभी बच्चों को शिक्षा सुविधा देना अनिवार्य हो गया है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिगत प्रभावी उपकरण है। अतः हमें साधारण रूप से विकलांग बच्चों को तो सामान्य कक्षाओं में एकीकृत करना ही है साथ ही गहन रूप से विकलांग बच्चों की शिक्षा की सुविधा सुलभ कराने के उद्‌देश्य से विशेष शिक्षकों की सहायता से उन्हें सामान्य विद्यालयों में विशेष कक्षा प्रारंभ कर वहां शिक्षा देनी होगी।

सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि हमारे देश में बधिर व्यक्तियों की संख्या लगभग 1 करोड़ है जिसमें 15 लाख नेत्रहीन, 15 लाख बधिर, 18 लाख मानसिक दृष्टिसे विकृत विकलांग सम्मिलित हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. के एक प्रोजेक्ट में यूनेस्को ने 'विशिष्ट' एवं 'असाधारण' जैसे शब्दों को दस भागों में परिभाषित किया – दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, मानसिक एवं वाणी दोष युक्त, मानसिक न्यूनता, बहुबाधित, अधिगम सम्बन्धी कठिनाई, व्यवहारिक भ्रम, संवेगात्मक बाधिता एवं प्रतिभाशाली।

राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन (2001) के अनुसार – देश में विकलांगों की कुल जनसंख्या लगभग 2.19 करोड़ है जिसमें 90 हजार बालकों का आंकड़ा है, जिसमें से 18 हजार साधारण स्कूलों में पढ़ रहे हैं तथा एक लाख विकलांग बालक तीन हजार विशिष्ट स्कूलों में अध्ययनरत हैं। वर्तमान में देश में दृष्टिबाधितों के लिए 243 स्कूल तथा वाणी दोष के लिये 93, मानसिक न्युनता के लिये 64, अस्थिबाधिता के लिए 22 एवं बहुबाधिता के लिये 76 विद्यालय मूर्त रूप में देखने को मिलते हैं जो सरकार तथा स्वंयसेवी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे हैं।

भारत में भी शिक्षा संबंध राष्ट्रीय नीति संकल्प में यह सुझाव दिया गया है कि जहां तक संभव हो मूक–बधिर बच्चों को सामान्य स्कूलों में ही रखा जाना चाहिए, मूक बधिर बच्चों के व्यक्तित्व का शिक्षा द्वारा इस प्रकार विकास किया जाए जिससे उनमें आत्मग्लानि, नैराश्य, हीन भावना और अपनी विकलांग स्थिति में भी जीवन जीने के लिए आकर्षण उत्पन्न हो सके।

अपंग बालक व मन्दबुद्धि बालकों का सामाजिक समायोजन बहुत ही निम्न स्तर का होता है क्योंकि अपनी आयु के बच्चों से कम बुद्धि होने के कारण उन्हें बुद्धु, बेवकूफ ईत्यादि शब्दों द्वारा चिढ़ाया जाता है। बच्चे इनके साथ खेलना पसन्द नहीं करते क्योंकि खेलों में अधिक त्रुटियाँ करते हैं।

मध्यप्रदेश में दिव्यांगों की स्थिति : मध्यप्रदेश में गरीबी और भूख के साथ मानसिक विकलांगता की मार झेलने वाले 70 हजार लोगों के लिये जीवन किसी शाप से कम नहीं है। म.प्र. में कुल 11.31 लाख विकलांगों में से 8.4 लाख (लगभग 78 प्रतिशत) विकलांग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। इनमें से केवल 3.8 लाख लोगों को ही सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना का लाभ मिल रहा है।

विकलांगता की रोकथाम के उपाय : विकलांगता की रोकथाम तथा आरंभिक पहचान के लिए निम्न कार्य संपन्न किए जाएंगे –

- टीकाकरण (बच्चों तथा होने वाली मां के लिए), सार्वजनिक स्वास्थ्य व स्वच्छता के प्रसार के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय कार्यक्रम चलाए जाएंगे।
- बच्चों में विकलांगता की जल्दी पहचान करने के लिए मेडिकल तथा पारा–मेडिकल स्टाफ को समुचित प्रशिक्षण दिया जाएगा।
- विकलांगता की रोकथाम, आरंभिक पहचान तथा उपचार के लिए प्रशिक्षण मॉड्यूल तथा सुविधाओं का विकास किया जाएगा, जो मेडिकल तथा पारा–मेडिकल स्वास्थ्य कर्मचारियों व आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए तैयार किए जाएंगे।

- मेडिकल शिक्षा में उत्तरस्नातक तथा अंतरस्नातक डिग्री पाठ्यक्रम में विकलांगता की रोकथाम, आरंभिक पहचान व उपचार के अध्याय भी शामिल किए जाएंगे।
- विकलांग व्यक्ति के परिवार के लिए विकलांगता से जुड़े विशेष पुस्तिका का विकास किया जाएगा तथा इसे निःशुल्क बांटा जाएगा।
- मानव संसाधन विकास संस्थान यह सुनिश्चित करता है कि सहायक सेवाओं– जैसे विशेष शिक्षा, क्लिनिकल मनोविज्ञान, फीजियोथेरॉपी, व्यावसायिक थेरॉपी, ऑडियोलॉजी, स्पीच पैथॉलॉजी, व्यावसायिक परामर्श व प्रशिक्षण तथा सामाजिक कार्य प्रदान करने वाले कर्मचारी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों।
- आनुवंशिक विज्ञान में किए अद्यतन शोध परिणामों का इस्तेमाल जन्मजात विकलांगता तथा मानसिक अपंगता को कम करने में किया जाएगा।
- विकलांगता के प्रभाव को कम करने तथा द्वितीयक विकलांगता को रोकने के लिए मौजूदा स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में उचित कदम उठाए जाएंगे।
- किशोर लड़कियों, होने वाली मांओं तथा जनन अवस्था वाली महिलाओं में पोषण, स्वास्थ्य देखभाल तथा स्वच्छता के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाने पर ध्यान दिया जाएगा। इसकी रोकथाम के लिए जागरूकता कार्यक्रम को स्कूल स्तर पर तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम स्तर पर तैयार किया जाएगा।
- खतरों की पहचान करने के लिए बच्चों के जांच कार्यक्रम आयोजित जाएंगे।

बधिरों की शिक्षा की प्रणालियाँ – इस समय समाज में बधिरों की शिक्षा के लिए अनेक प्रणालियां हैं–

मौखिक प्रणाली या ओरल मैथड – बोलकर समझाना तथा लिखना शिक्षा के प्रमुख उद्‌देश्य हैं पाठ्‌यक्रम में प्रारंभिक भाग में सर्वत्र बधिरों के प्रायः प्रत्येक स्कूल में प्राकृतिक संकेतों का प्रयोग करने दिया जाता है।

हस्त प्रणाली– हस्त वर्णमाला तथा लिखना इन तीनों का प्रयोग शिक्षा देने के लिए किया जाता है। मुख्य उद्‌देश्य मानसिक विकास में तथा लिखित भाषा के प्रयोग एवं अर्थ समझने में सहायता पहुंचाना है।

जहां तक परिस्थितियां सहायक होती हैं प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उसकी व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अनुसार ही प्रणाली चुनी जाती है।

सार्वजनिक जीवन में उचित स्थान ग्रहण करने के लिऐ बधिरों के लिए आवश्यक है कि अपनी वाणी का विकास करें, भाषा सीखें और होठों की हरकत समझें। अतः इन तीनों गुणों का विकास करने का अवसर प्रत्येक बधिर बच्चे को देना चाहिए।

अमूमन यह देखा गया है कि मूक–बधिर लोगों को अन्य लोगों से संवाद करने में दिक्कतें आती हैं। वे अपनी सांकेतिक भाषा में बातचीत करते हैं और लोग उनके संकेतों को समझ नहीं पाते हैं। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए देश में सांकेतिक भाषा की पहली डिक्शनरी तैयार की जा रही है।

- संकेतों का प्रयोग कर बनाई जा रही इस डिक्शनरी में 6 हजार शब्दों को शामिल किया जाएगा। इस डिक्शनरी को पढ़कर कोई भी मूक–बधिर लोगों की सांकेतिक भाषा और आसानी से समझ लेगा।
- विदित हो कि इस डिक्शनरी को सामाजिक–न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा जारी किया जाएगा, वर्तमान समय में इस डिक्शनरी को बनाने का कार्य प्रगति पर है। इस डिक्शनरी को भारतीय साइन लैंग्वेज (Indian Sigh Language) का नाम दिया जाएगा।
- इस डिक्शनरी में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के शब्द होंगे। सांकेतिक भाषा के प्रत्येक संकेत को कार्टून या स्केच के जरिये समझाया जाएगा और इसमें लीगल मेडीकल और तकनीक क्षेत्र से संबंधित शब्दों के सांकेतिक प्रदर्शन की भी व्यवस्था की गई है।

- इस डिक्शनरी का प्रयोग विद्यालयों में मूक–बधिर बच्चों को सांकेतिक भाषा सिखाने में भी किया जाएगा और इसके लिये अलग से एक शिक्षक की व्यवस्था की जाएगी।
- वस्तुतः मूक–बधिर लोगों के सांकेतिक भाषा में स्थान विशेष और भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के आधार पर विभिन्नता भी देखने को मिलती है अतः इस डिक्शनरी में सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों का ध्यान रखते हुए उनकी संस्कृति से जुड़े शब्दों को भी शामिल किया गया है।

दिव्यांगों के लिए शब्दकोष – वर्ष 1980 में पहली बार सांकेतिक भाषा से संबंधित आँकड़े इकट्ठा करने का प्रयास किया गया था, लेकिन उन्हें डिक्शनरी का रूप नहीं दिया जा सका था। लेखक मदन वशिष्ठ ने अपनी किताब 'एन इंट्रोडक्शन टू इंडियन साइन लैंग्वेज' में दिल्ली, मुंबई कोलकाता और बेंगलुरु के मूक–बधिर लोगों के संकेतों को दर्शाने का प्रयास किया था। फिर बाद में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय ने 1600 शब्दों की एक डिक्शनरी बनाई थी। हालाँकि इन सभी कोशिशों के बाद भी मूक–बधिर लोगों के सांकेतिक भाषा को समझने के लिये कोई प्रभावी डिक्शनरी नहीं बन पाई है। अतः भारत सरकार का यह कदम निश्चित ही सराहनीय है।

दिव्यांगों के प्रति समाज का दायित्व – हमारा दायित्व हैं कि हम विकलांगो की शारीरिक स्थिति को नजर अन्दाज करते हुए उनके आत्मविश्वास एवं मनोबल को बढ़ाये और उनकी कार्य क्षमताओं को देखते हुए उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोडने का प्रसास करें और अपनी इस सोच को बदलना होगा कि विकलांग व्यक्ति घर परिवार समाज पर बोझ हैं। हमारा सिर झुक जाता हैं जिन्हें राष्ट्रीय अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अनेको पुरस्कारो से सम्मानित किया जा चुका हैं। अतः हमारे विकलांग साथियों ने भी यह सिद्ध कर दिया हैं कि वह किसी से कम नहीं हैं। उन्हें समानता के अवसर मिलने चाहिऐ उनकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ नहीं होना चाहिए और न ही उन्हें सहानुभूती दिखाकर दया का पात्र बनाये। हमारी सरकार ने उनके पुर्नवास की व्यवस्था की हैं अर्थात् विकलांग व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें, लेकिन इस राह में भी बहुत परेशानियां आती हैं। जिनसे उनका मनोबल टूटने लगता हैं और फिर व्यक्ति आत्म हत्या जैसे कृत्यो को अपनाता हैं। इनके लिए समाज को अपनी सोच को बदलना होगा, और ऐसी स्थिति निर्मित न हो इसके लिए उन्हें समानता का अधिकार देते हुए उन्हें अवसर प्रदान करना चाहिए। यदि आप बहुत अधिक दया और सहानुभूती जताते हैं तो उसके आत्म सम्मान को ठेस पहुंचती जिससे उसकी उन्नति में बाधा पहुंचती हैं। एन.जी.ओ. की भुमिका भी बहुत महत्वपूर्ण हैं यदि शासन के साथ एन. जी.ओ. कार्य करते हैं तो उन विकलांग की योजना का क्रियान्वय आसानी से हो सकता हैं। किन्तु ध्यान देने योग्य बात ये हैं कि क्या सरकारे पुर्नवास योजनाओं हेतु जो धन राशि जारी कर रही हैं उसका कितना अंश विकलांगो के हितो में उपयोग हो रहा हैं। यदि नहीं तो क्या समाज उन कमियों के लिए आवाज उठा रहा हैं बस यह हमारी पहचान होती हैं कि हम कितने जिम्मेदार नागरिक हैं । क्या हमने उन्हें अपना समझकर सहयोग प्रदान किया हैं। अतः सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से विकलांगो का पुर्नवास एक पुनीत कार्य हैं। समाज से मेरा निवेदन हैं विकलांग को अभिशाप न समझे ब्लकि विकलांगता से बचने के उपाय शारिरिक क्षति के कारण को दूर करने के कौन से उपकरणो को उपयोग हो विकलांगो के हितों में बने अधिनियम की जानकारी दे कर उन्हें सामान्य जीवन जीने का अवसर प्रदान करें। हमें विकलांग का मनोबल बढ़ाना चाहिए उन्हें जिन्दगी के खेलो में हारने नहीं देना चाहिए उन्हें उनकी मंजिल तक पहुंचाने के लिए हमें सहयोग प्रदान करना चाहिए। यदि समाज हमारे विकलांग साथियों को सामाजिक सुरक्षा की गारन्टी मानवीय अधिकारों के परिपेक्ष्य में दे तो शारिरिक मानसिक आर्थिक कमजोरियों के भार को कम किया जा सकता हैं। विकलांगों के अधिकारों को व्यवहारिक धरातल पर आत्मीय मान्यता देने का प्रथम दायित्व तो परिवार का ही हैं समाज और सरकार को रोल तो बाद में आता हैं।

सुझाव :

- अपंग छात्रों में शारीरिक दोष होने के कारण यह अपने शरीर के विभिन्न अंगों का सामान्य प्रयोग नहीं कर

सकता और यही दोष उनके कार्यों में बाधा डालते हैं इसलिए ऐसे बच्चे की सुविधा और आवश्यकता के लिऐ कई प्रकार से व्यवस्था की जानी चाहिए।

- उनके शारीरिक दोष के अनुसार ही उनके बैठने के लिये कुर्सी मेज की व्यवस्था होनी चाहिये।
- विकलांग बच्चों को अपनी त्रुटि के बारे में दृष्टिकोण बदलने की शिक्षा देनी चाहिये और दूसरे सामान्य लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए।

संदर्भ

- बायती, जमनालाल (1996) बाल की समस्यायें प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिडाना, अशोक कुमार (2003) विशिष्ठ वर्ग के बालकों की शिक्षा, शिवा प्रकाश्न, जयपुर।
- शर्मा वाई के : (2009) शारीरिक विकलांग बालक सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं विकास, कनिष्क पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- सिंह : (2000) एजूकेशन रिहेबलिटेशन ऑफ, हैन्डीकेप्ट चिल्ड्रेन क्लासिक पब्लिकेशन्स, जयपुर
- पाठक, पी.डी. (1990) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- शर्मा, आर.ए. : 2010, विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, विनायक पब्लिकेशन, मेरठ, पृष्ठ–125
- शर्मा, वाई. के. : 2009, शारीरिक विकलांग बालक–सिद्वान्त, प्रक्रिया एवं विकास, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–63
- डिसएबिलिटी वर्ल्ड–ए बाई मन्थली वेवजिम ऑफ इन्टरनेशन डिसएबिलिटी न्यूज, व्यूज एंड इशूज नं. 93, जून–अगस्त 2003

❑❑

50

रजोधर्म और समाज

डॉ. उत्तरा यादव
एसोसिएट प्रोफेसर – समाजशास्त्र विभाग
महिला पी.जी. कालेज, अमीनाबाद, लखनऊ

'सृजनकर्ता के रूप में परमात्मा की सर्वोकृष्ट कृति नारी है'
'स्त्री–पुरुष का भेद वाह्य है, मूलभूत नहीं है'। – विनोवाभावे

रजोधर्म भारतीय संस्कृति विश्व की अति प्राचीन संस्कृति है। सृष्टि के संचालन में पुरुष एवं नारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है जो चिंतनशीलता के माध्यम से निरन्तर गतिमान एवं विकासंरत है। 'रजोधर्म' नाम से ही स्वतः है कि रजोधर्म एक धार्मिक प्राकृतिक व्यवस्था है।

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के नाम के साथ देवी लिखने और संबोधित करने की परम्परा भी आदिकाल से चली आ रही है। इस प्रकार नारी को सृजनकर्ता एवं देवी श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। निश्चित ही इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए नारियों ने चिरकाल से तत्पश्चर्या कर सम्पूर्ण शक्तियों के विकास द्वारा ही उक्त गौरव प्राप्त किया है। सृजन, ज्ञान, शक्ति, समृद्धि आदि लोक कल्याण की विधायिका, पथ–पदर्शिका और संरक्षिका शक्ति का नाम ही देवी है। यद्यपि वह तेजस्विता आज बाजारीकरण, वैश्वीकरण तथा पश्चिमीकरण के कारण धूमिल पड़ गई है। आवश्यकता है उस पर पड़े मल–आवरण के विक्षेप को हटाकर चिरकाल की महत्ता को पुनः चरिर्ताथ किया जाए, और बहुमुखी विकास किया जाय।

संतान के लिए माता–पिता में माता का स्थान पिता से बढ़कर है क्योंकि वही मासिक धर्म के कारण ही उसे गर्भ में धारण करती है, अपने रस, रक्त और शरीर से ही नही, भावनाओं और संरस्कार से उसका पालन पोषण करती है। नारी एवं पुरुष के रुप में दो चिन्तनशील प्राणी सृष्टि के अनमोल अंग है। दोनों स्वयं में अपूर्ण होकर सम्पूर्णता हेतु एक दूसरे के पूरक है। मासिक धर्म के द्वारा सृजन का कार्य नारी द्वारा ही होता है जिसकी व्यवस्था एवं परमात्मा द्वारा की गई है। सृजनशीलता में रजो धर्म की प्रमुख भूमिका है। यह एक धार्मिक एवं सृजनात्मक नैसर्गिक कृत्य है। जिसके लिए सम्मान दिया जाना चाहिए।

यद्यपि आज का आधुनिक समाज पुरुष तथा महिला में कोई फर्क नहीं करता। इस आधुनिक दौर में महिलाएं, पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं। क्या यह पूर्ण सत्य है? शायद नहीं! यहाँ बात महिलाओं के अधिकार की नहीं है, बल्कि उन पहलुओं अर्थात रजोधर्म की है, जिनकी वजह से महिलाएँ कुछ पीछे रह जाती हैं। या कर कर दी जाती है।

हमारा समाज कितना ही आगे क्यों ना बढ़ जाए? लेकिन भारतीय समाज में आज भी मासिक धर्म के बारे में ऐसी दकियानूसी सोच मौजूद है जो किसी ना किसी तरीके से महिलाओं को पीछे की ओर ढकेलती है। यही सोच एक बड़ा कारण है मासिक धर्म के दौरान महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव के लिए।

मासिक धर्म यानी कि पीरियड्स, जिसके दौरान महिलाओं को समाज से काट दिया जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि पिछले कुछ समय में लोगों की सोच में काफी बदलाव आया है, अब लोग पीरयड्स के दौरान महिलाओं को अछूत नहीं समझते, बल्कि उनकी ताकत बनते हैं। लेकिन अभी भी ऐसे कई लोग हैं जो पीरियड्स के दौरान अज्ञानता के कारण महिलाओं को रीति–रिवाजों में बांधते हैं।

इस सूची में भारत के पिछड़े इलाके ही नहीं बल्कि कई शहरी क्षेत्र भी हैं जो किसी ना किसी बात से एक महिला को यह महसूस कराते हैं कि पीरियड्स होना ही पाप है। इन लोगों की यह सोच उन्हें आधुनिक दौर से बहुत पीछे ले जाती है। लेकिन हैरानी तो तब होती है जब इन रीतियों को जन्म देने वाले लोग इसे महज एक पिछड़ी सोच नहीं बल्कि पौराणिक मान्यताओं का आधार मानते हैं।

इसके अलावा इस दौरान महिलाओं को अन्य लोगों से अलग भी रखा जाता था क्योंकि मान्यताओं के आधार पर इस समय उन्हें अपवित्र माना जाता है। पीरियड्स के दौरान उन्हें कहीं बाहर आना–जाना नहीं चाहिए, सबसे अलग रहना चाहिए, रसोईघर में नहीं जाना चाहिए, किसी अन्य वस्तु को छूना नहीं चाहिए इत्यादि मान्यताओं ने वर्षों से भारतीय समाज में अपनी जड़ें बना रखी हैं। जिसे दूर करना आज की परम अनिवार्यता है।

इतना ही नहीं वर्षों से ही पीरियड्स के दौरान महिलाओं को अब भी कहीं–कहीं घर–परिवार से बिल्कुल अलग रखा जाता था। एक अलग कमरे में रहना, एक ही वस्त्र पहनना तथा अपना खाना खुद बनाकर खाना, आदि रिवाज महिलाओं को बार–बार इस दंड का आभास कराते आए हैं। लेकिन लोगों का ऐसा मानना है कि आज के आधुनिक युग में ऐसा नहीं होता।

आजकल स्त्रियां पीरियड्स में भी घर से बाहर निकलती हैं, काम पर जाती हैं तथा लोगों से मिलती हैं। लेकिन यह पूरा सच नहीं है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है भारत के दक्षिणी क्षेत्र तथा असम में उसे तोहफे दिए जाते हैं तथा उसे स्पेशल महसूस कराया जाता है लेकिन इसी खुशी में शामिल होने से उन महिलाओं को कोसों दूर रखा जाता है जो 'मासिक धर्म' भोग रही होती हैं। जी हाँ, कुल तीन रातों तक वह महिलाएँ उस घर में कदम भी नहीं रख सकतीं, जिस घर की कन्या को पहली बार पीरियड हुआ हो।

यह बात काफी हैरान करने वाली है, लेकिन पीरियड्स के दौरान महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव तथा दकियानूसी वहम से भरी सूची यहीं खत्म नहीं होती। सबसे आम फर्क तो तब किया जाता है जब पीरियड्स में महिलाओं को अपवित्र मानकर उनके ऊपर किसी धार्मिक स्थल पर जाने पर पाबंदी लगाई जाती है।

इसके अलावा वे अपने पीरियड्स के दौरान किसी भी प्रकार के धार्मिक कार्यों का हिस्सा भी नहीं बन सकतीं। लेकिन क्यों? क्योंकि अपवित्र हैं। यह महज एक अंधविश्वास एवं भेदभाव है। चिकित्सकीय दुनिया के मुताबिक 'मासिक धर्म' महज एक शारीरिक तब्दीली है, पीरियड्स होने का मतलब है कि वह कन्या या स्त्री एक जिंदगी को दुनिया में लाने के लायक है। यह ईश्वर का अनुपम वरदान है। यह सृजन कार्य पुरुष नहीं कर सकता है।

पीरियड्स में महिलाओं के अपवित्र होने जैसा यह अंधविश्वास हमारे समाज में इतना गहरा है कि इस दौरान महिलाओं को रसोईघर में भी दाखिल नहीं होने दिया जाता। लोगों का मानना है कि वे यदि खाने को छू भी लेंगी तो वह अपवित्र हो जाएगा। इसके अलावा वे आचार को छू नहीं सकती तुलसी के पौधे को छू नहीं सकती और तो और वे पौधों को पानी भी नहीं दे सकती।

क्यों लोगों में यह अंधविश्वास फैला है कि यदि इस दौरान वे पौधों को पानी देंगी तो पौधे सूख जाएंगे। इतना ही नहीं इस दौरान विवाहित महिलाओं को अपने पति के साथ एक ही बिस्तर पर सोने से भी मना किया जाता है। पीरियड्स में महिलाओं को दो दिन तक सिर के बाल धोने से भी मना किया जाता है।

यह एक न्याय विरुद्ध सोच है। यदि प्राचीन समय की तरह आज भी महिलाएँ नदी–नहर में स्नान करती तो यह बात मानने लायक लगती है। क्योंकि उस जमाने में मासिक धर्म के दौरान नदियों में स्नान करने से नदी का पानी खराब हो जाता था। लेकिन आज के समाज में जब सब अपने घरों में सुविधाएँ इस्तेमाल करते हैं तब भी लोगों की यही सोच है।

लेकिन क्यों? इसका कारण है इस सोच की हमारे समाज में एक गहरी पकड़ जो चाहकर भी ढ़ीली नहीं हो रही है। इसका एक कारण तो खुद वे महिलाएँ भी हैं जो पीरियड्स के दौरान खुद को लोगों से दूर करती हैं। लोगों के बीच बैठना पसंद नहीं करती, और तो और इस बारे में बात करने में भी झिझकती हैं।

लेकिन इसमें कैसी शर्म? यह महज एक ईश्वरीय व्यवस्था चिकित्सिक परेशानी है जो कुछ दिनों के बाद सही हो जाती है। इसमें महिलाओं की कोई भूल नहीं... बल्कि यह तो सृष्टि की ऐसी अनुपम देन है जिसके शुरु होने से एक कन्या महिला बनती है। लेकिन यह सोच तब खत्म होगी जब समाज का एक बड़ा तबका इसे समझेगा। लेकिन कब.... यह बता पाना मुश्किल है।

माहवारी यानि मासिक धर्म महिलाओं को होने वाली एक आम समस्या है। इसमें महिलाओं के प्राइवेट पार्ट से रक्त प्रवाह होता है। वास्तव में युवावस्था शुरु होने पर लड़कियों के शरीर में कई तरह के बदलाव होने लगते हैं। यह जरूरी नहीं है कि लड़कियों को किसी एक खास उम्र में ही यह समस्या होती है। अध्ययनों के अनुसार, लड़कियों में माहवारी की व्यवस्था 8 से लेकर 17 वर्ष तक हो सकती है। पहली बार मासिक धर्म होना किसी भी लड़की के लिए अज्ञानता के अभाव में एक चिंता का विषय हो सकता है। लड़कियों को खून और तरल पदार्थ देखकर तनाव और डर महसूस हो सकता है। ऐसा इसलिए होता है या तो उन्हें इस बारे में बिल्कुल पता नहीं होता है या फिर उन्हें गलत जानकारी होती है। जाहिर है जानकारी के अभाव में उन्हें यह कोई बीमारी ही लग सकती है।

माहवारी क्यों आती है – महिला का शरीर हर महीने गर्भ की तैयारी करता है। इस दौरान उसके अंडाशय में एक अंडा बनता है जो गर्भाशय की नलिका में चला जाता है। इसी समय महिला के गर्भाशय की परत में रक्त जमा होता रहता है ताकि गर्भ के बैठने पर उस रक्त से बच्चा विकसित हो सके। अगर गर्भ नहीं बैठता है, तो यह परत टूट जाती है और परत में जमा रक्त माहवारी के रूप में योनि के जरिए बाहर आ जाता है। अगले महीने फिर ऐसा ही होता है और मासिक धर्म का यह चक्र चलता रहता है। रक्त का यह प्रवाह पांच से सात दिनों तक हो सकता है। महावारी के दूसरे या तीसरे दिन अधिक प्रवाह होता है। हर महिला के मासिक चक्र का अंतराल का समय अलग–अलग हो सकता है। यह उसके शरीर की बनावट पर निर्भर करता है। माहवारी के दौरान सफाई रखना जरूरी हैं। माहवारी के दौरान महिला के शरीर की रक्त और स्राव के रूप में गंदगी बाहर निकलती है। इस रक्त में बैक्टीरिया जल्दी पनपते हैं जिससे महिलाओं के जननांगों में इन्फेक्शन हो सकता है। ऐसा होने पर महिला को पेशाब में जलन, योनि मार्ग में खुजली, बदबूदार स्राव आना जैसी समस्याएं होती है। माहवारी के दौरान साफ सफाई का ख्याल रखे महावारी के दौरान किसी बेहतर पैड का इस्तेमाल किया जाय, और उसे दिन में तीन से चार बार बदलें।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि इस दौरान नहाना या बालों को नहीं धोना चाहिए क्योंकि इससे रक्त का स्राव धीमा हो सकता है। लेकिन यह सच नहीं है आपका जब दिल करे तब नहाएँ।

यूँ तो माहवारी महिलाओं के लिए समस्या नहीं, बल्कि प्रकृति का विशेष उपहार है। लेकिन जब यह अनियमित हो जाए तो जरूर एक समस्या बन जाता है।

नारी सृष्टिकर्त्ता की सर्वोत्तम कृति है उसे जननी स्वरूप में विशिष्ट भाव संवेदनाओं के साथ गढ़ा गया है। नारी निर्माण वात्सल्य प्रेम सहिष्णुता (सहनशीलता) सेवा, समर्पण, कोमलता, दया, करूणा, लज्जा, शील रूपी दिव्य सौंदर्य की प्राकृति है। नारी के विशिष्ठ गुण उसे जननी का दायित्व निर्वहन करने एवं सृष्टि की निरन्तरता में विशिष्ट योगदान हेतु मिले है। भारतीय संस्कृति ने उसे जगन्माता के गरिमामय पद पर अधिष्ठित

कर बार–बार नमन किया है।

'या देवी सर्वे भूतेषू मातृ रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमो नमः।।'

पुरुष शारीरिक मानसिक और भावनात्मक रुप में नारी से अधिक सशक्त होते होते हैं एवे इसी से एक–दूसरे के पूरक बन कर पुरुष व नारी परिवार संरचना का हिस्सा बन समाज का निर्माण करें। मातृशक्ति के रुप में मनुष्य प्रत्येक नारी के भाव वत्सला नारी के रुप में सम्मान प्रदान करें। इस प्रकार पुरुष नारी को अपने दैवीय गुणों की साधना बल प्राप्त करने में सहायक एवं प्रेरक होगा। नारी अपने ईश्वर द्वारा प्रदत्त विशिष्ट गुणों सृजन रजोधर्म वात्सल्य, प्रेम सहिष्णुता, सेवा समर्पण, दया, करूणा, लज्जा, शील को धारण कर, अपना योगदान कर एक दूसरे की विकास यात्रा में सहायक होगी। मासिक धर्म अथवा रजो धर्म एक धार्मिक सृजनात्मक दैवीय गुण है, जिसे उपहार मानना चाहिए नकि अभिशाप। नारी कामधेनु है, कल्पवृक्ष है– नारी सनातन शक्ति एवं सृजन की देवी है। वह आदि काल से उन सामाजिक दायित्वों को अपने कंधों पर उठाए आ रही है जिन्हें केवल पुरुष के कंधों पर डाल दिया जाता तो वह न जाने कब लड़खड़ा गया होता किन्तु विशाल भवनों का असह्य भार वहन करने वाली नींव के समान वह उतनी ही कर्तव्यनिष्ठा, उतनी ही मनोयोग–संतोष और उतनी ही प्रसन्नता के साथ उसे आज भी ढोये चल रही है। वह मानवी तपस्या की साक्षात् प्रतिमा है।

''जिस देश अथवा राष्ट्र में नारी पूजा नही, उसका यथोचित नही, वह देश या राष्ट्र कभी महान या उन्नत नहीं हो सकता। नारी रुपी शक्ति की अवमानना करने से ही आज हमारा अधः पतन हुआ है। स्त्रियाँ माता की प्रतिमा है, शक्ति स्तररुपा है। जब तक उनका उद्धार नहीं होगा, तब तक हमारे देश का उद्धार होना असंभव है।''

–स्वामी विवेकानन्द

❑❑

51

भारत में समावेशी शिक्षा–समावेशी विकास : चिन्तन के विविध आयाम

शिवप्रताप यादव
शोध छात्र–राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

हम मनुष्यों को परिपक्व समझदार और ज्ञानी बनाने में शिक्षा की भूमिका सदैव उपयोगी रही है। फिर चाहे वह औपचारिक रही हो या अनौपचारिक घर–बाहर विद्यालय विश्वविद्यालय हमारे परिवेश से हम जो कुछ भी सीखते है वह शिक्षा ही तो है। हम मनुश्य जीवन पर्यन्त कुछ ना कुछ सदैव सीखते ही रहते है हम शिक्षा और ज्ञान के साथ जैसे–जैसे आगे बढ़ते है हमें निरन्तर अपनी लघुता अल्पज्ञता का बोध होता है। दरअसल शिक्षा अपने अज्ञान की एक प्रगतिशील खोज है। हम मानव जैसे–जैसे ज्ञान के अथाह सागर में डुबकी लगाते है हमें इस बात का एहसास होता है कि अभी बहुत कुछ सीखना और जानना बाकी है। इस तरह हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और स्तर पर अनुभव करते है कि शिक्षा के बिना हम कितने अज्ञानी है।

शिक्षा के स्वरूप में वैश्विकरण और आर्थिक उदारीकरण के बाद काफी परिर्वतन आया है। आज शिक्षा का उद्देश्य रोजगार प्राप्त करना रह गया है। रोजगार प्राप्त करना शिक्षा का एक उद्देश्य हो सकता है किन्तु सम्पूर्ण उद्देश्य नही क्योंकि शिक्षा का एक उद्देश्य नैतिक मूल्यों का निर्माण करना भी है। मूल्य युक्त शिक्षा ही सम्पूर्ण समाज का भला कर सकती है मूल्य युक्त शिक्षा को ही हम समावेशी शिक्षा कह सकते है और जब बात समावेशी शिक्षा की आती है तो अर्न्तमन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हम सभी मनुष्यों को एक प्रकार की समान शिक्षा मिलाती है क्या समान भाषा में मिलती है। क्या शिक्षा सभी को समान परिवेश में मिलती है। क्या हम सभी मनुष्यों की परिस्थितियाँ समान है, क्या शिक्षा को प्राप्त करने के लिये जाति, धर्म एवं परिवेश आड़े नहीं आती समाज में लोगों की परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न हो सकती है किन्तु मूल्ययुक्त शिक्षा तो अलग–अलग नहीं। अतः आज आवश्यकता है कि समान समाज के निर्माण के लिए समावेशी शिक्षा को पूर्ण रूप से अपनाया जाये।

जिनमें जाति, धर्म, लिंग, सबल, निर्बल अथवा मानव के परिवेश बाधा न हो। यदि मूल्ययुक्त शिक्षा मानव मूल्यों का निर्धारण करती है तो क्यों ना हम इसे अपनाये और समान समाज के निर्माण के पथ को गति दे। हम जानते है कि हमारा समाज बुरी तरह से वर्ग विभाजित है। अमीर बच्चों को न सिर्फ अच्छे स्कूल मिलते हैं, बल्कि प्राइवेट ट्यूशन से लेकर सूचना तकनीक पर आधारित कई और सुविधायें भी हासिल होती है। जैसे वीडियों लेक्चर जिन्हे बार–बार सुना जा सकता है या ऐनिमेशन पर आधारित वीडियो कक्षाएँ जो कठिन से कठिन अवधारण को फिल्म जितना रोचक बना देती है। दूसरी ओर गाँवों और कस्बों में पढ़ने वाले करोड़ों विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्हें अध्यापक को देखना तक नसीब नही होता और अध्यापक मिलते भी तो मारने–पीटने वाले, तोतों की तरह रटवाने वाले न की विषयों को समझाने वाले। जब इन दोनों भिन्न दुनियाँ से निकले हुए विद्यार्थियों के बीच मानवीय परीक्षण आयोजित होता है तो प्रतिस्पर्द्धा विद्यार्थियों की योग्यता का नहीं उनकी आर्थिक सुविधाओं का होता है यही कारण है कि ऐसी परीक्षाओं में शायद ही किसी गरीब बच्चे को अव्वल स्थान हासिल होता है। सिर्फ एकलव्य के उदाहरण से हम काम नही चला सकते हमें यह समझना होगा कि बराबर सुविधाओं के विना प्रतिस्पर्द्धा क्या प्राकृतिक न्याय के विरूद्ध नही है?

किन्तु प्रश्न यह है कि इन कमियो के बावजूद योग्यता–प्रगति की माप के बढ़िया उपकरण बनाये जाये और समाज में व्याप्त कमियों को दूर किया जाये अगर समाज में आर्थिक भेदभाव है तो इसकी जिम्मेदारी किसी व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु पूरे समाज की है। शून्य में आलोचना करना निरर्थक है जब तक हम उपलब्ध व्यवस्था से

बेहतर व्यवस्था का निर्माण न कर दे इसलिये यह आवश्यक है कि समावेशी शिक्षा को पूरे समाज में एक साथ अपनाया जाये।

समाज में शिक्षा का गिरता नैतिक स्तर तथा मनुष्य की संकीर्ण मानसिकता समावेशी शिक्षा में एक बहुत बड़ी बाधा है जिसका निराकरण परिस्थितियों को भली–भाँति समझकर शिक्षा में श्रेष्ठ मार्ग दर्शन एवं कौशल विकास के कार्यक्रम को बढ़ावा देना है। शिक्षा का उद्देश्य धर्म, जाति, सम्प्रदाय एवं उपजाति के बन्धनों से मनुष्य को मुक्त कराना है, जहाँ पर राजनैतिक एवं सामाजिक उपबन्ध बाधा डालने का प्रयास करते है। वहीं समावेशी शिक्षा स्वरूप अपने विस्तार को प्राप्त होता है। यह समी बन्धनों को हासिये पर रखकर मनुष्य को परिस्कृत एवं परिमार्जित कर के नैतिक उत्थानों की तरफ अग्रसारित होता है शिक्षा वह नहीं जो हमारे अंकगणित एवं मार्कशीट तक सीमित है। यही कारण है कि कबीरदास जी ने कहा कि ''मस काज छूयों नही, कलम धरे नहीं हाथ'' इसके बावजूद भी उनकी बुद्धिमत्ता पर प्रश्न चिन्ह नहीं खड़ा किया जा सकता है। शिक्षा का अर्जन अनुभव जन्य भी है। जिसके आधार पर हम समावेशी शिक्षा विकास का प्रारूप तय करते हैं अब समावेशी शिक्षा का उद्देश्य व्यापक है। जिसमें मानवीकी विषय के साथ वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण भी शामिल है। इसीलिए रहीम दास ने कहा है कि

''बड़े बड़ाई ना करे, बड़े न बोले बोल
रहिमन हीरा कब कहें, लाख टके मेरो मोल''

इस तरह हमें यह आभास होता है कि शिक्षा का बोध गुण अवगुण के बीच का विभेद बताती है एवं लीग से हटकर उसकी व्याख्या भी करती है।

''धूप में निकलों घटाओं में नहाकर देखों
जिन्दगी क्या है, किताबों को हटा कर देखों''

तालीम महज कितबी ही नही होना चाहिए बल्कि वस्तुपरक, व्यक्तिजन से भी हटकर सम्पूर्ण मानव उत्कर्ष के लिए होना चाहिए। समाज के इस दौर पर मनुष्य ही मनुष्य का तथा मानवता का दुश्मन बन गया है। इसलिए गालिब ने क्या खूब लिखा है।

''बस कि दुश्वार है हर काम का आसां होना
आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसा होना''

किताबी बोझ एवं उनको रट के महज शिक्षा दम नही तोड़ सकती, इसकी महती भूमिका पर प्रश्न चिन्ह भी नही खड़ा किया जा सकता है, लेकिन कबीर दास जी ने इसीलिए कहा होगा कि

''पोथी पढ़ि, पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय''

महज टॉपर होना हि शिक्षा की कसौटी नही है। व्यक्ति में परिष्कृत, एवं वैज्ञानिक मानवाता वादी दृष्टिकोण ही समावेशी शिक्षा का सर्वोत्कृष्ट मापदण्ड है। हमारे समाज में सभ्यता के विकास से ही शिक्षा एवं परिर्वतन निरन्तर क्रियाशील रहे हैं। इनका प्रारूप बदलता रहा है। जैसा कि परिवर्तन एवं विकास प्राकृति का शाश्वत् नियम है। इसीलिए आदि काल से लेकर मशीनी युग तक शिक्षा का प्रारूप बदलता रहा है। लेकिन उद्देश्य नही, हमारे समाज ने थामस एलवा एडीसन को भी नकार दिया था। जब उनकी माता को यह कह दिया गया की इनको हम सब के साथ नहीं पढ़ा सकते क्योंकि यह मन्दबुद्धि है। और आज उसी मन्दबुद्धि बालक के नाम हजारों अविष्कारों की श्रृंखला है। सुकरात ने भी इसीलिए कहा की ''मै यह जानता हूँ कि सबसे कम जानता हूँ।''

उपरोक्त आयामों से कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा विकास का वह प्रारूप है जहाँ अन्तिम पायदान पर खड़ा व्याक्ति भी समाज के सभी बन्धनों को तोडकर विकास के मार्ग पर अग्रसरित है तथा मानव विकास में अपनी जीवन्त भूमिका दर्ज कराता है।

❑❑

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (1857)

औपनिवेशिक भारत के प्रति ब्रिटिश नीतियों के विकास क्रम में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक मोड़

डॉ. संजू
एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास
राजकीय महाविद्यालय अकबरपुर, कानपुर देहात

''भारत एक बेहद प्रतिभाशाली देश है लेकिन वहाँ की जनता का एक बड़ा तबका उतना ही मूर्ख है। वह तबका जाति–धर्म के नाम पर लोगों को आपस में लड़ाकर अपने ही देश का नुकसान कर रहे हैं।''
–हर्बर्ट जॉर्ज वेल्स (1846–1946) ब्रिटिश साहित्यकार

आधुनिक भारतीय इतिहास में 1857 का विद्रोह विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि इसे भारत के स्वतंत्रता संग्राम का आरम्भ माना जाता है। ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन जनता में असंतोष का बहुत बड़ा कारण था। पेंचीदा न्याय प्रणाली तथा प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी न के बराबर होना विद्रोह के प्रमुख कारणों में से एक था।

पृष्ठभूमि के विद्रोह : 1857 के सैनिक विद्रोह से ठीक 40 साल पहले 1817 में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय नागरिकों ने जबर्दस्त सशस्त्र विद्रोह किया था इसके नायक बख्शी जगबंधु थे। आदिवासी असंतोष के प्रतीक रहे ओडिशा के पाइक विद्रोह' जिसने अंग्रेजी हुकमत को चुनौती देने के लिए पहला आन्दोलन 1817 में ओडिशा के कंध आदिवासियों ने किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि बंगाल और बिहार में हुए संन्यासी और फकीर विद्रोह से बनने लगी थी। फकीर मजनू शाह किसान धीरज नारायण भवानी पाठक और देवी चौधरानी ने अंग्रेजों का जीना दूभर कर दिया। वास्तव में उपनिवेशवादी विस्तार को ही आम जनता ने चुनौती नहीं दी बल्कि इसके साथ–साथ जो औननिवेशिक मानसिकता अपनी विभिन्न धाराओं के साथ भारत को गुलाम बनाने और भारतीय का शोषण करने का प्रयास कर रही थी। ऐसी भावना को चुनौती देते हुये राष्ट्रीय मानसिकता के विकास का उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये।

स्वाधीनता के महासंग्राम का स्वरुप व विभिन्न दृष्टिकोण : उपर्युक्त कारणों से 1857 का संग्राम होते–होते देश के विभिन्न भागों में 110 के लगभग विद्रोह हो चुके थे। अंग्रोजों ने इन विद्रोहों को देगा Muting करार दिया। लेकिन जनमानस और हमारे इतिहासकारों ने कभी सिपाही विद्रोह (मंगलपाण्डे की घटना) तो कभी सामंतवादी प्रतिक्रिया तो कभी असभ्य एवं बर्बरता का संघर्ष, षडयंत्र, आदि नाम दिये कार्लमार्क्स और बीर सावरकर ने इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बताया। साथ ही साथ आमव्यक्ति ने लोकगीतों, कहानियों, कथाओं, चित्रों और किस्सों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के उदय में भी प्रयोग किया।

भारतीय साहित्यकारों की नजर में : भारतीय साहित्यकार सुभद्राकुमारी चौहान ने कवितापाठ बुंदेलोहर बोलों के मुँह) अमृतलाल नागर के 'गदर के फूल', वृन्दावन लाल वर्मा ने झाँसी की रानी लिखकर सारी घटनायें जीवंत कर दी। कोई भी विद्रोह हो चाहे मरदू पाण्डयन का विद्रोह, पोलिगारों का विद्रोह, कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह, उड़ीसा में सिद्ध और कानून के विद्रोह आदि अलग–अलग समय वे अलग–अलग स्थानों पर हमें जरुर हैं परंतु इन उग्र आन्दोलन में कोई भी बात ऐसी नहीं थी जो कि राष्ट्रीय न हो।

महिलाओं, तवायकों के अद्‌भुत राष्ट्रभक्ति : सन् 1857 के स्वाधीनता समर के अनेकों ऐतिहासिक तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय नारी की छवि को मात्र घरेलू महिला दर्शाना गलत है। मैनावती, देवी चौधरानी से लेकर सन् 1947 तक गाँधी जी के साथ भारतीय महिलाओं का सत्याग्रह हो या फिर आजाद हिन्द फौज की लड़ाई हो। महिलाएँ न केवल बराबर की हिस्सेदार रहीं अपितु समर्थ नेतृत्व भी प्रदान किया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम विशेष तौर पर गाँधीवादी चरण के दौरान महिलाओं की भूमिका : मोहनदास करमचंद गाँधी जो दक्षिण अफ्रीकी संघर्ष से प्रसिद्ध हो चुके थे। 1915 में भारत लौटे और इसी के साथ राजनीति तथा आन्दोलनों का नया दौर शुरु हो गया, जिसमें महिलाओं की सहभागिता का सकारात्मक रुप सामने आता है –

असहयोग आंदोलन और महिलाएँ : गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन की शुरुआत में महिलाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण परंतु सीमित भूमिका को सामने रखा, जो मुख्यतः स्वदेशी व बहिष्कार के अभियान से सम्बन्धित भूमिका थी। इसीलिए खादी व चरखे के प्रचार प्रसार में स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चरखे के प्रचार–प्रसार में स्त्रियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई महिलाएँ खादी, बेचकर, शराबों की दुकानों पर धरना प्रदर्शन कर गिरफ्तारियाँ देकर, असहयोग करके, कानून न मानकर जेल जाकर, पुलिस की लाठियाँ खाकर भी असहयोग आंदोलन में भाग ले रही थीं दुर्गाबाई देशमुख, कस्तूरबा गाँधी, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सरोजिनी नायडू, नेहरू परिवार की महिलाएँ–उमा नेहरू, कमला नेहरू, विजयलक्ष्मी पण्डित भी इस आंदोलन में सक्रिय रहीं दक्षिण भारत में एनी बेसेंट, मारग्रेट कौसिन्स ने भी इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अतः असहयोग आंदोलन में महिलाओं ने बढ़–चढ़ कर भागीदारी की, परन्तु यह महिलाएँ अधिकतर अभिजन व मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से थीं

सविनय अवज्ञा आंदोलन और महिलाएँ–सविनय अवज्ञा आंदोलन सच्चे अर्थों में आम भारतीय महिलाओं की सहभागिता का परिचायक बना इसमें हर वर्ग, हर समुदाय की महिला ने अपनी भूमिका निभाई अब भी शहरी मध यवर्गीय अभिजन स्त्रियाँ जिनमें सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, एनी बेसेंट, मारग्रेट कौसिन्स आदि इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रही थीं, साथ ही इस आंदोलन में आम ग्रामीण महिलाएँ भी हजारों की संख्या में शामिल हुई कमला देवी चट्टोपाध्याय, अवन्तिकाबाई गोखले ने भी नमक बनाकर इस आंदोलन में भागीदारी की नागालैंड की रानी गैडिनल्यू ने इस आंदोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया सत्यवती देवी, जो स्वामी श्रद्धानंद की पोती थीं, की भूमिका दिल्ली में महत्त्वपूर्ण रही।

भारत छोड़ो आंदोलन व महिलाएँ : भारत छोड़ों आंदोलन में महिलाओं को भारतीय स्वतंत्रता का अनुशासित सिपाही माना गया आंदोलन शुरू होते ही अगले दिन गाँधी को गिरफ्तार कर लिया गया व कांग्रेस के अन्य सभी पहली व दूसरी पंक्ति के लगभग सभी पुरुष नेताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। तब नेतृत्वहीन आंदोलन को चलाने की जिम्मेदारी महिलाओं ने अपने ऊपर ले ली इसलिए भारत छोड़ों आंदोलन में स्त्रियों की सक्रियता सबसे अधिक व स्पष्ट रही।

भारत की सामाजिक, धार्मिक एकता का प्रतीक, 1857 : सत्य यही है कि अंग्रेज सन् 1857 की 'हिन्दू–मुस्लिम एकता' को देखकर दंग रह गए, परेशान हो गए थे। उस समय का यथार्थ यही था कि मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर की हुकूमत बस चाँदनी चौक की कुछ गलियों तक सीमित हो गई थी, लेकिन सैनिकों ने, ताल्लुकेदारों ने और हिन्दू धर्म को मानने वालों–नाना साहब, कुंवर सिंह, झांसी की रानी, तात्या टोपे आदि सभी ने उन्हें अपना बादशाह माना इस सत्य से अधिक 'हिन्दू–मुस्लिम एकता' का प्रतीक और क्या होगा? वर्ष 1857 ने भारत की एकता, एकरूपता, राष्ट्रीयता के नए मानकों को गढ़ा था।

यह संघर्ष कोई आकस्मिक संघर्ष नहीं था। इसके लिए सुनिश्चित योजना तैयार की गई थी। इस पर यदि

सामरिक दृष्टि से विचार करें, तो अप्रैल–मई की तारीखें चुनने की वजह गहरी और महत्त्वपूर्ण थीं। देशवासी और जनक्रान्ति के नायक जानते थे कि और गरम मौसम में अंग्रेज नहीं लड़ पाएंगें फिर बरसात में तो उनकी रसद की लाइनें भी कट जाएंगी गाँव–गाँव में 'रोटी' व 'कमल' का सन्देश घूमना, पेड़ों से उनकी छाल हटा देना आदि कुछ ऐसे परम्परागत तरीके थे, जिनका प्रयोग विद्रोह का सन्देश भेजने के लिए किया जाता रहा।

आज देश की जनता को यह जानने की आवश्यकता है कि जिन इलाकों में अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गई, वहाँ कोई अराजकता नहीं थी–जैसा कि अंग्रेज इतिहासकार और उनकी खुशामद करने में लगे थोड़े से भारतीय इतिहासकार लिखते रहे, बल्कि यह एक स्वाधीनता संग्राम था।

सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम का दायरा केवल उत्तरी भारत तक सीमित नहीं था दक्षिण भारत, पश्चिमी भारत और मध्य भारत में भी अनेक स्थानों पर इसकी चिन्गारियाँ, लपटों के रूप में प्रस्फुटित हुई अपने–अपने ढंग से प्रायः भारत देश के हर क्षेत्र में यह स्वाधीनता संग्राम लड़ा गया हालांकि अभी तक सन् 1857 की महान् क्रान्ति का अध्ययन सीमित स्रोतों पर ही आधारित रहा है। ये स्रोत औपनिवेशिक, आर्काइव, कोलोनियल ऑफिसर्स की डायरियों, पश्चिमी देशों के अखबारों की कतरनों, पुलिस एवं सीआईडी की फाइलों पर ही आधारित रहे है।

1857 का संग्राम–जन अभियान : इसमें कुछ नया विस्तार अगर दिया भी गया है, तो वह अंग्रेजों के समर्थक सूबेदारों एवं सिपहसालारों की आत्मकथाओं पर आधारित रहा है। कुछ यात्रा–वृत्तांत जिन्हें जनस्रोत के रूप में प्रस्तुत किया है, वस्तुतः व्यक्तिगत वृत्तांत ही रहे हैं ऐसे में लोक–संस्कृति, लोकस्मृति, जनश्रुतियों, स्मृतिपरक कथाओं तथा लोकायनों की अधिक–से–अधिक खोज कर उन्हें सन् 1857 के इतिहास लेखन में शामिल करने की जरूरत है इससे सन् 1857 की क्रान्ति कथा का विस्तार होगा ओर हम सबके लिए ज्ञान के नए आयाम भी खुलेंगे सन् 1857 ई. के स्वाधीनता आन्दोलन के एक प्रकार से जन आन्दोलन में तब्दील होने के कारण ही इसकी लोकस्मृतियाँ आज भी जनता के दिलोदिमाग में जीवित हैं। वह इन कथाओं को कहती हैं, सुनाती हैं और इन्हें जीती हैं।

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों व बिहार में ऐसे कई छोटे–छोटे स्मारक हैं, जो बताते हैं कि किस तरह इस प्रथम स्वाधीनता संग्राम में छोटी कही जाने वाली जातियों के लोगों ने बड़े काम किए। आजमगढ़, साहबपुर, आरा और उत्तर प्रदेश के उन सभी इलाकों में जहाँ यह स्वाधीनता संग्राम लड़ा गया था। इस तरह के स्मारक पाए जाते हैं। इन छोटी जाति के बड़े क्रान्तिवीरों में महिलाएँ व पुरुष दोनों ही थे। इन्हीं में एक वीरांगना थीं – झलकारी बाई, जो जाति से कोरी थीं। लेकिन रानी लक्ष्मीबाई उन्हें अपनी सहेली का मान देती थीं। उन्होंने रानी के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम में कदम–से–कदम मिलाकर कैसा लोहा लिया, स्वयं अंग्रेजों ने भी प्रशंसा में कोई कसर नहीं छोड़ी।

ऐसे ही एक वीर नायक थे– मातादीन भंगी, जिन्होंने बैरकपुर विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कानपुर–विठूर के आस–पास ऐसे ही एक क्रान्तिवीर थे – गंगू मेहतर, जिन्हें गंगू बाबा के नाम से जाना जाता है। तथ्य बताते हैं कि ये गंगू बाबा हरिजन थे और नाना साहब की सेना में नकड़ची थे इनकी देह अत्यन्त बलिष्ठ थी, ये पहलवान थे। इनके एक अखाड़ा भी था, जहाँ अनेक युवक इनकी उस्तादी में कुश्ती लड़ते थे इन गंगू बाबा ने अपने पहलवानों के साथ अंग्रेजों को मौत के घाट तार दिया।

औपनिवेशिक भारत के प्रति ब्रिटिश नीतियों का विकासक्रम : विद्रोह के समाप्त होने बाद 1858 ई. में ब्रिटिश संसद ने एक कानून पारित कर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अस्तित्व को समाप्त कर दिया, और अब भारत पर शासन का पूरा अधिकार महारानी विक्टोरिया के हाथों में आ गया।

इंगलैण्ड में 1858 ई. के अधिनियम के तहत एक 'भारतीय राज्य सचिव' की व्यवस्था की गई, जिसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों की एक 'मंत्रणा परिषद्' बनाई गई इन 15 सदस्यों में 8 की नियुक्ति सरकार द्वारा करने तथा 7 की 'कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स' द्वारा चुनने की व्यवस्था की गई।

स्थानीय लोगों को उनके गौरव एवं अधिकारों को पुनः वापस करने की बात कही गई भारतीय नरेशों को महारानी विक्टोरिया ने अपनी ओर से समस्त संधियों के पालन करने का आश्वासन दिया, लेकिन साथ ही नरेशों से भी उसी प्रकार के पालन की आशा की।

अपने राज्य क्षेत्र के विस्तार की अनिच्छा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ उन्होंने अपने राज्य क्षेत्र अथवा अधिकारों का अतिक्रमण सहन न करने तथा दूसरों पर अतिक्रमण न करने की बात कही, और साथ ही धार्मिक शोषण खत्म करने एवं सेवाओं में बिना भेदभाव के नियुक्ति की बात की गई।

सैन्य पुनर्गठन के आधार पर यूरोपीय सैनिकों की संख्या को बढ़ाया गया उच्च सैनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति को बंद कर दिया गया तोपखाने पर पूर्णरूप से अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया।

1858 ई. के अधिनियम के अन्तर्गत ही भारत के गवर्नर–जनरल के पदनाम में परिवर्तन कर उसे 'वायसराय' का पदनाम दिया गया।

''जहाँ सियासत धार्मिक विवादों को शांत करे, वह देश महान होता है और जहाँ सियासत खुद धार्मिक विवादों को पैदा करे तो समझ लो कि देश को गलत लोग चला रहे हैं।''

–मार्टिन लूथर किंग, जूनियर (1919–1968) अमेरिकी अश्वेत क्रांति नायक

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. संजू – भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका
2. रजनी पायदन्त – आज का भारत
3. सुमित सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास
4. एल.पी. शर्मा – आधुनिक भारत का इतिहास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन
5. प्रतियोगता दर्पण विशेषांक
6. दैनिक समाचार पत्र – 15 अगस्त हिन्दुस्तान इतिहास

❑❑

53

समावेशित शिक्षा में दृष्टि बाधित (दिव्यांग) के लिए तकनीकी भूमिका

डॉ0 सुधा राव
विशेष शिक्षा संकाय – दृष्टिबाधितार्थ विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

समावेशित शिक्षा शिक्षण प्रणाली की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के दिव्यांग बच्चों का पठन–पाठन का कार्य एक ही कक्षा एवं एक ही वातावरण के अन्तर्गत सामान्य बच्चों के साथ किया जाता है। इसके अन्तर्गत न केवल पठन पाठन का ही नहीं बल्कि उन्हें आत्म निर्भर बनने का अवसर भी प्रदान किया जाता है। जिससे कि उन्हें समाज की मुख्यधारा में पुनः शामिल किया जा सके। समावेशित शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की तकनीकी को भी उपलब्ध किया गया जिससे प्रत्येक बालक अपनी विशिष्टताओं, अभिरुचियों व योग्यता तथा सीखने की आवश्यकता के अनुरूप इनका उपयोग कर सके।

सलांमांका वक्तत्य में इस बात पर बल दिया गया है कि "प्रत्येक शिशु को शिक्षा का बुनियादी अधिकार है और उसे अधिगम का एक स्वीकार्य स्तर प्राप्त करने और बनाये रखने का अवसर प्रदान किया जाता है।"

1980 के दशक में समस्त विश्व में समावेशन का समय शुरू हुआ इसके अन्तर्गत इस बात पर बल दिया गया कि दिव्यांग बच्चों को सभी स्कूल कार्यक्रमों में गति विधियों में पूर्व रूप से सम्मिलित किया जाय।

'समावेशी शिक्षा' का अभिप्राय एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की ओर संकेत करती है जो शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, सांवेगिक, भाषायी या अन्य स्थितियों के भेदभाव के बिना सभी बच्चों को समाहित करना सभी बच्चों को सफलता पूर्वक शिक्षित करने में सक्षम बाल केन्द्रित शिक्षण, विधि प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है।

हालांकि विभिन्न प्रकार के दिव्यांग छात्र के पठन पाठन को ध्यान में रखते हुए तकनीकी को आगे बढ़ाया गया है जिससे वे अपनी शिक्षण सम्बन्धी कार्य व आत्म निर्भरता से सम्बन्धी कार्यों को आगे बढ़ा सकते है तथा सम्बन्धित क्षेत्रो में आने वाली छोटी–छोटी समस्याओं का निराकरण स्वयं कर सकते है।

विभिन्न प्रकार के तकनीकों के माध्यम से दृष्टिबाधित बालक अपने शिक्षण तथा अपने पुनर्वास में इसका पूर्ण उपयोग कर सकते है। अलग–अलग तकनीकी उपकरण अलग–अलग क्षेत्रों में कार्य करने हेतु सक्षम होते है। उदाहराणार्थ – पुनर्वास की दृष्टि से देखा जाय तो स्मार्ट केन प्रायः सामान्य छड़ी की तरह ही दिखता है परन्तु इसमें सेंसर, वाइब्रेशन तथा रेंज को कवर व वीप से कंट्रोल करने की क्षमता होती है।

समावेशन की आवश्यकता : भारत में वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है क्योंकि समावेशी शिक्षा से न केवल दिव्यांग छात्र ब्लकि सामान्य छात्र भी लाभाविन्त हो रहे है उदाहरण के तौर पर हम ये देख सकते है कि दिव्यांग छात्र सामान्य छात्रों के साथ सभी प्रकार के अंतःक्रियाओं में सामान्य रूप से भागीदारी का अवसर प्राप्त करते है जो कि विशेष व सामान्य विद्यालय में देखने को नहीं मिलता है। समावेशी शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी कि दिव्यांग छात्र व सामान्य छात्र एक दूसरे के लिए सही तरीके का व्यवहार करना सीखते है तथा दिव्यांग व सामान्य छात्रों में एक दूसरे के प्रति सहनशीलता, सहयोग, साकारात्मक सोच एवं क्षमता भी विकसित होती है व साथ ही साथ सामान्य छात्रों में दिव्यांग छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसायो के विषय में तथा सेवा भाव जैसी भावनाओं का भी ज्ञान होता है उदाहरणार्थ – विशेष शिक्षा, वाणी प्रशिक्षण, शारीरिक उपचार, मनोरंजन के माध्यम, व्यवसायिक प्रशिक्षण, कुछ सामान्य छात्र सभी इसी क्षेत्र में अपने

कैरियर को आगे बढ़ाने में भी सक्षम हो जाते है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा से दिव्यांग छात्र तथा सामान्य छात्र दोनों ही लाभान्वित होते है।

यदि सामान्य रूप से देखा जाय तो सूचनाओं का वितरण दृष्टि के माध्यम से किया जाता है परन्तु दृष्टि बाधित व्यक्तियों के लिए दृष्टि के न होने पर अन्य ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम व व स्पर्शीय माध्यम के द्वारा दृष्टि बाधित व्यक्तियों के लिए अपने प्रत्येक कार्य अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रह कर करना पड़ता है अतः इसी निर्भरता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण व तकनीकी उपकरणों का निर्माण किया गया है जिससे दृष्टि बाधित इन कार्य को लार्ज प्रिंट एक्सेस, स्पीच एक्सेस, ब्रेल एस्सेस व स्टोर्स सामग्री एक्सेस कर के अपनी आत्मनिर्भरता बढ़ा सकेंगे।

दृष्टि बाधित (दिव्यांगों) के लिए पठन पाठन व पुनर्वास हेतु तकनीकी युक्त उपकरण –

इलेक्ट्रानिक लेखन उपकरण : ऐसे कई इलेक्ट्रानिक उपकरण उपलब्ध है जोकि दृष्टि बााधित व्यक्ति को ब्रेल अथवा देव नागरी व सामान्य लिपि में लिखने में सुविधा प्रदान करते है।

ब्रेल नोट टेकर : यह ऐसा उपकरण है जिसके अन्दर एक–एक छोटें से कम्प्यूटर के साथ एक रिफ्रेशबल ब्रेल गाइड होता है। रिफ्रेशबल ब्रेल की लाइन होती है व लिखने के लिए की–बोर्ड होता है। यह निम्न कार्यों को करने में सक्षम है –

- ब्रेल में दस्तावेज को टाइप करना।
- दस्तावेजों का सामान्य प्रिंटर व मुद्रण करना।
- इंटरनेट तक पहुँचने और ई–मेल करने के लिए।
- घड़ी, कैलेण्डर शब्दकोश आदि के रूप में उपयोगी।
- M.P.^{3} व डेजी किताबों का पठन इत्यादि।

स्क्रीन रीडिंग साफ्टवेयर : कम्प्यूटर सभी के लिए पढ़ने व लिखने के लिए एक आवश्यक व उत्कृष्ट साध ान है, विश्व में समाचार पत्र–पत्रिकाएं, जर्रनल इत्यादि उपलब्ध है। जब कम्प्यूटर में स्क्रीन रीडर उपलब्ध होता है तब टेक्स इस स्पीच साफ्टवेयर (TTS) की सहायता से सूचनाओं को बोलकर बताता है तथा साथ ही रिफ्रेशबेल ब्रेल डिस्प्ले किसी भी स्क्रीन रीडर की मदद से चलाया जा सकता है। जैसे एन0वी0डी0ए0 (NVDA) जैसे स्क्रीन रीडर साफ्टवेयर, भी शामिल है। इनके अलावा अनेकों व्यवसायिक स्क्रीन रीडर उपलब्ध है। जॉच, विंडों आइज, सुपरनोवा आदि प्रमुख व्यवसायिक साफ्टवेयर है।

स्क्रीन रीडर युक्त मोबाइल फोन : दृष्टिबाधितों की कार्य क्षमताओं को बढ़ाने के लिए उनके आधुनिक मोबाइल फोन मे स्क्रीन रीडर विकसित किया गया है जिसके द्वारा व एड्रेस बुक पढ़ने, डेजी पुस्तकें पढ़ने, ऑनलाइन पुस्तकों को पढ़ने व डाउनलोड करने ई–मेल लेखन व पठन कार्य, फोन करना व स्क्रीन पर नम्बर देखना तथा कॉल का विवरण चेक करना, मुद्रा व ईकाई, अलार्म घड़ी, रिमान्डर व कैलेन्डर जैसी कार्यों को स्वयं करने में सक्षम हो सकें।

स्क्रीन मेग्नीफायर साफ्टवेयर : अल्प दृष्टि वाले छात्रों के लिए कम्प्यूटर का उपयोग करने की सुविधा देते है जिसके अन्तर्गत अक्षर के आकार के बढ़ाने, घटाने पृष्ठभूमि रंग को स्पष्ट रूप से पहचानो इत्यादि के लिए माउस पाइन्टर को उनके ही अनुरूप बनाये जाते हैं।

ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॅग्नीशन (OCR) : OCR एवं स्कैनर जिस पर रखे गये कागज के प्रतिबिंब को कम्प्यूटर पर भेजता है इस प्रतिबिंब में लिखे अक्षरों को ओ0सी0आर0 नामक साफ्टवेयर कम्प्यूटर में निर्धारित किये गये संकेतों के रूप कम्प्यूटर के स्मृति पटल पर अंकित करता है व इन अक्षरों को कम्प्यूटर की साफ्टवेयर प्रणाली ध्वनि में परिवर्तित कर देती है।

कुर्ज वेल 1000, ओपन बुक व एक्सपर्ट रीडर आदि साफ्टवेयर ओ0सी0आर0 साफ्टवेयर के उदाहरण है।

क्लोज सर्किट टेलीविजन : यह अल्पदृष्टि वाले बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है जिसके अन्तर्गत कागज पर लिखे अक्षर के प्रतिबिम्ब को दो से बारह गुना तक बड़ा किया जा सकता है।

टेप रिकॉर्डर : यह दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए पठन उपकरण के रूप में अत्यन्त सफल रहा है। बहुत से ऐसे पुस्तकालय है जिसने बोलती पुस्तकें संकलित एवं ध्यान्यांकित की जा रही है। एक साधारण टेप रिकार्डर का प्रयोग इन बोलती पुस्तकों को पढ़ने के लिए किया जाता है। साथ ही साथ कक्षा में व किसी संगोष्ठी में कोई भी व्याख्यान इत्यादि को रिकार्ड कर सकते है व अपने सुविधानुसार उसे किसी भी समय व कहीं भी सुन सकते है।

डेजी प्लेयर : यह कैसेट के स्थान पर सी0डी0 पर ध्यान्यांकित होता है इसके अन्तर्गत मूल्यांकन में पुस्तकों के अध्याय की सूचना विशेष रूप से सम्मिलित की जाती है जिसमें दृष्टिबाधित व्यक्ति पुस्तकों को पढ़ते समय आवश्यकतानुसार पृष्ठ व अध्याय पर सीधे पहुँच सकते है।

पोर्टबल टेक्स रीडर : इसके अन्तर्गत कम्प्यूटर के प्रालेख को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इसके कृत्रिम ध्वनि के माध्यम से पढ़ा जाता है। छोटे आकार के कारण इनका उपयोग अत्यन्त सरल होता है।

ब्रेल उत्पादन उपरकण

ब्रेल एम्बॉसर / ब्रेल प्रेस : इसे भी सामान्य प्रिंटर की तरह ही उपयोग किया जाता है। ब्रेल एम्बॉसर के द्वारा ब्रेल पन्नों पर ब्रेल उभारी जाती है। ब्रेल प्रेस को कम्प्यूटर के साथ उसके प्रिंटर के साथ लगा दिया जाता है और जो कुछ भी कम्प्यूटर पर टाइप करते है वह ब्रेल प्रिंटर सीधे ही ब्रेल पेज पर ब्रेल में छाप देता है।

ब्रेल अनुवाद साफ्टवेयर : ऐसे साफ्टवेयर में कम्प्यूटर की स्क्रीन पर ही ब्रेल के अक्षर देखे जा सकते है तथा छापने से पहला ही त्रुटियों को सुधारा जा सकता है। इस ब्रेल अनुवाद साफ्टवेयरों में विभिन्न भाषाओं के ग्रेड–1 व ग्रेड–2 की तालिकाएं उपलब्ध होती है जोकि ब्रेल अनुवाद में मदद करती है।

ब्रेल 2000, डक्सवरी, मेगा डॉट्स तथा एम0एफ0बी0 अनुवाद ब्रेल ट्रांसलेसन का एक उदाहरण है।

अनुपस्थिति व चलिष्कुता के लिए आधुनिक उपकरण

बोलता कम्पास : यह उपकरण दिशा भ्रम होने की स्थिति में अत्यन्त उपयोगी होता है। दृष्टिबाधित व्यक्ति किस दिशा में चल रहा है यह बोल कर दिशा का ज्ञान कराता है जैसे पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण हालांकि आधुनिक युग में स्मार्टफोन में ये सुविधाएं उपलब्ध होने के कारण इनकी उपयोगिता कम होती जा रही है।

ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम : आधुनिक युग में लगभग सभी स्थानों का विस्तृत डिजिटल मानचित्र तैयार किया जा चुका है तथा जहाँ उपग्रह से अक्षांशीय संदेश प्राप्त हो सके। इनके अन्तर्गत प्रयोगकर्ता किस स्थान पर है तथा उसके आस–पास कौन से मार्ग व भवन है इसकी सूचना दृष्टिबाधित व्यक्त्यिों को ध्वनि के माध्यम से बताता है।

इलेक्ट्रानिक बीपर : अलग–अलग स्वर वाले बीपरों के माध्यम से दृष्टिबाधित व्यक्तियों को अलग–अलग संकेत दिये जाते है। उदाहरण के तौर यह देखा जा सकता है कि कुछ संस्थानों के प्रवेश द्वार पर सही स्थिति का ज्ञान कराने के लिए बीप का उपयोग किया जाता है।

अल्ट्रासानिक अथवा इन्फ्रारेड किरणों वाली छड़ियों : इन छड़ियों का प्रयोग दृष्टिबाधित चलने के लिए करते है जिसकी सहायता से वह सड़कों की दिशा व संकेतों का ज्ञान तथा बाधाओं व गढ्ढे का भी ज्ञान कराता है।

ई–मेल व ऑनलाइन सामाजिक नेटवर्क : ई–मेल के द्वारा दृष्टिबाधित में सूचनाओं का आदान प्रदान एक काफी सरल व लोकप्रिय माध्यम है व साथ ही ऑनलाइन सामाजिक नेटवर्क फेसबुक व ट्विटर का भी बड़ी लोकप्रिय व सुलभ भूमिका है जिनके माध्यम से दृष्टिबाधित आपसी वार्तालाप, परामर्श एवं आवश्यक सूचनाओं का आदान प्रदान करते है।

ऑन लाइन पुस्तकालय : ऑनलाइन पुस्तकालय की एक बड़ी भूमिका है जिसके अन्तर्गत उपयोगकर्ता व संगठन को जब भी किसी पुस्तक की आवश्यकता हो उन्हें डाउनलोड कर सकते हैं। कुछ इस प्रकार के ऑनलाइन पुस्तकालय उपलब्ध है।

ऑनलाइन ब्रेल लाइब्रेरी : यह नेशनल इंस्टीट्यूट फार द इम्पावरमेंट आफ परसन विथ बिजुअल डिसाबिलिटी (दिव्यांगजन) देहरादून ने अपना योगदान दिया है इसके लिए इन संस्थान से सम्पर्क किया जा सकता है।

बुक शेयर इण्डियन : बुक शेयर बैनीफिशिएट टेक्नालॉजी संयुक्त राज्य अमेरिका की एक परियोजना है। यह भारत में भी उपलब्ध है इसके अन्तर्गत अंग्रेजी हिन्दी तमिल में किताबें उपलब्ध है। इसके लिए सक्षम ट्रस्ट से भी सम्पर्क किया जा सकता है।

परियोजना गुटेनवर्ग आन लाइन पुस्तकालय : इन पुस्तकालय में मुफ्त किताबें ई–पत्र, सामान्य टेक्टस, एच0टी0एम0एल0, (HTML) प्रारूप के रूप में उपलब्ध है।

ऑनलाइन बुक स्टोर्स : उदाहरणार्थ AMAZON, किंडल डिजिटल बुक रीडर, आई बुक इत्यादि वेवसाइट से आनलाइन व डिजिटल बुक खरीदा जा सकता है।

सीमाएं :

- कुछ साफ्टवेयर के अलावा यह तकनीक काफी मंहगी भी होती है जिसके जिसे सभी दृष्टिबाधित व्यक्ति नहीं खरीद सकते है।
- यह सुविधाएं बहुत आसानी से सुलभ नहीं होती है जिसे कहीं से भी लिया जा सके।
- तकनीकियों का उपयोग करने के लिए दृष्टिबाधित का व्यक्ति का शैक्षिक स्तर तकनीकी के योग्य होना चाहिए।
- तकनीकियों का उपयोग पूर्ण रूप से निर्देशन में न होने के कारण इनके दुरूपयोग की सम्भावना भी होती है।
- तकनीकी का उपयोग सभी दृष्टिबाधित सफलता पूर्वक कर सके इसके लिए प्रशिक्षण की भी आवश्यकता हाती है।

इन तकनीकियों के माध्यम से दृष्टिबाधित व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के तकनीकों का उपयोग करके दृष्टिबाधित (दिव्यांग) को इनके माध्यम से शिक्षित प्रशिक्षित व पुनवार्सित किया जा सकता है इन तकनीकी का यदि बेहतर व सुचारू रूप से दृष्टिबाधित को प्रशिक्षण दिया जाय तो उनकी निर्भरता कम हो सकती है और भविष्य में आने वाले समय में जिस समावेशित भारत की कल्पना करते है उसमें दृष्टि बाधितजनों का भविष्य और भी उत्कृष्ट होगा।

संदर्भ सूची

- Bhargawa, M (2004) Exceptional Children, Agra : H.P. Bhargava Book House.
- मित्तल, एस0आर0 (2004) दृष्टिबाधितों की शिक्षा हेतु उपयुक्त उपकरणों का परिचय–शिक्षांक प्रशिक्षण लेखमाला, प्रथम संस्करण, ए0आई0सी0बी0, दिल्ली।
- शर्मा, सुषमा (2004) समावेशी शिक्षा – दृष्टिबाधा शिक्षण, प्रथम संस्करण, ए0 आई0 सी0 बी0, दिल्ली।
- मिनोचा, दीपेन्द्र (2012), दृष्टिबाधित की शिक्षा के लिए आधुनिक उपकरण – दृष्टिबाधा शिक्षण, प्रथम संस्करण, दिल्ली, ए0 आई0 सी0 बी0।
- जुल्का, अनीता (2012) समावेशी शिक्षा – दृष्टिबाधा शिक्षण, प्रथम संस्करण, दिल्ली, ए0 आई0 जी0 बी0।

❑❑

समावेशी भारत–समावेशी शिक्षा

परिचय दास
कवि, आलोचक, निबंधकार तथा पूर्व सचिव,
हिंदी, मैथिली–भोजपुरी अकादमी, दिल्ली

एक – भारत ने अपनी आजादी और लोकतंत्र की प्रणाली से पूरी दुनिया में यह पैगाम दिया है कि इतनी विविधताएँ एक साथ रह सकती हैं। यही समावेशी भारत व समावेशी शिक्षा का मूल आधार है। यूरोप में तथा दुनिया के शायद किसी देश में इतनी सामाजिक –सांस्कृतिक– राजनैतिक जटिलताएं नहीं, जितनी भारत में हैं और हमने खूबसूरती से इन्हें साधा हुआ है। यह केवल समंजन नहीं है, अपितु एक दूसरे का स्वीकार भी है। अपने अलावा 'अन्य' को मान देना है। आज दुनिया में केवल 'अपने' लिए मारामारी है. वहां भारत ने सहकार की उदारता दिखाई है, उसे जिया है। यही कारण है कि हम दुनिया के विशालतम लोकतांत्रिक देश हैं।

भारत छोड़ो नारे के माध्यम से 1942 में भारत को उपनिवेशवाद से मुक्त कराने की जरूरत थी। 1947 में भारत आजाद हुआ। नए सन्दर्भों में अब नए सिरे से भारत छोड़ो को चिह्नित किया जाने लगा है। आज भारत को गरीबी, गंदगी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि से मुक्त कराने की जरुरत है। आज देश को नए ढंग से आगे ले जाने के लिए नए तरीके से सोचने तथा वैसे ही क्रियान्वयन की आवश्यकता है। ऐसा क्यों हुआ कि इतने साल बाद भी भारत में इन आधारभूत प्रश्नों पर पुनर्विचार करना पड़ रहा है ? गरीबी तो व्यवस्था द्वारा सही तरीके से देश की समझ न होने, योजनाओं का निर्धारण व संचालन द्वेषपूर्ण होने, कोताही, आलस्य, भ्रष्टाचार के कारण बनी व बची हुई है। यह चाहे खत्म न हो सके, क्योंकि यह आदर्श स्थिति है, परन्तु अमीर व गरीब के बीच का अंतर न्यूनतम कर सकते हैं यानी इतना कम कर दें कि गरीबी नष्ट ही मानी जाए। अमीरों पर जनता के पक्ष में कड़ा नियंत्रण न करना व्यवस्था की असावधानी व अकर्मकता मानी जायेगी। साम्प्रदायिकता, नस्ली सोच व जातिवाद की जड़ें अपने सम्प्रदाय व जाति से प्रेम करने में नहीं अपितु "दूसरों" को आतंरिक रूप से स्वीकार न करने से जुडी है। इसमें यह बात भी शामिल है कि दूसरों के साथ भेदभाव करें और अपनी जाति व सम्प्रदाय को अतिरिक्त महत्त्व दें तथा व्यवस्था में गलत आचरण द्वारा लाभ उठायें। भ्रष्टाचरण सिर्फ आर्थिक नहीं बल्कि अयोग्य का इस आधार पर समर्थन कि वह अपने जाति या सम्प्रदाय से जुड़ा है, से भी जुड़ा है। आज सामूहिक स्तर पर राजनीति व सामाजिक आचरण में यह देखा जा सकता है। आज जो परिवारवाद की राजनीति है, इसमें भी एक परिवार के लोगों का सिस्टम पर एक ढंग से कब्जा करना ही शामिल है। नाम चाहे वे राष्ट्रीयता का लें या समाजवाद, अंतिम जन या बहुजन के उत्थान का या गरीबी हटाने, मजलूमों के उत्थान का, फायदा परिवारवाद को ही पहुँचाया जाता है। यह जैसे राजसी व्यवहार ही है या एक किस्म की चौधराहट। यह गैर लोकतांत्रिक है तथा इस पर चोट पहुँचाना तुरंत जरूरी है।

स्वतंत्रता के बाद नए राजनीतिक संभ्रांत वर्ग द्वारा न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रिया को संस्थागत बनाना जरूरी था बल्कि एक राजनीतिक संस्कृति विकसित करने का दायित्व भी उसके ऊपर था। 'लोकतंत्र का लाभांश' वाक्यांश का प्रयोग आज के समय में जारी है, जो लोगों के लिए भौतिक कल्याण के प्रावधानों जैसे कि सड़कों, ग्रामीण विद्युतीकरण, पेयजल, बेहतर शैक्षिक और स्वास्थ्य सुविधाओं, आवास, अन्य लोगों के बीच का उल्लेख करते हैं। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि लोकतंत्र और सुशासन सड़कों, नौकरियों, खाद्य, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य–देखभाल सेवाओं और अन्य भौतिक कल्याण के प्रावधानों के जरिए हासिल करने के प्रथम चरण हैं। भारत में राजनीतिक अधिकारों से पहले आर्थिक वितरण के मुद्दे नियंत्रित व सुनिश्चित करके चलने जरूरी थे। आर्थिक विकास के लिए सत्ता की लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचनाओं के उपयोग अंतिम आदमी को देख कर पुष्ट किये

जाने जरूरी थे। इनसे ही लोकतान्त्रिकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण होती है। लोकतंत्र समूहों और व्यक्तियों के अधिकार प्रदान करता है। यह व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्ति की सही व स्वतंत्रता का समर्थन करता है। जब लोकतंत्र के तहत अंतिम आदमी को लक्ष्य में रख कर योजना–निर्माण तथा क्रियान्वयन होता है तो इसमें ही सरकार लोगों के लिए सही जवाब देने के लिए अधिक उत्तरदायी होती है। इसके अलावा नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

लोकतंत्र की अवधारणा को स्थानीय परिस्थितियों में लागू करने की जरूरत है। जनता की ओर से अधिकार के अधिग्रहण के आधार पर सरकार की एक प्रणाली कानून के शासन के संस्थाकरण नियमों की वैधता पर जोर संप्रभुता, स्वतंत्रता सहित पसंद और पोषित मूल्यों की उपलब्धता और शासन में जवाबदेही : ये ही ऐसे विशेष बिंदु हैं जो स्वतंत्रता को लोकतंत्र की आभा देते हैं। लोकतांत्रिकता एक राजनीतिक व्यवस्था है। यह निष्पक्ष, ईमानदार और आवधिक चुनावों के माध्यम से सुनिश्चित होती है, जिसमें उम्मीदवार मतदान के लिए स्वतंत्र रूप से प्रतिस्पर्धा करते हैं और जिसमें लगभग सभी वयस्क जनसंख्या मतदान के योग्य हैं नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के अस्तित्व में बोलना, प्रकाशित करने का अधिकार, एकत्र होना और व्यवस्थित रहना मूल है, जो राजनीतिक बहस और चुनाव अभियान के संचालन के लिए आवश्यक है। इसमें सामूहिक भागीदारी और बुनियादी व्यक्तिगत स्वतंत्रता शामिल है. लोकतंत्र की मांग है कि लोगों को उनकी सहमति और जनादेश के आधार पर शासित किया जाना चाहिए, स्वतंत्र रूप से एक ऐसी सरकार स्थापित हो जो निर्वाचित और लोगों के प्रति जवाबदेह हो।

गरीबी और विकास के तहत व्यापक रूप से अमानवीयता य असुरक्षा, भ्रष्टाचार, जन निरक्षरता, बेरोजगारी, दूसरों के बीच में लोकतंत्र के लिए वांछनीयता या दूसरों के बारे में मिश्रित भावनाएं पैदा हुई हैं। स्वतंत्र न्यायपालिका, कानून का शासन आदि देश की सार्वजनिक जीवन के हर पहलू में नए विचार की जरूरत है। भ्रष्टाचार जैसी ऐसी खामियों की देश में जड़ें अगर हैं तो केवल शासन नहीं, जनता को भी जागरूक होना होगा। व्यवस्था व सामाजिकता दोनों में ये खामियां चिंतात्मक रूप से यदि दिखाई देती हैं जिनसे राजनीति व व्यवस्था के प्रति चिंता होती है तो इनमें बदलाव होना चाहिए। लोगों के जीवन को बदलने के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था की क्षमता चुनावों के सुचारु संचालन के लिए पर्याप्त व्यवस्था के अपने प्रावधान पर निर्भर करती है जो एक शासन से दूसरी सत्ता के हस्तांतरण में होती है। लोकतंत्र और सुशासन की चुनौतियों और संभावनाओं को देखते हुए भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई पूरी प्रतिबद्धता के साथ की जानी चाहिए। जन–उन्मुख नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी कम करने और असमानता की ओर एक गंभीर अभियान होना चाहिए, जो कि भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य – देखभाल सेवाओं, सुरक्षित पेयजल, बिजली, शिक्षा, रोजगार, दूसरों के बीच एक इस घिसी–पिटी व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन कर दे। श्रेष्ठ राजनीतिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक नेतृत्व के द्वारा नेतृत्व की संस्कृति को पूर्ण प्रतिबद्ध और जनता के लिए निस्वार्थ स्तर पर लाना चाहिए। उन्हें राजनीति को सिर्फ अपने संवर्धन और व्यक्तिगत उन्नयन के साधन के रूप में नहीं देखना चाहिए। शासन के सभी स्तरों पर कड़ी मेहनत, ईमानदारी, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को बढ़ावा देने के लिए देश की मूल्य–प्रणाली के माध्यम से अनुष्ठान–परिवर्तन की आवश्यकता है. सबसे महत्त्वपूर्ण बात है – सदा लोकतंत्र और सुशासन के बीच समन्वय की जांच होती रहनी चाहिए।

दो – समावेशी भारत की समावेशी शिक्षा के सन्दर्भ में मातृभाषा का माध्यम एक जरूरी आधार है। शिक्षा और मातृभाषा के सम्बन्ध पर विचार आवश्यक है. दुनिया में जब अपनी भाषा पर जोर दिया जा रहा, भारत में भी भाषा नीति को जन–नीति की तरह लें. अपनी भाषा व मातृभाषा, में शिक्षा देने से ग्रहणशीलता बढ़ती है तथा तथ्य सम्प्रेषित भी होते हैं. कुछ योरोपीय देश, अमरीका, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया आदि को छोड़ दें तो सभी देश अंग्रेजी के बदले अपनी भाषा में शिक्षा देते हैं. अब भी भारत में इंजीनियरिंग, मेडिकल, वास्तु शिल्प, प्रबंधन आदि की शिक्षा अपनी भाषा में प्रायः नहीं दी जाती. यह एक बड़ी चुनौती है. मातृभाषा को बरतना जरूरी है. यह सारे भाषा वैज्ञानिक बता चुके हैं कि अपनी भाषा में स्मृतियाँ होती है है तथा उनमें जल्दी समझ जा सकता है. अन्य भाषाओं को सीखने में बुराई नहीं किन्तु अपनी भाषा में शिक्षा के अपना ही महत्त्व है. अंग्रेजी की पत्रकारिता उन्हीं बिंदुओं को चिह्नित

नहीं कर सकती जो हिंदी की पत्रकारिता करती है. इसलिए के अलग विन्दु भी होते हैं।

मातृभाषा अपने मां–पिता से प्राप्त भाषा है। उसमें जड़े हैं, स्मृतियां हैं व बिंब भी। मातृभाषा एक भिन्न कोटि का सांस्कृतिक आचरण देती है जो किसी अन्य भाषा के साथ शायद संभव नहीं। मातृभाषा के साथ कुछ ऐसे तत्व जुड़े होते हैं जिनके कारण उसकी संप्रेषणीयता उस भाषा के बोलने वाले के लिए अधिक मार्मिक होती है। यह प्रश्न इतिहास और संस्कृति के वाहन से भी संबद्ध है, जो संप्रेषण की प्रक्रिया के दौरान निर्मित होती है। इस लिए शिक्षा में इसका महत्त्व है।

संस्कृति का कार्य विश्व को महज बिंबों में व्यक्त करना नहीं, बल्कि उन बिंबों के जरिए संसार को नूतन दृ ष्टि से देखने का ढंग भी विकसित करना है। औपनिवेशिकता के दबावों ने ऐसी भाषा में दुनिया देखने के लिए विवश किया गया था जो दूसरों की भाषा रही है। उसमें हमारे सच्चे सपने नहीं आ सकते थे। साम्राज्यवाद सबसे पहले सांस्कृतिक धरातल पर आक्रमण करता है। वह भाषा को अवमूल्यित करने लगता है। हमारी ही भाषा को हीनतर बताता है। लोग अपनी मातृभाषा से कतराने लगते हैं और विश्व की दबंग भाषाओं की प्रभुत्वपरिकता को महिमा मंडित करने लगते हैं। उसी से अभिव्यक्ति करने लगते हैं या बंध जाते हैं और मातृभाषा अंततरू छोड़ने लगते हैं। गर्व से कहते हैं कि मेरे बच्चे को मातृभाषा नहीं आती। यानी शिक्षा का वर्गान्तरण होता जाता है ।

शिक्षा को समझने के कई सूत्र होते हैं। मातृभाषा में अपनी कहावतें, लोककथाएं, कहानियां, पहेलियां, सूक्तियां होती हैं, जो सीधे हमारी स्मृति की धरती से जुड़ी होती हैं। उसमें किसान की शक्ति होती है। उसमें एक भिन्न बनावट होती है। एक विशिष्ट सामाजिक और मनोवज्ञानिक बनावट, जिसमें अस्मिता का रचाव होता है। जब भी किसी महादेश की पीड़ा का बयान होगा तो कोई भी जेनुइन लेखक अपनी मातृभाषा में जितनी तीव्रता और तीक्ष्णता के साथ अपनी बात कह पाएगा, अन्य भाषा में नहीं। आत्म–अन्वेषण की जो गहराई मातृभाषा के साथ संबंध है, अन्य भाषा के साथ नहीं। अन्य भाषा में बात कही जा सकती है, लेकिन वह मार्मिकता संभव नहीं, यह भाषा वैज्ञानिक व सांस्कृतिक तथ्य है।

भाषा के लक्ष्य – बिंदु भी अलग–अलग होते हैं – मातृभाषा अपने मां–पिता से प्राप्त भाषा है। उसमें जड़े हैं, स्मृतियां हैं व बिंब भी। मातृभाषा एक भिन्न कोटि का सांस्कृतिक आचरण देती है जो किसी अन्य भाषा के साथ शायद संभव नहीं। मातृभाषा के साथ कुछ ऐसे तत्व जुड़े होते हैं जिनके कारण उसकी संप्रेषणीयता उस भाषा के बोलने वाले के लिए अधिक मार्मिक होती है। यह प्रश्न इतिहास और संस्कृति के वाहन से भी संबद्ध है, जो संप्रेषण की प्रक्रिया के दौरान निर्मित होती है। इस लिए शिक्षा में इसका महत्त्व है।

संस्कृति का कार्य विश्व को महज बिंबों में व्यक्त करना नहीं, बल्कि उन बिंबों के जरिए संसार को नूतन दृ ष्टि से देखने का ढंग भी विकसित करना है। औपनिवेशिकता के दबावों ने ऐसी भाषा में दुनिया देखने के लिए विवश किया गया था जो दूसरों की भाषा रही है। उसमें हमारे सच्चे सपने नहीं आ सकते थे। साम्राज्यवाद सबसे पहले सांस्कृतिक धरातल पर आक्रमण करता है। वह भाषा को अवमूल्यित करने लगता है। हमारी ही भाषा को हीनतर बताता है। लोग अपनी मातृभाषा से कतराने लगते हैं और विश्व की दबंग भाषाओं की प्रभुत्वपरिकता को महिमा मंडित करने लगते हैं। उसी से अभिव्यक्ति करने लगते हैं या बंध जाते हैं और मातृभाषा अंततरू छोड़ने लगते हैं। गर्व से कहते हैं कि मेरे बच्चे को मातृभाषा नहीं आती। यानी शिक्षा का वर्गान्तरण होता जाता है ।

शिक्षा में मातृभाषा से अपने परिवेश व पर्यावरण का बोध होता है। संबद्धीकरण की प्रक्रिया में मजबूती होती है। अलगाव से बचाव होता है। मातृभाषा से वह मौखिक लय प्रकट होती है, जिसमें प्रकृति और परिवेश के साथ सामाजिक संघर्ष भी प्रकट होता है। उससे साहित्य और संस्कृति के सकारात्मक, मानवीय जनतांत्रिक तत्व भी सामने आते हैं। अपनी संस्कृति की जड़ों में जाकर हमें आत्मविश्वास की अनुभूति होती है। उधार ली हुई भाषा संपूर्णतरू हमारे साहित्य एवं कलाओं का विकास नहीं कर सकते, क्योंकि उनका कंसर्न हमसे रागात्मक रूप से जुड़ा नहीं है। उधार की भाषा का सत्ता केंद्र कहीं और होता है और वह मातृभाषा जैसी आकांक्षा की पूर्ति का वाहक नहीं हो सकता। मातृभाषा में धरती की जो गंध है और कल्पनाशीलता का जो पारंपरिक सिलसिला है जो अन्य

भाषा में संभव नहीं। विशेष रूप से औपनिवेशिकता के साथ थोपी हुई भाषा में तो कतई नहीं। अपनी भाषा में प्राप्त शिक्षा औपनिवेशिकता के विरुद्ध ही जायेगी।

मातृभाषा में जनता के संघर्ष बोलते हैं। कोई व्यक्ति जो मातृभाषा की महत्ता जानता है, उसे पता है कि आंदोलन, लोकछवि, आत्म–अविष्कार और बदलाव के लिए इससे बेहतर कोई माध्यम नहीं। क्योंकि उसका वास्ता उन भाषाओं से पड़ेगा जो वहां की जनता बोलती है और जिनकी सेवा के लिए उसने कलम उठाई है। वह वही गीत गाएगा जो जनता चाहती है। मातृभाषा के माध्यम से अर्थ सीधा–सीधा सरोकार से है। इससे उस माध्यम के सामाजिक व राजनैतिक निहितार्थो का बोध होता है। इस लिए शिक्षा में इसका गहरा औचित्य है।

मातृभाषा के माध्यम से भाषाई अस्मिता के माध्यम से लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को गीतों, नृत्यों, नाटकों, कविताओं आदि के जरिए अभिव्यक्ति दी जा सकती है तथा नई चेतना की आकांक्षा को स्वर दिया जा सकता है। श्रमिक वर्ग व जनसामान्य को मूलतरू उनकी मातृभाषा में अच्छी तरह संबोधित व संप्रेषित किया जा सकता है। मातृभाषा में संरचनात्मक रूपांतर की प्रक्रिया में शिक्षा–संस्कृति की एक निर्णायक भूमिका होती है जो साम्राज्यवाद के नए औपनिवेशिक चरण में विजय के लिए जरूरी है। शिक्षा और संस्कृति में आवश्यक संबंध है और सामाजिक–राजनैतिक–आर्थिक पक्षों से सीधा सरोकार है, इसीलिए शिक्षा में मातृभाषा की प्रभावी भूमिका है।

सच यह है कि संस्कृति अपने आप में इतिहास की अभिव्यक्ति व उत्पाद भी है, जिसका निर्माण प्रकृति और अन्य लोगों के साथ संबंधों पर आश्रित है, इसीलिए वहां मातृभाषा का अंतरंग प्रवेश है। यदि मातृभाषा को आध ाार बनाया गया तो सामुदायिकता में आबद्ध गण अपनी भाषा, साहित्य, धर्म, थिएटर, कला, स्थापत्य, नृत्य और एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करते हैं जो इतिहास और भूगोल को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पहुंचा पाते हैं। शिक्षा और संस्कृति वर्गीय विभेदों को समाज की आर्थिक बुनियाद में व्यक्त करती है। वास्तव में वर्गीय समाजों में दो तरह की शिक्षा के बीच संघर्ष चलता रहता है। जो दो परस्पर संस्कृतियों का प्रसार करती और दो परस्पर विरोधी चेतना या विश्व दृष्टि या विचारधाराओं का वाहक हैं। निश्चित रूप से औपनिवेशिकता से ग्रस्त सांस्कृतिक पक्षों के लिए मातृभाषा की आवश्यकता है ही नहीं। वे अपने लिए वैसी ही भाषा चुनेंगे, जो उनके क्लास को प्रतिनिधित्व दे। इसी देश में कई जगह बच्चे मातृभाषा बोलते हुए दंड पाते हैं तो इसको समझना चाहिए।

समावेशी भारत में शिक्षा का मूल है, वह सौंदर्य बोध, जो हमारी लोक कथाओं, हमारे सपनों, विज्ञान, हमारे भविष्य की कामना में छिपा है। उसका सौंदर्य हमारी धरती की गंध से उपजा होता है। अन्य भाषाओं को अपनाने, उनमें अभिव्यक्ति करने में कोई बुराई नहीं। न ही उनमें ज्ञान–विज्ञान–सामाजिक विज्ञान सीखने व अर्जित करने में कोई संकोच। मूल यह है कि जो ताकतें मातृभाषा को रचनात्मकता से हीन करने व उसे हीनतर करने को सक्रिय रही हैं, उन्हें पहचानने व उनके क्रूर से सावधान रहने की आवश्यकता है। हमारी अस्मिता, साहित्य, सृजनात्मकता का सर्वोच्च वैभव मातृभाषा में ही संभव है। वह असीम है। कल्पना का वह छोर है। वह हमारी धरती का रंग है। उसमें हमारे देशज मूल्य हैं। वह हमारे लिए भविष्यकामी है। मातृभाषा में परंपरा की जीवंतता है। वह किसी और देश की अन्य धारा की मुखापेक्षी नहीं। वह हमारे गोमुख से आती है। उसमें हमारी धूप व हमारी छाँव है। हमारी धमनी व शिराएं उससे रोमांचित होती हें। वह हमारी वर्षो से स्थापित सभ्यता की केंद्रीयता रखती है। वह हमारा गहन आकर्षण प्रीति व मुक्ति है। उसमें हमारे लिए गहन आवेग भी है। वह हमारी परंपरा में हमें परिष्कृत करती चलती है। वह हमें जो मिठास देती है, अन्यथा रूप से दूसरी भाषा नहीं दे सकती। मातृभाषा जीवंत अभिव्यक्ति व शिक्षा का का शायद सबसे सुंदर मध्यम है। मातृभाषा न केवल सहज शिल्प है अपितु सबसे अर्थपूर्ण संभावना है। अन्य भाषाओं के प्रति उदार होना मातृभाषा का सबसे उज्जवल पक्ष होना चाहिए । मातृभाषा में कट्टर न होना और जनपक्षधर होना उसका समंजन पक्ष है। शिक्षा के माध्यम से उसमें मनुष्य की स्मृतियां, बिंब एवं समझ अधि ाक सुरक्षित व पल्लवित हैं।

❑❑

समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समकालीन परिदृश्य

डॉ. सरोज यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–शिक्षा संकाय
चौ0 चरण सिंह पी0जी0 कॉलेज, हेंवरा, इटावा

नवीन कुमार यादव
एम0एड0 (छात्र)
चौ0 चरण सिंह पी0जी0 कॉलेज, हेंवरा, इटावा

शिक्षक शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग होता जिसके संरक्षण एवं निर्देशन में छात्रों की शिक्षा सम्पन्न होती है। बच्चे शिक्षक को अपने आदर्श रूप में देखते हैं किन्तु यदि शिक्षक बच्चे के समाज, संस्कृति परिवेश के प्रति संवेदनशील नहीं हैं, बच्चे के नजरिये का सम्मान नहीं करता है, समूह विशेष के प्रति हेय दृष्टिकोण रखता है तो बच्चे का अपने समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति नजरिया बदल जाता है और बहुधा वह स्वयं को हीन–दीन समझने लगता है। वंचित वर्ग एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ अक्सर ऐसा देखने में आता है। अतः यह बच्चे धीरे–धीरे विद्यालय से दूरी बना लेते हैं। साथ ही साथ विद्यालयी पाठ्यचर्या की खामिया तथा दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली भी समावेशी शिक्षा प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है।

हमारी शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को एक सशक्त औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है और परीक्षा में असफलता के लिए पूरी तरह से बच्चों को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। जबकि सीखने–सिखाने के तौर तरीके, शिक्षण अधिगम सामग्री, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय के माहौल एवं विद्यालय के प्रशासन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। परीक्षा के भय एवं असफलता से बड़ी संख्या में बच्चे शिक्षा तंत्र से बाहर हो जाते हैं।

भारत में समावेशी शिक्षा की दशा को विभिन्न आँकड़ों के माध्यम से दर्शाया है, वर्ष 2011 की जनगणनानुसार भारत में 0 से 19 वर्ष आयु वर्ग के विकलांग व्यक्तियों की कुल संख्या 77,96,921 है, जो कि विभिन्न विकलांगता से ग्रस्त हैं। अतः समावेशी शिक्षा को सार्थक रूप देने के लिए इसके समक्ष उत्पन्न होने वाली चुनौतियों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। समावेशी शिक्षा के समक्ष चुनौतियों में प्रमुख रूप से शिक्षकों, अभिभावकों एवं समाज की मनोवृत्ति, विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, केन्द्र एवं राज्य की योजनाओं का क्रियान्वयन ठीक प्रकार से न होना आदि। इन सभी चुनौतियों को दूर करते हुए समावेशी शिक्षा को एक दिशा प्रदान करना।

भारत में समावेशी शिक्षा को सफल बनाने के लिए कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है जिसमें यह निश्चित करना कि 18 वर्ष की उम्र तक के विकलांग बच्चों को शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराकर निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाए एवं विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालयों में समेकित किया जाये। सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों का क्रियान्वयन शहरी क्षेत्रों तक हीं सीमित रह जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका क्रियान्वयन उचित रूप से नहीं हो पाता है।

समावेशित शिक्षा का अर्थ, इसमें आने वाली मुश्किलें और उन मुश्किलों से पार पाने के तरीकों को आसानी से समझा जा सकता है। कोई भी बात आगे करने से पहले यह समझ लें कि बालक की दृष्टिबाधिता के कारण उसकी अध्ययन सम्बन्धी आवश्यकतायें कुछ भिन्न हैं, जैसे अन्य बच्चों की तरह वह देखकर पढ़ाई नहीं कर सकता लेकिन सुनकर एवं छूकर वह बहुत कुछ सीख सकता है। इस तरह से उसकी आवश्यकता अन्य बच्चों से भिन्न है। इसी तरह से कुछ बच्चों को सुनने की समस्या होती है, कुछ के हाथ–पैर में कुछ विकृति होती है, कुछ का विकास पिछड़ा हुआ होता है तो कुछ को सीखने सम्बन्धी कुछ खास कठिनाइयाँ होती हैं। इन सभी तरह की कठिनाइयों के कारण सीखने के तरीकों में भिन्नता होती है। हर एक विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी की समस्या और उसके सीखने का तरीका भिन्न हो सकता है। इन भिन्नताओं के बाद भी उन्हें सामान्य वातावरण में शिक्षा देना ही सही मायनों में समावेशित शिक्षा है। (यहाँ यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों

के लिए निःशक्त, विकलांग, भिन्न क्षमता वाले बच्चे, दिव्यांग जैसे शब्द प्रचलित हैं। दिव्यांग एक सर्वाधिक नवीन पद है जो इन बच्चों के लिए प्रचलन में आना प्रारम्भ हुआ है।)

समावेशी शिक्षा – भारत के मौलिक अधिकार 21(।) में यह उल्लेख है कि 14 वर्ष तक सभी बच्चों को शिक्षा उपलब्ध करायी जायेगी। ऐसा विद्यालय जिसमे सामान्य बच्चों के साथ–साथ विकलांग बच्चे भी अध्ययन कर रहे है उन्हें समावेशी विद्यालय कि श्रेणी में रखा जाता है। भाषा में विशेष विद्यालय की कमी को पूरा करने के लिए विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालय में प्रवेश देते से उनको घर के पास अपनी सुविधा में विद्यालय उपलब्ध होता है।

समावेशी शिक्षा का आरम्भ 19वीं शताब्दी में हुआ किन्तु इस विचार को समाज में पहले स्वीकार नहीं किया गया। 1974 में विकलांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा योजना का प्रस्ताव रखा गया। 1992 में भारत सरकार शिक्षा योजना सी.एस.आई.ई.डी. समावेशी शिक्षा के लिए केन्द्रीय योजना को लागू किया गया। जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि सभी विकलांग बच्चों को प्राथमिक शिक्षा तक सामान्य विद्यालय में प्रवेश दिया जायेगा तथा जिनको सामान्य विद्यालयों में परिवेश होगी उन्हें विशेष विद्यालय में डाल दिया जायेगा एस.एस.ऐ. कार्यक्रम के द्वारा 2008 तक सभी को प्राथमिक शिक्षा देने का कार्यक्रम शुरू किया गया जिसमें विकलांग बच्चे भी शामिल है।

समावेशी समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता के कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है। समाज के सभी वर्गों की सहभागिता के बिना समावेशी समाज का विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा समावेशन की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक बच्चा लोकत्रांतिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका के लिए तैयारी करता है, वहीं दूसरी ओर समावेशन में बाधक तत्वों से निबटने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है।

समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों ओर जो वैचारिक, दार्शनिक, सामाजिक और शैक्षिक ढ़ाँचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अर्न्तक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है अर्थात् व्यक्ति अपने जन्म से मृत्युपर्यन्त तक जो कुछ भी सीखता है और अनुभव करता है वह शिक्षा ही है। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण व प्रत्येक घटना हमें कुछ न कुछ नवीन अनुभव प्रदान करते हैं। सीखने व अनुभवों में वृद्धि का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है। शिक्षा मानव जीवन को प्रगति से जोड़ने की मुख्यधारा है शिक्षा और विकास के सम्बन्ध में डॉ0 एस0एस0 अल्टेकर का कहना है कि–"शिक्षा को प्रकाश व शक्ति का ऐसा श्रोत माना जाता है जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक, आध्यात्मिक शक्तियों व क्षमताओं का निरन्तर व सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे सम्भाव्य को परिवर्तित करती है व उसको उत्कृष्ट बनाती है।" विद्वानों के अनुसार शिक्षा मनुष्य को वह सब प्राप्त कराने में सहायता कराती है जिसके कि वह योग्य होता है और जिसकी वह आकांक्षा करता है। यह मनुष्य के भूत वर्तमान व भविष्य तीनों से सम्बन्धित होती है। यह मनुष्य को उसके अतीत से परिचित कराती है। अतीत की त्रुटियों से सबक लेते हुए वर्तमान में जीने के योग्य बनाती है और दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाकर भविष्य का निर्माण करने की क्षमता प्रदान करती है।

समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम भी है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। यह इस बात को दर्शाता है कि सभी युवा चाहे वो सक्षम हो या विकलांग, उन्हें सीखने योग्य बनाया जाए। इसके लिए एक समान स्कूल पूर्व व्यवस्था, स्कूलों और सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करना बेहद जरूरी है। प्रशिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए यह प्रक्रिया सिर्फ लचीली शिक्षा प्रणाली में ही सम्भव है। समावेशी शिक्षा ऐसी

शिक्षा प्रणाली है जिसमें मूल्यों, ज्ञान प्रणालियों और संस्कृतियों में प्रक्रियाओं और संरचनाओं के सभी स्तरों पर समावेशी नीतियों और प्रथाओं के सृजन के माध्यम से बुनियादी मानव और शारीरिक, संवेदनशील, बौद्धिक या स्थितिजन्य हानियों के साथ सभी नागरिक अधिकारों को प्राप्त किया जाता है। स्कूल शिक्षा (एनसीईआरटी, 2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ने रूपरेखा, सामग्री, प्रस्तुति और लेन–देन की रणनीतियों में उचित संशोधन करने के लिए शिक्षकों को तैयार करने और अनुकूल मूल्यांकन प्रक्रिया सीखने के विकास के लिए विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ शिक्षार्थियों के लिए समावेशी स्कूलों की सिफारिश की है।

समावेशी शिक्षा का अर्थ विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालयों के साथ जोड़ने की प्रक्रिया है उन बच्चों के अन्दर छुपी प्रतिभाओं को समाज के सामने लाने के लिए यह शिक्षा का अभिनव प्रयास है जिससे वह खुद को समाज से अलग नहीं समझे।

वर्तमान में विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों के लिए शिक्षा की दो प्रकार की व्यवस्थाएँ हैं। एक वह जिन्हें हम विशेष विद्यालय कहते हैं, जो ज्यादातर शहरों मे स्थित आवासीय हैं, जिनका उदेद्श्य केवल एक प्रकार के विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है, और दूसरा तरीका है कि उन्हें अन्य सभी बालकों के साथ आस–पड़ोस के सामान्य विद्यालय में भेजा जाये और वही उनकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था की जायें। यदि बालक इस प्रकार के विद्यालय में जाता है तो वह अपने अन्य भाई–बहनों के समान अपने माँ बाप के साथ रह सकता है। दूसरा इस प्रकार के विद्यालयों में सभी बालक एक दूसरे से मिलजुल कर एक दूसरे से सीख सकते है। इसके अलावा बालक को बाद में अपने आपको दुनिया में समायोजित करने में सहायता मिलती है क्योंकि आखिरकार उसको रहना तो उसको उसी समाज में है जिसका वो हिस्सा होता है इसलिए क्यों न बालक को प्रारम्भ से ही उस माहौल में रखा जाये जहाँ उसे विद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् रहना है? इसलिए अच्छा है कि आरम्भ से बालक को मुख्यधारा वाले ऐसे विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाये जहाँ अन्य सामान्य बालक भी जाते है। इस अवधारणा के साथ समावेशित शिक्षा व्यवस्था प्रणाली का आरम्भ हुआ। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें प्रत्येक बालक को चाहे वो विशिष्ट हो या सामान्य बिना किसी भेदभाव के, एक साथ, एक ही विद्यालय में, सभी आवश्यक तकनीकों व सामग्रियों के साथ, उनकी सीखने सिखाने के जरूरतों को पूरा किया जायें।

समावेशित शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व :– शिक्षक अभिवृत्ति को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रभावों के अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई–

- समावेशित शिक्षा प्रत्येक शिक्षक एवं बालक के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ, उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।
- प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है।
- समावेशित शिक्षा के क्रियान्वयन से व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के सामंजस्य स्थापित करने में पूर्ण सहयोग मिलता है।
- समावेशित शिक्षा सम्मान और अपनेपन की विद्यालय संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए अवसर प्रदान करती है।
- समावेशित शिक्षा बालक को अन्य बालकों के समान कक्षा गतिविधियों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है।
- समावेशित शिक्षा शिक्षकों की शिक्षण गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी सम्मिलित करने की वकालत करती है।

हालाँकि आजादी के बाद की सभी सरकारों ने देश के विकास पर बहुत जोर दिया। लेकिन विकास मॉडल की अनुपयुक्तता के कारण विकास में जनसामान्य की भागीदारी, सभी वर्गों का विकास और वंचित और पिछड़े तबकों का उन्नयन बाधित हुआ। संविधान के हवाले से लंबे अरसे तक पक्षपातपूर्ण विकास पर जोर दिया गया।

हालाँकि यह पक्षपात गरीबों, पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक समुदायों के पक्ष में ही किया गया, ताकि वे विकास की मुख्यधारा में शामिल हो सकें। किन्तु जिस सामाजिक न्याय, समता और समानता की अपेक्षा के साथ पक्षपातपूर्ण विकास प्रक्रिया का क्रियान्वयन हुआ, इसके परिणामस्वरूप वंचितों, शोषितों, पिछड़ों और उपेक्षितों की एक नई जमात पैदा हो गई।

- आरक्षण और सब्सिडी के माध्यम से वंचितों का विकास संभव नहीं हो पा रहा है।। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर पक्षपातपूर्ण विकास की कोशिशों के कारण तथाकथित सवर्ण जातियों और बहुसंख्यक वर्ग की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से में असंतोष और भटकाव की स्थिति निर्मित हुई।
- अनेक क्षेत्रों में जाति और वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। कई वंचित समूहों को सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण परावलम्बी बन जाना।
- विकास की धारा से वंचित ये लोग जो विपन्न थे, और अधिक विपन्न हो रहे हैं। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली जनसंख्या में लगातार वृद्धि दर्ज होना। यद्यपि सुधार के अनेक प्रयास हुए, लेकिन सभी नाकाफी सिद्ध हो गये।
- अनेक लोग वर्षों से लिंग, जाति, नस्ल, सम्प्रदाय, आयु और क्षेत्र के कारण विकास की प्रक्रिया से वंचित रहे हैं। इसके कारण देश और दुनिया में असमानता और भेदभाव का न सिर्फ विस्तार हुआ, बल्कि यह और अधिक गहरा भी हुआ। दुनिया के 10 प्रतिशत धनी लोगों का अधिकार 85 प्रतिशत संसाधनों पर हो गया, जबकि 50 प्रतिशत गरीब लोगों को एक प्रतिशत संसाधन ही उपलब्ध हैं। भारत में भी कमोबेश इसी प्रकार की स्थिति दिखाई देना।
- अनेक पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी आर्थिक–सामाजिक विषमता की जैसे जवाहर रोजगार योजना, समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण आवास स्कीम, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, इन्दिरा गाँधी गरीबी उन्मुलन कार्यक्रम, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी जैसी अनेक योजनाओं का सुचारू रूप से न चल पाना।
- भाजपा नीति राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन एनडीए सरकार ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में समावेशी विकास अर्थात् सर्वसमावेशी विकास की प्रक्रिया अपनाई है। इस सरकार का नारा है– सबका साथ, सबका विकास। इस नारे का राजनीतिक और समाजशास्त्रीय अभिप्राय है कि विकास की प्रक्रिया में जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, और सम्प्रदाय के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जायेगा जो यथार्थ में भिन्न है।
- हालाँकि समावेशी विकास भारत के लिए कोई नई अवधारणा नहीं है, सदियों पूर्व यहाँ सर्वे भवन्तु सुखिनः की सामाजिक परिकल्पना व्यक्त की गई थी। लेकिन, एक नई विश्व व्यवस्था की संरचना के संदर्भ में, विकास के एक आयाम के रूप में समावेशी विकास को देखने–समझने की आवश्यकता है। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अपेक्षा समावेशी विकास ही है। इसके अन्तर्गत 8 प्रतिशत विकास दर हासिल करने का लक्ष्य है। समावेशी विकास में निर्धनता में कमी लाने का प्रयास, रोजगार वृद्धि तथा रोजगार में गुणात्मक व संख्यात्मक वृद्धि, कृषि विकास, औद्योगिक विकास, सामाजिक विकास, क्षेत्रीय विषमता में कमी, पर्यावरण संरक्षण और आय के समान वितरण पर विशेष जोर दिया जायेगा। ऐसा योजना का स्वरूप है।

लेकिन इसके बावजूद आज भी समावेशी शिक्षा में शिक्षक पूर्णरूपेण हर जगह सही तरीके से अपना योगदान नही दे पा रहे है जिससे प्राथमिक शिक्षा में पढ़ने वाले बच्चों तो प्रभावित हो ही रहे है साथ ही प्राथमिक शिक्षा के सभी साधनों पर इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है। अतः शोधार्थी द्वारा यह जानने की कोशिश की गयी है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समावेशी शिक्षा का प्राथमिक शिक्षकों की अभिवृत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है?

- सक्सेना, रीना (2007) ने "सर्वशिक्षा अभियान महज एक छलावा" पर शोध प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत किये गये सरकारी प्रयासों की वास्तविकता जानना था जिसमें यह निष्कर्ष निकला कि–

- 2004–05 में संग्रहीत आँकड़ों के अनुसार अकेले वाराणसी मण्डल में प्राथमिक शिक्षकों के 20048 पद अभी भी रिक्त हैं। शिक्षकों की वैसे भी कमी है। उस पर भी उन्हें अन्य कार्यों में लगा दिया जाता है जिसके कारण शैक्षिक कार्य चौपट हो जाता है।
- भारत में शिक्षा पर खर्च अन्य देशों की अपेक्षा काफी कम है।
- सर्वशिक्षा अभियान के तहत जहाँ बच्चों को किताबें दी जाती हैं वही मध्याह्न भोजन योजना के तहत पका पकाया भोजन भी दिया जाता है फिर भी हम अभी लक्ष्य से कोसों दूर हैं।

- अग्रवाल, उमेशचन्द्र (2008) द्वारा सर्वशिक्षा अभियान योगदान और अपेक्षाएं पर किए गये अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया कि–

- सर्वशिक्षा अभियान के संचालन के फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन की दर में 14.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
- सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों में 8 लाख 10 हजार (8,100,00) शिक्षक नियुक्त किये गए।
- वर्ष 2007–08 में 6 करोड़ 40 लाख पुस्तकों का वितरण निःशुल्क हुआ।

साहनी (2014) ने ''शिक्षण अभ्यास के द्वारा शिक्षक की प्रभावशीलता के विकास का अध्ययन'' एन.एन.डी. टी. कॉलेज ऑफ एजूकेशन, पूना, महाराष्ट्र। इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य थे–

1. यह पता लगाना कि शिक्षण अभ्यास के समय कौन से पाठ में सामान्य रूप से शिक्षा की प्रभावशीलता उच्च रही।
2. जब Behaviour Components एक साथ हो तो सामान्य रूप से शिक्षक की प्रभावशीलता को निश्चित करना।
3. अनुभवी तथा बिना अनुभव के विभिन्न विषयों के प्रशिक्षक की सहमति के अन्तर का पता लगाना।
4. यह निश्चित करना कि क्या Behaviour Components विभिन्न विषयों के पक्षों में समान रूप से प्रभावशाली थे।
5. यह परीक्षण करना कि क्या प्रशिक्षण सभी Behaviour Components के प्रारम्भिक विषयों के पक्ष में समान रूप से प्रभावशाली थे।

एन0एन0डी0टी0कालेज ऑफ एजूकेशन फार वूमन पूना में गृह एवं गुजराती को छोड़कर अन्य विषयों के 99 प्रशिक्षकों के न्यादर्श का तुलनात्मक अध्ययन किया था। इसके लिए जिस प्रपत्र का प्रयोग किया गया था, उनमें 21 व्यावहारिक अवयव दिये थे। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष निम्नांकित हैं–

1. जिस विषय में विषय विशेषज्ञ में उच्च गुणवत्ता प्रतिशत देखा, इस मामले में सम्बन्ध उच्च पाया गया।
2. अनुभवी शिक्षकों के मामले में सामान्य रूप से शिक्षक का प्रभाव विज्ञान को छोड़कर सभी विषयों में एक निश्चित स्तर तक पहुँच गया।
3. बिना अनुभव वाले शिक्षकों के समूह में यह स्तर अंग्रेजी, हिन्दी व मराठी के मामले में 7 या 8 पाठ तक पहुँचा।
4. प्रशंसनीय सुधार के मामले में जिसका तात्पर्य शिक्षण स्तर से था और उपर्युक्त सभी अनुभवी शिक्षकों के समूहों के मामले में विज्ञान में उच्च बारम्बरता प्रदर्शित देखा गया।
5. अनुभवी एवं बिना अनुभवी शिक्षकों के दोनों समूहों में अंग्रेजी मराठी हिन्दी तथा इतिहास में यह स्तर मूल्य 7वे तथा 8वे पाठ तक पहुँच गया। विज्ञान के मानों में दोनों समूहों में एक स्तर तक शीघ्र पहुँच गया।
6. शिक्षण प्रभावशीलता के महत्वपूर्ण तत्व जो देखे गये थे वे उसकी कक्षा में प्रभावशाली ढंग से बोलने की योग्यता, प्रेरित करने की योग्यता, श्यामपट्ट का प्रयोग तथा निश्चित व्यक्तित्व प्रौढ़ता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के प्रमुख सुझाव :

मानव संसाधन मंत्री ने संसद के बजट अधिवेशन में वायदा किया था कि वे वर्षाकालीन अधिवेशन में शिक्षा

नीति के क्रियान्वयन के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे। अतः उन्होंने प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, विशेषज्ञ एवं वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों को सम्मिलित करके 23 कार्यदल गठित किय। इनके कार्य क्षेत्र निम्नांकित थे–

1. शिक्षा प्रणाली को क्रियाशील बनाना।
2. विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की विषयवस्तु एवं प्रक्रियायें
3. महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा
4. ग्रामीण विश्वविद्यालय तथा संस्थान
5. शिक्षा प्रबन्ध
6. अध्यापक तथा उनका प्रशिक्षण
7. अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लिए शिक्षा
8. अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा
9. मूल्यांकन प्रक्रिया तथा परीक्षा प्रणाली में सुधार।
10. खेल, शारीरिक शिक्षा तथा युवक
11. विकलांगों की शिक्षा
12. प्रौढ़ एवं निरन्तर शिक्षा
13. पूर्ण बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा
14. प्राथमिक शिक्षा (आपरेशन ब्लैक बोर्ड तथा नॉन फॉरमल एजूकेशन)
15. माध्यमिक शिक्षा तथा नवोदय विद्यालय
16. सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य तथा आगामी नीति का क्रियान्वयन
17. मानव संसाधन नियोजन एवं व्यवसायों से डिग्रियों को असम्बद्ध करना।
18. प्रचार माध्यम तथा शैक्षिक प्रौद्योगिकी (शिक्षा में कम्प्यूटर का उपयोग सहित)
19. अनुसंधान तथा विकास
20. तकनीकी या प्रबन्धकीय शिक्षा
21. खुले विश्वविद्यालय
22. उच्च शिक्षा
23. शिक्षा का व्यावसायीकरण

इन कार्यदलों ने अपना प्रतिवेदन जुलाई 1986 में प्रस्तुत किया। 20 जुलाई, 1986 को राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में शिक्षा सचिवों तथा प्रशासकों की बैठक में विचार–विमर्श हुआ।

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत विभिन्न सुधार लाने हेतु सुझाव :

1. प्राथमिक शिक्षा– शिक्षा सभी को सुलभ हो। सभी बालक–बालिकाओं को गुणात्मक दृष्टि से अपेक्षित निम्नतम स्तर की शिक्षा अवश्य प्राप्त होनी चाहिए। अपव्यय और अवरोधन को रोकने से लिए आवश्यक कदम उठाये जायेंगे। प्राथमिक विद्यालयों को उन्नत बनाने के लिए आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना अपनायी जायेगी तथा बाल–केन्द्रित शिक्षण पर बल दिया जायेगा तथा उपचारात्मक शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी।

2. माध्यमिक शिक्षा– माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान, मानविकी और सामाजिक विज्ञानों का ज्ञान कराया जाये। प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालयों की स्थापना की जाये और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के द्वारा शैक्षिक मानकों में समानता लायी जाये। माध्यमिक शिक्षा पर परीक्षा होने वाले संयोग, व्यक्तिनिष्ठा, रटाई आदि से ध्यान हटाकर सतत् एवं सम्पूर्ण मूल्यांकन प्रणाली अपनायी जावे। निष्पक्षतापूर्वक योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाये और माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण किया जाये।

3. उच्च शिक्षा– उच्च शिक्षा उन्हें ही प्रदान की जाये जो इसके योग्य हैं, नौकरी को डिग्री से अलग कर दिया जाये। स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रशिक्षण के आधार पर ही योग्य छात्राओं को प्रवेश दिया जाये। अध्यापकों

की कार्यक्षमता का मूल्यांकन उनके कृत कार्यों एवं दायित्व बोध के आधार पर किया जायेगा।

4. महिला शिक्षा– महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाये। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया जाये। पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–पुस्तकों में जो लिंग भेद दिखाई पड़ता है, उसे दूर किया जाये।

5. प्रौढ़ शिक्षा– 15 से 35 आयु वर्ग के प्रौढ़ों के साक्षरता कार्यक्रम के साथ सतत् शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम निर्धारित किया गया है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, नियोक्ताओं और श्रमिकों को शिक्षा, पुस्तक एवं वाचनालयों का विस्तार, रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों के माध्यम से व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा।

6. पिछड़े वर्गों की शिक्षा– गरीबी और अन्धविश्वास के फलस्वरूप पिछड़े वर्ग के लिए कई योजनाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की शैक्षिक सुविधायें प्रदान की जायेंगी। उनके लिए छात्रावास और आश्रमों की योजना के साथ ही निःशुल्क भोजन, वस्त्र, शिक्षण सामग्री और छात्रवृत्तियों की सुविधा दी जायेगी। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए एक निश्चित स्तर तक शिक्षण की व्यवस्था की है। अतः अन्धे, मूक–बधिर तथा विकलांग बच्चे भी इस उपलब्धि के अन्तर्गत आ जाते हैं।

7. तकनीकी शिक्षा– नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत यह बात कही गयी है कि तकनीकी शिक्षा के प्रशिक्षण में मशीनों एवं साधनों की अनुपलब्धताएँ, संस्थाओं में अध्यापक नहीं आते हैं, ग्रामों में तकनीकी संस्था उत्साहपूर्वक कार्य नहीं कर रही है। आई.आई.टी आदि संस्थाओं से निकले छात्र रोजगार हेतु विदेश चले जाते हैं। अतः इन समस्याओं का निदान करने का प्रयास किया जायेगा।

8. शिक्षक और शिक्षक शिक्षा– शिक्षक शिक्षा का पाठ्यक्रम आधुनिक आवश्यकता के अनुरूप नहीं है। चयन विधि, संख्या और गुणवत्ता की दृष्टि से भी असंगतियाँ पाई जाती हैं। यह शिक्षा नौकरी की ओर झुकी हुई है। शिक्षक अध्ययन और अध्यापन से उदासीन हैं। पदोन्नतियाँ सेवा अवधि के आधार पर होती हैं, योग्यता के आधार पर नहीं। अतः आयोग ने शिक्षकों की शिक्षा के उचित प्रबन्ध के लिए सुझाव दिये।

9. प्रबन्ध शिक्षा– प्रबन्ध शिक्षा में सुधार हेतु प्रबन्ध संस्थाओं, विश्वविद्यालयों के प्रशासन विभागों और सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तिगत और सार्वजनिक संस्थाओं के लोगों के सम्पर्क में होना चाहिए।

10. परीक्षा सुधार– नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत मूल्यांकन को अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. ट्रेज और किगंडम (2001) द्वारा "स्कूलों में प्रवेश दर में वृद्धि" अंक 11, नवम्बर (2001), योजना, नई दिल्ली।
2. सीमेट भ्रमण (2005), राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान, एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
3. सक्सेना, रीना (2007), ''सर्वशिक्षा अभियान महज एक छलावा'', पी–एच0डी0 शिक्षाशास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी।
4. अग्रवाल, उमेश चन्द्र (2008), ''सर्वशिक्षा अभियान एवं योगदान'', आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
5. यादव, मोना (2008), 'मध्यान्हन भोजन निःशुल्क पाठ्यपुस्तक'' एम0एड0 लघुशोध ग्रन्थ, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
6. साहनी (2014) ने ''शिक्षण अभ्यास के द्वारा शिक्षक की प्रभावशीलता के विकास का अध्ययन, पी–एच0डी0 एन.एन.डी.टी. कॉलेज ऑफ एजूकेशन, पूना, महाराष्ट्र।
7. स्नेहलता (2014) ''पश्चिमी उत्तर प्रदेश में शिक्षा सुविधाएँ–मिथक एवंम व्यावहारिकता'' पी0एच0डी0 चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।
8. Buch, M. B. (1988-92), Fifth survey of educational research, New Delhi : NCERT.
9. Chandrika, D.C. (1989), The role of Anganwadi experience on the cognitive development of children, Tirupati : Sri Venkateswar University.

❑❑

बौद्धिक अक्षम बच्चों का वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम (आई0ई0पी0) (समावेशन की ओर एक कदम)

श्रीमती विभा तिवारी
विशेष शिक्षक, मानसिक मन्दितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डी0एस0एम0एन0आर0 विश्वविद्यालय, लखनऊ

परिचय – बौद्धिक अक्षमता वह स्थिति है जिसके कारण मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा अन्य विकासात्मक कौशल भी बाधित हो जाते हैं विकासात्मक देरी होने के कारण यह बच्चे अपनी आयु के अन्य सामान्य बच्चों की अपेक्षा किसी भी कार्य को करने में ज्यादा समय लेते है। विभिन्न कारणों से मस्तिष्कीय कोशिका क्षतिग्रस्त होने के कारण इनका शारीरिक एंव मानसिक विकास कमजोर हो जाता है निर्देशों को समझने और उसके अनुसार कार्य करने में कठिनाई होती है। इन बच्चों को लघु, सरल, स्पष्ट तथा बार–बार दोहराने वाले निर्देशों की आवश्यकता होती है।ऐसे बच्चों को सिखाने एवं प्रशिक्षण देने के लिए वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम का निर्माण किया जाता है यह एक ऐसा प्रलेख है जोकि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के कार्यात्मक स्तर को ध्यान में रखकर विभिन्न विशेषज्ञो द्वारा तैयार किया जाता है।

उद्देश्य – वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बौद्धिक रूप से अक्षम बच्चे को उसकी कार्यात्मक क्षमता के आधार पर शिक्षण एंव प्रशिक्षण कार्यक्रम उपलब्ध कराना है बौद्धिक अक्षम बच्चे के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसे उपयुक्त शिक्षा एवं प्रशिक्षण मिलना चाहिए, जिसके माध्यम से वे यथासम्भव आत्मनिर्भर बन सके।प्रत्येक बौद्धिक अक्षम बच्चे की आवश्यकताओं में भिन्नता पायी जाती है – इसीलिए बौद्धिक अक्षम छात्रों को इस प्रकार प्रशिक्षण देना चाहिए जो कि उन्हें यथासम्भव आत्मनिर्भर बना सके। वह जिस वातावरण में रहता है उसके अनुसार ही उसके लिए लक्ष्य का चयन किया जाता है। एक बौद्धिक अक्षम बच्चे को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जो भी क्रिया–कलाप चुने जाते है वे एक वातावरण से दूसरे वातावरण में भिन्न होते है उदाहरण के लिए शहर में रहने वाले बच्चों के क्रिया–कलाप गॉव या झोपडपट्टी में रहने वाले बच्चों से भिन्न होते है। बहुत से अन्य कारक भी होते हैं जो कि छात्र की वैयक्तिक आवश्यकताओं को भिन्न बनाते है जैसे–

- सामाजिक व आर्थिक स्तर
- अभिभावकगण की प्रत्याशा एवं सहयोग
- बच्चे का अधिगम स्तर
- बच्चे की रूचि एवं अभियोग्यता

इसलिए यहां तक कि समान आयु लिंग एवं समान बुद्धिलब्धि के बच्चों को आत्म–निर्भर होने के लिए भिन्न–भिन्न कार्यों को सीखने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार शैक्षिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में वैयक्तिक अन्तर है। व्यक्तिगत आवश्यकताओं को केवल वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम या प्रशिक्षण के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम के चरण – वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम को बनाने के लिए उस जानकारी को प्राप्त करना जरूरी है जो कि कार्यो को चुनने एवं सिखाने के लिए उपयोगी हो। किसी भी बौद्धिक अक्षम बच्चे के लिए एक वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम बनाने के कुछ व्यवस्थित चरण है जो कि निम्नलिखित हैं–

1. सामान्य पृष्ठभूमि की जानकारी एकत्र करना – इसके अर्न्तगत निम्नलिखित सूचनाएं एकत्र की जाती है–

- पारिवारिक पृष्ठभूमि।
- सामाजिक आर्थिक स्तर।
- गर्भावस्था से जुड़ी जानकारी।
- विकासात्मक इतिहास।
- चिकित्सीय इतिहास।
- शैक्षिक इतिहास।
- परिवार में विकलांगता का इतिहास।

सामान्य पृष्ठभूमि सम्बन्धी जानकारी प्रशिक्षण योजना बनाने के पहले हमें बच्चे को पूर्णतः समझने में सहायक होती है।

2. विभिन्न कौशलों का आकलन करना – वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम बच्चे के वर्तमान कार्यात्मक स्तर के आकलन के आधार पर सम्पूर्ण कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाता है। इसके अर्न्तगत बच्चे के विभिम्न कौशलों का आंकलन किया जाता है जैसे–गामक कौशल, सामाजिक कौशल, संज्ञानात्मक कौशल, शैक्षिक कौशल आदि। यह आंकलन वार्षिक लक्ष्य एवं लघुकालिक लक्ष्यों के चयन करने में सहायक होता है। सामान्य भाषा में आंकलन के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें निहित हैं –

- बच्चा क्या करने में समर्थ है।
- यदि बच्चा उसकी समान आयु वाले बच्चों के साथ तुलना की जाए तो वह क्या करने में समर्थ नहीं है।
- बच्चा किसी कार्य को कितनी आसानी से सीखता है।
- व्यवहारगत समस्याएँ जिन्हें बच्चा प्रदर्शित करता है।
- वे चीजे जिन्हें बच्चा सबसे ज्यादा पसन्द या न पसंद करता है।

ये जानकारी विभिन्न चेकलिस्टों के माध्यम से एकत्र की जाती है जिसके माध्यम से बच्चे के विभिन्न कौशल क्षेत्रों में वर्तमान कार्यात्मक स्तर को ज्ञात करने में सहायता होती है।

चेकलिस्ट को विभिन्न प्रकार के कौशलों के मापन के लिए अलग–अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– ग्रास मोटर, फाइन मोटर, स्वयं सहायता, शैक्षिक, सामाजिक इत्यादि। प्रत्येक बच्चें के लिए अलग–अलग चेक लिस्ट चाहिए। बच्चे का आकलन करके उसके व्यवहार का परीक्षण एवं निरीक्षण किया जा सकता है।

3. वार्षिक लक्ष्य का निर्धारण करना – वार्षिक लक्ष्य उस लक्ष्य को प्रदर्शित करता है जिसे किसी भी शैक्षिणक वर्ष के अन्त में बच्चे के सीख जाने की प्रत्यासा की जाती है। वार्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण वर्ष के दौरान एक क्रम से क्रियाएं सिखायी जाती है। वार्षिक लक्ष्य का निर्धारण करते समय एक विशेष अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- बच्चे की पूर्ण उपलब्धि।
- बच्चे का वर्तमान निष्पादन स्तर।
- चयनित किए गए लक्ष्यों की उपयोगिता।
- बच्चे की आवश्यकताओं की प्राथमिकता।
- अभिभावकगण की संलग्नता अथवा सहयोग।

एक बच्चे का पुराना वैयक्तिक प्रशिक्षण कार्यक्रम देखने के बाद कोई भी उस विशेष बच्चे के विभिन्न कौशल

क्षेत्रों में प्रगति के दर को समझा जा सकता है। इसलिए जब अगला वर्तमान वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किया जा रहा हो तो पूर्व की उपलब्धियॉ ध्यान में रखनी चाहिए।

लक्ष्य का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उन लक्ष्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए जो बच्चे के लिए अति आवश्यक हो जैसे–यदि एक बच्चा स्वतन्त्र रूप से शौच, स्नान, भोजन आदि नही कर पा रहा है तो उसे सर्वप्रथम शौच क्रिया सिखानी चाहिए, तत्पश्चात भोजन आदि।

4. लघुकालीन लक्ष्यों का निर्धारण – प्रत्येक वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम में एक लघुकालीन वस्तुनिष्ठों की भी सूची होनी चाहिए जो कि वार्षिक लक्ष्य को क्रमिक चरणों में विभक्त करके बनायी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप यदि हम रामू को मांसपेशीय कौशल (मोटर स्किल) में प्रशिक्षण देना चाहते हैं तो वहां रामू का वर्तमान प्रकार्यात्मक स्तर को देखते है कि यदि वह अपनी गर्दन को सम्भाल सकता है तो उसके वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करते हैं कि वह वर्ष के अन्त तक स्वतंत्र रूप से खड़ा हो सकेगा। अतः यहां पर लघुकालीन वस्तुनिष्ठ इस प्रकार बनाए जाएँगें–

- प्रथम तीन महीनों के लिए बिना सहारे के बैठना
- अगले तीन महीनों के लिए बैठने की स्थिति में कुछ कार्य करना।
- अन्त में वार्षिक लक्ष्य होगा बिना सहारे खड़ा होना।

लघुकालीन वस्तुनिष्ठों में निम्नलिखित बातों का समावेश होता हैः–

- लघुकालीन लक्ष्य सदैव व्यवस्थित क्रम में होने चाहिए।
- वार्षिक लक्ष्य से सीधे सम्बन्धित होने चाहिए।
- अध्यापक एवं छात्र दोनों के लिए प्रयोगिक दृष्टि से उपयुक्त एवं प्रबन्धनीय होने चाहिए।

लघुकालीन लक्ष्य निम्नलिखित बातों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से लिखे जाने चाहिए–

(अ)	शुद्धता	कितनी अच्छी तरह से बच्चा कार्य करेगा।
(ब)	व्यवहार	वह व्यवहार जिसे बच्चे को सीखना है।
(स)	परिस्थिति	वो परिस्थितियां जिसमें बच्चे को कार्य करना है।
(द)	अवधि	बच्चे को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए कितने समय की आवश्यकता है।

इसके द्वारा अध्यापक को यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चा क्या कर सकता है और उससे कितनी आशा रखनी है।

5. प्रशिक्षण विधियॉ :– लघुकालीन लक्ष्यों का निर्धारण करने के पश्चात् शीघ्र ही व्यक्ति का विभिन्न कौशल क्षेत्रों में प्रशिक्षण कार्य शुरू हो जाता है। प्रशिक्षण देते समय निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखना चाहिए–

(क) शैक्षिक परिवेष :– शैक्षिक परिवेश यथासम्भव प्राकृतिक अर्थात् स्वाभाविक होना चाहिए। बहुत से कौशल ऐसे होते है जो वहीं पर सही ढंग से सिखाये जा सकते हैं, जहॉ पर वह सब किये जाते है जैसे–शौच, स्नान आदि के कौशल।

(ख) अधिगम सामग्री :– किसी भी कार्य को ज्यादा प्रायोगिक बनाने के उपयुक्त अधिगम सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। अधिगम सामग्री प्राकृतिक या स्वाभाविक वस्तु के समरूप होने चाहिए। इसे बच्चे को सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(ग) षिक्षण की तकनीकः–प्रत्येक कार्य के शिक्षण के लिए छोटे–छोटे चरणों में विभक्त कर लिया जाना चाहिए। विभिन्न तकनीकियों में से उस विशिष्ट चरण को सिखाने के लिए किस तकनीकि का प्रयोग करना है इसके निर्धारण हेतु प्रत्येक चरण का पुनः अवलोकन किया जाना चाहिए। प्रारम्भ में यदि आवश्यकता हो तो माडलिंग तकनीकि के साथ प्राम्पट्स का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक सफल प्रयास के लिए बच्चे को पुर्नबलित

किया जाना चाहिए। सीखने वाले और सिखाये जाने वाले कार्य की विशेषताओं के आधार पर शेपिंग, चेनिंग तथा अन्य तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। जब बच्चा आत्मनिर्भर हो जाए तब इन तकनीकि अथव सहायता कौशलों को धीरे–धीरे धूमिल (फेड) करते हुए लुप्त किया जाना चाहिए और कार्य को विभिन्न परिवेशों में सामान्यीकृत किया जाना चाहिए।

6. मूल्यांकन करना :– पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों के समूहों एवं कसौटियों के रूप में छात्र के निष्पादन का मापन शिक्षक को समकालीन मूल्यांकन क्राइटीरियन रेफरेन्सड टेस्ट का प्रयोग करके करना चाहिए। इससे छात्र की प्रगति और किन–किन चरणों पर बच्चों को कठिनाई हो रही है उसको निर्धारित करने में सहायता मिलती है। शिक्षक ने जिन तकनीकि का प्रयोग किया है उसमें यदि परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता है तो इसके लिए यह विशेष अध्यापक को जागरूक बनाती है। मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

- अध्यापक की ओर से अभिनतियॉ नहीं होनी चाहिए।
- प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण गुणात्मक एवं मात्रात्मक होना चाहिए।
- अभिभावकों एवं विद्यालय प्रशासन के लिए परिणामों की लिखित एवं शाब्दिक रिपोर्टस का प्राविधान होना चाहिए।
- मूल्यांकन निरंतर होना चाहिए और बच्चे के भविष्य की योजना बनाने की ओर अग्रसारित करने वाला होना चाहिए।

7. अभिभावक सहभागिता :– बच्चों के वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम में अभिभावक प्रमुख व्यक्ति होता है क्योकि वे प्राकृतिक परिवेश जैसे–घर में बच्चे के साथ अधिकांश समय व्यतीत करते है। वैयक्तिक प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना बनाने से लेकर उसको कार्यान्वित करने तक के प्रत्येक चरण में अभिभावकों को सम्मिलित करना चाहिए। एक सफल वैयक्तिक प्रशिक्षण कार्यक्रम में अभिभावकों का सहयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं अतिआवश्यक चरण है।

समावेशी शिक्षा

थॉमस (1997) के अनुसार–समावेशन सभी छात्रों को मुख्य धारा की व्यवस्था में स्वीकार करना, उन्हें शिक्षा प्रदान करना तथा सभी शिक्षकों के सहयोग से उनमें सर्वागीण विकास करना।

दास (2006) के अनुसार– यह वह व्यवस्था है जिसमें दिव्यांग बच्चों को सामान्य शिक्षा देने वाली कक्षाओं में स्थानान्तरित कर शिक्षा दी जाती है इसमें दिव्यांग बच्चा भी सामान्य बच्चे की भांति शिक्षा प्राप्त करता है।

विगत कुछ वर्षो से समावेशित शिक्षा का चलन काफी तेजी से बढ़ा हैं।

जब से शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है तब से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की अधिगम आवश्यकताओं पर अधिक गंभीर चिन्तन एवं विश्लेषण की आवश्यकता भी बढ़ी है।

बौद्धिक अक्षम बच्चों को समावेशी शिक्षा से जोड़ना अत्यन्त चुनौती पूर्ण है परन्तु वयैक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम को उपयोग करके इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता हैं। वयैक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा बौद्विक अक्षम बच्चों में स्कूल रेडीनेस स्किलस को विकसित किया जा सकता है। फंक्शनल एकेडमिक्स में पूर्व–पठन, पूर्व–लेखन तथा पूर्व–गणित कौशलों में प्रशिक्षण देकर सामान्य विद्यालयों में सामान्य कक्षा के लिये तैयार किया जा सकता हैं। जब भी बौद्धिक अक्षम बच्चा पहली बार सामान्य विद्यालय में प्रवेश लेने जाता है तो माता–पिता से पहला प्रश्न यही किया जाता है कि बच्चें में स्वयं की देख–रेख वाले कौशल विकसित है या नही? उदाहरण –

- क्या बच्चा सामान्य निर्देशों को समझता है?
- क्या बच्चा स्वयं से खाना खा सकता हैं?
- क्या बच्चा टॉयलेट जाने के कौशल जाने में निपुण है?

- क्या बच्चा टॉयलेट जाने की आवश्यकता को इंगित कर सकता है?
- क्या बच्चा स्वयं से कपड़े पहन लेता है?
- क्या बच्चे को बेसिक कॉन्सेप्ट जैसे–रंग, साइज, आकार, आदि का ज्ञान है?

उपर्युक्त सारे प्रश्नों के उत्तर वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम के माध्यम से दिये जा सकते है। क्रिया–विश्लेषण तथा अन्य विशेष अधिगम विधियों का उपयोग करके एक बौद्धिक अक्षम बच्चें को स्वयं सहायता कौशलों को सिखाया जा सकता है, साथ ही पूर्व शैक्षिणक कौशलों का विकसित करके उसे सामान्य विद्यालयों में प्रवेश के योग्य बनाया जा सकता है।

सामान्य विद्यालयों में एक रिसोर्स रूम की स्थापना करके बौद्धिक अक्षम बच्चों को कुछ समय के लिए उपचारात्मक प्रशिक्षण के द्वारा भी समावेशित किया जा सकता है। पाठ्यक्रम में आवश्यक अनुकूलन करके तथा अतिरिक्त शैक्षिक सपोर्ट प्रदान करके बौद्धिक अक्षम बच्चे को मुख्य धारा में लाया जा सकता है।

पाठ्यक्रम अनुकूलन – यह वे परिवर्तन है जो किसी पाठ्यक्रम के विषय वस्तु या शिक्षण से सम्बन्धित होते है। इसके अलावा यह शिक्षण अधिगम वातावरण तकनीक, शिक्षण अधिगम सहायक सामग्री तथा मूल्यांकन से भी सम्बन्धित हो सकते है।

औपचारिक शिक्षण में पाठ्यक्रम अनुकूलन उस विशिष्ट सम्बोधन को करते हैं जो पाठ्यक्रम की विषय सामग्री या निर्देशों से सम्बन्धित हो यह अनुकूलन छात्र के अधिगम वातावरण में समायोजन या संशोधन करके किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम अनुकूलन की आवष्यकता :

- शिक्षा को सुलभ करने हेतु।
- छात्र को यह न लगे कि उसके प्रति पूर्वागृह है या अन्याय पूर्वक तरीके से उसे वंचित रखा जा रहा है।
- व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर आधारित होती है।

पाठ्यक्रम अनुकूलन की आवष्यकता कब होती है ? – बच्चों के शैक्षिक ऑकलन के बाद पाठ्यक्रम अनुकूलन निश्चित किया जाता है। यह अनुकूलन पाठ्यक्रम में समायोजन करके या संशोधन करके किया जा सकता है।

समायोजन करना :– कुछ विशिष्ट बच्चों को पाठ्यक्रम अनुकूलन हेतु पाठ्यक्रम में किसी प्रकार के बदलाव या सुधार की आवश्यकता नहीं होती परन्तु उन्हें पाठ्यक्रम पूरा करने हेतु शिक्षक को शिक्षण पद्धतियों में अनुकूलन करना होता है जैसे श्रवणबाधित बच्चों के लिए साइन लैंग्वेज का प्रयोग, दृष्टिबाधित बच्चों हेतु ब्रेल तथा बड़ें प्रिन्ट की किताबों का उपयोग।

संषोधन करना :– बौद्धिक अक्षम बच्चों के लिए उनकी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम में बदलाव लाया जा सकता है जैसे–सामान्य बच्चों की तुलना में कम पाठ पठाना, कठिन पाठ छोड़ देना, दैनिक जीवन के प्रयोग में लाये जाने वाले विषय वस्तु को पढ़ाना, पाठ्यक्रम का वह हिस्सा छोड़ देना जो बच्चे की आवश्यकता के सन्दर्भ में न हो, लिखित परीक्षा न लेकर मौखिक परीक्षा लेना, आसान प्रश्न पूछना, परीक्षा के लिए अतिरिक्त समय देना इत्यादि।

पाठ्यक्रम अनुकूलन विधियॉं :–

1. विशय वस्तु / सामग्रियों में अनुकूलन
2. षिक्षण विधियों में अनुकूलन
3. दी जाने वाली सहायता में अनुकूलन

4. नियमों में अनुकूलन

विषय वस्तु का अनुकूलन :— विषय वस्तु से अनुकूलन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

- विषय वस्तु को पठन योग्य बनाना।
- महत्वपूर्ण बातों को हाईलाईट करना।
- पिक्चर, चार्ट, डायग्राम, मैप का अधिक प्रयोग करना।
- भाषा का सरलीकरण करना।
- कठिन विषयवस्तु को हटा देना।
- अनुभव तथा रूचि पर आधारित विषय वस्तु तैयार करना।

षिक्षण विधियों में अनुकूलन :—

- शिक्षक के द्वारा मॉडलिंग तकनीक का उपयोग करना।
- छोटे—छोटे चरणों में पाठ पढ़ाना।
- बच्चों को मूर्त अनुभव प्रदान करना।
- प्रत्येक सफलतापूर्वक प्रयास के उपरान्त पुर्नबलन देना।
- शिक्षण के लिए सहपाठी शिक्षण, सहयोगी शिक्षण तथा वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम का प्रयोग करना।
- बच्चों को पढ़ाने की गति और पढ़ाये जाने वाले विषय वस्तु की मात्रा में बदलाव करना।

सहायता में अनुकूलन :— कुछ विशिष्ट बच्चों को सीखने के लिए शिक्षक तथा सहपाठी से ज्यादा सहायता की आवश्यकता होती है अतः सहायता के स्तर में बदलाव लाकर मदद की जा सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक बच्चे का विस्तार से आंकलन किया जाये तथा दिए जाने वाली सहायता निश्चित की जाए।

नियमों में अनुकूलन :— कैलकुलेटर का प्रयोग करना, निर्देशों को अधिक स्पष्ट करना, परीक्षा लिखित न होकर मौखिक कराना, परीक्षा में अतिरिक्त समय देना आदि।

निष्कर्ष :— हम यह कह सकते है कि बौद्धिक अक्षम बच्चों को समावेशी शिक्षा में लाने के लिए वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण विधि है पाठ्यक्रम में अनुकूलन करके इसके द्वारा हम बौद्धिक अक्षम बच्चों को न सिर्फ सामान्य विद्यालयों में प्रवेश में सहायता कर सकते है अपितु उन्हें सामान्य पाठ्यक्रम को सहजता से ग्रहण करने में भी योगदान दे सकते है। अतः मेरे विचार से वैयक्तिक शैक्षिक कार्यक्रम बौद्धिक अक्षम बच्चों के समावेशन की ओर एक सशक्त कदम है।

REFERENCES :

Dash, N. (2005). Inclusive Education For Children With Special Needs, New Delhi, Atlantic Publishers and Distributers (P) Ltd.

Joseph, R.A. (2005). Punarvas ke Ayaam, Varanasi, Samakalan Publishers.

Singh, C. (2014). Mansik Mandata Karan, Pehchaan, Upchaar evam Punarvas, New Delhi, Kanishka Publishers.

Nihshaktta evam Samekit Shiksha Ka Parichay , New Delhi, IGNOU.

❑❑

समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016

बृजेश कुमार राय
असिस्टेंट प्रोफेसर, दृष्टिबाधितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

हमारे देश में शिक्षा का शुभारम्भ उस समय हुआ था, जब विश्व के अन्य देशों के निवासी पशुवत जीवन यापन कर रहे थे । कुछ इतिहासकारों का मत है कि भारत में शिक्षा का शुभारम्भ आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुआ था । भारतीय मुनियों एवं महर्षियों ने शिक्षा के महत्व को समझ लिया था कि शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति, मानवजाति, समाज और देश का कल्याण सम्भव है इसी दृष्टिकोण से अनुप्राणित होकर मुनियों एवं महर्षियों ने भारत में सभ्यता की शुरुआत से ही शिक्षा की व्यवस्था रखी जो पूर्णतः भारतीय थी प्राचीन भारत में विकसित हुई शिक्षा प्रणाली को वैदिक प्रणाली के रूप में जाना जाता है आधुनिक समय के विपरीत प्राचीन समय के शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं था बल्कि आत्मज्ञान एवं आत्मानुभूति थी प्राचीन भारत में तक्षशिला में स्थापित नालंदा विश्वविद्यालय विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय माना जाता है । इस विश्वविद्यालय में देश–विदेश के हजारों विद्यार्थी भारतीय दर्शन के साथ–साथ चिकित्सा विज्ञान, खगोल विज्ञान, शल्य चिकित्सा का भी अध्ययन करते थे अंग्रेजों के आगमन से प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन हुआ और आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ, इस आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने अच्छाईयों के साथ बुराईयोंको भी जन्म दिया भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही शिक्षा में सुधार लाने की बात चलने लगी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने ले लिए भारत सरकार ने नीतियों और कार्यक्रमों को बनाने हेतु समय–समय पर अनके आयोग गठित किए जिनमे से प्रमुख हैं– विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53), शिक्षा आयोग (1964–66) तथा राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983–85) इत्यादि।

वर्ष 1986 में आयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा की एक ऐसी राष्ट्रीय प्रणाली की बात की गयी है जिसका सार यह है कि सभी विद्यार्थियों को विना किसी भेदभाव के गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान की जाय इस शिक्षा व्यवस्था का मूल मंत्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक हर विद्यार्थी को बिना किसी जात–पात, धर्म स्थान या लिंग भेद के, लगभगएक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो इस लक्ष्य को हासिल करने के लिये सरकार उपयुक्त रूप से वित्तपोषित कार्यक्रमों की शुरूआत करेगी इस शिक्षा नीति में ही सर्वप्रथम दिव्यांग बच्चों की शिक्षा आम बच्चों के साथ करने की बात कही गयी है अतः यह आवश्यक है कि नवनिर्मित प्रारूपित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 में दिव्यांग बच्चों की शिक्षा पर चर्चा से पहले वर्ष 1986 में बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इन बच्चों की शिक्षा के प्रावधानों की चर्चा की जाय।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में दिव्यांग बच्चों की शिक्षा हेतु प्रावधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के भाग–4 (समानता के लिए शिक्षा) के खण्ड 4.9 में 'विकलांग नामक शीर्षक से दिव्यांग बालकों की शिक्षा की बात की गयी है, जो निम्नलिखित हैं।

शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विकलांगों को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें,उनकी सामान्य तरीके से प्रगति हो और वे पूरे भरोसे और हिम्मत के साथ जिन्दगी जियें। इस संबंध में निम्नलिखित उपाय किये जाएंगे –

विकलांगता अगर हाथ पैर की या मामूली सी है, तो ऐसे बच्चों की पढ़ाई आमबच्चों के साथ हो।

1. गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिये छात्रावास वाले विशेष स्कूलों की जरूरत होगी, इस तरह के स्कूल, जहाँ तक सम्भव होगा, जिला मुख्यालयों में बनाए जाएंगे।
2. विकलांगों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जायेगी।

3. शिक्षकों, खासतौर से प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को भी नया रूप दिया जायेगा ताकि वे विकलांग बच्चों की कठिनाइयों को ठीक तरह से समझ कर उनकी सहायता कर सकें।

4 विकलांगों की शिक्षा के लिए स्वैच्छिक प्रयासों को हरसंभव तरीके से प्रोत्साहित किया जायेगा।

गौरतलब है कि आज से 30–40 वर्ष पूर्व दिव्यांग बच्चों की शिक्षा केवल विशेष विद्यालयों में ही होती थी क्योंकि उस समय के लोगों का यह मानना था कि इनको नियमित (सामान्य) विद्यालयों में नहीं पढ़ाया जा सकता है, क्योंकि वहाँ इनको पढ़ाने के लिए कोई संसाधन एवं प्रशिक्षित शिक्षक नही हैं उस समय इनको समाज का हिस्सा नही समझा जाता था द्यअतः उस समय आयी शिक्षा नीति में यह कहना कि "जहाँ तक सम्भव हो इन बच्चों की शिक्षा आम बच्चों के साथ हो", समावेशी शिक्षा के लिए पहला बढ़ा कदम था।

इस शिक्षा नीति के लागू होने पर हमारे देश में बढ़े स्तर पर बदलाव आया भारत में शिक्षा क्षेत्र से जुड़ा एक प्रमुख विकास सार्वभौमिक और कानूनी व्यवस्थाओं का निर्माण करना रहा है, जिनमे से प्रमुख रहा वर्ष 2002 में संविधान के 86 वें संसोधन के माध्यम से 6–14 वर्ष के आयु समूह के सभी प्रकार के बच्चों हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार मानना वर्ष 2009 में निर्मित 6–14 वर्ष के आयु समूह के बच्चों के लिए "निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009" जिसको संक्षेप में आरटीई एक्ट, 2009 भी कहते हैं, 1 अप्रैल, 2010 से लागू हो गया था यह अधिनियम भारत में समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने में मील का पत्थर साबित हो रहा है भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21क में वर्णित इस अधिनियम में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 6–14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को बुनियादी शिक्षा पूरी होने तक पड़ोस के विद्यालय में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है समावेशी शिक्षा का एक प्रमुख पक्ष यह भी है कि दिव्यांग बालक को पास के ही किसी विद्यालय में दाखिला दिया जाय ना कि दूर के किसी विशेष विद्यालय में, अतः यह अधिनियम समावेशी शिक्षा को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है क्योंकि अब कोई भी विद्यालय इन बच्चों को दाखिला देने से मना नहीं कर सकता है अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने भारत में समावेशी शिक्षा की नींव डाली अब प्रश्न उठता है कि समावेशी शिक्षा से तात्पर्य क्या है? तथा इसकी शुरुआत कहाँ से हुयी?

समावेशी शिक्षा का प्रत्यय एवं शुरुआत : समावेशी शब्द का प्रचलन 1990 के दशक के शुरू हुआ जब जून, 1994 में सलमानका (स्पेन) में यूनेस्को ने विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष विश्व सम्मलेन सुलभता और समता का आयोजन किया इस सम्मेलन में 92 देशों के प्रतिनिधियों के साथ–साथ 25 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने हिस्सा लिया सम्मेलन का समापन इस उद्दघोषणा के साथ हुआ कि, "प्रत्येक बच्चे की चरित्रगत विशिष्टताएँ, रुचियाँ, योग्यता एवं सीखने की आवश्यकता अलग होती है, अतः शिक्षा प्रणाली में इन विशिष्टताओं और आवश्यकताओं की व्यापक विविधता का ध्यान रखना चाहिए", यह घोषणा सलमानका कथन के रूप में जानी जाती है इस सम्मेलन के बाद ही राष्ट्रों ने अपने बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया, शिक्षा में में यही परिवर्तन ही समावेशी शिक्षा के रूप में प्रचलित हुआ सलमानका कथन के अनुसार समावेशी शिक्षा से तात्पर्य सभी प्रकार के बच्चों को उनके शारीरिक, बुद्धिमता, सामजिक, भावनात्मकता, भाषायी या कोई अन्य परिस्थितियों पर ध्यान दिए बिना विद्यालय में दाखिला देना चाहिए सभी प्रकार के बच्चों में सम्मिलित हैं विकलांग बच्चे, प्रतिभावान बच्चे, कार्य करने वाले बच्चे, गाँव या बंजारे के बच्चे, भाषायी प्रजातीय या सांस्कृतिक अल्पसंख्यक के बच्चे तथा दूसरे अन्य अलाभान्वित या अधिकार क्षेत्र या समूह के बच्चे यह बात ध्यान देने योग्य है कि समावेशी शिक्षा से तात्पर्य केवल दिव्यांग बच्चों की शिक्षा से नहीं है अपितु ऊपर वर्णित सभी प्रकार के बच्चों की शिक्षा से है, परन्तु इस आलेख में समावेशी शिक्षा का प्रत्यय केवल दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के सन्दर्भ में ही लिया गया है।

चूँकि समावेशित शिक्षा शब्द का प्रत्यय ही वर्ष 1994 में आया अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में इसका वर्णन न होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है उस समय कि नीति में यही कहना कि दिव्यांग बच्चों की शिक्षा आम बच्चों के साथ हो, दिव्यांग बच्चों की शिक्षा में आमूलचूक परिवर्तन था अब समावेशी शिक्षा का प्रत्यय आए हुए 20 वर्ष से ऊपर हो चुका है अतः नवनिर्मित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 जिसका प्रारूप तैयार हो चुका है, में समावेशी शिक्षा का वर्णन होना अतिआवश्यक है, ऐसा है अथवा नही यह आलेख इसी पर प्रकाश डालता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016

भारत सरकार ने नयी शिक्षा नीति विकसित करने के लिए वर्ष 2015 में पूर्व कैबिनेट सचिव टी. एस. सुब्रमन्यम की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, परन्तु 26 जून 2017 को भारत सरकार ने इस समिति को भंग करके वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में 9 सदस्यीय समिति का गठन किया जिसको नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी दी गयी है मानव संसाधन मंत्रालय ने इस प्रारूप के कुछ अहम बिन्दुओं को आम जनता की राय के लिए प्रकाशित किया है प्रकाशित प्रारूप में कहा गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 एक ऐसी विश्वसनीय शिक्षा व्यस्था की परिकल्पना करती है जो सभी के लिए समावेशी गुणवत्तायुक्त शिक्षा और जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन अवसरों को सुनिश्चित करने तथा उत्पादक जीवन जीने, देश की विकासात्मक प्रक्रिया में भागीदारी करने, तेजी से बदलते, हर पल वैश्वीकृत होते, ज्ञान आधारित समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले ज्ञान, कौशलों, अभिवृतियों और मूल्यों का धारण करने वाली भारतीय परम्परा, संस्कृति और इतिहास का सम्मान करने वाले जिम्मेदार नागरिकों को तैयार करने और सामजिक समरसता तथा धार्मिक भाईचारे को बढ़ावा देने में सक्षम हो यह दृष्टिकोण भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक और सांस्कृतिक विकास में शिक्षा के केन्द्रीय महत्व को मान्यता प्रदान करता है।

प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 भारत में शिक्षा के विकास के लिए एक रुपरेखा प्रदान करती है यह नीति शिक्षा सम्बन्धी पूर्व राष्ट्रीय नीतियों में निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्यों से सम्बन्धित अधूरे कार्यों एवं मौजूदा तथा उभरते राष्ट्रीय विकास में गुणवत्तायुक्त शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए, सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से सुधारने पर अभूतपूर्व ध्यान देती है और यह वर्णित करती है है कि समाज के सभी वर्गों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध हों।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 का विजन : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 एक ऐसी विश्वसनीय और उच्च प्रदर्शनकारी शिक्षा प्रणाली पर विचार करती है जो सभी के लिए समावेशी गुणवत्ता युक्त शिक्षा व सीखने के जीवनपर्यन्त अवसर सुनिश्चित करें तथा ऐसे छात्र स्नातक तैयार करें जो उन ज्ञान, दक्षताओं, भावों और मूल्यों से लैस हो जो तेजी से बदल रहे वैश्विकरण, ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और समाज की आवश्यकताओं के लिए अपेक्षित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 में समावेशी शिक्षाहेतु प्रावधान : प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 के अध याय–4 (नीति कार्यढांचा) के खंड 4.6 (समावेशी शिक्षा और छात्र सहायता) में समावेशी शिक्षा के बारे में विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है द्यइसके अंतर्गत कहा गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में समावेशी शिक्षा के लिए बहुजातीय वातावरण का सृजन नहीं कर रही है जिससे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को और सामजिक रूप से पिछड़े समुदायों की शैक्षिक आवश्यकताएं पूरी हो सकें हालांकि हाल के दशकों में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच में कुछ सुधार हुआ है, सामाजिक अथवा आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से आ रहे छात्र अधिगम अवसरों में असमानता से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बाधाएं झेलते हैं जो कि प्रायः सामजिक रूप से तथा परिस्थितिजन्य कारकों से होती हैं यह राष्ट्रीय नीति दिव्यांग बच्चों के समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ नीतियों की बात करती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख हैं –

दिव्यांग एवं अधिगम निःशक्तता वाले बच्चों, जो सामाजिक अनदेखी, घर पर सहायक व्यवस्था की अनुपलब्धता विशेषकर छोटे विद्यालयों एवं गाँवों में स्थित विद्यालयों में अपर्याप्त एवं उपयुक्त सुविधाओं एवं उपकरणों की कमी जैसी बहुआयामी समस्याओं का सामना करते हैं, इनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष हस्तक्षेप अपनाये जायेंगें।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए चल रही केंद्र प्रायोजित योजनायें जारी रहेंगीं और उनकी कवरेज और निधियन का संवर्धन किया जाएगा राज्य एवं जिला स्तर पर एक उपयुक्त व्यस्था बनाई जाएगी जो विभिन्न योजनाओं के कार्यन्वयन की निगरानी करने के साथ–साथ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करेगी और उनके लिए उपलब्ध होगी।

स्थानीय स्तर पर बाल एवं चिकित्सा मनोवैज्ञानिकों वाली एक अंश–कालिक उप विशेषज्ञ समिति गठित की जायेगी ताकि कोई भी विद्यालय या जिला शिक्षा अधिकारी उन मामलों जहाँ तीसरे पक्ष के मूल्यांकन या परामर्श की जरुरत हो, को भेज सकते हैं यह उप–समिति विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की सुग्राही एवं उपयुक्त देख–रेख के लिए अध्यापकों के विशेष प्रशिक्षण अभिमुखीकरण पर परामर्श दे सकती है।

केंद्र सरकार अधिगम निःशक्तता के समाधान, अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण में निवेश उपलब्ध करवाने और आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध करवाने के लिए एक दीर्घकालिक योजना तैयार करने में अगवाई करेगी।

सामाजिक एवं आर्थिक रूप से लाभवंचित वर्गों के बच्चों को शिक्षण अवधि के दौरान महत्वपूर्ण चरणों में अतिरिक्त उपचारात्मक कोचिंग या परामर्शी सुविधा दी जायेगी।

उच्चतर शिक्षा में निःशक्त छात्रों को मजबूती प्रदान करने के लिए अनुसन्धान एवं विकास कार्यों हेतु समर्पित निधियां होंगीं अवसंरचना, शैक्षिक पहुँच एवं कार्य निष्पादन के लिए निःशक्तता पहुँच की सामजिक एवं अनुसन्धान लेखा परीक्षा की जायेगी।

प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 में उल्लिखित उपरोक्त बातों से स्पष्ट होता है कि यह शिक्षा नीति दिव्यांग बच्चों हेतु समावेशी शिक्षा पर पर्याप्त बल दे रहा है यह प्रारूप यह मानता है कि इन बच्चों के समावेशन में बहुत सारी बाधाएं हैं जैसे– संसाधनों की कमी, उपकरणों की कमी, सुविधाओं की कमी इत्यादि कहा जाता है कि बीमारी तब तक ठीक नहीं हो सकती जब तक रोग का पता ना चले, एक बार रोग का पता चल जाय तब उसका इलाज हो जाता है और बीमारी ठीक हो जाती है अतः अगर प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह वर्णित है कि समावेशी शिक्षा में क्या बाधाएं हैं, तो उम्मीद है जब यह नीति पूर्ण होकर निकलेगी तो उस बाधाओं को दूर करने का उपाय भी पता चल जाएगा और समावेशी शिक्षा सफल होगी।

उपसंहार : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं, जिनमे से एकप्रमुख है समावेशी शिक्षा यह सत्य है कि दिव्यांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा में अभी भी बहुत से बाधाएं परन्तु यह भी सत्य है कि किसी भी कार्य की शुरुआत में बाधाएं तो आती ही हैं, तथा वे समय के साथ दूर भी हो जाती हैं अभी ज्यादा समय नहीं हुआ है जब दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष विद्यालय ही एक मात्र स्थान थी परन्तु समय के साथ–साथ यह एकीकृत विद्यालय के रास्ते से होते हुए आज समावेशी विद्यालय तक पहुंची है। प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 समावेशी शिक्षा को विकसित करने में अहम् योगदान दे सकता है, क्योंकि इसमें दिव्यांग बच्चों को समावेशी शिक्षा देने पर आने वाले समस्याओं के बारे में वर्णन है अतः यह विश्वास है कि शिक्षा के इस राष्ट्रीय नीति के पूर्ण होने एवं लागू होने पर सबकी यही कोशिश रहेगे कि इन बाधाओं को कैसे दूर किया जाए। दिव्यांग बच्चों का विद्यालय के साथ–साथ समाज में भी पूर्ण रूप से समावेशन हो सके तभी सबका साथ, सबका विकास हो सकेगा और समावेशित भारत का सपना पूर्ण होगा इस प्रारूप राष्ट्रीय नीति में दी गयी श्री अरबिन्दो का कथन इस नीति के समावेशी शिक्षा के प्रति योगदान के विश्वास हेतु सटीक बैठता है। श्री अरबिन्दो कहते हैं, "भारतीय लोंगों में यह अडिग विश्वास होना चाहिए कि भारत का उत्थान अवश्य होगा और यह महान बनेगा तथा हर वो चीज जो घटित हो चुकी है प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति अवश्य ही इसे आगे बढ़ाने में मददगार होगी यह रात ढलेगी और क्षितिज पर सूर्य उदय होगा भारत के भाग्य के सूर्य का उदय होगा और यह अपने प्रकाश से समस्त भारत को प्रकाशवान करेगा और इससे भारत प्रकाशवान होगा और एशिया प्रकाशवान होगा तथा सम्पूर्ण विश्व प्रकाशवान होगा ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2016), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, http://mhrd-gov-in/nep&newls लिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।

❑❑

समावेशी शिक्षा : चुनौतियाँ एवं रणनीतियाँ

ज्योति

शोधार्थिनी–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय, पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ–226017

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमे सभी शिक्षार्थियों को बिना किसी भेदभाव के सीखने के समान मिले, परन्तु आज भी यह समावेशी शिक्षा उस मुकाम पर नहीं पहुँची है जहाँ इसे पहुँचना चाहिए। वस्तुतः समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि उन्हें क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रतिक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जायें। क्योंकि भारतीय सविधान में समता, स्वतंत्रता सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राय मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका इशारा समावेशी शिक्षा की तरफं ही है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके परिप्रेक्ष्य में बच्वें को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय लैगिंक शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जोन के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है।

समावेशी शिक्षा का संप्रत्य सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराने हेतु आया, क्योंकि समाज में किसी भी वर्ग जिसमें विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी भी शामिल हैं, को छोड़कर इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती इस अवधारणा की शुरूआत इस आधार पर हुई थी कि शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मूल अधिकार है और प्रत्येक बच्चा दूसरे बच्चे से भिन्न है तथा प्रत्येक बच्चे का अपनी विशेषताएं, रूचियाँ तथा आवश्यकताएं होती है। जिसका सम्मान होना चाहिए। बच्चों की शिक्षा के क्षमतागत विभेदीकरण किसी भी आधार पर तर्कसंगत नहीं है। समावेशी शिक्षा एक ऐसी ही शिक्षा प्रणाली है जो सभी विद्यार्थियों का स्वागत एक सामान्य कक्षा कें अंतर्गत करती है। यह विविध बौद्धिक क्षमताओं और व्यक्तिक भिन्नताओं की अवधारणाओं पर आधारित है। समावेशी शिक्षा विद्यालय के पुंनः निर्माण की वह प्रक्रिया जो सभी बच्चो को शैक्षणिक और सामाजिक अवसरों को बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध कराए। यह प्रणाली विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ मुख्यधारा के स्कूलों में पठन पाठन और आत्मनिर्भर बनाने का मौका प्रदान करती है ताकि वह समाज की मुख्स में शामिल हो सके।

समावेशी शिक्षा सर्व शिक्षा जैसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्य में से एक उद्देश्य है "विशेष आवश्यकताओं वाले बच्च्रे की शिक्षा" लेकिन दुर्भाग्यवश हम सब इसके विस्तृत अर्थ को पूर्ण तरीके से समझने की कोशिश न करते हुए इस समावेशी शिक्षा का अर्थ प्रमुखता से केवल 'विशेष आवश्यकता' वाले बच्चों की शिक्षा से ही लगाते है जो कि सर्वथा ही अनुचित है। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य सिर्फ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य कक्षा में गैर विकलांग बच्चों के साथ शिक्षा देना नहीं है बल्कि यह उन सभी बच्चों को समाहित करता है जो किसी न किसी कारण से शिक्षा से वंचित रह गये हैं।

अतः समावेशी शिक्षरा को हम कुंछ परिभाषाओं के माध्यम से और व्यापक रूप से समझते हैंः–

यूनेस्को (2001) के अनुसार, समावेशी शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जो–

- यह विश्वास करती है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और यह सभी बच्चों की अलग–अलग प्रकार की विशेषताएँ होती है।
- जिसका लक्ष्य सीखने की कठिनाईयों की पहचान और उनका प्रभाव न्यूनतम करना है। जो औपचारिक शिक्षा

से वृहत अर्थ रखता है और औपचारिक शिक्षा से वृहत अर्थ रखता है और घर समुदाय एवं घर से बाहर शिक्षा के अन्य अवसरों पर भी बल देता है। अभिवृत्तियों, व्यवहारों शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम एवं वातावरण को परिवर्तित करने की वकालत करता है ताकि सभी बालको की विशेष आवश्यकता पूरी हो सके।

- एक स्थिर गति से चलने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है और समावेशी समुदाय को प्रोन्नत करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न तरीकों का एक भाग है।

मइकल एफ फिनगेस के अनुसार, "समावेशी शिक्षा मूल्यों सिद्धान्तों तथा अभ्यासों का एक समूह है जो सभी बालकों के लिए चाहे वह विशिष्टता रखते हो या नही रखते हो प्रभावशाली तथा अर्थपूर्ण शिक्षा की खोज करता है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समावेशन विद्यालय पुंनः निर्माण की एक प्रक्रिया है जिसमें सभी विद्यार्थियों के लिए एक समान शैक्षिक और सामाजिक अवसर उपलब्ध होते हैं यह प्रत्येंक विद्यार्थी की वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर उनकी सामाजिक आर्थिक, सांस्कतिक, भाषायी, पृष्ठभूमि का सम्मान करता है।

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व :– प्रत्येक राष्ट्र अपने यहां के सभी लोगों को साक्षर बनाने का प्रयास करता है जिससे राष्ट्र की उन्नति हो सके। यह सिद्ध है कि जिस राष्ट्र के ज्यादातर नागरिक पढें लिखे हैं वह राष्ट्र ज्यादा उन्नति कर रहा है, तथा जिस राष्ट्र के नागरिक कम शिक्षित है वह राष्ट्र गरीब है।

अतः समावेशी शिक्षा होने से सभी प्रकार के बच्चे अपने पास के स्कूल में जाकर पढ सकते हैं। जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चे पहले विशेष स्कूल दूर होने के कारण शिक्षा पाने से वंचित रह जाते थे वह अब समावेंशी शिक्षा के द्वारा पास के स्कूल में ही दूसरे बच्चों के साथ अपनी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। सभी प्रकार के बच्चों के शिक्षा ग्रहण करने पर उस राष्ट्र की साक्षरता दर बढेगी तथा भविष्य में वह राष्ट्र अवश्य ही विकसित राष्ट्र बनेगा। समावेश शिक्षा का दूसरा महत्व यह है कि जब एक ही स्कूल मे विकलांग बच्चे सामान्य बच्चे पढेंगे तो उन्हें बचपन से ही एक दूसरे की कमियाँ एवं क्षमताएँ जाननें का मौका मिलेगा तथा सामान्य बच्चों में दिव्यांग बच्चें सामान्य बच्चों के अच्छें व्यवहारों को सीख सकते हैं। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर समावेशित शिक्षा को सभी को शिक्षा प्रदान करने के लिए एक मात्र शिक्षा प्रणाली के रूप में देखा जा रहा है। भारत जैसे विकासशील देश जहाँ की अधिकतर आबादी अभी भी गाँव में निवास करती है तथा विकलांगता का प्रतिशत गाँवों में अधिक है। समावेशी शिक्षा के माध्यम से सुदूर गाँवों में रहने वाले बच्चों को भी शिक्षा प्रदान की जाती है। समावेशी शिक्षा का महत्व विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के साथ ही सामान्य विद्यार्थियों के लिए भी है।

समावेशी शिक्षा की चुनौतियाँ :– समावेशी शिक्षा आज समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है किन्तु यह आज भी प्रभावी रूप में सफल नहीं हो पा रही है। अतः इसके सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ आ रही है। जो इसको प्रभावी रूप में पूर्णतः सफल नही होने दे रही है। जो इस प्रकार है।

1. विद्यालयी पाठ्यचर्या :– विद्यालयी पाठ्यचर्या के नियोजन एवं क्रियान्वयन में परम्परागत स्वरूप प्रभावी है एन0 सी0 एफ0 2005 के आलोक में पाठ्यचर्या निर्धारण की बाते की जाती है परन्तु अभी भी खामियाँ है कुछ गम्भीर खामियों का उल्लेख इस प्रकार है।

1. विद्यालयी विषयों की विषय वस्तु बच्चे के अपने परिवेश एवं वातावरण से सम्बन्धित नही होती है। बच्चा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ नही पाता है, सूचनाओं के संग्रहण एवं रटन्त प्रणाली का संवाहक बनकर रह जाता है।
2. विद्यालयी पाठ्यचर्या विद्यालय अनुभवों एवं जीवन के बीच ठोस रिश्ता स्थापित करने में असमर्थ रही है। विद्यालयी अनुभवों एवं जीवन के बीच अन्तराल बढ़ने पर बच्चे के बहिष्करण का खतरा बढ़ जाता है।

2. बच्चे की अस्मिता के प्रति शिक्षक का नजरिया :– बच्चे के समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति बच्चे के नजरिए के प्रति जब शिक्षण संवेदनशील नही है। बच्चे के नजरिए का सम्मान नही करता है किसी विशेष समूह के प्रति है। दृष्टिकोण रखता है तो बच्चे का अपने समाज, संस्कृति परिवेश के प्रति नजरिया बदल जाता है और बहुधा वह हेय लगता है इसकी परिणति पलायन के रूप में होती हैं यदि विद्यालय का वातावरण बच्चे के लिए

असहज, असुरक्षित अपमानित करने वाला हीनता भाव पैदा करने वाला है तो बच्चे के शिक्षा के बहिष्करण के खतरे बढ़ जाते है यह भी एक कटु सत्य है कि वंचित वर्ग एवं विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के साथ अक्सर ऐसा देखने में आता है अतः स्वयं को विद्यालय में मिसफिट मानकर ये बच्चे बहिष्कार की प्रक्रिया अपना लेते हैं।

3. बहुपरती शिक्षा प्रणाली :— हमारे देश में विभिन्न स्तर एवं श्रेणियों के विद्यालय मौजूद हैं। जिससे इनमें उपलब्ध शिक्षा अनुभवों में भारी फर्क है जिससे समाज में असमानताओं को कम करने में कोई मदद नही मिलती है। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली द्वारा सृजित असमानता हाशिये पर स्थित बच्चे के बहिश्करण का कारण बनती है। हमारी शिक्षा समावेश के बजाय बहिश्करण को बढ़ावा देती है, भेदभावपूर्ण एवं असमानता पर आधारित शिक्षा प्रणाली हासिये पर स्थित बच्चों के समावेशन में कोई मदद नही करती मुख्तः दो समूह इस प्रक्रिया से प्रभावित होते है। बहिष्करण की दृष्टि से दो संवेदनशील समूह है पहला, आर्थिक, सामाजिक लैगिंक आधारपर विशेष जरूरत वाले बच्चे और दूसरा शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशेष जरूरत वाले बच्चे।

4. दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली :— हमारी शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को भयादोहन के एक सशक्त औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता के रूप में प्रयोग किया जाता है। परीक्षा में आसफलता के लिए अधिगमनकर्ता को पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराया जाता है। शिक्षा प्रणाली तंत्र को कोई जवाब देही तय नही है। बच्चे के लिए शिक्षा का मतलब परीक्षा पास करना होता है और शिक्षक का उद्देश्य परीक्षा पास कराने के लिए मशीनीकृत ढंग से बच्चे को इसके लिये तैयार करना। इतना ही नही दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली बच्चे के समुचित विकास में बाधाएँ खड़ी करती है जैसे— विषय दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली बच्चे को कुछ विषय विशेष में असफल घोषित करके छलनी का काम करती है, इस प्रकार शिक्षा में समावेशन में बाधाँ पहुचती है।

परीक्षा में असफलता के लिए एकमात्र बच्चे को जिम्मेदार मान लिया जाता है। सीखने—सिखाने के तौर—तरीके, शिक्षण—अधिगमन सामग्री, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय के माहौल की समान रूप से जवाबदेही होनी चाहिए।

5. विद्यालय तक पहुँच :— विगत दो दशको से भी अधिक समय से विविध परियोजनाओं की उपलब्धि के रूप में इस तथ्य को विशेष रूप से रेखाकिंत किया जाता है कि बहुत बड़ी संख्या में प्रारम्भिक स्तर के विद्यालय खोले गये है। विशेषकर सर्व शिक्षा अभियान विद्यालय के अन्तर्गत 1 कि0मी0 की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित करने का लक्ष्य काफी हद तक प्राप्त कर लेने के दावे किये गये हैं। इसके आकड़ागत साक्ष्य भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं इसके बावजूद हम अभी भी यह दावे के साथ नही कह सकते है कि प्रत्येक बच्चे के शिक्षा प्रणाली में समावेशन की चाक चौबन्द व्यवस्थाएँ हमने कर ली है। बच्चे की पहुँच में विद्यालय होने के बावजूद अनेकों ऐसे व्यवस्थागत, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण मौजूद हो सकते है। जो बच्चे के विद्यालय पहुचने में बाधक होते हैं। अतः इनको दूर किया जाना आवश्यक है।

समावेशी शिक्षा : रणनीतियाँ : समावेश शिक्षा हेतु कुछ रणनीतियाँ इस प्रकार हो सकती है।

1. बालकों के अनुरूप पाठ्यक्रम :— बालकों को शिक्षित करने का सबसे असरदार तरीका है कि उन्हें खेलने के तरीकों तथा गतिविधियों के माध्यम से सीखाने का प्रयास किया जाना चाहिएं समावेशित शिक्षा व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि विद्यालय पाठ्यक्रम बालकों की अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में विविधता तथा पर्याप्त लचीलता होनी चाहिए ताकि उसे प्रत्येक बालक की क्षमताओं, आवश्यकताओं तथा रूचि के अनुसार बनाया जा सके। बालकों में विभिन्न योग्यताओं व क्षमताओं का विकास हो सके, उसे विद्यालय से बाहर, बालक के सामाजिक जीवन से जोड़ा जा सके। बालको को सामाजिक रूप से एक उत्पादित नागरिक बनाने में योगदान दे सके। इसके अतिरिक्त बालक के समय का सद्प्रयोग करने की शिक्षा प्राप्त हो सके।

2. मार्गदर्शन व निर्देशन की व्यवस्था :— विशेष आवश्यकताओ वाले बालकों की शिक्षा एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में नियमित शिक्षक विशेष, विशेष शिक्षक, अभिभावक और परिवार सामुदायिक अभिकरणों के साथ विद्यालय कर्मचारियों के बीच सहयोग और सहकारिता शामिल है।

3. सहायक तकनीकि उपकरणों का उपयोग :— आज के युग में तकनीकि उपायों से मानव जीवन काफी

हद तक सुगम हो गया है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर आज तकनीक का प्रभाव देखा जा सकता है। समावेशित शिक्षा के सफलता के लिए और उसके प्रचार प्रसार के लिए शिक्षा व्यवस्था में तकनीक को उपयोग किये जाने की आवश्यकता है। टी0वी0 कार्यक्रमों कम्प्यूटर, मोबाइल फोन, सहायक शिक्षा व चलुष्णता तकनीकी उपकरणों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा, सामाजिक अर्न्तक्रिया मनोरंजन आदि में प्रभावशाली भूमिका निभाई जा सकती है। इस लिए आज आश्यकता इस बात की है कि समावेशित शिक्षा वातावरण हेतु बालकों, अभिभावकों, शिक्षको को इसकी नवीन तकनीकी विधियों से परिचित करवाया जाये तथा उनके प्रयोग पर बल दिया जाये।

4. समुदाय की संक्रिय भागीदारी – विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालको की शिक्षा की पुरी बुनियाद प्रतिभागिता निर्मित करने पर टिकी हुई। है। एक अकेले व्यक्ति के प्रयासों से उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित नही किया जा सकता है। समावेशित शिक्षा हेतु यह आवश्यक है कि विद्यालयों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाना चाहिए जिससे की बालक की सामुदायिक जीवन की भावना को बल मिले क्योंकि उसे एक निश्चित समय के पश्चात उसी समुदाय का एक सक्रिय सदस्य के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।

5. शिक्षकों का पर्याप्त प्रशिक्षण :– शिक्षक को ही शिक्षा पद्धति की वास्तविक गव्यात्मक शाक्ति तथा शैक्षिक संस्थानों की आधारशिला माना गया है। यद्यपि यह बात सत्य भी है कि विद्यालय, भवन, पाठ्यक्रम पाठय सहभागी क्रियाएँ, सहायक शिक्षण सामग्री आदि सभी वस्तुएँ व क्रियाकलापों का भी शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु शिक्षण अधिगमन प्रक्रिया को सबसे अधिक प्रभावित करता है। समावेशित शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षकों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है क्योंकि समावेशित शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक केवल अपने आपकों केवल शिक्षण कार्य तक ही अपने को सीमित नही रखता है अपितु विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों का कक्षा में उचित ढंग से समायोजन करना, उनके लिए विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक सामग्री का निर्माण करना, विद्यालय के अन्य कर्मचारियों, अध्यापकों तथा विशिष्ट अध्यापक से बालक की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहयोग व सहायक–पूर्ण व्यवहार करना, बालक को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं का वितरण करना आदि कार्य भी करने पड़ते है इसलिए अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्णतः निपूर्ण हो, उसे विशिष्ट सामग्री की जानकारी हो, बालकों के प्रति स्वरूप व सकारात्मक अभित्वृत्तियाँ रखता हो, उसके मनोविज्ञान को समझता है।

6. समावेशित विद्यालय वातावरण :– बालकों की शिक्षा चाहे वह किसी भी स्तर की हो, उसमें विद्यालय के वातावरण का बहुत योगदान होता है। विद्यालय को वातावरण ही कुछ चीजों की शिक्षा बालकों को स्वयं भी दे देता है। समावेशित शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण सुखद और स्वीकार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यालय में विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षिक, चालिष्णुता, दैनिक आदि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक साज–समाज शैक्षिक सहायताओं, उपकरर्णों, संसाधनों, भवन आदि का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है बिना इसके विद्यालय में समावेशित माहौल बनाने में कठिनाई हो सकती है।

7. सबके लिए विद्यालय :– समावेशित शिक्षा की मूल भावना है एक ऐसा विद्यालय जहाँ सभी बालक एक साथ शिक्षा प्राप्त करते है। परन्तु सामान्यतः इस तरह की बाते देखने और सुनने में आती रहती है कि किसी बालक को उसकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में अपनी असमर्थता दर्शाते हुए, विद्यालय में प्रवेश देनें से मना कर दिया जाता है तथा किसी विशेष विद्यालय में उसके दाखिले के लिए कहा जाता है। अतः समावेशित शिक्षा के उद्देश्यों को सभी बालकों तक पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में दाखिले की नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। हॉलाकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 इस सन्दर्भ में एक प्रभावी कदम कहा जा सकता है परन्तु धरातल पर इसकी वास्तविकता में अभी संदेह है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक के जीवन के हर क्षेत्र में वह चाहे स्कूल में हो या बाहर सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसा केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है। अतः निम्न चुनौतियों को दूर करके और भावी रणनीतियों के माध्यम से ही हम समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

❑❑

समावेशी शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विविध आयाम

कैलाश नाथ यादव
शोध छात्र –हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

समावेशी शिक्षा से हमारा तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जिसमें सभी शिक्षार्थियों को बिना किसी भेद भाव के सीखने सिखाने के समान अवसर मिले, वस्तुतः समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की इस कदर आवश्यकता है कि उन्हे क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक –आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में संदर्भित करके समझा जाए, क्योंकि भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरुपित किया गया है। जिसका इशारा समावेशी शिक्षा की तरफ है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करता है। जिसके परिप्रेक्ष्य में बच्चों को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। जिससे लोकतांत्रिक विद्यालय में बच्चे के समुचित समावेशन हेतु समावेशी शिक्षा के वातावरण का सृजन किया जा सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार विकलांग बालकों के इस वर्ग की शिक्षा को एक समान शैक्षिक अवसरों की समानता के अन्तर्गत कर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति सामान्य विद्यालयों में धीरे चलने वाले विकलांगो तथा मध्यम विकलांगो की शिक्षा की सिफारिश करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है, जिसके अन्तर्गत शिक्षा में एकरुपता लाने, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी प्राथमिकता शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, खेल कूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने का प्रयास शामिल है। हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में "सबके लिए शिक्षा" हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता है। समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों को शारीरिक मानसिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षा व्यवसायिक प्रशिक्षण देने हेतु सामान्य विद्यालयों के नियमित शिक्षकों से समन्वय के लिए बाध्य किया है। विकलांग बालकों की पहचान करना तथा उनका कल्याण एवं शिक्षा हेतु योजनाओं एवं कार्यक्रमों में हस्तक्षेप कर सुधार करने का कार्य किया गया है। सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति हेतु वर्ष 1986 ई0 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में घोषणा की गयी थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शिक्षा के सार्वभौमिकरण तथा सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए भारतीय संसद ने 86 वाँ संशोधन किया। जिसके तहत् 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने का अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया। शिक्षा प्रत्येक बालक/ बालिका का बुनियादी अधिकार है, उसे सीखने का अवसर मिलना चाहिए। सन् 2000 ई0 आयोजित शिक्षा मंच पर 'डाकर सम्मेलन' में स्पष्ट रूप से कहा गया कि किसी बालक/बालिका को गुणवत्ता पूर्वक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर दिये जाने चाहिए अर्थात् उसे शिक्षा से वंचित नही किया जाना चाहिए। और अक्षम बालक अभावग्रस्त, उपजातीय अल्पसंख्यकों और अलग– अलग समुदाये के तथा शिक्षा से वंचित नगरीय ग्रामीणों एवं अन्य व्यक्तियों का सन् 2015 ई0 तक शिक्षा के सर्वभौमिकरण के तहत प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त करना अनिवार्य होना चाहिए।

समावेशी शिक्षा का आशय विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य वर्ग के बच्चों के साथ बैठाकर समान्य रूप से

पढ़ाना है, ताकि सामान्य बच्चे और विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों में कोई भेदभाव न रहे तथा दोनों तरह के विद्यार्थी एक ठीक ढ़ंग से समझते हुए आपसी सहयोग से पठन–पाठन कार्य कर सके। समावेशी शिक्षा का व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढ़ंग से समझ सकें तथा उनमें उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके। समावेशी शिक्षा को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिये देश के विभिन्न राज्यों के विकलांगो की मुख्य श्रेणियों जैसे– दृष्टिबाधित, अस्थिबाधित, मूक–बधिर, मन्दबुद्धि तथा स्वालीनता से ग्रसित लोगों को पढ़ाने के लिए अलग–अलग नामों से अंशकालीन शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ रखे जाते है। जिससे इनका पठन – पाठन बाधित न हो, और इन्हें उचित शिक्षा प्रदान की जायें निःशक्तता वाली बालिकाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे उन्हे माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने और अपनी योग्यता का विकास करने हेतु मार्गदर्शन सुलभ हो।

सामान्य विद्यालयों में समावेशित शिक्षा ने विकलांग बालकों के जीवन में नया आयाम जोड़ा है। जो बालक स्कूली शिक्षा से बाहर थे, समाज से स्वयं को अलग रखते थे, या कभी–कभी विद्यालयी व्यक्तियों के व्यवहार से स्कूली शिक्षा को छोड़ देते थे, शिक्षा को मानव अधिकारों में सम्मिलित कर विकलांग बालकों के लिए भी शिक्षा उनका जन्मसिद्ध अधिकार बताया। समावेशी शिक्षा विकलांग बालक को अलग किये जाने को और निकट लाने का प्रयास है। यह बालक के परिवार समाज और विद्यालय तीनों को जोड़ती है। समावेशी शिक्षा विकलांग बालक को परिवार, समाज तथा विद्यालय में स्वीकृति प्रदान करने का प्रयास करती है। समाज में रह रहें विकलांग बालकों की खोज करती है, उनके अभिभावको को परामर्श देकर उनकी शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करती है। तथा आवश्यकता आधारित दृष्टि से अक्षम बालकों की जरुरतों को पूरा करने में सहायता प्रदान कर और अधिकार आधारित दृष्टि से अक्षम बालकों को समानता तथा सामाजिक न्याय की माँग करती हैं। समुदाय के सभी बालकों का समावेशन, स्थानीय पाठशालाओं में प्रवेश, समान शैक्षिक भागीदारी के अवसर अधिगम आवश्यकताओं के प्रति सचेत बाल–केन्द्रित शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रम को अक्षम बालकों के अनुकूल बनाकर शिक्षित करने हेतु सक्षम बनाने वाली समावेशित शिक्षा की शक्तिशाली लहरें सन् 1990 ई0 के दशक में जब उछाल लेने लगीं तब सन् 1994 ई0 में सलामाका (स्पेन) में यूनेस्कों द्वारा विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष विश्व सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में 92 राष्ट्रो जिसमें भारत भी सम्मिलित है और 25 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने भाग लिया । तथा समावेशन की नीति सिद्धान्त और व्यवहारिकता पर चर्चा हुई कि प्रत्येक बालक की रुचि, योग्यता तथा अधिगम आवश्यकताएँ भिन्न– भिन्न होती है। समावेशन नियमित विद्यालययों के भेदभाव पूर्ण व्यवहारों को खत्म करने तथा अक्षम बालकों को स्वीकार करने, समावेशित समाज की संरचना करने तथा सभी के लिए अचूक साधन है। समावेशी शिक्षा का प्रत्यय, पद्धति, कार्य नीति तथा मूल अधिकार है। भारतीय शैक्षिक जगत की शब्दावली में अभी हाल में जुड़ी है, इसका सम्बन्ध अक्षम बालकों से है। सभी के लिए शिक्षा पर विश्व घोषणा के सन्दर्भ में स्वीकृत समावेशी शिक्षा मानव अधिकारों के अन्तर्गत आ गयी और फिर भारत में प्रारम्भिक शिक्षा पर 6–14 वर्ष के बालक / बालिका का मूलभूत अधिकार है। इस स्वप्न को साकार करने के लिए 6–14 वर्ष के सभी बच्चों को शिक्षा के साथ जोड़ना नितान्त आवश्यक है।

समावेशी शिक्षा का आशय विकलांग विद्यार्थियों को जिनकों आजकल विशिष्ट आवश्यकताओं वाले विद्यार्थी कहा जाता है। समावेशी शिक्षा का एक व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढंग से समझ सकें तथा उनमें उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके। समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अपना एक राजनीतिक अर्थशास्त्र भी है जो भूमण्डलीकरण या उदारीकरण की प्रक्रियाओं से प्ररित है। यह राजनीतिक अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार को जनकल्याण, सामाजिक तथा गैर उत्पादक कार्यो पर कम से कम खर्च करना चाहिये। विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए विद्यालय चलाना मँहगा सौदा है। इस लिए समावेशी अवधारणा को प्रोत्साहित किया जा रहा है। समावेशी शिक्षा को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिए देश

के विभिन्न राज्यों के विकलांगो की मुख्य श्रेणियों – दृष्टिबाधित, अस्थिबाधित, मूकबधिर, मन्द बुद्धि तथा स्वालीनता से ग्रसित बच्चों को पढ़ाने के लिए विशेष शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए, तथा इन्हें पढ़ाने वाले शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ रखे जाएँ और पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाए।

समावेशी शिक्षा भूमण्डलीकरण की देन है। इस लिए इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का व्यापक समर्थन हासिल है। इस समर्थन की भी अपनी राजनीति, गणित, विज्ञान है। विकलांगो के विषयों मे कार्यरत विभिन्न जनसंगठनों तथा समाज सेवी संस्थाओं की भी अपनी राजनीति है, किसी भी योजना से सबसे अधिक लाभ प्राप्त करने वाले अस्थिबाधित लोगों तथा मूकबधिर लोगों से जुड़े अत्यधिक समावेशन संगठन के नाम पर समावेशी योजनाओं के लाभों से अपेक्षाकृत वंचित लोगों खासतौर पर दृष्टिबाधित लोगों के अधिकतर संगठन इसका विरोध करते है। इस तरह समावेशी शिक्षा के समूचे मॉडल में शिक्षा की पहुँच तथा शिक्षा की गुणवत्ता दोनों ही गम्भीर प्रश्नों के घेरे में है। इसके लिए चलताऊ नीतियाँ तथा तात्कालिक मसलों को क्षणिक रूप से हल कर लेने की प्रवृत्तियाँ काफी हद तक जिम्मेदार है। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक अशक्त या विकलांग छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय बिताता हैं। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिये की गयी थी लेकिन आधुनिक काल में प्रत्येक शिक्षक को इस सिद्धान्त को विस्तृत दृष्टिकोण में व्यवहार में लाना चाहिए। समावेशित वातावरण में विकलांग बालकों की शिक्षण अधिगम से सम्बन्धित आवश्यकताएँ होती है। अक्षम बालक कक्षा– शिक्षण के बहुत से बालकों की कार्य करने की क्षमता भी रखते है और इन्ही विशेष विषयों में अक्षम बालकों की कार्य करने की योग्यता के आधार पर शिक्षा की मुख्यधारा में समावेशित कियाा जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार विकलांग बालकों के इस वर्ग की शिक्षा को एक समान शैक्षिक अवसरों की समानता के अन्तर्गत कर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति सामान्य विद्यालयों मे धीरे चलने वाले विकलांगों की शिक्षा की शिफारिश करती है। विकलांग बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मानना है कि – "समान भागीदारी के रूप में आम समाज के साथ विकलांगो को सम्मिलित करना, उन्हें सामान्य विकास के लिये तैयार करना तथा साहस एवं विश्वास के साथ जीवन का सामना करने के योग्य बनाना है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा प्रदत्त सुझावों को क्रियान्वित करने के लिये सन् 1987 ई0 में एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 नई दिल्ली द्वारा "एकीकृत विकलांग शिक्षा योजना" का प्रारुप तैयार किया गया है । यह योजना केन्द्र प्रायोजित समेकित शिक्षा योजना सामान्य विद्यालयों में शैक्षिक अवसरों को प्रदान करने का दावा करती है। और यह सिफारिश करती है कि विकलांग बालक/बालिका जिन्हें विशेष विद्यालयों मे रखा गया है, उन्हे भी सामान्य स्कूलो में समेकित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, जब तक कार्यात्मक स्तर पर वे सम्प्रेषण एवं दैनिक जीवन के कौशलों को अर्जित ना कर ले। विकलांग बालकों की शिक्षा योजना का क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। जिसके अन्तर्गत पूर्व स्कूल प्रशिक्षण माता–पिता का परामर्श भी सम्मिलित है। यह ऐसी गतिविधि होगी जो नियमित स्कूल पद्धति में आने वाले बच्चों के लिए प्रारम्भिक होगी। इसमें अन्य बातों के साथ–साथ श्रवण विकलांग बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण, दृष्टिबाधित बालकों के लिए गतिशीलता और अनुस्थापन बालकों का गृह प्रवन्धन प्रशिक्षण सम्मिलित है। इस योजना के अन्तर्गत विकलांग बच्चों की शिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर तक जारी रहेगी इसमें व्यवसायिक प्रशिक्षण भी शामिल है। योजना में किये जाने वाले मुद्दों हेतु शत्प्रतिशत अनुदान मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा दिया जायेगा और कोई भी विकलांग बालक जिसे केन्द्र राज्य सरकार की किसी अन्य योजना के तहत छात्रवृत्ति सहायता प्राप्त हो रही है। वह इस योजना के अन्तर्गत किसी भी लाभ का पात्र नहीं होगा।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन प्रारूप कार्यो एवं नियमों पर समीक्षा। टिप्पणी करने के लिये मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 1990 में आचार्य राममूर्ति समिति का गठन किया। जिसमें विकलांग बच्चों की शिक्षा हेतु दो बातें कही गयीं –

(1) विकलांग बालकों की शिक्षा को समाज कल्याण की गतिविधियों के रूप में देखा जाना चाहिये।

(2) विकलांग बालकों की शिक्षा के लिये चलायी जाने वाली एकीकृत शिक्षा योजना को सामान्य विद्यालय में शुरू किया जाना चाहिये।

इसके साथ ही अध्यापको का प्रशिक्षण, प्रकाशकों के उत्थान हेतु कार्यक्रम तथा जिला प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रेक्षकों की निपुणताओं का विकास किया जाना चाहिए। नयी शिक्षा नीति विषमताओं को दूर करने पर विशेष बल देती है, और अब तक वंचित रहे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के समान अवसर मुहैया करेगी। महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा। अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस बात पर जोर देती है कि शिक्षा सर्वसुलभ करायी जाय। यही कारण है कि महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, अल्पसख्यंक, पिछड़े वर्ग के लोगों तथा विकलांगो की शिक्षा के लिये इसमें विशेष व्यवस्था की गयी है। नई शिक्षा नीति में इसे गम्भीरता से लिया गया है कि सन् 1990 ई0 में 6–11 वर्ष तक तथा सन् 1995 ई0 में 11–14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिये निशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कर दी गयी है। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा में भी महिलाओं की भागीदारी पर जोर दिया जायेगा। नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की यह सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो आज के सन्दर्भ में हमारे छात्रों के लिये एक अनिवार्य आवश्यकता बन गयी है। आज हमारी नयी पीढ़ी विज्ञान और तकनीकी को प्रमुखता से अपनाने जा रही है। उसे अपने देश के इतिहास एवं संस्कृति से जोड़े रखना अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के घोषणा के साथ ही भारतीय शैक्षणिक विकास के इतिहास में नये आयाम स्थापित करने की जी तोड़ कोशिश की जा रही है। नई शिक्षा व्यवस्था प्रारम्भ करने के पीछे भारत सरकार का प्रयास है कि सम्पूर्ण देश में व्याप्त विषंगतियों में एक रूपता आएँ और यह एकरूपता क्रान्ति लाने में सहायक हो सके। इन्हीं महत्त्वपूर्ण मुद्दों के साथ नयी शिक्षा नीति के स्वरूप एवं प्रणालियों में तकनीकि परिवर्तन की दृष्टि से डॉ0 सुभाष चन्द्र वर्मा ने सुझाव दिया कि प्राथमिक विद्यालय जाने वाले बच्चे जितने समय अपनी कक्षा में व्यतीत करते है, उसकी बजाय उन्हें कम से कम आधा समय ग्रन्थालयों मे व्यतीत करने के लिए अनुमति दी जानी चाहिए।

समूचे देश को निरक्षरता उन्मूलन के लिये निष्ठापूर्वक प्रतिवृद्ध होना है। खासकर 15 से 35 वर्ष आयु वर्ग के निरक्षर लोगों की। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार, राजनैतिक दल तथा उनके जन संगठनों, जनसंचार के माध्यमों और शिक्षा संस्थाओं को विविध प्रकार के जन साक्षरता कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए प्रतिवृद्ध होना होगा। शोध संस्थाओं की सहायता से शैक्षिक पहलुओं में सुधार लाने के ठोस प्रयास किये जायेगें। शिक्षा प्रत्येक बालक / बालिका का अधिकार है। अनुच्छेद 45 के अनुसार 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बालक / बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा अर्थात् कक्षा आठ तक निशुल्क एवं अनिवार्य होनी चाहिए। लेकिन सन् 1956 में समाज कल्याण विभाग की स्थापना की गयी । जिन्हें विकलांग बालको की शिक्षा का उत्तर दायित्त्व सौपा गया और विकलांग बालकों की शिक्षा हेतु सरकारी एवं स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा अनेक योजनाओं को चलाया गया। स्वयं सेवी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य– प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा के विभिन्न पक्षों का अवलोकन कर समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाना है, तथा शिक्षा की मुख्य धारा में विकंलाग बालकों दृष्टिबाधित, श्रवण बाधित, मन्दबाधित, अस्थि विकलांगता को समेकित कर प्रशिक्षण, पुनर्वास, क्षमता आधारित कार्यक्रमों का आयोजन करती हैं। और विकलांग बालकों को सशक्त बनाती है।

उद्देश्य – विकलांग बालकों को उत्तम सुविधाएँ प्रदान कर केन्द्रीय एकीकृत योजना को सफल बनाना है। विद्यालय परिवेश में अक्षम बालकों की सुविधाओं के साथ शिक्षा प्रदान कर वस्तुकला सम्बन्धी अवरोधों को दूर कर आत्मनिर्भर बनाना है, जिससे विकलांग बालक सामान्य बालकों के साथ विभिन्न क्रियाकलापों में क्षमतानुसार पूर्ण सहभागिता का निर्वाह कर सके। विकलांग बालकों को सामान्य बालकों के साथ कक्षा शिक्षण हेतु समावेशित करने से है । यह तभी सम्भव है जब अध्यापक विषय वस्तु को छोटी–2 इकाइयों में बाँटकर तब तक सिखायें जब तक

विकलांग और सामान्य बालकों को विषय का स्वायित्व न हो जाये। इसलिए प्रत्येक बालक को उचित तरीकों से किसी वस्तु प्रत्यय को सीखना, समझना, यादकर जानकारी प्राप्त करने का समान अवसर होना चाहिए। निर्धन परिवारों को इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाय कि वे अपने बच्चों को 14 साल की उम्र तक नियमित विद्यालय जा सकें। शिक्षा कीा ऐसी सुनियोजित व्यवस्थाएँ करना और जाँच पड़ताल की विधि स्थापित करना जिससे पता चलता रहे कि अनुसूचित जातियों के बच्चों के नामांकन होने नियमित रूप से अध्ययन जारी रखने और पढ़ाई पूरी करने की प्रक्रिया में कही गिरावट तो नही आ रही है। साथ ही इन बच्चों की आगे की शिक्षा और रोजगार पाने की संभावना को बढ़ाने के उद्देश्य से उनके लिए उपचारात्मक पाठ्य चर्या की व्यवस्था करना। अनुसूचित जातियों के लिये शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के साधनों का उपयोग करना। अनुसूचित जातियों का शिक्षा प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने हेतु लगातार नये तरीकों की खोज करना और आदिवासी इलाकों में प्राथमिक शालाएँ खोलने की प्राथमिकता दी जाये तथा पढ़े लिखे प्रतिभाशाली आदिवासी युवकों को प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र में ही शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहन दिया जाये अल्पसंख्यकों के कुछ वर्ग तालामी दौड़ में कॉफी पिछड़े और वंचित है, ऐसे वर्गो की तालीम पर विशेष ध्यान दिया जाये। गम्भीर रूप से विकलांग बच्चों के लिये छात्रावास वाले विशेष स्कूलों की जरुरत होगी। इस तरह के स्कूल जहाँ तक सम्भव हो वहाँ पर जिला मुख्यालय में बनायें जाएँ। नई शिक्षा नीति में स्कूल छोड़े जाने वाले बच्चों की समस्या के सुलझाने को उच्च प्राथमिकता दी जाये। बच्चों के बीच में विद्यालय छोड़ने से रोकने के लिए स्थानीय परिस्थियों के परिप्रेक्ष्य इस समस्या को बारीक से अध्ययन किया जाएँ और प्रभावशाली उपाय खोजकर दृढ़ता के साथ उनका प्रयोग करने हेतु देश व्यापी योजना बनाई जाएँ।

निष्कर्ष – अतः हम कह सकते हैं कि समावेशी शिक्षा के लिये सहभागिता पूर्ण और समग्र दृष्टिकोण से देश के लिए एक नयी शिक्षा नीति तैयार करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति सन् 1986 ई0 बनाई गयी थी और 1992 में संशोधित की गयी थी तब से अब तक कई बदलाव हुए है, जिसकी वजह से नीति में संशोधन की आवश्यकता है। भारत सरकार लोगों को गुणवत्ता परक शिक्षा .नवाचार और अनुसंधान सम्बन्धी आवश्यकताओं के परिवर्तन शील पहलुओं से निपटने के लिये नई शिक्षा नीति लाना चाहती है। जिसका उद्देश्य भारत को उसके माध्यम से छात्रों में आवश्यक कौशल तथा ज्ञान प्रदान करके ज्ञान के क्षेत्र में महाशक्ति बनाना तथा विज्ञान प्रोद्यौगिकी शिक्षा एवं उद्योग जगत में श्रम शक्ति की कमी को दूर करना होगा। शिक्षा में सुधार की जिम्मेदारी केवल सरकार ही नहीं बल्कि समाज की भी है। समाज यदि शिक्षकों को सम्मान देगा तो निश्चित रूप से बच्चे संस्कारित होगें। इसके अलावा भारत के शिक्षकों से भी इसी प्रकार की अपेक्षा की जाती रही है कि वे भी भारत के भविष्य को सुन्दर एवं सुखमय बनाने के नजरिये से ही शिक्षा प्रदान करने की ओर प्रवृत्ति हो हमारे देश में शिक्षकों के बारे में बहुत ही सुन्दर अवधारणा है कि शिक्षक ही संस्कारित और सम्य समाज का निर्माण कर सकता है। अक्षम बालकों की शिक्षा के लिये 6–18 वर्ष की आयु तक निशुल्क शिक्षा दी जाती है लेकिन परिवारिक सदस्य अनभिज्ञ होते हुये भी स्वयं बालकों को इस लाभ से वंचित रखते है। अतः अन्त में कह सकते है कि सरकार के साथ– साथ समाज और परिवार का उत्तरदायित्व है कि अपने बच्चों के मार्गदर्शन में अग्रसर हो ताकि उनका भविष्य उज्ज्वल बना रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ0 विमलेश शर्मा, समावेशी विशिष्ट शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2016
- विनोद कुमार मिश्र, विकलांग विभूतियों की जीवन गाथाएं, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
- डॉ0 रामशकल पाण्डेय, प्राचीन भारत के शिक्षा मनीषी, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2016
- डॉ0 सत्य नारायण दुबे, विशिष्ट शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2016
- शिखा चतुर्वेदी, उदीयमान भारतीय समान में शिक्षक, आर0 लाल0 बुक डिपो, मेरठ, 2008

❑❑

समावेशी शिक्षा एवं सामाजिक विकास के बदलते प्रतिमान

शिखा यादव
शोध छात्रा–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 श0मि0रा0पु0. विश्वविद्यालय, लखनऊ

समावेशी शिक्षा एक प्रणाली है। शिक्षा में समावेशीकरण से तात्पर्य यह है कि विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र, एक अशक्त एवं विकलांग छात्र को समान शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सके। इसमें एक सामान्य छात्र, एक दिव्यांग छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय व्यतीत करता है। समावेशी शिक्षा द्वारा बौद्धिक एवं विकासात्मक दिव्यांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों को समाज की विभिन्न गतिविधियों में समाविष्ट कर उनका सर्वांगीण विकास करना है।

समावेश शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न हो सकता है। लेकिन समावेशी शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है बौद्धिक तथा विकासात्मक विकलांगताओं से प्रभावित दिव्यांगजन को समाज की सम्पूर्ण गतिविधियों में पूर्ण रूप से हिस्सेदार बनाकर उन्हें आत्मनिर्भरता के साथ एक गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान करना। समावेशीकरण के बढ़ने से हमारे दिव्यांगजनों में अपनत्व की भावना का विकास भी तीव्रगति से होगा तथा दिव्यांगजनों के सर्वांगीण विकास से हमारा समाज मजबूत और सुखद हो सकेगा। समावेशी शिक्षा का उद्देश्य दृष्टिबाधित, मूकबधिर, आटिज्म सेरेबल पॉल्सी बौद्धिक एवं बहुविकलांग जनों के भौतिक सामाजिक, सांस्कृतिक सशक्तिकरण के लिए काम करना है। ''दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग'' ''सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार के अंतर्गत स्थापित इस संस्था का लक्ष्य है कि विकासात्मक, मानसिक तथा बौद्धिक दिव्यांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों की वर्जना न करते हुए समाज समान रूप से उन्हें अन्तर्निहित करे।

दिव्यांगजनों को समाज में सम्मान मिले एवं कक्षाओं में उनकी सुविधाओं के साधन उपलब्ध हो जिनसे उनके व्यक्तित्व का विकास हो सके। पहले समावेशी शिक्षा की कल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गयी थी किन्तु आज समावेशी शिक्षा का स्वरूप विस्तृत हो गया है इसके अंतर्गत दृष्टिबाधित, मूक–बधिर, मानसिक मंदता, बहुविकलांग, अशक्त बालक रखे जाते हैं। समावेशी शिक्षा व्यवस्था विशेष विद्यालय या कक्षा व्यवस्था को स्वीकार नहीं करती। दिव्यांगजनों को सामान्य बच्चों से अलग करना अभिमान्य नहीं है। दिव्यांग बच्चों को भी सामान्य बच्चों के साथ विद्यालय में होने वाली शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का पूर्णतः अधिकार है। दिव्यांग बच्चे सामान्य बच्चों के साथ जब शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेंगे तो उनमें आपस में मित्रता होगी और सहयोग की भावना का विकास होगा। इस प्रकार दिव्यांग बच्चे समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकेगें और उनका सामाजिक विकास तीव्र गति से होगा।

समावेशी शिक्षा का आशय विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य बच्चों के साथ बैठाकर सामान्य रूप से पढ़ाना है ताकि सामान्य बच्चों और विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों में कोई भेदभाव न रहे तथा दोनों तरह के विद्यार्थी एक दूसरे को ठीक ढंग से समझते हुए आपसी सहयोग से पठन–पाठन के कार्य को कर सकें।

शिक्षक कक्षा में सहयोग को बढाने के लिए कुछ तरीकों का उपयोग करते हैं –

– सहयोग की भावना को बढ़ाने के लिए खेलों का आयोजन करना।
– विद्यार्थियों को समस्या समाधान में शामिल करना।
– सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

- किताबों का अदान–प्रदान करना।
- बच्चों के विचारों का आपस में आदान–प्रदान।
- छात्रों में सहयोग की भावना बढाने के लिए कार्यक्रम तैयार करना।
- छात्रों को शिक्षक की भूमिका निभाने का अवसर देना।
- विभिन्न क्रियाकलापों के लिए छात्रों के दल का निर्माण करना।
- सुगम वातावरण का निर्माण करना।
- बच्चों के माता–पिता का सहयोग लेना।
- दिव्यांग बच्चों की सुविधा के अनुसार कक्षा की व्यवस्था करना।
- दिव्यांग बच्चों का लक्ष्य निर्धारित करना।

समावेशी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के लिए उच्च व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है। समावेशी शिक्षा अन्य छात्रों को अपनी उम्र के बच्चों के साथ शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित करती है। समावेशी शिक्षा बच्चों को उनकी शिक्षा के क्षेत्र में और उनके स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी शामिल करने की वकालत करती है।

समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की भावना के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए भी अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा सभी बच्चों में अपनी स्वयं की व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के साथ प्रत्येक को एक व्यापक विविधता के साथ दोस्ती का विकास करने की क्षमता विकसित करती है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है जिससे हमारे समाज का भी सर्वांगीण विकास हो।

समावेशी शिक्षा का व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्तियों के सरोकारों को सामान्य जन बेहतर ढंग से समझ सके तथा उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके। समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अपना एक राजनीतिक अर्थशास्त्र. है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए विशेष विद्यालय चलाना महंगा सौदा है इसलिए समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

समावेशी शिक्षा सामान्य स्तर पर लागू करने के लिए देश के विभिन्न राज्यों में विकलांगों की मुख्य श्रेणियों दृष्टिबाधित अस्थिबाधित, मूकबधिर, मंदबुद्धि तथा स्वालीनता से ग्रसित लोगों को पढ़ाने के लिए अलग अलग नामों से अंशकालिक शिक्षक एवं शिक्षिकाएं रखे जाते हैं।

समावेशी शिक्षा भूमण्डलीकरण की देन है इसलिए इसे अन्तर्राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भी समर्थन हासिल है। विकलांगों की शिक्षा में कार्यरत विभिन्न जनसंगठनों एवं संस्थाओं के भी अपने नियम कानून हैं किसी भी योजना में सबसे अधिक लाभ प्राप्त करने वाले अस्थिबाधित लोगों तथा मूकबधिर लोगों से जुड़े अत्यधिक संगठन समावेशन के नाम पर समावेशी योजनाओं के लाभों से अपेक्षाकृत वंचित लोगो खासतौर पर दृष्टिबाधित लोगों के अधिकतर संगठन इसका विरोध करते हैं।

इस तरह समावेशी शिक्षा के सम्पूर्ण मॉडल में शिक्षा की पहुंच तथा शिक्षा की गुणवत्ता दोनों ही गंभीर प्रश्नों के घेरे में हैं। इसके लिए प्रयोग होने वाली नीतियों तथा तात्कालिक मसलों को क्षणिक रूप से हल करने की प्रवृत्तियां काफी हद तक जिम्मेदार हैं।

समावेशन शब्द का अपने आप में खास अर्थ नहीं होता, समावेशन के चारों ओर जो वैचारिक, दार्शनिक, सामाजिक और शैक्षिक ढांचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को

न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है बल्कि यह सीखने व विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाएं रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्तर्क्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत समावेशी शिक्षा का प्रावधान है।

1987 ई0 एन0सी0ई0आर0टी0 नई दिल्ली द्वारा ''एकीकृत विकलांग शिक्षा योजना'' का प्रारूप तैयार किया गया। यह शिक्षा ''केन्द्रिय प्रायोजित समेकित शिक्षा योजना'' सामान्य विद्यालयो में सामान्य शैक्षिक अवसरों को प्रदान करने का दावा करती है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन प्रारूप कार्यों एवं नियमों पर समीक्षा की टिप्पणी करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 1990 में आचार्य राममूर्ति समिति का गठन किया जिसमें दो बातें हैं।

1. विकलांग बालकों की शिक्षा को समाज कल्याण की गतिविधि के रूप में देखा जाना चाहिए।
2. विकलांग बालकों की शिक्षा के लिए चलायी जाने वाली एकीकृत शिक्षा योजना को सामान्य कक्षा में लागू किया जाये।

अतः इन प्रावधानों के लागू होने से समावेशी शिक्षा के विकास को एक नयी दिशा मिलेगी। सभी बालकों की साथ में शिक्षा होने से उनका सामाजिक विकास भी तीव्र गति से होगा।

वर्तमान में विशिष्ट शैक्षिक आावश्यकताओं वाले बालकों के लिए शिक्षा की दो प्रकार की व्यवस्था है। एक वह जिसे हम विशेष विद्यालय कहते है। जो ज्यादातर शहरों में स्थित आवासीय हैं जिनका उद्देश्य केवल एक प्रकार के विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है और दूसरा उपाय है कि उन्हें अन्य सभी बालकों के साथ आसपास के सामान्य विद्यालयों में भेजा जाये और वहीं उनकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था की जाये। यदि बालक इस प्रकार विद्यालय में जाता है तो वह अपने अन्य भाई बहनों के समान अपने मां बाप के साथ रह सकता है। इस प्रकार के सभी विद्यालयों में सभी बालक एक दूसरे से मिल जुलकर एक दूसरे से सीख सकते हैं। इनके साथ ही बालक को बाद में अपने आप को दुनिया में समायोजित करने मे सहायता मिलती है क्योंकि दिव्यांगजनों का समाज और सामान व्यक्तियों का समाज एक ही होता है। इसलिए क्यों न बालक को प्रारम्भ से ही उसी समाज में रखा जाये जहां उसे विद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के बाद रहना है ?इसलिए अच्छा है कि बालक को मुख्य धारा वाले ऐसे विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाये जहां अन्य सामान्य बालक भी जाते हैं इस अवधारणा के साथ समावेशी शिक्षा व्यवस्था का आरम्भ हुआ।

समावेशी शिक्षा कक्षा में विविधताओं को स्वीकार करने की एक मनोवृत्ति है। जिसके अंतर्गत विविध क्षमताओं वाले बालक सामान्य शिक्षा प्रणाली में एक साथ अध्ययन करते हैं। समावेशित शिक्षा के दर्शन के अंतर्गत प्रत्येक बालक अद्वितीय है और उसे अपने सहपाठियों की भांति विकसित करने के लिए कक्षा में विविध प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता हो सकती है। बालक के पीछे रह जाने के लिए उसको दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, बल्कि उन्हें कक्षा में भली भांति समाहित न कर पाने का जिम्मेदार अध्यापक को स्वयं समझना चाहिए।

जिस प्रकार हमारे संविधान में किसी भी आधार पर किये जाने वाले भेदभाव का निषेध है उसी प्रकार समावेशित शिक्षा विभिन्न ज्ञानेन्द्रिय, शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कारणों से उत्पन्न किसी बालक की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं के बावजूद उन बालकों को भिन्न देखे जाने के बावजूद स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखती है।

माध्यमिक स्तर पर निःशक्तजन समावेशी शिक्षा योजना वर्ष 2009–10 से प्रारम्भ की गई है। यह योजना निःशक्त बच्चों के लिए एकीकृत योजना सम्बन्धी पहले की योजना के स्थान पर है और माध्यमिक स्तर पर पढ़ने

वाले निःशक्त बच्चों की समावेशी शिक्षा के लिए सहायता प्रदान करती है। यह योजना अब वर्ष 2013 से ''राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान'' के अंतर्गत सम्मिलित कर ली गई है। राज्य/संघ राज्य क्षेत्र भी आर0एम0एस0ए0 के रूप में इसे आर0एम0एस0ए0 योजना के अंतर्गत सम्मिलित करने की प्रक्रिया में है।

योजना में निःशक्त व्यक्ति अधिनियम–1995 और राष्ट्रीय न्यास अधिनियम–1999 के अंतर्गत माध्यमिक स्तर पर पढ़ने वाले यथा परिभाषित एक या अधिक निःशक्तता नामशः दृष्टिहीनता, कम दृष्टि, कुष्ठ रोग, उपचारित, श्रवणशक्ति की कमी, गति विषयक निःशक्तता, मंदबुद्धिता, मानसिक रूग्णता, आत्मविमोह और प्रमस्तिष्क घात वाले जिसमें अन्ततः वाणी की हानि, अधिगम निःशक्तता इत्यादि भी शामिल है। निःशक्तता वाली बालिकाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिसमें उन्हें माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने और अपनी योग्यता का विकास करने हेतु सूचना और मार्गदर्शन सुलभ हो। योजना के अंतर्गत हर राज्य में मॉडल समावेशी स्कूलों की स्थापना करने की कल्पना की गई हैं।

यू0एन0सी0आर0पी0.डी. का अनुच्छेद 24 स्पष्ट रूप से शिक्षा के लिए पहली पसन्द के रूप में समावेशी तंत्र को रेखांकित करता है। यह शिक्षा के प्रति विकलांग बच्चों के अधिकार को दोहराता है एवं इसके अलावा नियमित शिक्षा प्रणाली में पूर्ण समावेश का लक्ष्य स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है। बौद्धिक एवं विकासात्मक बच्चों एवं वयस्कों के लिए स्कूल और कालेजों को समावेशी बनाने के लिए बड़े पैमाने पर जागरूकता सम्बन्धी पहल की आवश्यकता है। भारत सरकार के मानव संसाधन विभाग राज्य सरकारो कारपोरेट संस्थानों के साथ मिलकर सार्वजनिक एवं निजी शैक्षणिक संस्थाओं के भौतिक ढांचे को चलित उपकरण, सहायक उपकरण, सुलभ जानकारी आदि द्वारा सुगम एवं समावेशी बनाना आवश्यक है।

समावेशी शिक्षा के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं में दर्शाया गया है –

1. समावेशित शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।
2. प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है।
3. समावेशित शिक्षा बालक को अन्य बालकों के समान कक्षा गतिविधियों में भाग लेनें और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है।
3. समावेशित शिक्षा अन्य बालकों को अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं में सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग करती है।
4. समावेशित शिक्षा सम्मान और अपनेपन की विद्यालय संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए अवसर प्रदान करती है।
5. समावेशित शिक्षा बालकों की शिक्षा गतिविधियों में उनके मातापिता को भी सम्मिलित करने की वकालत करती है।

समावेशित शिक्षा सही मायनों में शिक्षा के अधिकार जैसे शब्दों का रूपान्तरित रूप है जिनके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है–विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक क्षमतामूलक व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना। समावेशित शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का समर्थन करती है।

समावेशी शिक्षा में प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बालकों के सीखने के तौर तरीकों में विविधता होती है, अनुभवों के द्वारा अनुकरण के माध्यम से, चर्चा, प्रश्न पूछना, सुनना, चिंतन, मनन, खेल, क्रिया कलापों, छोटे व बड़े समूहों में गतिविधियां करना आदि तरीकों के माध्यम से बालक अपने आस पास के परिवेश के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक बालक को सीखने सिखाने के क्रम में समुचित

अवसर प्रदान करना आवश्यक है। बालकों को सीखने से पूर्व सीखने–सिखाने के लिए तैयार करना आवश्यक होता है। इसके लिए सकारात्मक वातावरण विकसित करने की जरूरत होती है। बालक उन्हीं सीखी हुई बातों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर पाता है जिनके बारे में उसमे अपने परिवेश के कारण भली भांति समझ विकसित हो चुकी हो। सीखने की प्रक्रिया विद्यालय के साथ–साथ विद्यालय के बाहर भी निरन्तर साथ–साथ चलती रहती है। अतः सीखने की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किए जाने की आवश्यकता है जिससे बालक पूर्व रूप से उसमें सम्मिलित हो जाये और उसके बारे में अपने आधार पर अपनी समझ विकसित करें। सीखने सिखाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व बालक के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक व राजनीतिक परिपेक्ष्य को जानना आवश्यक है।

प्रत्येक बालक की विविधता के प्रति आदर रखना। बालकों की शिक्षा चाहे वह किसी भी स्तर की हो उसमें विद्यालय के वातावरण का बहुत योगदान होता है। विद्यालय का वातावरण कुछ चीजों की शिक्षा बालकों को स्वयं भी दे देता है। समावेशित शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण सुखद और स्वीकार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यालय में विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक साज–समान शैक्षिक सहायताओं, उपकरणों, संसाधनों, भवन आदि का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है। इसके बिना विद्यालय में समावेशित माहौल बनाने में कठिनाई हो सकती है।

समावेशी शिक्षा की मूल भावना है एक ऐसा विद्यालय जहां सभी बालक एक साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, परन्तु सामान्यतः इस तरह की बाते देखने और सुनने में आती रहती है कि किसी बालक को उसकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में अपनी असमर्थता दर्शाते हुए, विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर दिया या किसी विशेष विद्यालय में उसके दाखिले के लिए कहा हो। समावेशित शिक्षा के उद्देश्यों को बालक तक पहुंचाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में दाखिले की नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 इस सम्बन्ध में एक प्रभावी कदम कहा जा सकता है।

बालकों को शिक्षित करने का सबसे बेहतर तरीका है कि उन्हें खेलने के तरीकों तथा गतिविधियों के माध्यम से सिखाने का प्रयास किया जाना चाहिए। समावेशित शिक्षा व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि विद्यालय पाठ्यक्रम बालकों की अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों आकांक्षाओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम विविधतापूर्ण तथा लचीला होना चाहिए जिसमें प्रत्येक बालक की क्षमताओं, आवश्यकताओं को रूचि के अनुसार अनुकूल बनाया जा सके। उसे विद्यालय के बाहर के सामाजिक जीवन से जोड़ा जा सके, बालकों को सामाजिक रूप से एक उत्पादित नागरिक बनाने में योगदान दे सकें। विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में निर्धारित शिक्षक विशेष शिक्षक, अभिभावक और परिवार सामुदायिक अभिकरणों के साथ विद्यालय कर्मचारियों के बीच सहयोग और सहकारिता शामिल है।

समावेशित शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत घर से विद्यालय जाते समय बालक को आरम्भ में नये परिवेश में अपने आप को समायोजित करने में कुछ असुविधा हो सकती है। जैसे आरम्भ में कक्षा के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होना। इसके अतिरिक्त किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक परिवर्तनों के कठिनाई के दौर से मार्गदर्शन एवं निर्देशन से बालक को इस संक्रमण काल में काफी सहायता मिलती है। उचित मार्गदर्शन व निर्देशन से बालक और उसके माता पिता दोनों ही इन परिवर्तनों के लिए मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से तैयार किये जा सकते हैं।

समावेशित शिक्षा की सफलता के लिए उसके प्रचार प्रसार के लिए शिक्षा व्यवस्था में तकनीक का उपयोग किये जाने की आवश्यकता है। टी0वी0 कार्यक्रमों, कम्प्यूटर, मोबाइल फोन सहायक शिक्षा व तकनीकी उपकरणों

का उपयोग करके बालकों की शिक्षा, सामाजिक अन्तर्क्रिया, मनोरंजन आदि में प्रभावशाली भूमिका निभाई जा सकती है। समुदाय की सक्रिय भागीदारी विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा की पूरी बुनियाद प्रतिभागिता निर्मित करने पर टिकी हुई हैं।

शिक्षक को ही शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति तथा शैक्षिक संस्थानों की आधारशिला माना गया है। यद्यपि यह बात सत्य भी है कि विद्यालय भवन पाठ्यक्रम, सहायक शिक्षण सामग्री आदि सभी वस्तुएं एवं क्रियाकलापों का भी शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होता है परन्तु शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सबसे अधिक प्रभावित करता है।

समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षकों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है क्योंकि समावेशित शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक अपने आप को केवल शिक्षा व्यवस्था तक ही सीमित नहीं रखता है बल्कि विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों का उचित ढंग से समायोजन करना, उनके लिए विशिष्ट शिक्षण सामग्री प्रकार की शैक्षिक सामग्री का निर्माण करना, बालक को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं का वितरण करना आदि कार्य भी करने पड़ते हैं। अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्णतः निपुण हो, उसे विशिष्ट सामग्री की जानकारी हो, बालकों के प्रति स्वस्थ व सकारात्मक अभिवृत्तियां रखता हो, उनके मनोविज्ञान को समझता हो।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विकलांग बच्चों को गुणवतायुक्त मुफ्त शिक्षा में शामिल होना चाहिए, एक समावेशी प्रणाली को उचित आवास प्रदान करना चाहिए। इसके साथ–साथ निरन्तर प्रभावी व्यक्तिगत सहायता जो सभी छात्रों की जरूरतों को पूरा करें। विकलांग व्यक्तियों के लिए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन द्वारा प्रत्येक बालक तथा युवा को अपने बौद्धिक एवं सामाजिक विकास की पूर्ण क्षमताओं को प्राप्त करने के अधिकार को रेखांकित किया गया है। इस घोषणा पत्र को दिव्यांग बच्चों एवं सामान्य बच्चों के लिए पूर्णतः लागू किया जाये जिसमें उनका सामाजिक विकास हो सके।

समावेशन की नीति को प्रत्येक स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरूरत है क्योंकि समावेशन की शिक्षा नीति लागू होने से ही बच्चे का सामाजिक विकास होगा और बच्चे का सामाजिक विकास होने से हमारे सम्पूर्ण समाज का विकास होगा। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में वह चाहे विद्यालय में हो या बाहर सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की जरूरत है। विद्यालयों को ऐसे केन्द्र बनाए जाने की आवश्यकता है जहाँ बच्चों को जीवन जीने के लिए तैयार कराया जाये और यह सुनिश्चित किया जाये कि सभी बच्चों खासकर शारीरिक और मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों तथा कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के महत्वपूर्ण क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिलें और उनका मानसिक विकास हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- इंटरनेट
- विकीपीडिया
- झा एम0एम0–2005, समावेशी शिक्षा दृष्टिकोण एवं प्रतिभाएँ–एस0 प्रकाशन नई दिल्ली।
- एस0आर0–2009, एकीकृत और समावेशी शिक्षा
- कनिष्का प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
- शर्मा योगेन्द्र डॉ0 2009 शारीरिक रूप से विकलांग बालक : सिद्धान्त प्रक्रिया एवं विकास, कनिष्का प्रकाशन,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

61

वर्तमान भारतीय राजनीति में डॉ० राममनोहर लोहिया के समाजवादी आन्दोलन की प्रासंगिकता

डॉ० अरविन्द सिंह यादव
प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
रामस्वरूप यादव महाविद्यालय, पूँछ, झाँसी (उ०प्र०)

भारत में समाजावादी आन्दोलन प्रारंभ से ही एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति से जुड़ा रहा है उसमें आन्दोलन से अधिक चिंतन और चिन्तन के साथ कर्म जुड़ा हुआ था यदि वह केवल एक आन्दोलन होता तो भारतीय समाजवाद का संगठन ही दूसरे प्रकार का होता। बार–बार टूटने और टूट कर जुड़ने, जुड़ कर फिर टूटने की प्रक्रिया उसे बार–बार दोहरानी नहीं पड़ती। वह आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने के लिये बहुत से ऐसे नारे और फार्मूले अपनाता जिसका जीवन पद्धति और दर्शन से कोई रिश्ता ही नहीं होता। चिन्तन और कथनी एवं करनी का आग्रह समाप्त कर दिया जाता कर्म का सीधा रिश्ता सत्ता से जुड़ता और नैतिक एवं अनैतिक उहापोह से छुट्टी मिल जाती। राष्ट्रीय संदर्भो से पलायन करके किसी अल्पकालिक कार्यक्रम से आन्दोलन जुड़ जाता और इस तरह एक भूल–भूलैय्या का चक्कर काटते–काटते सत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर लेता। कुछ नही ंतो अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद का नारा लेकर किसी प्रत्याषित क्रान्ति की प्रतीक्षा करता। उसके सुनहरे सपने देखते–देखते निष्क्रिय होकर सत्ता के इर्द–गिर्द घूमता रहता और यह टूटने और जुड़ने की प्रक्रिया बार–बार न घटित होती। जीवन पद्धति और राष्ट्रीय संदर्भों की चर्चा करने के बजाय चिन्ता इसकी होती कि कैसे पूरा समाजवादी आंदोलन एक स्थायी संस्था के रूप में प्रतिष्ठित हो। आज देश में बहुत सी ऐसी संस्थाएं हैं जो सैकड़ों वर्षों से जीवित हैं और अपनी शताब्दियाँ मना रही हैं। इस प्रकार की यथास्थितिवादी मानसिकता के साथ अनेक संस्थाएं भविष्य में भी जीवित रहेगी और हो सकता है कि भविष्य में भी दो–चार शताब्दियों तक उसी प्रकार सांस गिन–गिन कर चलती रहें। क्योंकि वह न तो राष्ट्रीय संदर्भ में जुड़ेंगी और न ही कोई खतरा मोल लेगी समाजवादियों का तो यह नारा ही था कि 'सुधरो या टूटो' यह जितना दूसरी यथास्थितिवादी संस्थाओं के लिए था उतना ही स्वयं अपने ऊपर भी लागू होता था।

टूटने का अर्थ ही यह है कि आन्दोलन की आधारभूत जड़े नष्ट हो गई हैं। उनमें आगे बढ़ने की क्षमता नहीं रह गई है। ऐसे में टूटना ही उनका धर्म है। इसलिए समाजवादी आन्दोलन भी अपनी साठ–बासठ वर्ष की आयु में कई बार टूटा और जुड़ा। वस्तुतः आज समाजवादी आन्दोलन की पहचान भी इसी टूटने और जुड़ने से बनी है। क्योंकि यह टूटना संगठन का था। विचारों का नहीं। चूंकि विचार जीवित और गतिशील थे इसलिए उनमें फिर से जुड़ने की क्षमता थी। प्रखर वैचारिक गतिशीलता में बहुधा लोग टूट जाते हैं। संस्थाएं चरमरा जाती हैं। फिर उससे नये लोग जुड़ते हैं। फिर संगठन खडा होता है और फिर संस्थाओं का पुनर्जन्म भी होता है। भारतीय समाजवाद की यह नियति थी कि वह बार–बार टूटे और जुड़े यही उसका चरित्र भी है।

यदि भारत के समाजवादी आन्दोलन की गतिविधियों का सम्यक अध्ययन किया जाये तो पायेंगे कि पूरे समाजवादी आन्दोलन को कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से लोहिया के चिन्तन और जीवन दर्शन ने निरन्तर प्रभावित किया है। पूरे समाजवादी आन्दोलन को एक नैतिक चरित्र प्रदान किया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और लोहिया की दार्शनिक दृष्टि से पूरा आन्दोलन ओतप्रोत है। वस्तुतः आज भी यदि भारत में समाजवाद अपनी पूर्ण गरिमा के साथ जीवित है तो इसका एक मात्र कारण यह रहा है कि यह आन्दोलन अपने जन्म से ही भारत के

सक्रिय राजनैतिक आन्दोलन के साथ प्रासंगिक बना हुआ था। आज भी वह उतना ही प्रासांगिक है। अब तो डॉ० लोहिया के बहुत से सिद्धान्त और उनके जीवन दर्शन के मूल आयाम समाजवादी आन्दोलन के अविभाज्य अंग बन गये हैं। समाजवादी आन्दोलन की उदान्त भावना को भारतीय परिवेश ने एक सामाजिक अन्तरात्मा, सामाजिक न्याय एवं सामाजिक सहकारिता को एक दूसरे सांचे में ढाल दिया।

भारत का समाजवादी आन्दोलन केवल रोटी, रोजी और मजदूरी से नहीं जुड़ा रहा। जहाँ भारतीय समाजवाद ने महात्मा गांधी के बहुत से सिद्धांतों को स्वीकारा वहीं उसने उत्पादन और वितरण प्रणाली तथा पूँजीवाद को समूल नष्ट करके नयी सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार किया है। जवाहरलाल नेहरू से लेकर मुलायम सिंह तक समाजवाद के अनेक प्रयोगात्मक रूप उभर कर सामने आये हैं। किन्तु जिन दो बिंदुओं पर समाजवादी चिन्तन निरन्तर केन्द्रित रहा, वह गांधी और लोहिया के समीकरण और पारस्परिक विचारों के संशोधन और परिवर्तन के बिन्दु हैं। यही मूल प्रवृत्ति भारत में समाजवादी आन्दोलन को आज भी स्थिरता प्रदान किये हुए है। आजादी के बाद से लेकर आज तक समाजवादी आन्दोलन को कई धक्के लगे हैं। किंतु हर झटके के बाद यह आन्दोलन अपनी अनिवार्य प्रासंगिकता बनाये हुए है। प्रश्न उठता है कि आखिर यह प्रासंगिकता क्यों और कैसे आज भी बनी हुई है। क्या मात्र गांधीवादी विचारधारा को सम्मिलित कर देने से इसे जीवन मिला है। या समाजवाद द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों और कार्यक्रमों के आधार पर इसको स्थिरता प्राप्त हुई। गंभीरता पूर्वक विचार करने से ऐसा लगता है कि केवल सिद्धांतों की दुहाई से समाजवादी आन्दोलन बार–बार नष्ट होने के बाद भी उठ कर नहीं खड़ा हुआ। इसके जीवित रहने का मुख्य कारण यह है कि ''समाजवादी आन्दोलन पिछले पचास वर्षों में निरन्तर तात्कालिकता से जुड़ा रहा है। तात्कालिक अन्याय को अनदेखा करके भविष्य के स्वप्निल संसार के धोखे से बचता रहा है। इसलिए वह न तो अति साहसिकता का शिकार हुआ और न ही अतीतगामी हुआ।''

पश्चिमी देशों में, वर्मा और जापान में इस आन्दोलन के समाप्त होने का मुख्य कारण था कि उन देशों में समाजवादी आन्दोलन देश की प्रासंगिकता के साथ इतनी गहराई से जुड़ा ही नहीं जितने धनीभूत रूप में भारत से यह जुड़ा रहा है। स्थिरता की जड़ता और आने वाली घटनाओं के आतंक के प्रति निरन्तर जागरूकता बनाये रखने के कारण यह आन्दोलन राष्ट्रीय मुख्यधारा का अंग बना हुआ है और देश की राजनीतिक और स्थापित सत्ता के विकल्प के रूप विद्यमान है। डॉ० राममनोहर लोहिया ने प्रकाश की नई किरण की खोज के लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम दिया जिसे सप्त–क्रांति कहा जाता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इसे सम्पूर्ण क्रांति कहा।

इस समय हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके है। लोहिया की बताई सात क्रांतियों और उनकी विरोधी प्रतिक्रांतियों की बीच जर्बदस्त संघर्ष चल रहा है। इस सदी में यह संघर्ष और तेज होगा। हालांकि इस समय प्रतिक्रांति की शक्तियाँ भारी पड़ रही हैं लेकिन उनका पराजित होना निश्चित है। क्योंकि क्रांति की ताकतें सारे विश्व में सक्रिय हैं।

लोहिया की सप्तक्रांति का प्रमुख सूत्र है। विषमताओं की समाप्ति और संभव समता की स्थापना की ओर हमारे कदम बढ़े। पूर्ण समता एक असंभव कल्पना है। एक सतयुग है जो कभी नहीं आता। अतः लोहिया संभव समता की बात करते थे। इसके साथ–साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि समाजवाद के आदर्श की क्रांति अचानक धमाके के साथ प्रकट नहीं होती। अचानक धमाके के साथ प्रकट होने वाली क्रांति साम्यवाद का लक्ष्य होती है। लेकिन ऐसी सभी क्रांतियाँ इतिहास में असफल हुई हैं। समाजवादी क्रांति लंबी प्रक्रिया है और इसके लिए सतत युद्धरत रहना पड़ता है तथा सतत सिविल नाफरमानी का रास्ता अपनाना पड़ता है। सप्तक्रांति की प्रक्रिया चल रही है। हमारे देश में ही नहीं सारी दुनिया में नर–नारी समता के लिए, चमड़ी–रंग पर रची विषमताओं के खिलाफ, जाति प्रथा की विषमताओं के खिलाफ, पूँजीवादी शोषण के खिलाफ, निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ, अस्त्र–शस्त्र के खिलाफ और हर तरह की परदेशी गुलामी के खिलाफ।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व की चार बड़ी समस्याओं को इस सदी में रेखांकित किया और इनका अध्ययन करने के लिए आयोग बिठाए जैसे – बिली ब्रांट आयोग, ब्रुंडलैंड आयोग, पाल्मे आयोग आदि। रेखांकित समस्याऐं हैं शस्त्रीकरण की समस्या, तीसरी दुनिया की गरीबी की समस्या मानव अधिकारों की समस्या और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या। इसके लिए बिठाए गए आयोगों ने जो हल सुझाए उससे समस्याएं कम होने के बजाय और जटिल हो गई। इनमें तीसरी दुनिया की गरीबी और पर्यावरण की समस्या का सीधा संबंध लोहिया की सप्तक्रांति के पांचवे मुद्दे से है जिसमें निजी पूँजी की विषमताओं के खिलाफ और योजनाबद्ध विकास के लिए काम करने को कहा गया है। इस समय इसके ठीक विपरीत काम हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का साम्राज्य और विश्व बाजार संगठन तीसरी दुनिया के देशों को कंगाल बनाने उन्हें अकाल और भुखमरी का तोहफा देने की व्यवस्था सिद्ध हो रही है। इसके खिलाफ समाजवादियों को छोड़ कौन मोर्चा सम्हाल सकता है। क्या यह काम कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी कर सकती है जो पूँजीवाद की खाद पर पली है।

जाति, रंग और सेक्स की विषमताओं के खिलाफ कौन लड़ेगा? जिस जन्म आधारित वर्णव्यवस्था पर हिंदु धर्म टिका है। क्या उसके खिलाफ भारतीय जनता पार्टी खड़ी हो सकती है और कांग्रेस भी क्यों खड़ी होगी जिसने कालेलकर आयोग और मंडल आयोग का लगातार विरोध कर वर्णव्यवस्था की रक्षा के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। आरक्षण व्यवस्था डॉ. लोहिया के द्वारा दिया हुआ विशेष अवसरों का सिद्धांत है जिससे वे वर्णव्यवस्था को तोड़ना चाहते थे। इससे वर्णव्यवस्था टूट भी रही है। जैसे–जैसे वर्णव्यवस्था के सताए तबकों को अधिकार मिल रहे हैं। सत्ता वर्णीयों के हाथ से निकल कर इन तबकों के पास आ रही है। वैसे–वैसे वर्णव्यवस्था टूट रही है। उच्चवर्णीय इसे जातिवाद का उभार कह रहे हैं लेकिन यह जातिवाद का उभार नहीं है। यह जाति–व्यवस्था के टूटने के क्रम में पैदा हुई नई समस्या है जो अस्थायी है। जातिवाद बढ़ रहा है। उन तबकों में जो वर्णव्यवस्था की रक्षा के लिए युद्ध की मुद्रा में आ गए हैं। जो कभी आरक्षणों का विरोध करते हैं और कभी धर्म के नाम पर सदियों की गली सड़ी व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं। जाति व्यवस्था टूटने के क्रम में कुछ जातियाँ मजबूत हो रही हैं जबकि सत्ता का विकेंद्रीकरण सभी जातियों में होना चाहिए यह इसलिए हो रहा है। क्योंकि समता और समाजवाद का विचार पृष्ठभूमि मे धकेल दिया गया है। यह विसंगति समाजवादी विचार को पुनः प्रमुखता दे कर ही दूर हो सकती है।

सप्तक्रांति का एक विशेष मुद्दा है सभी प्रकार की विदेशी गुलामी से मुक्ति। यह गुलामी आर्थिक भी है और सांस्कृतिक भी। भाषा की गुलामी इसका सबसे बड़ा कारण है आज की विडम्बना यह है कि कोई भी पार्टी विदेशी भाषा की गुलामी से मुक्ति पाने की बात नहीं कर रही है। अंग्रेजी को हटाकर भारतीय भाषाओं को उचित स्थान देने से सभी डर रहे हैं जबकि डॉ. लोहिया ने अंग्रेजी हटाओं का कार्यक्रम दिया था। अगर इस देश से अंग्रेजी हट जाए तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हमले से आधा बचाव तो तुरंत हो जाएगा। इससे साधारण वर्गों के नौजवान लड़के–लड़कियों के लिए रोजगार के द्वार भी खुलेगें। लोहिया कहा करते थे कि "अग्रेजी गैर–बराबरी बढ़ाती है। और यह भारत की गरीबी का कारण भी है।" क्या पचास साल में उपेक्षित भाषायी गुलामी के सवाल को समाजवादी आंदोलन को मजबूत किए बिना हल किया जा सकता है।

इस समय सारी दुनिया में मानव अधिकारों और पर्यावरण–रक्षा के लिए आंदोलन चल रहे हैं। भारत में भी यह प्रक्रिया जोरों पर है। यह सप्तक्रांति का ही कार्यक्रम है जिसके लिए डॉ. लोहिया ने सतत सिविल नाफरमानी, हिमालय बचाओ, नदियाँ साफ करो आदि के आंदोलन चलाए थे। बड़े उद्योगों और जटिल प्रौद्योगिकी के खिलाफ छोटी मशीन और सरल प्रौद्योगिकी का नारा भी डा. लोहिया ने दिया था। अगर कुर्सियों के संकीर्ण दायरे में निकल कर समाजवादी इन आंदोलन की अगुवाई नहीं करेगें तो वे लोहिया का नाम लेने के हकदार कैसे होंगे?

सप्तक्रांति का अंतिम मुद्दा है शस्त्र–अस्त्र के खिलाफ संघर्ष। परमाणु हथियारों को समाप्त करने का

आंदोलन इस समय विश्वव्यापी आंदोलन बना है। इन परमाणु हथियारों की काट हैं गांधी जिन्हें डॉ. लोहिया ने इस सदी का दूसरा सबसे बड़ा अविष्कार कहा था। सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी के हथियार का विकास किए बिना शस्त्रों–अस्त्रों पर रोक नहीं लग सकती। प्रेम और अहिंसा के आदर्श को अपनाए बिना देशों के बीच आपस की दुश्मनी खत्म नहीं हो सकती। पिछले वर्षों में हमने देखा कि भारत और पाकिस्तान ने एक दूसरे के परमाणु विस्फोटों से डरकर या अमेरिका से डांट खाकर मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया जो सफल नहीं हो पा रहा है। भयजन्य मित्रता का यही हश्र होता है। भारत और पाकिस्तान के बीच मित्रता का स्थायी पुल समाजवादी ही बना सकते हैं। जिनके लिए भारत–पाक एकाएक पवित्र कार्यक्रम है। देश के विभाजन से आठ दिन पूर्व सभी समाजवादी नेताओं के हस्ताक्षरों से एक अपील निकली थी। जिसमें कहा गया था कि हमारी आजादी तब तक अधूरी रहेगी जब तक भारत और पाकिस्तान पुनःस्नेह सूत्र में नहीं बंधेगे। समाजवादियों ने पाकिस्तान को कभी भारत की दुश्मन नहीं माना। भारत पाकिस्तान के बीच मित्रता पूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए विभाजन की मानसिकता से मुक्त होना आवश्यक है और यह मजबूती समाजवादी आंदोलन से ही संभव है।

महात्मा गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य नरेंद्र देव आदि समाजवादी नेताओं ने पश्चिमी सभ्यता की विसंगतियों को पहचाना और उसके टूटने की भविष्यवाणी भी की थी। गांधी ने 1909 में हिंद स्वराज लिख कर इस पर सभ्यता को चुनौती दी थी। यह सभ्यता आज वास्तव में टूट रही है। और इसका स्थान नई सभ्यता लेने जा रही है। इस सभ्यता के मूल्य थे शक्तिवाद, प्रकृति के विनाश पर टिका उद्योगवाद और अपनी जरूरतों को निरंतर बढ़ाने वाला भोगवाद। लोहिया ने इन मूल्यों को नकारा और उनके स्थान पर नये मूल्य दिए। ये मूल्य हैं निर्बल के जीने का अधिकार, प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व और सादगी का जीवन। यही तीन मूल्य नई सभ्यता का निर्माण कर रहे हैं। नई सभ्यता के निर्माण का नेत्त्व भारत के समाजवादी ही कर सकते हैं। जिन्होंने ये मूल्य घुट्टी में प्राप्त किए हैं। किंतु दुःख की बात है कि ये समाजवादी अपने ऐतिहासिक दायित्व को भूल कर छोटे–छोटे स्वार्थो में पड़ कर क्रांति–विरोधी तत्वों के आगे हाथ फैलाए खड़े हैं।

भारत की राजनीति भी इस समय चौराहे पर खड़ी है। उसे नई दिशा की तलाश है। यह नई दिशा उसे समाजवादी आंदोलन ही दे सकता है। जिसके सरोकार हमेशा दलितों, पिछड़ों और अन्य कमजोर तबकों में समता की भूख जगाने के रहे हैं। यदि आज भी ये बिखरे हुए समाजवादी अपने भेद–भाव भुला कर एक मंच पर आ जाएं तो कुछ ही महीनों में भारत की राजनीति नया मोड़ ले सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. डॉ० राममनोहर लोहिया : समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ – 9, राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास बेगम बाजार, हैदराबाद, 1969.
2. इन्दुमति केलकर : लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ – 342, नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद 1963.
3. विश्वास चन्द्र श्रीवास्तव, जितेन्द्र सिंह : समाजवाद संकल्प और संघर्ष पृष्ठ 23, श्री प्रभु नारायण सिंह अमृत महोत्सव समिति, काशीपुरा, वाराणसी 1997.
4. मोहन सिंह : समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन एक संक्षिप्त अवलोकन पृष्ठ 21, नेल्को प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स लारी भवन, बुलंदबाग, लखनऊ
5. विनोद, सुनीलम : समाजवादी आन्दोलन तनाव का दौर (1952–1954) भूमिका से प्रतिपक्ष प्रकाशन 31ए–3, दिलशान गार्डन शाहदरा, दिल्ली 1986.
6. लक्ष्मीकान्त वर्मा : समाजवादी आन्दोलन लोहिया के बाद, पृष्ठ–16–17 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, लखनऊ (उ.प्र.) 1995.
7. प्रकाश शास्त्री : भारत में समाजवादी आन्दोलन पृष्ठ–8, पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर, 1982.
8. मस्तराम कपूर : समाजवादी विचारमाला–3, विकल्प की बाधायें, पृष्ठ 46–47, समाजवादी साहित्य संस्थान, दिल्ली 1999

❑❑

लोहिया पथ

डॉ. कविता यादव*

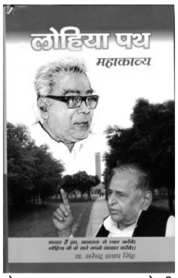

'लोहिया पथ' डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा रचित एक अद्वितीय महाकाव्य है। जो कि समाजवादी पुरोधा श्री मुलायम सिंह यादव के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं अस्तित्व पर आधारित है। महाकाव्य किसी सामान्य पुरुष के ऊपर लिखना सम्भव नहीं होता, वास्तव में जो महापुरुष होता है, महाकाव्य उसी पर लिखा जा सकता है। डॉ0 सिंह का मानना है कि श्री मुलायम यादव एक ऐसा व्यक्तित्व है जिनमें एक महापुरुष के समस्त लक्षण विद्यमान है। यही कारण है कि इनकी लेखनी श्री मुलायम सिंह यादव पर महाकाव्य लिखने हेतु चल पड़ी।

'लोहिया पथ' महाकाव्य कुल दस अध्यायों में विभक्त है जिसमें 551 छन्द हैं, जिनकी भाषा बहुत ही सरल एवं बोलचाल की भाषा है। श्री सिंह का मानना है कि ज्यादा क्लिष्ट शब्दों के बजाय सरल शब्दों का जब प्रयोग होगा तो पाठक उसे अन्तरमन से पढ़ता है अर्थात भाषा ऐसी होनी चाहिए जो पढ़ते समय आँखों से देखते ही दिमाग और दिल में उतर जाय, वही भाषा श्रेयस्कर और उत्तम होती है।

प्रस्तुत महाकाव्य 'लोहिया पथ' के नायक श्री मुलायम सिंह यादव जी हैं। इस महाकाव्य का नायक सद्गुणों से युक्त, समाज सेवी है तथा महापुरुष के समस्त लक्षण विद्यमान है। लोहिया पथ दससर्गों में विभक्त है। इसका आरम्भ मंगलाचरण से किया गया है। समय–समय पर आवश्यकतानुसार प्रकृति वर्णन भी किया गया है। साथ ही रस, अलंकारों को भी ध्यान में रखा गया है। लोहिया पथ के नायक के जन्म के समय इन पंक्तियों को देखिए–

वातावरण सुमधुर मनोहर, बहने लगी बयार सुगन्धित।
पशु–पक्षी–तरू नृत्य कर रहे, धरती–आसमान है पुलकित।
हर्षित हो उठीं तम की घड़ियां, नव किरणों ने ली अंगड़ाई।
सन् उन्तालिस की बेला पर, जब, तिथि बाइस नवम्बर आयी।

श्री मुलायम सिंह यादव यादव बचपन से ही कर्मठ एवं ईमानदार रहे हैं, तथा आम बच्चों से अलग रहें। तेरह वर्ष की आयु मे ही श्री मुलायम सिंह डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों से प्रेरित होकर सड़कों पर निकल पड़े तथा जेल भी गये। शिक्षा ग्रहण के दौरान अनेकों प्रकार की समस्याएं उनकी राह में आयीं परन्तु उनके फौलादी इरादों के आगे टिक न सकी और निरन्तर ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते गये।

शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात इन्होंने अध्यापन का कार्य चुना जब कि उन दिनों इस कार्य से लोग पीछा छुड़ाते थे। अध्यापन काल में मुलायम सिंह ने गाँव–गाँव जाकर लोगों में जागरूकता पैदा की, शिक्षा की ओर लोगों को मोड़ा, इसके साथ ही उन्होंने अनेकों प्रकार की समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने हेतु अभियान चलाया। जैसे छुआ–छूत, बाल–विवाह, अनमेल विवाह, नशाखोरी, मृत्युभोज आदि कुरीतियों के खिलाफ जंग लड़ी। इस अन्तराल में उन्हें बहुत बड़ी–बड़ी परेशानियां भी झेलनी पड़ी, फिर भी वे अपने मार्ग से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए।

मुलायम सिंह बचपन से ही लोहिया जी से काफी प्रभावित थे। मुलायम के त्याग, उत्साह, ओजस्विता और संगठन शक्ति से उस समय के बड़े–बड़े नेता इनसे बिना प्रभावित हुए नही रह सके। सर्वप्रथम जसवन्त नगर से वर्ष 1967 में सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर विधानसभा का चुनाव लड़ा तथा कांग्रेस के प्रत्याशी को भारी मतो से पराजित कर विधानसभा के अन्दर सबसे कम उम्र के विधायक बनकर आये। उसके बाद तब से अनेकों बार विधायक–सांसद, मंत्री, नेता विरोधी दल तथा तीन बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बनकर समाज के हर वर्ग की रक्षा एवं सेवा की तथा डॉ0 लोहिया के सपनों को साकार किया।

डॉ0 लोहिया के समाजवादी मार्ग पर चलते हुए श्री मुलायम सिंह यादव को काफी दिक्कतें आयीं फिर भी वे सीना ताने अपनी राह पर चलते रहे तथा आज भी लोहिया पथ पर अडिग हैं। वर्तमान में उनके साथ इस पथ पर चलने वाले असंख्य अनुयायी है जो कि निडर होकर कंधा से कंधे मिलाकर इनका साथ विभिन्न परिस्थितियों में निभा रहे हैं।

आज मुलायम सिंह यादव सर्वहारा की बाँह पकड़कर इस लोहिया पथ पर यही मन–मस्तिष्क में लेकर अग्रसर हैं–

मानव है हम मानवता से प्यार करेंगे।
लोहिया जी के सारे सपने साकार करेंगे।।

प्रस्तुत पुस्तक का कवर पेज डॉ0 लोहिया एवं मुलायम सिंह के चित्र के साथ बहुत ही आकर्षित दृष्टिगोचर हो रहा है। 'लोहिया पथ' महाकाव्य कुल 224 पृष्ठ की है तथा इसके रचयिता ने बड़ी ही सरल एवं सहज भाषा मे पाठको के सम्मुख प्रस्तुत किया है तथा इस महाकाव्य के रचयिता ने अपनी माता जी को सादर समर्पित किया है। यह पुस्तक समाजवाद पर शोध करने वाले एवं पाठकों के मध्य बहुत ही महत्वपूर्ण साबित होगी ऐसा मेरा मानना है।

रचयिता–डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह, पुस्तक का नाम– लोहिया पथ, प्रकाशक एस0डी0एस0एन0 ग्रुप ऑफ कालेज, लखनऊ
मूल्य–रू0 251/–

* डॉ0 कविता यादव, असि0 प्रोफेसर हिन्दी विभाग.राजकुमारी महाविद्यालय, रूदौली, फैजाबाद.उ.प्र.

विविध भावों के हाइकु : यादों के पंछी

डॉ0 नितिन सेठी

डॉ0 सुरंगमा यादव का सद्यः प्रकाशित हाइकु संग्रह 'यादों के पंछी' इनके कुल 426 हाइकु का संग्रह है। इस लघुकाय विधा में वर्तमान समय में विपुल मात्रा में सृजन किया जा रहा है। 5–7–5 वर्णक्रम के विधान में व्यवस्थित हाइकु विधा में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भरने का प्रयत्न किया जाता है। डॉ0 सुरंगमा यादव अपने इस आयोजन में बहुत हद तक सफल भी कही जा सकती हैं। वैसे तो हाइकु मुख्यतः प्रेम और प्रकृति की बात अधिक करते हैं परंतु समसामयिक सामाजिक चित्रण भी यहाँ व्यापक रूप से अभिव्यक्ति पाते हैं। सात खंडों में विभाजित आलोच्य संग्रह में पाँच खंड प्रकृतिपरक हाइकु पर ही आधारित है। 'सत्य का पथ' नामक पहले खंड में कवयित्री की कामना है–

सद् विचारक / हो सुपथ गामिनी / सुमति दे माँ / प्रेम विश्वास / घर के ठोस स्तम्भ / सुखी कुटुम्ब

कवयित्री ने दार्शनिक भावों के अनेक हाइकु को लिपिबद्ध किया है। मन, अंतरात्मा, समय, आशा, माया जैसे विषयों पर महत्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत किया गया है। मन का मानवीकरण देखिए–

मन नाविक / तन नौका लेकर / फिरे घूमता / मन है ऐसा / निपुण निदेशक / नाच नचाये

'यादों के पंछी' खंड में प्रेम और विरह के मधुर क्षणों का शब्दांकन द्रष्टव्य है। कुछ हाइकु देखिए–

मन बगिया / कलरव करते / यादों के पंछी
जोड़ूँ कड़ियाँ / यादों की तो बनती / लम्बी लड़ियाँ
मन भाजन / यादों की निधियों से / है आपूरित

प्रकृति के अनेक मनमोहक रूपों का दर्शन पाठक को यहाँ होता है। ग्रीष्म, वर्षा, सर्दी, आतप जैसे मौसमों का मानवीकरण प्रभावित करता है। प्रकृति यहाँ आलम्बन और उद्दीपन; दोनों ही रूपों में दिखाई देती है। बादल, भँवरे, कोयल, गौरैया, फूल, सभी अपने–अपने रंगों में यहाँ स्थान पाते हैं। इन विषयों पर हाइकु रचने में तो जैसे डॉ0 सुरंगमा यादव को महारत हासिल है। मानव मन की अनेक गतिविधियों को कवयित्री सामने लाती हैं। प्रकृति के मनमोहक रूपों के साथ–साथ कठोर और मारक रूपों का चित्रण भी यहाँ है। अनेक भावों की सरलतम अभिव्यक्तियाँ निम्नलिखित हाइकु में द्रष्टव्य हैं–

हवा के झोके / सहला जाते तन / हर्षित मन
तन है भीगा / मन है रेगिस्तान / कैसी बरखा
गंध बिखेर / मेघ अभिनंदन / करती धरा
ओ री बरखा / कैसा बरसे नीर / बढ़ अगन

'नदी किनारे' खंड भी अपनी प्रवाहमयी भावुकता के साथ आकर्षित करता है। जर्जर पेड़को प्रतीक बनाकर कवयित्री कहती है–

नदी किनारे / बूढ़ा जर्जर पेड़ / खैर मनाता
जीवन पोथी / श्वेत पृष्ठ है कोई / कोई धूमिल

'मानवी हूँ मैं' खंड में स्त्री–पुरुष की बराबरी और नारीमन की कोमल संवेदनाओं का प्रकटीकरण है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' की उद्घोषणा करते हाइकु यहाँ संग्रहीत है। इस विषय पर कुछ सुंदर हाइकु देखिये–

एक दूजे के / पूरक नर–नारी / न प्रतिद्वन्द्वी
आधुनिक स्त्री / श्रद्धा इड़ा का रूप / प्रगतिशील

वहीं पुरुष से कंधा मिलाकर चलने की बात भी है–

मैं भी बनूँगी / एक दिन सहारा / भैया के जैसा

'इंद्रधनुष' खंड में विविध विषयक हाइकु संग्रहीत हैं। कवयित्री की दृष्टि में केवल प्रेम–प्रकृति–दर्शन ही नहीं हैं, अपितु, समसामयिक विषयों पर भी उसकी गहरी पकड़ है। हाइकु में आज देश–समाज–राजनीति की बातों को भी लाया जा रहा है, जो इस विधा का प्रसार दर्शाता है। इस संदर्भ में डॉ0 मिथिलेश दीक्षित भी लिखती है, ''नारी विमर्श के अतिरिक्त असमानता, स्वार्थपरता, वृद्धावस्था के कष्ट, निर्धनता, नशाखोरी आदि सामाजिक विसंगतियों पर भी अनेक हाइकु ध्यान आकर्षित करते हैं।'' कुछ हाइकु द्रष्टव्य हैं–

मानवता को / जलाते हैं उन्मादी / जला के बस्ती
धरा बिछाते / गगन ओढ़ते हैं / निर्धन देव
पिता गर्वित / कफन में तिरंगा / बेटे ने पाया
स्नेह वर्तिका / प्रदीप्त करती है / भ्रातृ द्वितीया

हिंदी पर केंद्रित हाइकु में हिंदी का गुणगान किया गया है–

हिंदी देश की / पहचान बनी है / सारे जग में
हिंदी का मान / स्वाभिमान हमारा / रहे ये ध्यान
हिंदी ने बाँधा / एक सूत्र में देश / हुआ स्वाधीन

संग्रह के अंत में छः ताँका भी दिए गए हैं जो प्रभावी बन पड़े हैं। 'यादों के पंछी' कृति में डॉ0 सुरंगमा यादव ने गहनतम भाव भरने का प्रयत्न किया है, जिसमें वे अधिकतम सफल रही है। प्रथम हाइकु संग्रह होने के कारण कवयित्री भविष्य में और गहरे अर्थों के हाइकु सृजन में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगी, ऐसा विश्वास है। अपने कथ्य और शिल्प से 'यादों के पंछी' संग्रह पाठकों की यादों में बना रहेगा।

पुस्तक : यादों के पंछी, कवयित्री : डॉ0 सुरंगमा यादव, प्रकाशक : नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : रु0 250 / –, पृष्ठ : 108

* सी–231, शाहदाना कॉलोनी, बरेली (243005)

PEER REVIEW BOARD KRITIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी–781021
दूरभाष न0–9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर–विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415085218
E-mail - dr.narendrasingh0801@gmail.com

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जुलाई 2018

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975–0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0974–0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राफ्ट या खाता सं. 30358537228, IFSC No. SBIN0000125 में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम ....

संस्था का नाम ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित ....

फोन/मो. नं. .... EMAIL...

स्थान एवं दिनांक ....

हस्ताक्षर

i/kku lEiknd; dk;ky;
Mk- ohjUn fl g ;kno
303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
मोहान रोड, लखनऊ, 226017
दूरभाष–07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

icU/ku
vkjk/kuk cnl
(प्रकाशक एवं वितरक)
124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

नई सदी का भारतीय हिन्दी सिनेमा

- हिन्दी सिनेमा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य–निर्माण की सफलता की यथार्थ कहानी
- हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा
- हिन्दी सिनेमा का तकनीकी पक्ष
- कला सिनेमा का ऐतिहासिक सफर
- सिनेमा के बदलते सरोकार : कला कृति, समय, समाज एवं संस्कृति के विशेष परिप्रेक्ष्य में
- भारतीय सिनेमा में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक सरोकार,
- हिन्दी साहित्य एवं सिनेमा का दिलचस्प इतिहास,
- रूमानी, हास्य और संगीत की त्रिवेणी में परोसा गया स्वस्थ मनोरंजन
- कला कृति एवं बाजारवाद : एक अन्तःसम्बन्ध
- स्त्री की गिदंगी का फलसफा बनाम प्रेम त्रिकोण का जादूगरी रहस्य
- रोमांच, रोमांस और हास्य के प्रमाणिक दस्तावेज
- सच्चाई, संवेदना एवं मानवीय सरोकार बनाम हिन्दी भारतीय सिनेमा
- लोकप्रिय सिनेमा बनाम व्यवसायिक सिनेमा का मनोरंजन सफर, कला सिनेमा बनाम लोकप्रिय सिनेमा
- सिनेमा का यथार्थवादी स्वरूपः एक नई पहल
- कला : कलाकृति एवं बाजार की चुनौतियां
- सिनेमा एवं कारपोरेट जगत का ताजमहलीय अक्स
- साहित्य, सिनमा, एवं विज्ञापन का व्यवसायिक त्रिकोण
- यूथकल्चर बनाम महानगरीय परिवेश के एक साथ गुजरने का रोमांच
- गाँधीगीरी का फलसफा बनाम व्यवसायिक सिनेमा के सरोकार
- राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम (NFDC) बनाम वर्तमान सिनेमा का सच
- लेखक, निर्माता, निर्देशक अभिनेता, अभिनेत्री गीतकार : सम्बन्धों के बदलते संदर्भ
- साम्प्रदायिकता बनाम महानगरीय हिंसा का मायाजाल
- क्षेत्रीय सिनेमाः बनाम समानान्तर सिनेमा
- थियेटर की लोकप्रियता बनाम अभिनेताओं की अभिनेयता!
- हालीवुड बनाम बालीबुड : एक मूल्यांकन

समय का चक्र तेजी से घूमता है। और वही वस्तु हमारे जेहन में स्थायी तौर पर अपना स्थान बना लेती है जो दृश्य के रूप में हमने कभी उसका अवलोकन किया हो। बात जब फिल्मों की होती है तो फिल्मों को जनमानस के अन्दर प्रभावित करने एवं उनके दिल को जीतने की क्षमता होती है साथ ही अपने समय से टकराने का गहरा माद्दा भी होता है, अर्थात जनमानस को इस कला ने जितने गहरे रूप में प्रभावित किया है उतना शायद किसी अन्य माध्यम ने नही। जनशिक्षा के रूप में दृश्यकला का यह रूप जहाँ यह विकसित अवस्था में उभरा है। वहीं विज्ञान की मदद के रूप में इसका अनंत विस्तार भी हुआ है। नजर से नजर का यह खेल परम्परा के रूप में चित्र, संगीत, नृत्य रंगकर्म, काव्य इत्यादि का कला संगम है। हालांकि फिल्में, आदर्श, यथार्थ एवं कल्पना का त्रिकोण होने के साथ–साथ सुःख–दुःख एवं संस्कृति, सभ्यता के अच्छे–बुरे रंगों का मिश्रण होती हैं।

प्रसिद्ध फिल्मकार राही मासूम रजा ने फिल्मों के बारे में अपनी राय उचित ही व्यक्त की है कि फिल्म कला है या केवल व्यापार? मैं फिल्म को साहित्य का अंग मानता हूँ। आज के मानव की आत्मा की पेचीदगी को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्य के पास उपन्यास और फिल्म के सिवा कोई साधन नहीं है। मैं यहाँ यह बहस नहीं छेड़ना चाहता कि कविता का क्या बनेगा। काव्य को साहित्य मानता हूँ और मैं उपन्यास और फिल्म को भी काव्य का ही एक रूप मानता हूँ। जैसे–जैसे जीवन पेचीदा होता गया वैसे–ही–वैसे काव्य बदल गया। महाकाव्य उपन्यास बना और नाटक फिल्म। कुछ लोग कहते हैं कि अच्छी फिल्म केवल वही हो सकती है जो असाहित्यिक हो। मैं यह बात नहीं मानता। आप कह सकते हैं कि फिल्म दृष्टि की कला है। हमने जिस दिन लिखना सीखा था, साहित्य ने उसी दिन बोलना बंद कर दिया था। फिल्म भी एक किताब है। जिसे डायरेक्टर हमारे सामने खोलता भी जाता है और पढ़े–लिखे हैं तो उसके सुनाए बिना भी हम इस किताब को पढ़ भी सकते हैं।

- कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं विचार	डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय	500/-
एकात्म मानव दर्शन	डॉ. श्याम बाबू गुप्त	300/-
धूप की छाँह	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
प्रतिबिंब	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
सुनो पथिक!	डॉ. परशुराम शुक्ल	150/-
इन्द्रधनुषी लघु कथाएँ और चुटकले	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चीन की कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	500/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
परशुराम शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य का अध्ययन	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	500/-
परशुराम शुक्ल की बाल कविता में मूल्य	अनिता रानी	400/-
बाल सतसई मीमांसा (परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई की टीका)	श्याम बिहारी श्रीवास्तव, राकेश कुमार	500/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
सतसई काव्य परम्परा और बाल सतसई	डॉ. संगीता जगताप	550/-
हिन्दी और ओड़िया बाल कविता का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. निर्मला जेना	750/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
हिन्दी का प्रवासी साहित्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	400/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
स्वयंसिद्धा	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
परसाई समय और सापेक्षता	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
डॉ. रामकमल राय सृजन सरोकार	डॉ. निशीथ राय	300/-
मृच्छकटिकम् में मानवाधिकार	डॉ. शुभांगी गायकवाड़	500/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
संत परम्परा की खोज	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	400/-
आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन समस्यायें	डॉ. रेखा शुक्ला	300/-
संस्कृत वांङ्मय में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं कला	डॉ. रेखा शुक्ला	1200/-
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और उनकी समीक्षा दृष्टि	डॉ. अजिता दीक्षित	250/-
कथाकार भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अजिता दीक्षित	600/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
ज्योत्सना	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
प्रेम विवाह	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
बिखरे बादल	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
सूरज आज चाँद से हारा	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-

उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ. मीता अरोरा	600/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
श्रृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-

महान वैज्ञानिक सी.वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह	175/-
आसमान छूते विकलांग	सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
भारत के अमर वीर	सुखदेव सिंह सेंगर	350/-
साहित्य के समुद्र गुरुदेव	सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
कहत ईसुरी और दास मलूका	डॉ. सीता किशोर	200/-
रहीम के आमूं सामूं	डॉ. सीता किशोर	200/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-

अन्य विषय

भारत की कार्य संस्कृति बदलाव की पहल और विकास	डॉ. प्रतिमा गंगवार, डॉ. गीता अस्थाना	900/-
भारतीय लोकतंत्र – चुनौतियाँ और समाधान	डॉ. आर. के. त्रिपाठी	500/-
शारीरिक शिक्षा के आधार	डॉ. नसीम अहमद खान	300/-
मृदा जल संरक्षण एवं सिंचाई	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
भारतीय संस्कृति में कर्मयोग	डॉ. प्रीति राठौर	700/-
राष्ट्रवाद – साहित्य और समाज	प्रो. एस.डी. शर्मा, डॉ. वन्दना, डॉ. आर.पी. सिंह, डॉ. क्षमा, डॉ. देविका	995/-
भारतीय प्रतिरोधी चेतना के प्रतीक प्रोफेसर तुलसीराम	डॉ. धर्मेन्द्र वीरोदय	250/-
विचार प्रवाह	डॉ. सुरंगमा यादव	300/-
दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
दिव्यांगता एक सामाजिक यथार्थ	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
भारत की विदेश नीति	मनोज कुमार यादव	600/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति विचार	डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय	500/-
पर्यावरणीय संकट एवं गाँधीवादी मूल्य	डॉ. शकुन्तला	700/-
ग्रामीण बैंकों की रोजगार सृजन में भूमिका	डॉ. नीरज यादव	600/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्याएँ–संभावनाएँ)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-

चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
Contemporary Environmental Issues & Impact on Human Life	Dr. Ranjana Srivastava	1100/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
Environmental Issues & Gandhian Value	Dr. Shakuntala	400/-
Evolution of National Consciousness in U.P.	Dr. Vijay Khare	500/-
History of Hindu Socio Religious Reform Movements in 19th Century	Dr. Vijay Khare	500/-
Cultural Aspect of Food & Nutrition	Dr. Geeta Mathur	500/-
Issues & Challenges Related to Family Dynamics in Modern Society	Dr. Geeta Mathur	1100/-
Trends Issues & Challenges in Physical Education	Dr. Madhu Gaur	995/-
Anne Sextion and Her Universe	Dr. Sapna Pandey	600/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।

(2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 07985242564 दूरभाष : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वर्ष : 11, वाल्यूम : 22, जुलाई–दिसम्बर 2018

कृतिका परिवार

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सरिता बुधू, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, मॉरीशस
- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारबोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो.बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस. डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाजल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन– डब्ल्यु 1 के 1 एच.एफ.

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. अनीता यादव – प्रवक्ता – शिक्षाशास्त्र, महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटैली, औरैया, उ.प्र.
- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ.प्र.)
- आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.
- डॉ. उमारतन यादव, एसो0 प्रोफेसर–अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखंड महाविद्यालय, झाँसी

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)
- डॉ. सविता मसीह, सहा. प्रध्यापक–हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. फतेह बहादुर सिंह, प्राचार्य, चौधरी चरण सिंह पी.जी. कालेज हैवरा, इटावा (उ.प्र.)
- डॉ. शशि त्रिपाठी, प्रो.–राजनीति विज्ञान, शासकीय ठा. रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
- डॉ. प्रतिमा यादव, हिन्दी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
- डॉ. शारदा दुबे, विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र, शासकीय माता शबरी नवीन कन्या, महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर–21 सी. पार्ट–2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ.प्र.)
- डॉ. भावना यादव, सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय स्वाशासी कन्या स्ना0 उ0 महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. अशोक एम. पवार, हिंदी विभाग, गजमल तुलसीराम पाटील महाविद्यालय, नंदुरबार (महा.)
- डॉ. नम्रता चौकोटिया, पी–एच.डी. अनुभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- प्रो. हितेन्द्र मिश्र, हिन्दी विभाग पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय, ई–मेल : hiten.hindi@gmail.com
- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लाट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
  मो. : 09219828316–ई–मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- डॉ. अजय सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद
  मो. : 09415638535 – ई–मेल : drajaysingh@gmail.com
- डॉ. निर्मल सिंह यादव, आकाशवाणी के सामने ठाठीपुर गाँव, गाँधी रोड, ग्वालियर (म.प्र.)
  मो. : 08052755512 – ई–मेल : kritika_orai@rediffmail.com

प्रधान सम्पादक

- मनोज कुमार यादव
  पूर्व सदस्य
  उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद
  सम्पर्क : 09628824017
  Email : manojkyadav@gmail.com

सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
  अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
  डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय
  लखनऊ–226 017 (उ.प्र.)
  सम्पर्क : 08052755512, 09415924888
  Email : dr.virendrayadav@gmail.com
  Email : virendra_kritika@rediffmail.com
  Wavesite - htt://kritikareseaechjournal.godaddyesites.com

प्रबन्धन

- आराधना ब्रदर्स (प्रकाशक एवं वितरक)
  124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
  दूरभाष –09935007102
  Email : aradhanabooks@rediffmail.com